युग-पुरुष—महात्मा गाँधी

का

जीवन और चरित्र

(१६१५—१६४८)

या

भारत की स्वतन्त्रता का

इतिहास

लेखक—

श्री एस० मनोहर लाल

प्रो० भगवती प्रसाद पान्थरी एम. ए.

प्रकाशन-गृह
टिहरी गढ़वाल के लिए
सरस्वती प्रेस, बनारस द्वारा
प्रकाशित

प्रथम संस्करण २०००
१२ मार्गशीर्ष २००६
(२८ नवंबर १९४९)

मूल्य ६॥) रु०

(युग-पुरुष और महाप्रयाण—संयुक्तप्रान्त और पूर्वी-पंजाब की सरकार द्वारा स्कूल तथा कालेजों के पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत की गयी हैं।)

मिलने का पता—
प्रो० भगवती प्रसाद पान्थरी
काशी विद्यापीठ, बनारस
सरस्वती प्रेस
गोदौलिया, बनारस

मुद्रक—श्रीपतराय, सरस्वती प्रेस, जगतगंज, बनारस कैण्ट।

बापू की वाटिका का

यह श्रद्धा पुष्प

बापू की ही बलि वेदी पर

अर्पित !

दो सम्मतियाँ

आचार्य नरेन्द्र देव—

वाइस-चान्सलर, लखनऊ युनिवर्सिटी

'महात्माजी सचमुच वर्तमान युगके सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। भारतीय सभ्यताकी यह सबसे बड़ी देन है। उनकी शिक्षामें प्राचीन और अर्वाचीन दोनोंका अच्छा सम्मिश्रण है। उनकी शिक्षाका महत्व केवल हमारे लिए ही नहीं है, वरंच सारे संसारके लिए है। आज संसार चौराहे पर खड़ा है। उसको एक नये मार्गकी तलाश है, एक नये सन्देशकी भूख है। महात्माजीका दिव्य सन्देश संसारका त्राण कर सकता है।

गांधीजीकी अनेक जीवनियाँ लिखी गयी हैं। महात्माजीने स्वयं अपनी आत्मकथा लिखी है, किन्तु वह अपूर्ण है।.....प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रकारका एक प्रयास है। पुस्तकका दूसरा भाग अधिक महत्वका है, क्योंकि सन् १९१४ के बादही महात्माजीने भारतके राष्ट्रीय-आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया था। पुस्तक बड़ी सावधानी और परिश्रम से लिखी गयी है।'

आचार्य बीरबल सिंह—

प्रिंसिपल—काशी विद्यापीठ, बनारस

'···विद्वान लेखकोंने युगपुरुष महात्मा गांधी लिखकर एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है।

श्री भगवती प्रसाद पान्थरी, जो एक सिद्धहस्त लेखक हैं और इतिहासके अच्छे विद्वान् हैं, और उनके सुयोग्य-विद्वान-साथी श्री एस० मनोहरलालने बड़े परिश्रमसे इस पुस्तकको लिखा है। जबसे गांधीजीने भारतीय राजनीतिमें प्रवेश किया, उस समयसे भारतका इतिहास उनके जीवन-चरित्रसे गुँथा हुआ है।···पुस्तकके दूसरे भागमें भारतीय राजनीतिका जो गांधीजीके जीवनसे सम्बद्ध है, पूर्णतः समावेश है। यह पुस्तक गांधी-साहित्यमें अपना विशेष स्थान रखती है।

अपनी बात

युग-पुरुष महात्मा गांधीका प्रथम भाग करीब एक साल पहले छप गया था। दूसरा भाग उसके बाद ही प्रेसमें दे दिया गया था, लेकिन कई एक दिक्कतोंके कारण वह अब प्रकाशित हो सका। इसके लिए हम अपने पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं।

युग-पुरुष महात्मा गांधीके दूसरे भागमें १९१५ (जब वे दक्षिण-अफ्रिकासे यहाँ आये) से जनवरी १९४८ (जब उनकी हत्या हुई) तकका पूरा वृत्तान्त दे दिया गया है। हमारे भारतके इतिहासमें १९१५ और १९४८ के बीचका युग बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यही समय था जब कि महात्मा गांधीके नेतृत्वमें भारतने विद्रोही बनकर अपने विदेशी ब्रिटिश शासकों के साथ सत्य-संग्राम या सत्याग्रह छेड़ा था। यह सत्याग्रह लगभग २०-२२ वर्ष तक चलता ही रहा। इस लम्बे समयमें महात्मा गांधीजी अन्त तक सेनानी और पथ-प्रदर्शक होकर भारतीयोंका नेतृत्व करते रहे। अन्तमें 'सत्यमेव जयते' का सिद्धान्त पूरा हुआ और भारतने बिना किसी खून-खराबीके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की। निःसन्देह हिंसा और युद्धोंके इस युगमें बिना किसी हिंसा और शस्त्रका उपयोग किये भारतका विदेशी-सत्तासे मुक्त होना विश्वके इतिहासमें एक अद्भुत घटना समझी जायगी। यह अद्भुत घटना—यह चमत्कार कैसे हुआ, महात्मा गांधीका जीवन और चरित्र ही उसपर प्रकाश डाल सकता है?

लेकिन महात्मा गांधीके जीवन और चरित्रका निरूपण करनेमें हम कहाँ तक सफल हुए हैं—सुयोग्य पाठकगण ही इसे बता सकेंगे। यदि महात्मा गांधीके इस जीवन-वृत्तांतसे हम उनके महान् चरित्रकी कुछ भी झाँकी पाठकोंको दिखा सकें तो हम अपने कर्त्तव्यको पूरा हुआ समझेंगे। महात्मा गांधीके अहिंसामय और सत्य-जीवनसे मिथ्या और हिंसासे तप्त संसारको कुछ शीतलता मिल सके—यही हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है। हम आशा करते हैं कि इस बढ़ती

हुई हिंसा और युद्ध-विभीषिकाके उत्तप्त युगमें महात्मा गांधीका जीवन-चरित्र हमको अहिंसा और शांति-पथकी ओर बढ़ते रहनेका साहस एवं उत्साह प्रदान करता रहेगा।

इस पुस्तकके प्रूफ आदि देखनेमें हमें अपने मित्र प्रो० खुशालचन्द जैन गोरावाला, पुस्तकाध्यक्ष, विद्यापीठ और विद्यार्थी मित्र श्री गजानन शर्मा तथा श्री महाबलेश्वर भट्टसे काफी सहयोग मिला—जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

पुस्तकमें जो कुछ भूल और त्रुटियाँ रह गयी हों, सुयोग्य पाठक उसके लिए हमें अपने सुझाव देनेकी कृपा करेंगे ताकि अगले संस्करणमें सुधार किया जा सके।

विनीत—

एस० मनोहर लाल

भ० प्र० पान्थरी

विषय-सूची

युग-पुरुष-महात्मा गांधी

द्वितीय-भाग

अध्याय—१

गांधीजी भारतमें

दक्षिण अफ्रिकाका स्वातन्त्र्य-संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त करके गांधीजी-का हृदय अपनी मातृभूमिके उद्धारके लिए व्याकुल हो उठा था। भारतके उद्धारकी ये भावनाएँ गोखलेके सम्पर्कमें आनेसे और भी प्रबल हो उठी थीं। किन्तु अफ्रिकासे मातृभूमिका उद्धार करनेके लिए ही भारत आनेवाले अहिंसात्मक सत्याग्रहके महान् सेनापतिका भारतीयोंको तबतक पता भी न था। भारतीयोंको अपने भावी महात्मा और बापूको पहिचाननेका अवसर ही न मिला था। भारतीयोंके आश्चर्य और आह्लादकी उस दिन सीमा न रही, जिस दिन उन्होंने जाना कि अफ्रिकासे लौटनेवाला कृशकाय, शान्त और विनम्र व्यक्ति ही वह गांधी है, जो उनका महात्मा, प्यारा बापू और अजेय सेनापति तथा पथ प्रदर्शक है।

इंगलैंडमें दक्षिण अफ्रिकाका सत्याग्रह-संग्राम समाप्त कर १९१४ की जुलाईमें गांधीजी—अपनी पत्नी कस्तूरबा और जरमन मित्र केलनबकके साथ इंगलैंडके रास्ते भारतके लिए रवाना हुए। ६ अगस्तको गांधीजी अपने साथियोंके साथ इंगलैंड पहुँचे। भारत आनेसे पहिले गांधीजी गोखलेसे मिलनेकी इच्छासे ही इंगलैंड आये थे, किन्तु यहाँ पहुँचनेपर उन्हें पता चला कि गोखले स्वास्थ्य-सुधारके लिए पेरिसमें ही रह गये हैं। अतः गांधीजीने गोखलेकी कुछ दिन इंगलैंडमें रुककर प्रतीक्षा करना ही ठीक समझा।

प्रथम महायुद्ध और गांधी

गांधीजीके इंगलैंड पहुँचनेके ठीक दो दिन पूर्व ही, अर्थात् ४ अगस्तको यूरोपमें प्रथम महायुद्ध भी छिड़ चुका था। गांधीजीका तबतक यही विचार था कि बृटिश-साम्राज्यकी सहायतासे ही भारतीय अपनी स्थितिको सुधार सकते हैं, इसलिए अंग्रेजोंकी विपत्तिके समयमें सहायता पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है। उनका तब शायद यह भी खयाल था कि बृटिश-सरकार युद्धमें न्याय, जनतन्त्र और निर्बल राष्ट्रोंके स्वत्व-रक्षार्थ ही भाग ले रही है। अतः अहिंसावादी होते हुए भी गांधीजीने विश्व-कल्याणके लिए बृटिश-सरकारको मदद देना ही इस समय अपना कर्त्तव्य निर्धारित किया। उन्हें तब यह खयाल न था कि बृटिश सरकारको सहायता करनेका अर्थ साम्राज्यशाहीके स्तम्भोंको और दृढ़ बनाना है, यद्यपि गांधीजीके अन्य भारतीय सहयोगी इस बातको अच्छी तरह समझ रहे थे कि अंग्रेजोंकी मदद करना साम्राज्यशाहीको और मजबूत करना है। कलकत्तेके पादरीतकने मित्रराष्ट्रोंकी विजयके लिए प्रार्थना करना अनुचित बतलाया था; क्योंकि एक ओर जिस साम्राज्यवादपर मित्रराष्ट्र यूरोपमें विजय पाना चाहते थे, दूसरी ओर भारतमें वे उसे ही कायम रखे हुए थे।* इसीलिए गांधीजीके कतिपय भारतीय मित्रोंने इस बातको माननेके लिए उनपर जोर दिया कि ऐसे धोखेबाज बृटिश-राजतन्त्रकी सहायता करना एक प्रकारसे अपने ही हितोंपर स्वयं आघात करना है, और उचित तो यह है कि भारतीयोंको बृटिश-सरकारकी विपत्तिसे लाभ उठाकर अपनेको उनकी गुलामीसे छुड़ानेका प्रयत्न करना चाहिए।

किन्तु प्रेम और धर्मसे ही शत्रुओंपर विजय पानेमें विश्वास करनेवाले गांधीजीको ये बातें क्योंकर पसन्द आतीं? वे शत्रुको उसकी कमजोरीसे नहीं, बल्कि अपने शुद्ध आत्म-बल और नैतिकतासे परास्त करनेके पक्षपाती थे। साथही बृटिश-हुकूमतको वे तब अपने अन्य साथियोंकी भाँति बिलकुल अविश्वसनीय और

---

* Out of Dust by D. F. Karaka, P. 58.

धोखेबाज भी नहीं समझते थे, यद्यपि युद्ध समाप्त होनेके कुछ समय बाद गांधीजी-को भी अंग्रेजोंकी अविश्वसनीयताका पूर्ण पता लग गया और तब उनके हृदयसे भी बृटिश-शासनका विश्वास पूर्णतया जाता रहा। गांधीजीने स्वयं लिखा है—'बृटिश-शासन-पद्धतिका मैं दोषमय तो मानता था, परन्तु आजकी तरह वह उस समय असह्य नहीं मालूम होती थी। अतएव आज जिस प्रकार वर्तमान शासन-पद्धतिपरसे मेरा विश्वास उठ गया है और आज मैं अंग्रेजी राज्यकी सहायता नहीं कर सकता, इसी तरह उस समय जिन लोगोंका विश्वास इस पद्धतिपरसे ही नहीं, बल्कि अधिकारियोंपर से भी उठ चुका था, वे मदद करनेके लिए कैसे तैयार हो सकते थे?'*

भारतीय स्वयंसेवक-दल

गांधीजी जिस बातको स्थिर कर लेते हैं, फिर उससे डिगनेका नाम नहीं लेते। उन्होंने बृटिश-सरकारको मदद देनेका इरादा किया था और वे दृढ़तासे उस इरादेको कार्यान्वित करनेमें लग भी गये। गांधीजीने अपने इरादेके अनुसार एक एम्बुलेन्स कोर (Ambulance corps) स्थापित किया और उसमें भर्ती होनेके लिए भारतीयोंसे नाम माँगे। इस आह्वानपर अनेक भारतीयोंने प्रसन्नतासे अपने नाम दिये। नाम देनेवालोंमें भारतके सभी प्रान्तों और धर्मोंके लोग शामिल थे। गांधीजीकी पत्नी भी इस कोरमें भर्ती हुई थीं। भारतकी प्रमुख महिला कवि सरोजिनी नायडू भी उस समय इंगलैंडमें थीं और पहिलेसे ही गांधीजीसे आकृष्ट होनेके कारण वे भी इस कार्यमें सम्मिलित हुईं। इस भर्तीके हो जानेपर गांधीजीने भारतीय स्वयंसेवक-दलके नामसे लार्ड क्रूको इस आशयका पत्र भेजा कि भारतीय घायल सिपाहियोंकी सेवा करना चाहते हैं और यदि उस कार्यके लिए पहिले शिक्षाकी जरूरत हो, तो वे उसके लिए तैयार हैं। लार्ड क्रूने भारतीयोंकी इस उदार सहायताको सहर्ष स्वीकार किया।

* आत्मकथा, दूसरा खण्ड—हरिभाऊ उपाध्याय—पृष्ठ २०८

भारतीय स्वयंसेवक-दलको, जिसमें लगभग ८० व्यक्ति शरीक हुए थे, डाक्टर केन्टलीकी अध्यक्षतामें ६ सप्ताहतक घायलोंकी शुश्रूषा करनेकी शिक्षा लेनी पड़ी। एक व्यक्तिको छोड़कर शेष सब इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। इसके बाद भारतीय स्वयसेवकोंको कर्नल बैकरकी अध्यक्षतामें कवायद आदिकी भी शिक्षा लेनी पड़ी।

यह सब तैयारियाँ तो हुईं; किन्तु दक्षिण अफ्रिकामें निरन्तर कई वर्षोंतक अनवरत परिश्रम करने और आत्म-शुद्धिके लिए अनेक व्रत रखनेके कारण गांधीजीकी शारीरिक अवस्था इतनी बिगड़ चुकी थी, कि वे इस समय सेवा-शुश्रूषाका गुरु-कार्य करनेके योग्य न रह गये थे। इन्हीं कारणोंसे दिसंबरमें एकाएक उनकी तबीअत और भी खराब हो उठी। इसी बीच गोखले भी पेरिससे विलायत आ पहुँचे थे। गांधीजीकी पसलीमें तब दर्द रहा करता था। अतः गोखलेने उनको डाक्टरी सलाह-पर दूध और मांस आदि खानेको जोर दिया तथा फलाहारकी जगह अन्नाहार करनेको कहा। गांधीजी गोखलेको अपना गुरु मानते थे, इसलिए उनके आग्रहको टालना गांधीजीके लिए बहुत कठिन था। लेकिन प्रतिज्ञा और सत्यको वे प्रेम-पर निछावर करना पाप समझते थे। रामका भक्त मर्यादाका उल्लंघन कैसे कर सकता है? अतः गांधीजीने दूध और मांसके अतिरिक्त, जिन्हें न लेनेकी वे बहुत पहिलेसे प्रतिज्ञा कर चुके थे, गोखलेकी शेष सब बातें स्वीकार कर लीं और स्पष्ट कह दिया कि 'दूध और दूधकी बनी चीजें तथा मांस इतनी चीजें मैं न लूँगा। इनके न लेनेसे यदि मौत भी आती हो, तो मैं समझता हूँ, उसका भी स्वागत करना मेरा धर्म है।'* स्पष्ट है कि गांधीजी अपने वचनोंके लिए, जिन्हें वे सत्य और पुण्य मानते हैं, मर-मिट सकते हैं; किन्तु जीनेके लिए असत्य और पापको वे किसी भी दशामें नहीं अपना सकते।

इसी बीच गांधीजीके गुरु गोखले भारतको लौट आये। गांधीजीकी

---

*—वही—पृष्ठ २२७

बीमारी बढ़तीही रही। अन्तमें अपने अंग्रेज मित्र मि० राबर्ट तथा कतिपय अन्यान्य मित्रोंके बहुत जोर देनेपर गांधीजीने भी स्वास्थ्य-सुधारके निमित्त भारतको लौटना स्वीकार किया और तदनुसार तबीअतके कुछ सम्भलतेही वे अपनी पत्नी-सहित भारतके लिए रवाना हो गये।

मातृभूमिमें पदार्पण;

९ जनवरी, १९१५को गांधीजी बम्बई पहुँचे। भारतने अपने भावी रहनुमाको पहिचाना और अपोलो बन्दर (Apolo Bunder) में बड़ी धूमधामसे गांधीजीका शाही स्वागत किया। उनके स्वागतमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, छोटे-बड़े सार्वजनिक नेता और सरकारी कर्मचारी आदि सभी प्रकारके लोग सम्मिलित थे।

यह वह समय था, जब बृटिश-शासन भारतके उगते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन-को दबानेमें वर्षोंसे लगा था और उनके दमनोंसे भारत क्षुब्ध और क्रोधित हो रहा था। बंग-भंगके जमानेसे भारतका स्वदेशी-आन्दोलन (१६०५-१९०७) सर्वत्र फैल चुका था। इसके प्रमुख नारे तीन थे—स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा। स्वदेशीके प्रचार और विदेशीके बहिष्कारके फलस्वरूप लाखों रुपयोंका अंग्रेजी तथा विदेशी माल फूँक दिया गया था। गवर्नमेन्ट स्कूलों तथा कालेजोंका भी इसी प्रकार बहिष्कार हुआ और राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित होने लगे थे। स्वदेशीके इस आन्दोलनको सरकारने खूब कड़ाईसे दबाया। किन्तु उगती भावनाओंको दबाना व्यर्थ हुआ ही करता है। अतः बृटिश-सर-कारकी सख्तियोंके फलस्वरूप भारतके नवयुवकोंने हिंसाके मार्गको भी अंगीकार किया। हिंसामय आन्दोलनके नेता श्रीअरविन्द घोष थे। इनके ऊपर इस सम्बन्धके मुकदमे भी चले थे। बादमें श्रीअरविन्द राजनीतिसे हट गये और पाण्डीचेरीमें एक आश्रम बनाकर रहने लगे, जहाँपर उनका आश्रम आज भी फल फूल रहा है।

बंगालके श्रीअरविन्दकीही भाँति महाराष्ट्रमें भी स्वदेशी-आन्दोलनके महान् कर्णधार श्रीबालगंगाधर तिलक थे। ये १३ जुलाई, १९०८ को राजद्रोहात्मक भाषण करनेके अभियोगमें पकड़े गये और इन्हें ६ सालकी सजा दी गयी। इन नेताओंके साथ इनके सैकड़ों अनुयायियोंको भी जेलोंमें ठूँसा गया। परन्तु ये सख्तियाँ भारतकी स्वतन्त्रता, स्वराज्य और स्वदेशीकी भावनाओंको दबानेमें असमर्थ ही रहीं।

स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता भारतके नवयुवकोंके सामने 'ईश्वर'के रूपमें प्रकट हुई थीं। श्रीविपिनचन्द्र पालने कहा था, 'भारतीय जातिकी शाश्वत आत्मा ही दुर्गा है।' श्रीअरविन्द घोषने वीर-घोष किया था : 'राष्ट्रीयता ईश्वर-प्रणीत धर्म है। राष्ट्रीयताका विनाश नहीं हो सकता, क्योंकि वह ईश्वर है...ईश्वरको मारा नहीं जा सकता। ईश्वरको बन्दी नहीं किया जा सकता।' इन वीर-घोषोंके फलस्वरूप १९०६ की कलकत्ता-काँग्रेसने ८२ वर्षके वयोवृद्ध नरम नेता दादाभाई नौरोजीके नेतृत्वमें औपनिवेशिक स्वायत्त-शासनकी जगह 'स्वराज्य'को प्राप्त करनेकी घोषणा की। तिलककी "स्वराज्ज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है"—सिंह-गर्जनाको अंग्रेजी-साम्राज्यवाद सह न सका।

फलतः समस्त देश इन्हीं ललकारों और क्रान्तिकारी भावनाओंसे आप्लावित हो उठा था। स्वराज्य और राष्ट्रीयताको भारतीय युवक दुर्गा और ईश्वर मानकर पूज रहे थे। ईश्वरके नामपर अपनेको होम करने और माता दुर्गाकी वेदीपर अपने सिरोंका बलिदान करनेमें भला फिर कौन हिचकिचाता? किन्तु अंग्रेजी शासनको इस आन्दोलनकी आध्यात्मिकतातक पहुँचना सम्भव न था। अतः यदि पार्थिव रूपके पुजारियोंने इस अजेय आध्यात्मिकताको शस्त्रोंसे कुचलनेका सकल्प किया, तो क्या आश्चर्य! अंग्रेजी सरकारने १९०५ सेही भारतीयोंका पूरे पशुबलसे दमन किया। दूसरी ओर इस दमनकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। कतिपय भारतीय भी प्रतिहिंसात्मक कार्य कर रहे थे। बम्ब-आन्दोलन इन्हीं सब प्रवृत्तियों और प्रतिक्रियाओंका प्रकट फल था। १९०९ में वाइसराय लार्ड

मिन्टोपर असफल बम्ब-प्रहार किया गया, नासिकका अंग्रेज कलक्टर मार डाला गया ; लन्दनमें मदनलाल धींगरा नामक एक युवकने इण्डिया आफिसके कर्ज़न विली और डा० ललकाककी हत्या कर डाली ; और १९१२ में लार्ड हार्डिज-पर भी बम्ब फेंका गया। इस प्रकार सारे देशमें अंग्रेजी शासनके विरुद्ध रोष और हिंसाकी एक भयानक लहर फैल उठी। कॉंग्रेसने भरसक यह प्रयत्न किया कि सरकार दमनको रोके और युवकोंको शान्त करनेका उपाय करे ; पर इन बातोंको कौन सुनता था ? आत्माके बजाय भुजापर ही भरोसा करनेवाली अंग्रेजी सरकार अपने भुजबलसे ही भारतीय आत्माको कुचलनेका इरादा कर चुकी थी। इस आन्दोलनको दबानेके लिए राजद्रोहात्मक सभा-कानून (Seditious Meetings Act), प्रेस ऐक्ट और क्रिमिनल ला-अमेन्डमेन्ट ऐक्ट पास किये गये। इनके प्रयोगसे सैकड़ों भारतीय नौजवानोंके जीवनको विनष्ट किया गया। इन्हीं कानूनोंकी प्रतिक्रियासे घबड़ाकर गोखलेने सरकारको चेतावनी दी थी कि "सरकारकी मूर्खतासे नवयुवक हाथसे निकले जा रहे हैं और उनके कार्योंकी जिम्मेदारी अब बुजुर्गोंपर नहीं रहेगी।" किन्तु इस चेतावनीकी भी धृष्टताके साथ अवहेलना की गयी थी।

ऐसी स्थितिमें, जब १९१५ में गांधीजी बम्बई उतरे तब भारतके शरीरपर अंग्रेजी सरकारके दमनके क्षत-विक्षत हरे थे। यद्यपि उनके पहुँचनेके कुछ समय पूर्व १९१४में तिलकजी कैदसे रिहा हो चुके थे तथापि प्रेस ऐक्ट और राजद्रोहात्मक सभा-कानून तब भी भारतमें लागू थे तथा सैकड़ों देशभक्त युवक जेलोंमें सड़ रहे थे।

बम्बईके गवर्नरसे भेंट और कैसर-हिन्द

गांधीजीके बम्बईमें उतरते ही गोखलेने उन्हें सूचित किया कि बम्बईके गवर्नर लार्ड वेलिंग्डन उनसे मिलना चाहते हैं। लार्ड वेलिंग्डन वास्तवमें दक्षिण अफ्रिकासे लौटे हुए भारतीय नेताका सम्मान करनेके लिए या भारतीयोंके प्रति प्रेम प्रदर्शित करनेकी दृष्टिसे गांधीजीके साथ भेंट करना चाहते थे ? ऐसी

कोई बात न थी। दिखावेके लिए वे अवश्य भारत और उसके नेताके प्रति सम्मान प्रकट करनेकी उत्सुकता दिखला रहे थे; किन्तु असलमें गांधीजीसे मिलकर वह यह समझना चाहते थे कि वह व्यक्ति, जिसने दक्षिण अफ्रिकाकी अंग्रेजी हुकूमतको कँपा दिया और उसे अपने सामने झुकनेको बाध्य किया, किस प्रकार-का है, ताकि यदि ऐसीही चेष्टा वह भारतमें करे, तो उसके दबानेकी तरकीबें पहलेसे ही सोच-समझ ली जायँ। स्मरण रखनेकी बात है कि यह वही लार्ड वेलिंग्डन थे, जिन्होंने बादमें वाइसराय होनेपर सन् १९३३में गांधीजीकी प्रार्थनापर उनसे मिलना स्वीकार न किया था। किन्तु गांधीजी तो कभी इस बातकी परवाह नहीं करते कि उनके साथ कौन कैसा बर्ताव करता है। उनका सिद्धान्त है कि आदमीको स्वयं झूठ, दिखावा और प्रतारणासे दूर रहना चाहिए, और यदि दूसरा असत्य-व्यवहार करता है तो नुकसान वही उठाता है, न कि सत्यपर चलनेवाला। अतः लार्ड वेलिंग्डनके भीतरी भावोंको समझनेकी परवाह किये बिनाही गांधीजीने सभ्यताके नाते निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और गवर्नमेन्ट हाउसमें जाकर लार्ड वेलिंग्डनसे मिले। कूटनीतिज्ञ वेलिंग्डनने बड़े सम्मानके साथ गांधीजीसे भेंट की और कहा, "मैं आपसे एक वचन लेना चाहता हूँ। वह यह है कि यदि आप सरकारके विरुद्ध कहीं कोई आन्दोलन चलाना चाहें, तो उसके पहिले एकबार मुझसे अवश्य मिल लें और बातचीत कर लें।" गांधीजीने यह वचन देना सहर्ष स्वीकार किया, जिसपर लार्ड वेलिंग्डनने उनको धन्यवाद देते हुए कहा, 'आप जब कभी मिलना चाहें, तो मुझसे तुरन्त मिल सकेंगे और आप देखेंगे कि सरकार जान-बूझकर कोई बुराई नहीं करना चाहती।'* यह कहना जाल-मात्र था या इसमें कोई सत्य भी था, यह वेलिंग्डनके उस व्यवहारसे स्पष्ट है, जो उसने वाइसराय होनेके बाद किया था। लेकिन अपनी साधुताको ही दूसरेमें देखनेवाले गांधीजीने वेलिंग्डनके इस कथनको

*—आत्मकथा, खंड २, पृष्ठ २६५-२६६

तत्काल सही ही समझा और विनम्रताके साथ उत्तर दिया, "इसी विश्वासपर तो मैं जी रहा हूँ।"

बृटिश-सरकार उस समय गांधीजीके प्रति बहुत ही उदार मालूम होती थी। लार्ड वेलिंग्डनके सम्मान-प्रदर्शनके अलावा लार्ड हार्डिञ्जकी भारत-सरकारने भी गांधीजीको उनके युद्धकी सेवाओंके लिए नये सालके अवसरपर 'कैसर-हिन्द'का स्वर्ण-पदक अर्पित करके उनका आदर किया था। बृटिश-सरकारका गांधीजीके प्रति उदार होना स्वाभाविक था ; क्योंकि गांधीजीने स्वयं बड़ी उदारताके साथ उनको मदद दी थी। गांधीजी चाहते तो अपने अन्य अंग्रेज-विरोधी भारतीयोंकी तरह सरकारको मदद देनेसे इन्कार कर सकते थे। इतनाही नहीं, सरकारको संकट और संघर्षमें फँसा समझकर, उसकी विपत्तिके अवसरका राष्ट्रीय संग्राममें उपयोग करके अपनी मुक्तिका मार्ग भी बना सकते थे। किन्तु गाधीजीके हृदय और सिद्धान्तोंकी यह महानताही थी, जिसने सरकारकी विपत्तिसे लाभ न उठाया और उसके साथ सहानुभूतिकाही व्यवहार किया था। गांधीजीके हृदय-परिवर्तन और धर्म-विजयके मार्गका यही रहस्य है।

बम्बईसे पूना

बम्बईमें विभिन्न दलोंने गांधीजीके स्वागतमें सभाएँ की थीं। एक सभा गुजरातियोंकी भी आपके स्वागतके लिए हुई थी। इस सभामें महात्माजीके वर्तमान कट्टर प्रतिद्वन्द्वी और विरोधी मि० जिन्नाने भी उनके स्वागतमें एक मधुर भाषण दिया था। इस सभामें गांधीजीने अंग्रेजीके बजाय अपनी मातृभाषा गुजरातीमें ही लोगोंके स्वागतका उत्तर दिया था। सभ्य-सभाओंमें देशी भाषामें बोलना एक नयी बात थी और देश-प्रेमका एक नवीन प्रदर्शन था। लोगोंको शायद तभी यह प्रतीत होने लग गया था कि सम्भवतः यह व्यक्ति आगे चलकर राष्ट्रके जीवनमें बहुत-से अमूल्य परिवर्तनोंका प्रवेश करेगा। स्वयं गांधीजीको भी इसके पहले हेय दृष्टिसे देखी जानेवाली देशी भाषामें सफलतापूर्वक भाषण

करनेसे यह अनुभव हो गया था कि भविष्यमें अपने इसी तरहके नये और क्रान्तिकारी विचारोंको सरलतासे देश-वासियोंके सामने देशी भाषामेंही प्रकट करनेमें उन्हें विशेष कठिनाई न उठानी पड़ेगी। ये दोनों बातें निःसन्देह आगे चलकर सत्य साबित हुईं।

बम्बईमें दो-एक दिन ठहरनेके बाद अपने गुरु गोखलेसे मिलनेके लिए गाधीजी तुरन्त पूना गये। गोखले और भारत-सेवक-समितिने प्रेम और उत्साहसे उनका स्वागत किया। गोखलेकी इच्छा थी कि गांधीजी भारत-सेवक-समितिके सदस्य हों, किन्तु समितिके अन्य सदस्य गांधीजीके विचारोंसे सहमत न होनेके कारण उनको सदस्य-रूपसे स्वीकार करनेमें हिचक रहे थे। इसी भेंटमें गांधीजीने गोखलेसे भविष्यमें दक्षिण अफ्रिकाकी भाँति गुजरातमें भी देशकी सेवा करनेके लिए एक आश्रम खोलनेकी इच्छा प्रकट की थी। इस विचारको गोखलेने पसन्द किया और उन्हें सहायताका वचन भी दिया था।

किन्तु भविष्यके कार्यक्रमको स्थिर करनेसे पूर्व गांधीजी राजकोट और पोरबन्दरमें अपने सुहृद्-जनों, कुटुम्बियों और फोनिक्स-आश्रमके साथियोंसे शांतिनिकेतनमें भेंट कर लेना चाहते थे।

अध्याय—२

सत्याग्रहकी नींव और आश्रमकी स्थापना

वीरमगाम और सत्याग्रहकी नींव

भारतके इतिहासका वर्तमान युग गांधी-युगके नामसे पुकारा जाता है। 'क्यों?' इसका उत्तर स्वतः ही मिल जाता है, यदि गांधीजीके आगमनके पूर्व और बादके राष्ट्रीय आन्दोलनपर दृष्टि-निक्षेप किया जाय। गांधीजीके आगमनके उपरान्त भारतीय राष्ट्रीय संग्रामकी धाराका अनुसरण करनेसे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि भारतीय राजनीतिमें गांधीजीका पदार्पण एक मंगल-प्रभातका उषाकाल था। भारतके राजनैतिक अनन्तमें गांधीजी एक नूतन तथा अद्भुत पथ-प्रदर्शक, निर्मल, निश्चल तथा सबल ध्रुवतारेके रूपमें उदित हुए थे। इस प्रशान्त तथा विमल नक्षत्रके प्रकाशमें भारत वसुन्धराका अन्धकाराच्छन्न कोना-कोना भी चमक उठा और अँधियारेमें भटकते-फिरते देशवासियोंको अपना मार्ग प्रशस्त और स्पष्ट दिखायी देने लगा। दक्षिण अफ्रिकासे लौटे हुए इस जादूगरके नये-नये आचार और विचारोंपर विमोहित हो सारा देश उनके पीछे दौड़ पड़ा—असीम विश्वास और अडिग श्रद्धाके साथ। और इस जादूगरके मोहिनी मंत्र की 'विभूति' थी—सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह!

यद्यपि गांधीजीने अपने गुरु गोखलेके आदेशानुसार भारतकी वस्तुस्थितिका अध्ययन किये बिना एक साल-पर्यन्त कुछ बोलने और करनेसे अलग रहनेका वचन दे दिया था, तथापि असत्य, हिंसा और अत्याचारसे उत्तप्त होनेवाला उनका हृदय इन्हीं बातोंकी भरमार देखकर कबतक इनके विरुद्ध विद्रोह करनेसे रुक सकता था? गोखलेसे मिलनेके बाद पूनासे राजकोट जाते समय

मार्गमें वढवाण स्टेशनपर वहाँके प्रसिद्ध जनसेवक श्रीदर्जी मोतीलालने गांधीजीसे वीरमगामकी जकात-वसूलीके संबंधमें स्थानीय सरकार द्वारा की जानेवाली ज्यादतियोंका जिक्र किया। गांधीजी उस समय बुखारमें थे, इसलिए उन्होंने संक्षेपमें अपने सत्याग्रहके जादू-भरे शस्त्रके इस्तेमाल करनेका संकेत करते हुए केवल इतना ही कहा, 'आप जेल जानेके लिए तैयार हैं?' बड़ी प्रफुल्लता तथा उत्साहके साथ उत्तर मिला, 'यदि आप अगुआ बनें तो जरूर!' इस उत्तरको पाकर गांधीजीको बहुत संतोष हुआ और उनके हृदयको लगा कि दक्षिण अफ्रिकामें परीक्षित उनका सत्याग्रह–अस्त्र भारतमें भी अवश्य काम देगा और सफल होगा। उनकी यह ललकार, जो बादमें भारतभूमिपर लहलहाकर उगी तथा फली, सत्याग्रह-रूपी खेतीके एक बीजका छिड़कना था। वे जानना चाहते थे कि क्या वह बीज विशाल भारत-भूमिमें भी उग सकता है अथवा नहीं। और गांधीजीको प्रथम प्रयोगमें ही स्पष्ट हो गया कि 'हाँ, यदि सावधानीसे काम लिया गया तो!'

गांधीजी जहाँ-जहाँ भी काठियावाड़में गये, उन्हें सर्वत्र वीरमगामकी जकात-की जाँचसे होनेवाली तकलीफोंकी शिकायतें मिलती ही गयीं। इस तकलीफकी वास्तविकतामें अब गांधीजीको कोई सन्देह न रह गया। उन्हें हालहीमें लार्ड वेलिंग्डनसे इस बातका निमन्त्रण मिल चुका था कि वे सरकारसे जब चाहें तब जन-हित और जन-आन्दोलनके बारेमें बातें कर सकते हैं। अतः इस निमं-त्रणके अनुसार गांधीजीने जकात-सम्बन्धी तकलीफोंके विरोधमें लार्ड वेलिंग्डनसे पत्र-व्यवहार शुरू किया एवं उनसे तथा उनके सेक्रेटरीसे भेंट भी की। किन्तु बम्बई-सरकारने जकातको उठानेकी जिम्मेदारी भारत-सरकारपर डालते हुए गांधीजीको भारत-सरकारके पास अपनी शिकायत ले जानेकी सलाह दी। पर, यदि लार्ड वेलिंग्डन सचमुच भारतके हितैषी होते, तो क्या वे और उनकी सरकार स्वयं इन तकलीफोंके सम्बन्धमें भारत-सरकारके सामने जनताका प्रति-निधित्व नहीं कर सकती थी?

लेकिन गांधीजी बम्बई-सरकारके उत्तरसे निराश होकर बैठ जानेवाले व्यक्ति

न थे। जिस कार्यको सत्य समझकर वे अपने हाथमें लेते हैं, उसे पूरा किये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। अतः बम्बई-सरकारके कथनानुसार गांधीजी भारत-सरकारसे लगातार दो-तीन वर्षतक लिखा-पढ़ी करते रहे। आरम्भमें उनके पत्रोंपर कोई ध्यान न दिया गया। किन्तु गांधीजी माननेवाले व्यक्ति न थे। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि यदि भारत-सरकार निवेदनों और आवेदनोंको तुच्छ समझकर अन्ततक ठुकरातीही रही, तो वे वीरमगामको लेकर अपने अन्तिम अस्त्र—सत्याग्रहका प्रयोग करेंगे। सत्याग्रह-अस्त्रके प्रयोगका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने अपने बकसराके भाषणमें किया था। यह पहला अवसर था, जब भारतकी निरंकुश बृटिश-नौकरशाहीको खुलेआम सत्याग्रहके द्वारा ललकारा गया था। अंग्रेज अधिकारी और अंग्रेज-सरकार अबतक इसी विचारमें थी कि उनकी-जैसी सुदृढ़ शक्ति और अमित बलके सामने क्या कभी निष्प्राण एवं निस्तेज भारतीय खुल्लमखुल्ला सिर उठा सकेंगे? वे तो भारतको गुलामोंका देशही समझ बैठे थे, यद्यपि गांधीजीसे पूर्व बंग-भंग और स्वदेशी-आन्दोलन आदि हो चुके थे। किन्तु उन्हें यह भरोसा था कि वह सब चन्द युवकोंका ही आन्दोलन था, जिसे वे आसानीसे दबा सकते थे। उन्हें यह भी भरोसा था कि चन्द युवकोंके हिंसात्मक आन्दोलनको दबानेके लिए उनके पास विशाल पशुबल मौजूद है। फिर हिंसाका आन्दोलन गुप्त होनेसे जनतामें घुसनेसे पूर्वही पूरी तरहसे कुचल दिया जा सकता है। इसीलिए अंग्रेज-सरकार उन आन्दोलनोंसे इतना परेशान और भयभीत न थी, परन्तु गांधजीने जब खुलेआममें और जनसमुदायमें एक नवीन प्रकारके अहिंसा-मय अस्त्र-सत्याग्रहके प्रयोगकी घोषणा की तो बम्बईकी अंग्रेज-सरकार बौखला उठी। उसे प्रतीत होने लगा कि यह नवीन अस्त्र निःसन्देह भारतीय क्रान्तिकारियोंके बम्बोंसे भी अधिक भयानक होगा। कम-से-कम निडर होकर जन-समुदायमें लगायी गयी सत्याग्रहकी ललकार बृटिश-राजशाहीकी शक्तिका निरादर तो अवश्य थी। अतः बम्बई-सरकारके सेक्रेटरीने बड़ी नाराजगीके साथ गांधीजीसे कहा था कि आपने

सरकारको धमकी दी है, और फिर बड़े गर्वसे आगे यह भी कहा : 'क्या कोई ऐसी बलवान् सरकार इस प्रकार धमकीकी परवाह कर सकती है ?' गांधीजीने इसपर शांति और निर्भयताके साथ उत्तर दिया था, 'यह धमकी नहीं है। यह तो लोकमतको शिक्षित करनेका उपाय है। लोगोंको अपने कष्ट दूर करनेका उपाय बताना मुझ-जैसोंका धर्म है। जो प्रजा स्वतंत्रता चाहती है, उसके पास अपनी रक्षाका अन्तिम इलाज अवश्य होना चाहिए। आम तौरपर ऐसे इलाज हिंसात्मक होते हैं। परन्तु सत्याग्रह शुद्ध अहिंसात्मक शस्त्र है। उसका उपयोग और उसकी मर्यादा बताना मैं अपना धर्म समझता हूँ। अँग्रेज-सरकार बलवान् है, इस बातपर मुझे सन्देह नहीं। परन्तु सत्याग्रह सर्वोपरि शस्त्र है, इस विषयमें भी मुझे कोई सन्देह नहीं।'

बलसे मदमाता बेचारा सेक्रेटरी इसका क्या उत्तर देता ? किन्तु अहंकारसे अन्धे अपनी योग्यतासे ऊपर ही अपना मूल्य आँका करते हैं। इसीलिए गरूरसे भरे सेक्रेटरीने उत्तरमें तब इतना ही कहा था—'देखेंगे ?'*

और अवश्य कुछ दिनोंमें उसने देखा होगा कि गांधीजीने आखिर दो-तीन वर्षकी लिखा-पढ़ीके पश्चात् लार्ड चेम्सफोर्डसे सन् १९१७ में जकातको अपने सत्यके बलपर रद्द कराके ही चैन लिया। अविश्वासी सेक्रेटरीको तब जरूर इसका आभास लग गया होगा कि 'सत्याग्रह' सचमुच हो-न-हो, बृटिश-सरकारसे भी बलवान् है।

वीरमगामके जकातकी यह विजय निःसन्देह भारतीय सत्याग्रह-संग्राम के महान् महलकी नींवकी पहली और पुष्ट ईंट थी। इस जकातके प्रश्नको लेकर ही प्रथमतः गांधीजीने अपने देशवासियोंको सत्याग्रह करके जेल जानेके लिए ललकारा था और मदमत्त अंग्रेजी सरकारसे टक्कर लेनेके लिए उत्साहित किया था। गांधीजीकी इस ललकार और निर्भीकताको वीरमगामके जन-

---

* आत्मकथा, खंड २, पृष्ठ २७५–२७६

समुदायने शिरोधार्य कर गांधीजीको इस बातका प्रमाण दे दिया था कि यदि वे आगे-आगे चलें, तो सम्पूर्ण भारत उनके सत्याग्रहकी पुकारका अनुसरण करते हुए समवेतरूपसे उनके पीछे चलाचलेगा। सम्भवतः इन्हीं कारणोंसे गांधीजीने वीरमगामकी जकात-विजयको—'सत्याग्रहकी बुनियाद' माना था।*

महात्माजी शांतिनिकेतनको

राजकोटमें अपने मित्रों और सम्बन्धियोंसे मिलने-जुलनेके पश्चात् गांधीजी अपनी पत्नी-सहित शांतिनिकेतनके लिए रवाना हुए। इसी अवसरपर शांति-निकेतनके संस्थापक और अधिष्ठाता कवीन्द्र रवीन्द्रने गांधीजीके लिए अपने एक पत्रमें सर्वप्रथम 'महात्मा' शब्दका प्रयोग किया था। फरवरी, १९१५ के पत्रमें टैगोरने लिखा था, "मुझे आशा है, महात्मा और श्रीमती गांधी बोलपुरमें पहुँच गये हैं।" कवीन्द्रकी सूक्ष्म दृष्टिनेही इस प्रकार सबसे पहिले गांधीजीके अन्तरमें प्रवेश कर, उनकी महानता और महत्वका दर्शन किया था। उनकी इस पहिचानके फलसेही सम्पूर्ण देश गांधीजीको महात्मा-रूपसे अपने बीचमें पाकर हर्षित हो उठा और सभी देशवासियोंके हृदयमें तभीसे गांधीजी महात्माके उच्च एवं महान पदपर आसीन हो गये।

गोखलेकी मृत्यु

गांधीजी कुछ दिन शांतिनिकेतनमेंही रहनेके इरादेसे वहाँ आये थे; किन्तु सहसा १९ फरवरीको गोखलेका देहान्त हो जानेसे एक सप्ताहके अन्दर ही उन्हें पत्नी-सहित वहाँसे पूना लौट जाना पड़ा।

गोखलेकी मृत्युसे गांधीजीके हृदयको बहुत ठेस पहुँची। उनके चले जानेसे

* वही—पृष्ठ २७१

उनके पथ-प्रदर्शक गुरुका स्थान ही रिक्त हो गया था, अतएव उन्हें प्रतीत हुआ कि देशसेवाके कार्यकी महती जिम्मेदारी अब उन्हींके सिरपर आ पड़ी है। इन भावोंको व्यक्त करते हुए गांधीजी लिखते हैं—"इस समय मुझपर बड़ा बोझ आ पड़ा था। गोखलेके जीते-जी मुझे समितिमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता ही नहीं थी। मैं तो सिर्फ गोखलेकी आज्ञा और इच्छाके अधीन रहना चाहता था। यह स्थिति मुझे भी पसन्द थी; क्योंकि भारतवर्षके-जैसे तूफानी समुद्रमें कूदते हुए मुझे एक दक्ष कर्णधारकी आवश्यकता थी और गोखले-जैसे कर्णधारके आश्रममें मैं अपनेको सुरक्षित समझता था*।"

इस अवसरपर गांधीजीका प्रथम विचार यह हुआ कि गुरुसेवा एवं देश-सेवाकी खातिर उचित है कि वे गोखलेकी भारत-सेवक-समितिमें भर्ती हो जायँ। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि समितिके कतिपय सदस्योंकी यह राय है कि उनके विचार उग्र हैं और सदस्योंके विचारसे साम्य नहीं बैठता एवं उनके समितिमें प्रवेश करनेसे उन ध्येयोंके खतरेमें पड़नेका भय है, जिन्हें लेकर गोखलेने समितिकी रचना की थी, तो गांधीजीने सहर्ष समितिकी सदस्यताके लिए पेश किये अपने नामको वापिस कर लिया। अपने गुरुका अनुसरण करते हुए उनका ध्येय देश-सेवा था और यह कार्य समितिके बाहर रहकर अन्य प्रकारसे भी हो सकता था।

भावी कार्य-क्रम

किन्तु सेवा-मार्गके प्रकारको निर्दिष्ट करनेसे पूर्व गांधीजी पहिले देशकी परिस्थितियोंका अध्ययन कर सब बातें समझ लेना चाहते थे, साथ-ही-साथ अपनेको उनके लिए तैयार कर लेना चाहते थे। इसीलिए जो भी अवसर उन्हें दीख पड़े, उनका उन्होंने उक्त उद्देश्यसे पूरा उपयोग किया।

---

* वही—पृष्ठ २८७

हरिद्वार-ऋषिकेषकी यात्रा और अनुभव

१९१५ में हरद्वारमें कुम्भका मेला पड़ता था। इस अवसरको गांधीजीने वहाँके भ्रमण करने और वहाँ जाकर मित्रोंसे मिलने एवं लोगोंसे सम्पर्क करनेके लिए बहुत ही उपयुक्त समझा। अतः कलकत्तेसे उन्होंने मगनलाल गांधीके साथ अपने फिनिक्सके साथियोंको वहाँ सेवा-कार्यके लिए भेज दिया और बादमें स्वयं भी वहाँ जा पहुँचे। गांधीजीके दक्षिण अफ्रिकाके उदार कार्योंकी सुकीर्ति वहाँ भी पहुँच चुकी थी, इसलिए उनके डेरेपर श्रद्धालु दर्शकोंकी रोज इतनी भीड़ आने-जाने लगी कि गांधीजी दर्शन देते-देते-घबड़ा उठे। सेवाके इस प्रभावको देखकर स्वयं गांधीजी भी चकित हो उठे थे।

हरिद्वारमें गांधीजीको हिन्दू-धर्मके बारेमें बहुत-से ऐसे अनुभव हुए, जिनके आधारपर आगे चलकर उन्होंने समाज-सुधारके कई आन्दोलनों—अछूतोद्धार या हरिजन-सेवा, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य आदि—को चलाया और अपने जीवन तथा 'आश्रम' के लिए कई एक नियम निर्धारित किये।

कुम्भके मेलेमें गांधीजीको धर्म-भावनाकी जगह लोगोंमें धर्मके प्रति उपेक्षा, अधीरता, असहिष्णुता, पाखण्ड आदिही अधिक दिखलायी दिये। उन्हें इस बातको देखकर भी दुःख हुआ कि हिन्दू धार्मिक असहिष्णुताके कारण मुसलमानका छुआ पानीतक नहीं लेते। अतः वे सोचने लगे कि हिन्दुओंके इस पापको कैसे दूर किया जाय? लेकिन गांधीजी उन व्यक्तियोंमेंसे नहीं हैं, जो दूसरोंको मार्ग बताने मात्रका पेशा करते हैं; पर स्वयं अपने मार्गका अनुकरण नहीं किया करते। वे तो 'आदर्श' उपस्थित करनेमें विश्वास करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि संसार को सुधारना है, तो उसके पूर्व अपना सुधार आवश्यक है। इसलिए हिन्दुओंके पापको अपना पाप समझकर गांधीजीने आत्मशुद्धिके लिए कुछ प्रायश्चित्त करना आवश्यक समझ, यह व्रत लिया कि अबसे वे भोजन सीमित मात्रामें करेंगे तथा अँधेरा होनेसे पहिले ही शामको खा लिया करेंगे। गांधीजीने

इस प्रकारसे अपने जीवनमें कई एक व्रत किये हैं—और उनका पुनीत जीवन उनकेही शब्दोंमें वस्तुतः 'व्रतों पर रचा गया है।'*

हरिद्वारके पश्चात् गांधीजी ऋषिकेश और लक्ष्मणझूला भी गये। ऋषिकेशमें उनकी बहुत-से संन्यासियोंसे भेंट हुई और उन्होंने गांधीजीसे हिन्दू-धर्म का वाह्य चिह्न—जनेऊ तथा शिखा रखनेका आग्रह किया। इस आग्रहपर गांधीजीने शिखा रखना तो स्वीकार किया, किन्तु जनेऊ धारण करनेसे असहमति प्रकट की, क्योंकि गांधीजीका कहना था कि जनेऊ धारण करनेका सभी हिन्दुओं व शूद्रोंको अधिकार नहीं है और इसलिए जब सब हिन्दुओंको समानरूपसे उसको पहिननेका अधिकार नहीं तो वे ही क्यों इस भेद-मूलक 'सूत्र' को ग्रहण करें। गांधीजीका यह भी कहना था कि 'जनेऊ धारण करने के मानी हैं—दूसरा जन्म लेना, अर्थात् हम विचार-पूर्वक शुद्ध हों, ऊर्ध्वगामी हों। इसलिए हमें जनेऊ पहननेका अधिकार ही कहाँ है? जब हिन्दू-समाज अस्पृश्यताका दोष धो डालेगा, ऊँच-नीचका भेद भूल जायगा, दूसरी घातक बुराइयोंको मिटा देगा, चारों तरफ फैले अधर्म और पाखण्डको दूर कर देगा, तब उसे भले ही जनेऊ पहननेका अधिकार हो।'† हरिद्वार-ऋषिकेषका यह धार्मिक अनुभवही था, जिसने महात्माजीको राजनैतिक लड़ाई लड़नेके साथ-साथ हिन्दू-धर्मकी धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों और कुभावनाओंको मिटानेके लिए भी उत्साहित किया और सचेष्ट बनाया।

कोचरबमें आश्रमकी स्थापना

हरिद्वार आदिकी यात्रा समाप्त कर अब गांधीजी भारतमें किसी एक स्थान-पर दक्षिण अफ्रिकाके फिनिक्स और टाल्स्टाय-फार्मकी शैलीपर एक आश्रम स्थापित करनेका विचार करने लगे। उस आश्रममें वे दक्षिण अफ्रिकासे लौटे

---

*—वही—पृष्ठ २९७। †—वही—पृ० ३०६

हुए अपने फिनिक्सके साथियों तथा जो देश-सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर उनके पास आवें, उन्हें रखना चाहते थे। उस आश्रममें इस प्रकार अपने साथियोंके साथ तपस्वी जीवन बिताते हुए वे भारतकी समस्याओंका हल निकालनेकी सोचते थे।

स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीरामजी) की सलाह थी कि गांधीजी हरिद्वारमें ही अपना आश्रम खोलें। किन्तु गुजराती होनेके कारण यह सोचकर कि वे गुजराती-भाषा-भाषियोंके बीचमें रहकर देशकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सकेंगे, गांधीजीने गुजराती मित्रोंके आग्रहपर अहमदाबादके कोचरब गाँवमें एक किरायेका मकान लेकर २५ मई, १९१५ को 'सत्याग्रह-आश्रम' नामसे अपना आश्रम स्थापित किया। इस समय उनके आश्रममें कुल मिलाकर २५ शिष्य थे, जिनमेंसे पाँच तो दक्षिण अफ्रिकासे ही उनके साथ आये थे और बाकी बीस यहीं नये भर्त्ती हुए थे।

आश्रम-वासियोंको सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, जिह्वा-संयम, अपरिग्रह, स्वदेशी, निर्भयता, अस्पृश्यता-निवारण, देशी भाषाके द्वारा शिक्षण, खद्दरका व्यवहार, आदि नियमोंका पालन करना जरूरी था। सब आश्रमवासी एकही भोजन-शालामें खाते और इस प्रकार रहनेका प्रयत्न करते थे, मानो सब एकही कुटुम्बके प्राणी हों।

आश्रममें कोई भी व्यक्ति, जो नियम पालन करनेको तैयार हो, भर्त्ती हो सकता था। इस नियमके अनुसार अन्त्यज या शूद्रोंके लिए भी उसमें कोई रोक न थी। आश्रमका एक नियम अस्पृश्यता-निवारण भी था। अतः कुछ महीने बाद आश्रममें जब दूधाभाई नामके एक शूद्र-परिवारने आश्रमके नियमोंका पालन करनेका वायदा कर उसमें भर्त्ती होना चाहा, तो गांधीजीने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया। स्वीकृति पाकर दूधाभाई अपनी पत्नी दानीबहन और बच्ची लक्ष्मीके सहित आकर आश्रममें रहने लगे।

शूद्रोंका आश्रममें रहना पुराने धर्मियोंको अर्थात् रूढ़िवादियोंको बहुत बुरा मालूम हुआ, और परिणाम-स्वरूप आश्रमको सहायता देनेवाले धनियोंने

अपनी आर्थिक सहायता बन्द कर दी। आश्रमका लोगोंने बहिष्कार करना भी शुरू किया। किन्तु गांधीजीके मनको इस आर्थिक सङ्कट एवं बहिष्कारसे कोई चिन्ता न व्यापी, और व्यापती ही क्यों, जबकि उनका मार्ग सही था और वे समाजका नवीन संस्करण करनेके लिए तुले हुए थे।

गांधीजी सोच रहे थे कि यदि आर्थिक सहायताका अभाव हो ही गया और वहाँके समाजने उनका बहिष्कार कर ही दिया, तो वे अपने साथियोंके सहित अछूतोंके मुहल्लोंमें जाकर बस जायँगे और मजदूरी करके गुजर कर लेंगे— लेकिन सत्य-मार्गका अवलम्बन किसीके छुड़ाये न छोड़ेंगे। उनके हृदयमें यह समाया हुआ था कि सत्यके लिए हरिश्चन्द्रने भी तो सैकड़ों कष्ट उठाये थे— प्रेमकी पगली मीराने भी तो समाजकी रूढ़ियों और बहिष्कारकी उपेक्षा करके अपना सत्य-पथ न छोड़ा था। फिर वैष्णव और सत्यके पुजारी होते हुए वेही क्यों कष्ट और बहिष्कारसे भयभीत हों?

गांधीजी जब यह सोच रहे थे, तभी अनायास उन्हें घरहीपर एक सेठ आश्रमके व्ययके लिए बड़े अनुनयके साथ १३०००) रु० दे गया और इस प्रकार आश्रम टूटनेसे बच गया।

दानी सेठ गांधीजीको अपने इष्टदेव रामका दूत-सा प्रतीत हुआ और उन्हें लगा कि यह मदद शायद 'उस साँवलिया' ने ही भेजी है*।

———

*—वही—पृष्ठ ३१२

अध्याय—३

स्वदेश-भ्रमण

गोखलेका आदेश

पूनामें जब गांधीजी अपने गुरु गोखलेसे मिलने गये थे तभी गोखलेने उनसे कहा था—"गांधी, मैं तुमसे एक वचन लेना चाहता हूँ—पूरे एक साल-तक तुम किसी भी प्रकारके राजनैतिक कार्यमें भाग न लोगे। तुम शान्तिके साथ राजनैतिक स्थितिका अध्ययन करनेके लिए देशका भ्रमण करोगे, और तुम किसी राजनैतिक दलसे न मिलोगे।"

अपने गुरुके इस आदेशको गांधीजीने आदरके साथ स्वीकार किया था। अतः शांतिनिकेतनसे पूना आते समय जब श्रीएँडरूजने गांधीजीसे यह प्रश्न किया था कि 'क्या आपको प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तानमें सत्याग्रह करनेकी नौबत आयेगी? यदि हाँ, तो कब? इसका कुछ खयाल आता है?' तो उत्तरमें गांधीजीने कहा था—'यह कहना मुश्किल है। अभी तो एक सालतक मैं कुछ करना ही नहीं चाहता। गोखलेने मुझसे वचन लिया है कि मैं एक सालतक भ्रमण करूँ। किसी भी सार्वजनिक प्रश्नपर अपने विचार प्रकट न करूँ। मैं अक्षरशः इस वचनका पालन करना चाहता हूँ।'

फलतः गांधीजीने उन वचनोंका पालन करते हुए देशका भ्रमण प्रारम्भ किया, और शान्ति तथा गम्भीरताके साथ देशकी राजनैतिक स्थितिका अध्ययन और अनुभव करते रहे, जिनके आधारपर आगे उन्होंने अपने राजनैतिक संगठन और आन्दोलनको खड़ा किया। निःसन्देह गांधीजीके देश-भ्रमणका यह एक वर्ष भारतके राजनैतिक इतिहासमें बहुतही महत्वका साबित हुआ।

भारतीय राजनीतिका क्षेत्र अभीतक बड़े-बड़े नगरों एवं शहरोंतकही सीमित था। कौंग्रेसके अबतकके नेता शहरोंसे ही परिचित थे, इसलिए उन्हें असली भारत, जो सात लाख गाँवोंमें हैं, के सही रूपका कुछ भी पता न था। गाँवोंकी हालत क्या और कैसी है, इसे जाननेके लिए किसीका ध्यान अभीतक उधर गया ही न था।

भारतका हृदय

भारतके हृदय—गाँवोंकी धड़कन और दर्दका पहिले अनुभव और स्पर्श करनेवाला वास्तवमें गांधीही निकला। देशका भ्रमण करते समय गांधीजीकी सतर्क आँखोंने यह देखनेमें भूल न की कि भारतका हृदय विदीर्ण है—क्षत-विक्षत है। गाँवोंकी असंख्य जनताको गरीबी, अशिक्षा और ह्रासके गहरे तथा अँधियारे गढ़ेमें पड़ा देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। उन्हें अनुभूति हुई कि सचमुच भारत आज गिरी दशामें है, और उसकी प्रगति रुक गयी है। लोगोंमें स्फूर्ति और शक्तिका लोप-सा हो गया है और वे केवल मरनेके लिए ही जीते हैं।

गांधीजीका अनुभव

शताब्दियोंसे ये गाँव इसी अचेतन-अवस्थामें पड़े हैं। उनपर अधिकारी जैसा चाहते हैं, वैसा अत्याचार करते हैं—उनसे सरकार जैसा 'कर' वसूल करना चाहती है, करती है, और गाँववाले इन अत्याचारोंको उफ़ और आह किये बिना ही सहते चले जाते हैं, उनके विरुद्ध 'चूँ' करना तो बहुत बड़ी बात है। तो क्या यही जीवन है? गांधीजीको स्पष्टतया मालूम हो गया कि भारतका यदि उद्धार हो सकता है, तो वह गाँवोंके उद्धारसे ही सम्भव है। उन्हें यह भी प्रतीत हो गया कि भारतकी समस्याएँ दक्षिण अफ्रिकाकी समस्याओंसे सर्वथा भिन्न हैं। वहाँ तो उन्हें 'समान अधिकार' के लिए लड़ना पड़ा था, किन्तु यहाँ पूरी राजनैतिक व्यवस्थामेंही परिवर्तन करनेकी आवश्यकता थी। किन्तु यह परिवर्तन तभी सम्भव था, जब सम्पूर्ण देशको धीरे-धीरे उसको चिर-मूर्च्छासे जागृत करनेका

प्रयत्न किया जा सके। गांधीजीने इसे समझा और भविष्यमें इसी प्रकार चलनेका इरादा किया।

पाश्चात्य प्रवृत्ति

गांधीजीके दक्षिण अफ्रिकासे लौटनेके पूर्वही भारतमें बंगाल-विभाजनके समयसे स्वदेशी-आन्दोलन काफी जोर पकड़ चुका था। अँग्रेजी सरकारकी दमन-नीतिने इस आन्दोलनमें प्रतिरोधकी भावनाएँ पैदा कर दी थीं और भारतीय नवयुवक पश्चिमी क्रान्तिकारियोंका अनुकरण करते हुए हिंसासे काम लेने लगे थे। अहिंसाके पुजारी गांधीजोको इन बातोंको सुनकर और देखकर दुःख होना स्वाभाविकही था। उनके हृदयको यह अनुभव कर ठेस लगी कि भारत, जिसे ससारके सामने सत्य और अहिंसा आदिके सद्-सिद्धान्तोंका आदर्श उपस्थित करना चाहिए और दुनियाको पारस्परिक ईर्ष्या और संघर्षसे बचाना चाहिए, उसीकी सन्तान स्वयं भौतिकता और हिंसाके उपासक पश्चिमकी अनुवर्तिनी बनी हुई है। उन्हें लगा कि यदि इसी प्रकार देशके सम्पूर्ण युवकों और जन-समुदायने पश्चिमका अनुसरण किया, तो देशका अभ्युत्थान और पुनर्जागरणही खतरेमें पड़ जायगा। अतः देशकी जनताको और विशेषकर भारतीय युवकों एवं विद्यार्थियोंको पश्चिमी अनुकरणके प्रति सचेत करनेके लिए मार्च, १९१५ को कॉलेज स्क्वायर, कलकत्तामें विद्यार्थियोंके मध्य भाषण देते हुए गांधीजीने कहा था :—

'मेरे वैयक्तिक विचार जो भी हों, लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि यह दुर्विनीत उत्साह, जो डकैती और हत्याओंको प्रेरणा देता है, कोई भलाई नहीं उत्पन्न कर सकता। डकैती और हत्याएँ सम्पूर्णतः भारतमें एक विदेशी उपजकी चीजें हैं। उनकी जड़ें यहाँ जम नहीं सकतीं और यहाँ एक स्थायो संस्थाका स्वरूप धारण नहीं कर सकतीं। इतिहास साक्षी है कि हत्याओंसे कोई भलाई नहीं हुई है। स्वदेशके धर्म, हिन्दू-धर्मका मन्त्र 'हिंसा'—से अलग रहना अर्थात् प्राणियोंके

जीवका हरण न करना है। यही मेरा विश्वास है—सब धर्मोंका मूल या प्रेरक सिद्धान्त है। हिन्दू-धर्मका कहना है कि दुष्कर्मोंसे भी घृणा नहीं करनी चाहिए। वह कहता है कि किसीको, दुष्कर्मीतकको मारनेका अधिकार नहीं है। ये हत्याएँ पश्चिमी उपजकी वस्तुएँ हैं, इसलिए वक्ता अपने श्रोताओंको पश्चिमी तरीकों और बुराइयोंके प्रति सचेत करता है।'

अहिंसाका मार्ग

इस वक्तव्य द्वारा गांधीजीने अपने भावी राजनैतिक आन्दोलनके प्रवाहके रूपको भी झलका दिया था। भारतको यदि लड़ना है, और अपनी स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष करना ही है—तो उसका आधार 'हिंसा' नहीं हो सकती। हिंसा भारतके लिए अव्यावहारिक ही नहीं, अप्राकृतिक भी है और राजनैतिक दृष्टिसे ही वह अनुपयोगी नहीं, धार्मिक और नैतिक दृष्टिसे भी त्याज्य है। इस प्रकार गांधीजीने भारतके राजनैतिक आन्दोलनको निश्चित रूपसे हिंसाकी भूमिकासे उठाकर अहिंसाके प्रशस्त मार्गपर ले आनेका दृढ़ निश्चय कर लिया, और इसीलिए उन्हें अपने प्रयत्नमें आशातीत सफलता भी मिली। हिंसाके प्रेरकोंके इस आदर्श-की गांधीजीने कभी पुष्टि नहीं की कि 'अच्छे ध्येयके लिए बुरे साधन क्षम्य हैं!' वे तो हमेशासे यह विश्वास करते आये हैं कि—अच्छे ध्येयके लिए साधनोंका भी अच्छा होना अनिवार्य है; क्योंकि बुराईके आधारपर अच्छाई टिक ही कैसे सकती है?

स्वदेशी

भारतको हिन्दू-धर्मके अहिंसा, सत्य आदि उच्च सिद्धान्तोंकी ओर लानेके लिए प्रयत्नशील गांधीजीकी सूक्ष्म दृष्टिमें यह आते देर नहीं लगी कि अपने उद्देश्यकी सफलताके लिए लोगोंमें 'स्वदेशी' वस्तुओंका व्यवहार, स्वदेशी धर्मोंका पालन अथवा प्रत्येक 'स्वदेशी'के प्रति हर प्रकारसे जनताको आकृष्ट करना आवश्यक है,

लेकिन यह तभी हो सकता है जब लोगोंको पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृतिके पीछे दौड़नेकी वर्तमान बुराईसे रोक दिया जाय। इसलिए मद्रासमें वाई०एम०सी०ए० (Y.M.C.A.) में श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीके सभापतित्वमें भाषण देते हुए गांधीजीने वर्तमान पश्चिमी सभ्यताका अनुकरण करना छोड़कर भारतीय संस्कृतिको पुनः अपनानेका आग्रह करते हुए विद्यार्थियोंसे कहा था :—

"मैं वर्तमान सभ्यताका दृढ़ विरोधी रहा हूँ और हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप आज अपनी आँखें घुमाकर देखें कि यूरोपमें क्या हो रहा है, और यदि तुम इस निष्कर्षपर आ जाओ कि यूरोप आज वर्तमान सभ्यताकी एँड़ियोंके नीचे कराह रहा है, तो तुम्हें और तुम्हारे बुजुर्गोंको उस सभ्यताको अपनी मातृ-भूमिके लिए अपनानेसे पूर्व दो बार सोच लेना पड़ेगा। किन्तु मुझसे कहा जाता है,—'हम कैसे उससे अलग रह सकते हैं, जबकि हम देखते हैं कि हमारे शासक उस सभ्यताको हमारी मातृ-भूमिमें लाया करते हैं।' इस बारेमें कोई भूल न किया करिये। मैं एक क्षणके लिए भी विश्वास नहीं कर सकता कि जबतक आप स्वीकार करनेको तैयार नहीं, उस सभ्यताको आपके पास लानेके कारण शासक हैं, और यदि ऐसा ही हो कि शासक उस सभ्यताको हमारे पास लाते हैं, मैं सोचता हूँ कि हमारे पास ऐसी आन्तरिक शक्तियाँ विद्यमान हैं, जिनसे हम उस संस्कृतिको रोक सकते हैं।"

अस्पृश्यता-निवारण

लेकिन क्या हम हिन्दू-धर्मकी बुराइयोंको धोये बिना हिन्दू-धर्मको उच्चता-तक पहुँचा सकते हैं? गांधीजीने सोचा और उनकी आत्माने कहा—नहीं, नहीं। यदि हिन्दू-धर्म और गिरी हुई हिन्दू-जातिको ऊपर उठाना है—उर्ध्वगामी होना है, तो गांधीजीने सोचा, उसे निश्चयरूपसे अपनी रूढ़िवादिता, पाखण्ड और संकीर्णताको मिटा देना होगा, तभी इनके निकृष्टतम फल अस्पृश्यताको धो डालना सम्भव होगा। क्योंकि अपना नैतिक सुधार किये बिना हम एक तो

पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ही नहीं सकते और यदि भाग्यवशात् कर भी लें, तो उसे बनाये रखना बिलकुल ही असम्भव है। भारतीय स्वतन्त्रताकी लड़ाईके लिए गांधीजी परिष्कृत समाज और परिष्कृत आत्माओंका होना अनिवार्य समझते थे, इसलिए अपने आन्दोलनकी सीमाओंको वे राजनीतितकही सीमित न रखकर समाजकी ओर भी बढ़ा ले गये। आत्माओंको परिष्कृत करनेके लिए उन्होंने 'अहिंसा' का मन्त्र बतलाया और समाजको परिष्कृत करनेके लिए विशालता, सहिष्णुता और अस्पृश्यताका त्याग बतलाया। अस्पृश्यताके विरुद्ध सिंहनाद करते हुए २२ मई, १९१५ को मायावरमके एक भाषणमें गांधीजीने कहा था :—

"भारतके बाहर जहाँतक मैंने हिन्दू-धर्मका अध्ययन किया है, मुझे प्रतीत हुआ है कि एक बहुत बड़े जनसमुदायको 'अस्पृश्य' कहकर रखना वास्तविक हिन्दू-धर्मका कोई अंग नहीं है। यदि मुझे यह साबित करके बतला दिया जावे कि वह हिन्दू-धर्मका आवश्यक रूप है, तो मैं कम-से-कम हिन्दू-धर्मके विरुद्ध अपनेको खुला विद्रोही घोषित कर दूँगा।"

हिन्दू-धर्मकी रूढ़िकी शृङ्खलाओंपर गांधीजीने यह पहिला झटका दिया था, जिसके परिणाम-स्वरूप कट्टर संकुचित हिन्दू-समाज तबसे आजतक गांधीजीकी इस नीतिका विरोध करता आ रहा है। लेकिन गांधीजीने इस विरोधको कोई महत्व न दिया और बराबर अस्पृश्यता-निवारण अथवा हरिजन-उद्धारके लिए आजतक शान्ति और दृढ़ता-पूर्वक काम करते आ रहे हैं और आज तो वे बहुत हदतक इसमें सफल भी हो गये हैं। युगको बदलनेवाले पुरुष वस्तुतः विरोधकी कभी परवाह नहीं किया करते, फिर वर्तमान युगके प्रवर्तक महात्मा गांधीही क्यों उस विरोधपर दृष्टि देते ?

गरीबी

स्वदेश-भ्रमणके अवसरपर गांधीजीको भारतकी दारुण गरीबीका अनावृत रूप भी जहाँ-तहाँ देखनेको मिला। गाँवोंकी जनताको उन्होंने नग्न और कंगाल

बना हुआ देखा। इसका कारण? इसका कारण उन्हें यही प्रतीत हुआ कि हमारी प्राचीन सभ्यताके लोप होनेके साथ हमारे पुराने घरू उद्योग-धन्धोंका भी लोप हो गया है। बाजार और गाँव लंकाशायर तथा मैनचेस्टरके मालसे भरे पड़े हैं। सारा रुपया विदेशी माल द्वारा खींचा जाकर बाहर चला जाता है। इस विदेशी व्यापारने भारतको पंगु बना दिया है। भारतके वे गाँव और जन, जो प्राचीन कालेमें 'स्व' पर निर्भर रहते थे, अब अपनी आवश्यकताकी वस्तुओंके लिए दूसरोंका मुख ताकने लगे हैं, और इसी कारण भारतके लोग आज अपने बलपर खड़े होनेकी सामर्थ्यको अपनेमें नहीं पाते हैं। इसका कारण अर्थशास्त्रज्ञों और इतिहासकारोंकी दृष्टिसे जो भी हो, पर अब इसका एकमात्र प्रतीकार यही है कि भारतके गाँव फिरसे अपने उद्योग-धन्धोंको अपनायें, स्वदेशीका प्रचार हो और भारतीय जनता विदेशोंपर निर्भर रहनेके बजाय 'आत्मनिर्भर' बनना सीखे। ये ही विचार थे, जिन्होंने स्वदेशी और खद्दरके आन्दोलनको जन्म दिया है। इन भावनाओंसे प्रेरित होकर गांधीजीने अपने एक भाषणमें कहा था—'यदि स्त्रियोंको काफी मात्रामें चरखे सूत कातनेको दे दिये जायँ, तो तुम्हारी सारी जरूरतें अपने ही कपड़ा बुननेवालोंसे पूरी हो जायँगी और देशमें कुछ भी गरीबी न रहेगी। मैं आप और आपके सभापतिसे पूछता हूँ कि वह अपने पहिनावाके लिए विदेशी वस्त्रोंके कितने ऋणी हैं, और क्या वे बतला सकते हैं कि उन्होंने उन्हें न पहिननेकी अथवा स्वदेशी वस्त्र द्वारा अपनेको ढकनेकी पूरी कोशिश की है और उसमें असफल रहे हैं और इसीलिए उन्होंने विदेशीको ग्रहण किया है, तो मैं उनके चरणोंपर बैठकर एक सबक लूँगा। मैं आजतक जो कुछ सीख सका हूँ, वह यह है कि बिना अधिक मूल्य लगाये मैं स्वदेशी वस्त्रसे अपनेको ढक सकता हूँ*।"

---

*—Mahatma Gandhi, published by G. A. Natesan & Co. Madras, pp. 30-34

१९१५ में दिये गये भाषणोंके उपर्युक्त अवतरणोंसे गांधीजीकी उस समयकी मनःस्थितिका हमें स्पष्ट आभास मिल जाता है। इन भाषणोंमें व्यक्त किये गये भाव उनके निजी और मौलिक थे, जिनके आधारपर गांधीजीने अपने सत्याग्रह-आन्दोलनकी नींव रखी और उसका उत्तरोत्तर विकास किया। गाँधीजीके ये मौलिक विचार इतने अनुभव, अध्ययन और निष्ठासे पूर्ण थे कि उन्हें आजतक कभी उनको बदलनेकी जरूरत नहीं पड़ी, अपितु वे अपने आरम्भिक विचारोंपर ज्यों-ज्यों समय बीता, अधिकतर दृढ़ होते गये और आज भी होते जा रहे हैं। वे विचारही ऐसे थे, उनका आधार सत्य था, और स्पष्ट ही है कि संसारमें सत्य दो नहीं हुआ करते। दक्षिण अफ्रिकाके आन्दोलनके समयमें लिखी गयी गांधीजी-की पुस्तक 'हिंद-स्वराज्य' में व्यक्त किये गये विचारोंपर उनके गुरु गोखले भी हँसा करते थे—और कहा करते थे कि 'गांधी, एक वर्ष तुम हिन्दुस्तानमें रहकर देखोगे तो तुम्हारे ये विचार अपने-आप ठण्डे हो जायँगे।' लेकिन हुआ इसके विपरीत। गांधीजी भारतमें आकर उन विचारोंपर और अधिक दृढ़ हो गये। प्रारम्भसेही हमें गांधीजीके जीवनमें तथा उनके विचारोंमें अलौकिक एकरूपता और शृंखला देखनेको मिलती है। समय और विपरीत-तर्कोंने कभी उनके मौलिक विचारोंकी कड़ीको भंग नहीं किया है। बल्कि कहना पड़ता है कि उनके मौलिक विचारोंने भारतीय मस्तिष्कपर ऐसी जोरदार प्रतिक्रिया की, जिसके परि-णामसे भारत अपनी पुरानी रूढ़िकी जंजीरोंकी कड़ियोंको तोड़कर नूतनताकी ओर बढ़ा चला जाता है।

इस युगकी गांधी-युग संज्ञा होनेका यही तो रहस्य है।

अध्याय—४

अन्तर्दर्शन

गांधीजीका एक सालके लिए लिया गया स्वदेश-भ्रमणका व्रत पूरा हो चुका था। उनके भ्रमणसे यद्यपि देशको अपने बीचमें एक नये प्रकारके मनीषीकी उपस्थितिका अनुभव हुआ था, तथापि तबतक ठीक तरहसे देशको गांधीजीका अन्तर्दर्शन न हो सका था।

इसके लिए भी देशको अधिक देरतक न रुकना पड़ा। ४ फरवरी, १९१६ को विश्वनाथकी पवित्र पुरीमें गांधीजीने सर्वप्रथम स्वदेश-वासियोंको अपने 'अन्तर' का दर्शन करा दिया था। वह उनके वास्तविक स्वरूप अर्थात् विराट-रूपका प्रत्यक्ष था। उस 'विराट' के दर्शन करके 'बड़े' भयभीत थे और 'छोटे' प्रसन्न।

हिन्दू-विश्वविद्यालयके शिलान्यासका वह अवसर था। उस अवसरकी शोभा बढ़ानेके लिए वाइसराय और दूर तथा नजदीकसे देशी रियासतोंके अनेक राजा-गण आये हुए थे। बनारस नगरकी सड़कें सर्वत्र पुलिससे घिरी थीं, डर था कहीं कोई असन्तुष्ट तथा त्रस्त भारतीय अपने गौरांग प्रभुके ऊपर आघात न कर बैठे। गौरांग प्रभु स्वयं भी जानते थे कि उनका भारतीयोंके साथ जैसा व्यवहार रहा है, उससे अनेकोंके मनमें प्रतिशोधकी भावनाका उठना स्वाभाविक है, अतः सशस्त्र पुलिसका रक्षाके लिए नगरके मार्ग और कूचोंमें खड़ा रहना बहुत आवश्यक है।

हिन्दू-विश्वविद्यालयके शिलान्यास-उत्सवको मनानेके लिए एक शानदार सभा आयोजित हुई थी। देशके बड़े-बड़े राजा-महाराजा, जमींदार और पूँजी-पति—रत्नमय आभूषणोंसे सुसज्जित लक्ष्मी, वैभव एवं विलासके लाड़लोंकी तरह

अपनी समृद्धिकी छटा और प्रभाको बिखेरते-छिटकाते हुए सभा-मण्डपमें आसीन थे। सभाके सिरपर दरभंगाके महाराज थे। सभाको देखकर ऐसा मालूम होता था कि भारतमें क्या सचमुच कहींपर दारुण गरीबीका क्रन्दन भी हो सकता है?

प्रथम दिन शिलान्यासका कार्य समाप्त कर वाइसराय विदा हो चुके थे। दूसरे दिनकी सभामें राजागणही रह गये। राजाओंकी इस सभामें गांधीजी भी आ पहुँचे। रंग-बिरंगे मोरकी तरह सुनहले, कलगीवाले राजाओंके बीचमें एक गरीब देहाती-सा यह गांधी कौन है? कहाँसे और क्यों आया है? निःसंदेह सभीके हृदय गांधीजीको देखकर आन्दोलित हो उठे थे—सभीकी आँखें गांधीजी-पर लगी थीं—यह कौन है? कैसा है?

किन्तु लोगोंको यह अनुभव करनेमें भी देर न लगी कि गांधीजी स्वयं सभामें राजाओंकी कृत्रिम बातोंको सुनते-सुनते ऊब उठे हैं—क्योंकि उनका हृदय सत्यका हनन होता हुआ देखकर विद्रोहसे भर उठा था।

विद्रोही—सत्यके लिए उठनेवालेको, कौन रोक सकता है? विद्रोही गांधी भी अन्तमें सत्यका पक्ष लेनेके लिए राजाओंकी उस महान् सभामें बोलनेके लिए खड़े हुए। उनको उठता देखकर सबके हृदयोंमें एक कँपकँपी हो आयी—दक्षिण अफ्रिकासे लौटा हुआ यह नवागन्तुक क्या कहने जा रहा है—सब उसे सुननेके लिए उत्सुक हो रहे थे।

सभापतिकी आज्ञा लेकर गांधीजीने दुःखके साथ कहना प्रारम्भ किया—"हमारे लिए यह बहुत ही लज्जा और अपमानका विषय है कि मुझे आज इस महान कालेजकी सायामें—इस पवित्र नगरीमें अपने देशवासियोंसे उस भाषामें कहना पड़ रहा है, जो विदेशी है।" गांधीजीके भाषणकी यह कैसी शुरुआत? लोग सुन रहे थे और दंग थे—उन्हें पहिले-पहल यह सुनकर अवश्य विस्मय हो रहा था कि राजभाषा अँग्रेजी, जिसे बोलनेमें प्रत्येक भारतवासी गर्वका अनुभव करता है—उसका बोलना खेद और अपमानका भी कारण हो सकता है। क्या गांधीजीको राजभाषाकी महत्ता और विशालताका ज्ञान नहीं है? फिर यह

निन्दा कैसी ! बहुतोंको तब यह न मालूम था कि उनकी गुलामीका एक जबरदस्त कारण विदेशी भाषा और उसके साथ रग-रगमें समायी विदेशी संस्कृति भी है।

लोग इसी प्रकारकी उधेड़बुनमें थे और गांधीजी आगे बढ़कर कहते जाते थे, "हमपर दोष यह लगाया जाता है कि हममें कोई प्रेरणा नहीं होती। हममें हो ही कैसे सकती है, जबकि हमें अपने जीवनके अमूल्य वर्ष विदेशी भाषाको सीखनेमें लगा देने पड़ते हैं?" और फिर तिलमिलाते हुए गांधीजीने कह ही तो डाला, "इस प्रयत्नमें भी हम सफल नहीं हो पाते।" लोगोंके दिमाग ठनके और अब उन्हें इस विचित्र आदमीके विचित्र कथनका कुछ-कुछ रहस्य खुलता-सा मालूम पड़ा।

एक विचित्र बातको खतम कर गांधीजीने दूसरी विचित्र तान छेड़ी—वाइसरायकी सुरक्षाके लिए खड़ी की गयी पुलिसका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—"मैं हजार बार गोलीका शिकार होना पसन्द करूँगा बजाय इसके कि पुलिसका एक झुण्ड मेरे पीछे फिरा करे।"

सारी सभा स्तम्भित थी। इस प्रकारकी विचित्र और मौलिक किन्तु चुभनेवाली हृदयग्राही बातोंको बोलनेवाला यह कौन नया आदमी कहाँसे इस सभामें आ पहुँचा है? 'कौन है? कौन होगा?' की मन्द कानाफूसियोंसे सारी सभा लहरा उठी। मञ्चपर बैठे राजागण हतबुद्धि होकर एक दूसरेका संकेत करते थे—कौन है यह नया आगन्तुक? गांधीका इनको और अन्य श्रोताओंको तबतक परिचय प्राप्त न हुआ था। विशेषकर उन्हें तब गांधीजी आजकी भाँति सुपरिचित न थे। अवश्य ही यह कोई बवण्डर होगा। गांधीके 'अन्तर' की झाँकी पाकर सभीको यह भासित होने लगा था। लेकिन हठी राजा यह सोच रहे थे कि वस्तुतः वह किसी विरते और वकतका व्यक्ति नहीं हो सकता—और उसका बढ़-बढ़कर राजसभामें बोलना उन्हें 'छोटे मुँह बड़ी बात' मालूम देती थी। लेकिन श्रीमती बेसेन्टने, जो गांधीजीकी अँग्रेजी भाषाकी निन्दासे असन्तुष्ट हो रही थी, और गांधीजीका काँग्रेसकी सभाओंमें परिचय भी प्राप्त कर चुकी थी, अपने

इर्द-गिर्दके विशाल राजमुकुटधारियोंको समझा दिया कि 'वह राजनीतिमें एक बच्चा है।'

गांधीजीके प्रति उपेक्षासे देखकर राजागण अपनेको सँभाले बैठे सुनते ही रहे कि एकाएक उन्हें मालूम हुआ कि नगण्य आगन्तुक अब उन गण-मान्योंके सिरपरही नाचने लगा है—राजागण बेचैन हो उठे। गांधीजी कह रहे थे :—

"कलके उत्सवके सभापति 'हिज़ हाइनेस महाराज' ने भारतकी गरीबीके बारेमें कहा था। किन्तु उस विशाल पण्डालमें, जहाँपर वाइसरायने शिलान्यास किया था, हमने क्या देखा? वस्तुत: एक बहुतही भड़कीला दृश्य, जवाहिरातोंकी एक प्रदर्शनी, जो पेरिससे आनेवाले सर्वश्रेष्ठ जौहरियोंके लिए भी एक नया दृश्य था। अमूल्य रत्नाभरणोंसे सुसज्जित राजाओंका मैं लाखों गरीबोंसे मिलान करता हूँ, और इन सम्भ्रान्त पुरुषोंसे मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानको तबतक मुक्ति नहीं मिल सकती जबतक कि आप अपने इन रत्नाभरणोंको उतार न दें और उन्हें भारतके वासियोंके नामपर थातीके रूपमें न समझें।"

इन शब्दोंसे गांधीजीने एकबारगी ही मानो राजाओंके सिरपर बिजली गिरा दी थी। वे राजा, जो इस नवागन्तुकको एक नगण्य और क्षुद्र व्यक्ति समझ रहे थे, उसने राजाओंको ही अपनी नगण्यता, क्षुद्रता और अप्राकृतिकताका भान करा दिया था। ऐश्वर्यके लाड़लोंका यह पहिला अनुभव था, जब दीन भारतीय प्रजामेंसे एक साधारण काय और साधारण स्वरूपवाले व्यक्तिने राजाओं-को उन्हींके मुँहपर खरी-खोटी सुनायी थी। राजा ही नहीं, सभी लोग नवा-गन्तुक काठियावाड़ी बनिया गांधीकी इन बातोंसे भौंचक्के-से हो गये थे।

किन्तु गांधीजी अपने आस-पास होनेवाली हलचलसे बेखबर थे और राजाओंपर आँख गड़ाकर कहते जाते थे, "मुझे यकीन है कि सम्राट् अथवा वाइसराय लार्ड हार्डिञ्जकी यह इच्छा नहीं है कि हमारे सम्राट् और शाहंशाहके प्रति भक्ति दिखानेको यह आवश्यक है कि हम अपने आभूषणकी पिटारियोंको खाली कर सिरसे पैरतक सुसज्जित हों। मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर आपके

लिए स्वयं सम्राट् जार्जसे यह सन्देश ला सकता हूँ कि वह ऐसी कोई बात नहीं चाहते।"

गांधीजीके इन हास्य-भरे बचनोंसे साधारण जनसमुदायके अधर फड़क उठे। वे सोचते थे, अवश्य ही यह कोई विशेष पुरुष है। किन्तु अभिमानी राजा, राजपुरुष और सभापति गांधीकी उष्णता सहन न कर, सभाको छोड़कर चल दिये।

किन्तु गांधीजी अटल होकर भाषण देते हो रहे। इसी समय उनका एक और विस्मयकारी विषय प्रारम्भ हो गया; वे बंगालके बम फेंकनेवाले—'क्रान्तिकारी' वा 'अराजकतावादियों' की चर्चा करने लगे। अब तो मिसेज़ बेसेन्ट भी उबल पड़ीं। उन्हें भय लगा कि गांधीजीकी इस चर्चाको विद्रोहात्मक समझा जा सकता है इसलिये आतंकित होकर वह बोल पड़ी—"कृपया यह चर्चा बन्द कीजिए।"

गांधीजी सहमे—लेकिन जन-समुदायको सच्ची और स्वाभाविक बातें पसन्द आ रही थीं। उसने गांधीजीको आगे बढ़नेके लिए बाध्य किया। उन्हें गांधीजीका यह कहना बहुत सही लगा कि महाराजाओंको सड़कें बुहारनी चाहिए, पुरोहित वा पण्डोंको मन्दिरकी सफाई करनी चाहिए और ऊँची जातिवालोंको रेलवेमें नीची जातिवालोंसे दुर्व्यवहार न करना चाहिए। क्योंकि गांधीजीने कहा, "भाषणोंकी संख्यासे हम स्वायत्त-शासनके योग्य नहीं हो सकते। हमारे कर्म का व्यवहार ही हमें उसके योग्य बना सकते हैं।"

अन्तमें गांधीजीने अपने विराट-रूपका दर्शन कराते हुए कहा :—

"यदि भारतकी मुक्तिके लिए मुझे यह जरूरी जान पड़ा कि अंग्रेजोंको यहाँसे चला जाना चाहिए, या उन्हें यहाँसे भगा दिया जाना चाहिए, तो मैं यह कहने में हिचकूँगा नहीं कि उन्हें जाना पड़ेगा, और मैं आशा करता हूँ कि अपने इस विश्वासके समर्थनमें मैं प्राणतक देनेको तत्पर रहूँगा।"

इस प्रकार गांधीजीने अपने अन्तर्दर्शनसे कितनोंकोही विस्मित, अनेकों को चिन्तित और शेषको विमोहित कर डाला। गांधीजीका नाम सबके अधरोंपर दौड़ रहा था; लोगोंको क्या तब मालूम था कि जिस सरलतासे गांधीजीने अंग्रेजोंको

आवश्यकता पड़नेपर निकालनेतककी धमकी दी है वह सही है, और सचमुच ही यह कृशकाय नवागन्तुक कभी उसे पूरा कर सकेगा ?

सचमुच तब लोग कयास भी न कर सकते थे कि गांधी अपनी भविष्य-वाणीको २६ वर्ष बाद जाकर एक दिन पूरा करके ही छोड़ेगा—सन् ४२ के 'भारत छोड़ो' नाराके प्रवर्त्तक महात्मा गांधीको सन् १६ में पहिचान लेना साधारण कार्य न-था, यद्यपि गांधीजीने उसी समय अपना 'अन्तर' सबमें झलका दिया था।

———

अध्याय ५

सत्याग्रहके अंकुर

गांधीजीने अब धीरे-धीरे भारतीय राजनीतिमें सत्य और अहिंसाके साथ सक्रिय रूपसे पैठना आरम्भ किया। १९१६ की लखनऊ-कौंग्रेसमें गांधीजी भारतीय राजनीतिकी गति-विधि देखनेके लिए शामिल हुए। इसी अवसरपर गांधीजीकी प्रथम बार युवक जवाहरलालसे भेंट हुई थी। युवक जवाहरके नेत्रोंमें गांधोको देश-प्रेमकी ज्वाला दहकती हुई और मुखपर शौर्य झलकता दिखलायी पड़ा था। किन्तु युवक जवाहरलालको, जिन्हें गांधोजीने बादमें प्रेमपूर्ण उज्ज्वल शब्दोंमें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, गांधीजी 'बहुत अलग तथा राजनीति से दूर व्यक्ति मालूम दिये थे* ।'

गिरमिट-प्रथाका अन्त

दक्षिण अफ्रिकामें गांधीजीको गिरमिट-प्रथाका बुरा अनुभव हो चुका था। इसके लिए उन्हें वहाँ काफी संग्राम करना पड़ा था और अन्तमें १९१४में वे नेटालके गिरमिटियोंपरसे ३ पौंडका वार्षिक कर हटवा देनेमें सफल भी हुए थे। यह प्रथा भारतमें अभी जारी ही थी। इस प्रथाके अनुसार गिरमिटिया या कुलीको पाँच या उससे कम वर्षके लिए मजूरी करनेका लिखित इकरार करके भारतसे विदेश जाना पड़ता था। सन् १९१६ में धारा-सभामें महामना पं० मालवीयजीने इस प्रथाको बन्द करानेके लिए एक प्रस्ताव रखा था और लार्ड हार्डिञ्जने उनके प्रस्तावको स्वीकार करके यह घोषणा की थी कि 'समय आते ही यह प्रथा बन्द कर दी जायगी।'

---

* मेरी कहानी, जवाहरलाल नेहरू—सं० हरिभाऊ उपाध्याय पृष्ठ—४८

मालवीयजी इस आश्वासनके पूरे होनेकी बाट जोहने लगे। इसी बीच वाइसरायने 'समय आनेपर' का अर्थ करते हुए प्रकट किया कि दूसरी व्यवस्था करनेमें जितना समय लगेगा, उतने समयमें यह प्रथा निर्मूल कर दी जायगी। इसपर फरवरी, १९१७ में मालवीयजीने पुनः गिरमिट-प्रथाको कतई उठा देनेका कानून बड़ी धारासभामें पेश करनेकी आज्ञा माँगी, लेकिन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्डने उसे नामंजूर कर दिया।

गांधीजी बड़ी सतर्कतासे इस स्थितिका निरीक्षण कर रहे थे। उन्हें यह गिरमिट-प्रथा बहुत ही अनुचित और अन्यायपूर्ण लग रही थी और वे चाहते थे कि ऐसी दूषित प्रथाका जितने ही शीघ्र हो सके अन्त हो जाना चाहिए। इस प्रथाके कायम रहनेका कारण वे भारतवासियोंकी लापरवाही और उपेक्षा समझते थे। मालवीयजीके प्रयत्नोंके परिणामको वे बड़ी उत्सुकतासे देखते जाते थे। अन्तमें जब मालवीयजीके बिलको वाइसरायने नामंजूर कर दिया, तो गांधीजी अब बिना रुके इस प्रश्नको लेकर आगे बढ़ चले।

अपने स्वदेश-भ्रमणके अनुभवसे गांधीजीको यह पता लग चुका था कि देशमें अब इतनी जागृति हो चुकी है कि वे लोगोंको इस दूषित प्रथाके विरुद्ध आन्दोलित कर सकते हैं, और जनमतके द्वारा भारत-सरकारको उसे उठानेके लिए मजबूर कर सकते हैं। अतः जमीनको तैयार पाकर गांधीजीने सत्याग्रहको अंकुरित करनेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

पहले तो गांधीजीने गिरमिटकी कुप्रथाके विरुद्ध अखबारोंमें लेख दिये। इन लेखोंका लोकमतने खूब स्वागत किया। सभी लोग इस प्रथाके उच्छेदके लिए तत्पर जान पड़े। गांधीजी समझ गये कि इस जागृत लोकमतको संगठित करके वे जरूरत पड़नेपर सत्याग्रहका भी उपयोग कर सकते हैं।

किन्तु सत्याग्रहके लिए जनमतको संगठित करनेसे पूर्व अपनी अहिंसक प्रणालीके अनुसार उन्होंने तत्कालीन वाइसराय चेम्सफोर्डसे भी इस विषयमें मिल लेना उचित समझा। अतः वे वाइसरायसे मिले। यद्यपि वाइसरायने

गांधीजीको कोई निश्चित उत्तर न दिया, तथापि बातचीतके ढंगसे उन्हें वाइसरायसे कुछ मदद मिलनेकी आशा जरूर जान पड़ी।

इस आशाको लेकर गांधीजीने अब जनमतको एकत्र करनेके लिए भारतका भ्रमण शुरू किया, गांधीजीने सोच लिया था कि यदि वाइसरायसे मिली 'आशा' निष्फल गयी, तो उस समय जनताका आन्दोलन-सत्याग्रह ही काम दे सकता है।

बम्बईकी सभा और प्रस्ताव

इस भ्रमणका श्रीगणेश बम्बईसे हुआ। बम्बईमें इम्पीरियल-सिटीज़नशिप असोसिएशन (साम्राज्य नागरिक-संघ) के नामपर सभा हुई और उसमें गांधी-जीकी सम्मतिके अनुसार प्रस्ताव रखा गया कि सरकार ३१ जुलाई, १९१७ तक गिरमिट-प्रथाको बन्द कर दे। निश्चित तारीख देनेका गांधीजीका यही अभिप्राय था कि यदि उस तारीखतक सरकार कोई फैसला न दे, तो यह विचार करनमें सुविधा होगी कि आगे क्या किया जाय, कौन-सा कदम उठाया जाय? एक प्रकारसे निश्चित तारीख देकर गांधीजीने प्रस्तावको 'अन्तिम सूचना' का रूप दे दिया था, जिसमें यह बात अन्तर्हित थी कि उसके नामञ्जूर होनेपर सरकार और जनताके बीचमें संघर्ष अनिवार्य है।

गांधीजी अपने स्वीकृत प्रस्तावका महत्व समझते थे। इस प्रस्तावकी घोषणामें 'सत्याग्रह' अनिवार्यरूपसे निहित है, यह वे अच्छी तरह जानते थे। अतः 'सत्याग्रह' के लिए 'जनमत' संगृहीत करनेके लिए और देशको आगामी सत्याग्रहके लिए तैयार करनेके उद्देश्यसे गांधीजी देशके सभी बड़े नगरोंमें जा-जाकर 'प्रस्ताव' की व्याख्या करने लगे। गांधीजीकी प्रेरणासे करांची और कलकत्ता आदिमें बड़ी सफलतापूर्वक सभाएँ हुईं और सर्वत्र लोगोंने गिरमिट-प्रथाके उच्छेदक प्रस्तावके समर्थनमें यथेष्ट उत्साह दिखलाया। गांधीजीको स्वयं भ्रमण आरम्भ करनेके समय यह आशा न थी कि लोगोंमें इतना उत्साह और इतनी नव

चेतना होगी। वे कहते हैं, "जब मैंने इस कामको उठाया था, तब ऐसी सभाएँ होनेकी और इतनी संख्यामें लोगोंके आनेकी आशा मैंने नहीं रखी थी।"*

दूसरी ओर गांधीजीकी इन गति-विधियोंके प्रति सरकार भी काफी सचेत और सतर्क हो चुकी थी। गांधीजीके प्रस्तावकी तारीखमें सरकारको स्पष्ट रूपसे युद्ध अथवा जन-संघर्षका आह्वान सुनायी दे रहा था। सरकार यह भी समझ रही थी कि इस जादूगरने लोकमतको काफी अपनी ओर आकृष्ट तथा शासनके विरुद्ध उभाड़ दिया है। अतः जन-आन्दोलनके भय और दुष्परिणामसे घबड़ाकर सरकारने इसीमें अपना हित समझा कि प्रस्तावित तारीखसे पहिले ही वह गिरमिट-प्रथाका अन्त कर दे। तदनुसार सरकारने ३१ जुलाईसे पूर्व ही एक घोषणा करके गिरमिट या कुली-प्रथाको बन्द करा दिया। गांधीजीका प्रयत्न सफल हुआ और भारत-भूमिपर भी सत्याग्रहके पुष्ट तथा सफल अंकुर फूट निकले। अपने इस प्रयत्नकी सफलतका कारण भी गांधीजीने 'शुद्ध सत्याग्रह' ही बतलाया था: "परन्तु यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इस बारके प्रयत्नके साथ शुद्ध सत्याग्रह भी सम्मिलित था†।"

चम्पारन और निलहे गोरोंके अत्याचार

गांधीजीके दक्षिण अफ्रिकाके अद्वितीय कृत्योंके विषयमें बिहारके लोग भी अपरिचित न थे। भारत आनेके बादसे उनके सत्य और सत्याग्रहकी महिमा जोरोंसे फैल रही थी। अतः जब गांधीजी लखनऊ-कौंग्रेसमें गये हुए थे तभी बिहारके राजकुमार शुक्ल, ब्रजकिशोर बाबू, आदि उनसे मिले और चम्पारनके किसानोंके कष्टोंसे उन्हें अवगत कराया। गांधीजीने इस बारेमें कुछ कहने और करनेसे पूर्व स्वयं चम्पारन जाकर वहाँका हाल देख लेनेकी इच्छा प्रकट की। बिहारके प्रतिनिधियोंने इसे शिरोधार्य किया।

---

* आत्मकथा, खण्ड २, पृष्ठ ३२० †—वही,—पृष्ठ ३२१

गोरे अंग्रेज़ लगभग सौ वर्षोंसे चम्पारन जिलेमें नीलकी खेती करते और कराते थे। सारे जिले-भरमें, जहाँ-जहाँ नील हो सकती थी, अंग्रेजोंने अपने नीलके कारखाने खोल रखे थे। बहुत-सी जमीन भी उन्होंने अपने कब्जेमें कर ली थी, जिसमें वे खुद नीलकी खेती कराते थे। धीरे-धीरे निलहे गोरों या अंग्रेजोंने एक कानून बनवाकर रैयतको इसके लिए मजबूर किया कि वे अपने खेतके फी बीघेमें पाँच कट्ठे या तीन कट्ठे जमीनमें नील जरूर बोवें। यह प्रथा 'पंच-कठिया' या 'तीन-कठिया' कहलाती थी। कोई भी व्यक्ति इस अनैतिक कानूनके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता था और यदि किसीने कभी उसके विरुद्ध कार्य करनेकी हिम्मत भी की, तो उसे अनेकों प्रकारसे सताया जाता था। नीलके कानूनके विरुद्ध आचरण करनेवालोंके खेत लूट लिये जाते थे ; उनके खेत जानवरोंको चरा दिये जाते थे; उनपर झूठे आरोप लगाकर मुकदमे चलाये जाते थे; उन्हें पिटवाया जाता था तथा उनपर जुर्माना लाद दिया जाता था। अतः दारुण अत्याचारोंसे भीत, पीड़ित और घबराये हुए किसान 'तीन-कठिया' कानूनको मानते थे और बीघा पीछे तीन कट्ठा भूमिपर नील विवश होकर बोते थे।

अपने ही घरमें निलहे अँग्रेजोंके अत्याचारसे इस प्रकार पीड़ित होकर बिहारके प्रतिनिधि अपनी कष्ट-गाथाओंको सुनानेके लिए ही लखनऊ-काँग्रेसमें पहुँचे थे और कर्मवीर गांधीजीको अपने कष्ट-निवारणके हेतु चम्पारन आनेका निमन्त्रण दे आये थे।

सन् १९१७ के अप्रैलमें जब गांधीजी अखिल भारतीय काँग्रेस-कमेटीमें शामिल होनेको कलकत्ते गये हुए थे, तभी चम्पारनके प्रतिनिधि श्रीराजकुमार शुक्ल गांधीजीके आदेशानुसार फिर कलकत्ते आकर उनसे मिले। गांधीजी अपने वचनके अनुसार शुक्लजीके साथ पटनाके लिए रवाना हो गये और १० अप्रैल को वे पटना जा पहुँचे।

पटना पहुँचतेही गांधीजी पहिले राजेन्द्रबाबूके यहाँ गये, लेकिन राजेन्द्रबाबू घरपर नहीं थे। इतनेमें मौलाना मज़हरुलहकको गांधीजीके आनेकी खबर

मिली और वे उन्हें अपने घर लिवा ले गये। लेकिन गांधीजी पटनामें ठहरनेके बजाय तुरन्त अपने गन्तव्य स्थान चम्पारनको जाना चाहते थे। अतः उसी दिन शामको वे मुजफ्फरपुरके लिए रवाना हो गये। यहाँ पहिले-पहल उनकी आजके काँग्रेस-सभापति आचार्य कृपलानीसे भेंट हुई।*

चम्पारनके रैयतोंकी कष्ट-गाथाको स्वयं सुनने और देखनेके इरादेसे ही गांधीजी वहाँ आये थे। अतः कुछ साथियोंके साथ १६ अप्रैलको गांधीजी चम्पारनके मुख्य शहर मोतीहारी पहुँचे। किसानोंको अवस्थाकी जाँच प्रारम्भ करनेसे पूर्व ही सिद्धान्तानुसार गांधीजीने निलहे मालिकों और कमिश्नरको अपने आनेकी सूचना भेज दी थी। निलहे गोरोंके मण्डलके मन्त्रीसे भी गांधीजीने भेंट की, लेकिन उसने अहंकार-भरे शब्दोंमें गांधीजीको अविनयपूर्ण उत्तर दिया, "आप तो बाहरी आदमी हैं। आपको हमारे और किसानोंके झगड़ेमें न पड़ना चाहिए। फिर भी, यदि आपको कुछ कहना हो, तो लिखकर भेज दीजिएगा।" लेकिन भारतको एक समझनेवाला गांधी अपनेको बाहरी कैसे समझता? अतः उन्होंने सौजन्यके साथ मन्त्रीको उत्तर दिया—"मैं अपनेको बाहरी आदमी नहीं समझता और किसान यदि चाहते हों, तो उनकी स्थितिकी जाँच करनेका मुझे पूरा अधिकार है।" इसके पश्चात् गांधीजीने कमिश्नरसे भी मुलाकात की, किन्तु गोरे कमिश्नरने उन्हें धमकी दिखाकर चम्पारन छोड़ देनेकी आज्ञा सुनायी।

लेकिन सत्यपर अटल गांधीजीपर इन धमकियोंका कोई असर न पड़ा। गांधीजी कुछ बिहारी साथियोंके सहित मोतीहारी से किसानोंकी पीड़ितावस्थाकी जाँच करनेके लिए आगे बढ़े। कुछ ही दूर पहुँचे थे कि गांधीजीको कलक्टरका हुक्म मिला कि चम्पारन जिलेको छोड़कर चले जाओ, पर उन्होंने इस हुक्मकी

---

*पुस्तक उस समय तैयार हो चुकी थी जब कृपलानीजी सभापति थे और गांधीजी भी जीवित थे—इसी कारण इस प्रकारके कथन पुस्तकमें आये हैं! पाठक इससे भ्रममें न पड़ें।

परवाह न की और स्पष्ट कह दिया कि उन्हें गाँवोंकी जाँच करनी है, इसलिए वे चम्पारन न छोड़ेंगे। इस हुक्मका अनादर करनेके कारण गांधीजीको अदालतमें हाजिर होनेका समन मिला। मोतीहारीमें सर्वत्र एकदम खबर फैल गयी कि गांधीजीपर मुकदमा चलेगा।

सरकारी हुक्म-उदूलीका यह पहिला अवसर था। मोतीहारीमें पहिले कभी किसीने ऐसा होते न देखा था। सब लोग चकित और हर्षित थे। सोचते थे कि यह गांधीजी अवश्य कोई विशेष-पुरुष हैं। इसमें अवश्य कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो दूसरोंमें नहीं मिलतीं। गांधीजीकी हुक्म-उदूलीकी निर्भीकताने पीड़ित और आतंकित लोगोंके दिलोंमें भी साहसका संचार कर दिया। असंख्य लोगोंकी भीड़ अपने दुःखहर्त्ता गांधीजीके पीछे रोज अदालततक पहुँचने लगी। सरकारका हौवा अब उनके मनोंमें न रह गया था, वे अब गांधीजीके प्रेमके अधिनेतृत्वमें चले आये थे। वे तैयार थे गांधीजीके साथ जेल, फाँसी या कोई भी सजा लेनेके लिए वे निश्चय-सा कर चुके थे कि कुछ भी हो, लेकिन वे उन्हींके साथ रहेंगे और उनके पीछे चलेंगे। इस स्थितिने निस्सन्देह निलहे गोरों और राजकर्मचारियोंकी शक्तिको हिला डाला था। अधिकारी भी समझ गये कि "आजसे हमारी सत्ता यहाँसे उठ गयी। लोग थोड़ी देरके लिए सजाका भय छोड़कर अपने नये मित्रके प्रेमकी सत्ताके अधीन हो गये थे *।"

अदालतमें

१८ अप्रैलको गांधीजी अदालतमें हाजिर हुए। गांधीजीने बयान देते हुए अपना जुर्म कबूल किया था। मैजिस्ट्रेट दंग रह गया। यह हिन्दुस्तानमें पहिला ही मौका था, जब कि किसीने इस प्रकार जुर्म कबूल किया हो। मैजिस्ट्रेटने अपने ऊँचेके अफसरोंसे इस मुकदमेमें राय माँगी और राय आनेतक कोई फैसला न दिया। वस्तुतः सरकारने गांधीजीको जालमें फँसानेके लालचसे खुद अपने-आपको

*—वही—पृष्ठ ३४०

ही जालमें डाल दिया था। गांधीजीका पक्ष 'सत्य' पर आश्रित था और सरकारका आधार था 'असत्य'। अतः गांधीजी पर चलाया गया मुकदमा एक प्रकारसे सरकारपर ही चल रहा था।

मुकदमेका हाल सुनकर उसी समय कुछ साथियोंको लिये हुए राजेन्द्रबाबूने भी पहिले-पहिले मोतीहारीसे पटना पहुँचकर गांधीजीसे भेंट की थी। गांधीजी उस समय फैसलेकी बाट देख रहे थे। चम्पारनकी हालत, आदिके बारेमें उन्होंने वाइसराय, आदिको भी सूचित कर दिया था। गांधीजी सोच रहे थे कि यदि वे कैद हो गये, तो फिर चम्पारनकी समस्याका क्या सुलझाव होगा। उन्होंने बिहारके साथियोंसे इस विषयमें चर्चा की और जब गांधीजीको राजेन्द्रबाबू आदिसे यह आश्वासन प्राप्त हो गया कि उनका अनुकरण करते हुए वे सब भी जेल जायँगे, तो गांधीजीको 'सत्याग्रह की विजय' प्रत्यक्ष जान पड़ी। तभीसे गांधीजीका राजेन्द्रबाबू, ब्रजकिशोरबाबू, आचार्य कृपलानी, अनुग्रहबाबू, आदिसे प्रेम हो गया और ये लोग महात्माजीके विश्वासपात्र बन गये।

इन विश्वासपात्र व्यक्तियोंके द्वारा ही गांधीजीने चम्पारनकी जाँच करनी शुरू की। हजारों किसानोंमें लगभग २०,००० के बयान लिये गये। इसी बीचमें फैसला सुनानेकी तारीखसे पहिले ही मैजिस्ट्रेटने गांधीजीको सूचित किया कि सरकारके हुक्मसे उनपरसे मुकदमा उठा लिया गया है और वे जो कुछ जाँच करना चाहें, शौकसे कर सकते हैं।

अहिंसा और सत्यकी विजय

गांधीजीकी यह अद्वितीय विजय थी। उनके सत्य और अहिंसाने गोरोंके अत्याचार और झूठपर विजय पायी थी। हिन्दुस्तानके इतिहासमें यह सत्याग्रह अथवा कानूनमें सविनय भंगका पहला प्रसंग था। इसकी चर्चा सहसा सारे हिन्दुस्तानमें ही नहीं फैल गयी, वरन् लोगोंको गांधीजीके रूपमें अपने बीच एक सबल जन-नायक भी दिखायी देने लगा। राजेन्द्रबाबू, आदि बिहारके

नेता तो सर्वथा गांधीजीके अनन्य भक्त हो गये। अपनी आत्मकथामें चम्पारन की घटनाका जिक्र करते हुए राजेन्द्रबाबूने लिखा है—"चम्पारन-काण्डके समाप्त होते-होते हम सब-के-सब उन (गांधीजी) के अनन्य भक्त और उनकी कार्य-प्रणालीके पक्के हामी बन चुके थे* ।"

जाँच और कमीशन

गांधीजी और राजेन्द्रबाबू, आदि बिहारके साथी तन्मय होकर चम्पारनके किसानोंकी जाँच करने पर जुट गये थे। रोज हजारों रैयतोंके बयान लिखे जाते थे। बयान खूब जिरहके साथ लिये जाते थे ताकि कोई गलत और झूठ बयान न लिखा दे। इस जाँचका असर यह हुआ कि चम्पारनके मुकामी अफसर घबरा गये। उनमेंसे कितने ही तो यह समझने लगे कि 'गांधीजी ही सबसे बड़े अफसर हैं, जिनके सामने जिलेके कलक्टर और मजिस्ट्रेटके खिलाफ भी शिकायत की जा सकती है।' इस प्रकार गांधीजीकी जाँच-पड़तालके परिणाम-स्वरूप नीलवरोंके साथ अफसरोंका रोब भी जनताके हृदयसे हटता जा रहा था। यह स्थिति राज-कर्मचारियों और नीलवरोंको असह्य मालूम देने लगी। अतः उन्होंने गांधीजीकी जाँचकी सरकारको शिकायतें भेजना शुरू किया। मजिस्ट्रेटने तो यहाँतक लिखा कि अराजकता फैल रही है—जान पड़ता है, बृटिश राज मानो उठ गया† ।'

अफसरों और नीलवरोंकी शिकायतोंके फलस्वरूप बिहार-सरकारने गांधीजी-को निम्न आशयका एक पत्र लिखा—"आपकी जाँचमें काफी दिन लग गये हैं और आपको अब अपना काम खतम करके बिहार छोड़ देना चाहिए।" पत्र पाते ही गांधीजीने भी स्पष्ट उत्तर भेजा—"जाँचमें तो अभी और दिन लगेंगे, और जाँचके बाद भी, जबतक लोगोंका दुःख दूर न होगा, मेरा इरादा बिहार छोड़नेका नहीं है।"

---

* आत्मकथा—राजेन्द्रप्रसाद, पृष्ठ ८९ †—वही—पृष्ठ ९७

आखिर बिहारके गवर्नर एडवर्डगेटने गांधीजीको राँची बुलाया और उनकी इच्छाके अनुसार एक सरकारी जाँच-समिति बनाना कबूल किया। गांधीजीको भी इस जाँच-समिति या कमीशनका मेम्बर नियुक्त किया गया। इस कमीशनके अध्यक्ष श्री सर फ्रैंक स्लाई थे। कमीशनने जाँच करके किसानोंकी तमाम शिकायतों-को सत्य स्वीकार किया और यह सिफारिश की कि निलहे लोग अनुचित रीतिसे कमाये गये रुपयोंका कुछ भाग वापिस दें और 'तीन-कठिया' का कानून रद्द कर दिया जाय। गवर्नमेन्टने इन सिफारिशोंको मंजूर किया, और इस प्रकार गांधीजीके ही शब्दोंमें "सौ वर्ष पुराना 'तीन-कठिया' कानून रद्द हुआ और उसके साथ-ही-साथ वहाँसे निलहोंका राज्य भी अस्त हो गया। दासतासे दबी हुई रैयतने अपने बलको कुछ-कुछ पहिचाना और उसका यह वहम दूर हो गया कि नीलका दाग तो धोया नहीं धुलता *।"

चम्पारनकी इस विजयके परिणाम-स्वरूप सचमुचही नीलवरोंकी शक्ति खतम हो गयी। नीलवर भी इसे समझ गये। वे जानते थे कि अब वे जागृत रैयतोंको नहीं दबा सकते, न उनपर जुर्म ही कर सकते हैं। बिना जुर्म किये अब नीलकी खेतीमें कोई फायदा भी वे नहीं कर सकते थे। फलतः तीन-चार वर्षोंके अन्दर निलहे-गोरोंने अपनी कोठी और जमीन बेच डाली और चम्पारनको छोड़कर चले गये। उनकी जमीनपर अब रैयतोंका कब्जा हो गया और फिर से खेती-बारी पनप उठी। गांधीजीकी अहिंसा और सत्याग्रहका भारत-भूमिपर यह ऐसा प्रतिफल था, जिसे सर्वसाधारण समझ और जान सके।

सार्वजनिक सेवा-कार्यकी महत्ता

चम्पारनमें कार्य करते समय गांधीजीको यह भी अनुभव हुआ कि जन-आन्दोलनके लिए गाँवोंमें शिक्षाका प्रसार नितान्त आवश्यक है। अतः गांधी-जीने बम्बई, आदि स्थानोंसे कतिपय स्वयंसेवकोंको बुला भेजा था जिनमें कस्तूर

* आत्मकथा, दूसरा खण्ड—पृष्ठ ३६७

बाई और अन्य महिलाएँ तथा कुछ पुरुष कार्यकर्त्ता भी शामिल थे। इन लोगों-के ऊपर गाँवके बच्चोंकी शिक्षाका भार सौंपा गया था।

शिक्षाके साथ-साथ गाँवोंमें पायी जानेवाली गन्दगीके सुधारके लिए भी गांधीजीने डा० देवकी अध्यक्षतामें एक स्वयंसेवकोंकी टोली बनायी थी। इन लोगोंने अपने हाथोंसे गाँवोंके रास्ते साफ किये, लोगोंके आँगनमेंसे कूड़ा-करकट निकाला, कीचड़ निकाली और इस प्रकार गाँववालोंके सामने अपने सुधारका सजीव आदर्श स्वयं उपस्थित किया। लोगों पर शिक्षा और सुधारके इन कार्यों-का आशातीत असर पड़ा और वे इन बातोंका महत्व समझने लगे।

छः महीनेतक यह कार्य हुआ। गांधीजीकी इच्छा थी कि यह कार्य बराबर जारी रहे, किन्तु चम्पारनका कार्य बमुश्किल खतम होनेपर आया ही था कि खेड़ासे गांधीजीको एक और महत्वके कामके लिए बुला लिया गया। अतः गांधीजीका चम्पारनका सुधार-कार्य अधूरा ही रह गया, तथापि उसका प्रभाव कभी मिटने न पाया। गांधीजीके रचनात्मक कार्यका यह श्रीगणेश था।

अहमदाबादकी मजदूर-हड़ताल

चम्पारनसे लौटनेके बाद कुछ दिनोंतक गांधीजीको एकके बाद दूसरे कामोंमें जल्दी-जल्दी लग जाना पड़ा। इस बीच कोचरबमें प्लेग हो जानेके कारण सत्याग्रह आश्रम भी साबरमती चला गया था। लेकिन चम्पारनके जरूरी काममें फँसे रहनेके कारण वे आश्रमकी तरफ उस समय अधिक ध्यान न दे सके थे।

गांधीजी चम्पारन ही में थे कि उन्हें खेड़ासे किसानोंके कष्टके बारेमें मोहन लाल पंड्या, आदिका पत्र मिला। उसी समय एक और पत्र श्रीमती अनसूया-बहनकी तरफसे मजदूरोंके कष्टके बारेमें प्राप्त हुआ। मजदूरोंका वेतन बहुत कम था और बहुत दिनोंसे वे अपने मिल-मालिकोंसे यह माँग कर रहे थे कि वेतन बढ़ाया जाय। गांधीजी इस कार्यमें मजदूरोंका पथ-प्रदर्शन करनेके लिए बुलाये गये थे।

अतः गांधीजी दिसम्बर, १९१७ में कलकत्ता-कॉंग्रेससे होकर श्रीअनसूयाबहनके निमन्त्रणके अनुसार मजदूरोंके संगठन और कार्य-सम्पादनके लिए तुरन्त अहमदाबाद पहुँचे। गांधीजी चाहते थे कि मिल-मालिकों और मजदूरोंके बीचमें किसी प्रकार पञ्च-द्वारा समझौता हो जाय, किन्तु मिल-मालिकोंने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया। तब गांधीजीने आगे कोई दृढ़ कदम उठानेका निश्चय किया। उन्होंने मजदूरोंकी स्थितिका अध्ययन करके निश्चय किया कि मजदूरोंकी मजदूरीमें ३५ प्रतिशतकी बढ़ती होनी चाहिए। मिल-मालिक इतनेके लिए तैयार नहीं हुए। वे २० प्रतिशत से अधिक मजूरी नहीं बढ़ाना चाहते थे। फलतः समझौता न हो सका।

समझौतेका प्रयत्न निष्फल होनेपर गांधीजीने मजदूरोंको हड़ताल करनेकी सलाह दी। हड़तालियोंके लिए अनिवार्य था कि वे अहिंसा के मार्गका अनुसरण करें, इसलिए उनके लिए गांधीजीने निम्न-शर्तें रखीं—

(१) किसी भी हालतमें शान्ति-भंग न करना।

(२) जो कामपर जाना चाहें, उनके साथ किसी किस्मकी ज्यादती या जबरदस्ती न करना।

(३) मजदूर भिक्षान्न न खायें।

(४) हड़ताल चाहे जबतक करनी पड़े, पर वे दृढ़ रहें; और जब रुपया-पैसा न रहे तो दूसरी मजूरी करके पेट पालें।

इन शर्तोंका हड़तालियों और उनके नेताओंने स्वागत किया। मजदूरोंने आमसभा करके प्रस्ताव भी किया कि "जबतक हमारी माँगें स्वीकार न की जायँ अथवा उनपर विचार करनेके लिए पंच न मुकर्रर हों, तबतक हम कामपर न जायँगे।"*

इस हड़तालके ही समय गांधीजीका कॉंग्रेसके 'पुरुषसिंह' श्रीवल्लभभाई पटेल और श्रीशंकरलाल बैंकरके साथ सर्वप्रथम परिचय हुआ था।

*—वही—पृष्ठ ३७२-३७३

हड़ताली मजदूरोंकी साबरमतीके पास एक पेड़के नीचे रोज सभा होती और गांधीजी उन्हें रोज उन प्रतिज्ञाओंका स्मरण कराते जिन्हें हड़तालके प्रारम्भमें उन्होंने किया था ; और उन्हें शान्तिपूर्वक अपने प्रणपर डटे रहनेको उत्साहित किया करते थे। लगभग दो हफ्तेतक तो हड़ताल जोरसे चली, लेकिन उसके बाद मजदूरों में कमजोरी आने लगी और बहुत-से अपनी प्रतिज्ञाओंके खिलाफ मिलमें जाने लगे। जो मजदूर स्थिर रहे, उनका भी उत्साह अपने कमजोर साथियोंके कारण ढीला पड़ने लगा। गांधीजी समझ गये कि कुछ मजदूरोंकी इस कमजोरीसे सारा कार्य बिगड़ जायगा। अतः उनकी कमजोरीको दूर करनेके लिए गांधीजीने ऐलान किया कि "अगर मजदूर फिरसे तैयार न हो जायँ और जबतक कोई फैसला न हो ले, तबतक हड़ताल न निभा सकें तो मैं तब (फैसला होने) तक उपवास करूँगा।" इस ऐलानने मजदूरोंको निःसन्देह दृढ़ बना दिया और उन्होंने पुनः गांधीजीके सामने प्रतिज्ञा की कि "हमें माफ कीजिए। हम अपनी टेक पालेंगे।" गांधीजीके उपवासकी खबरसे गुजरात ही नहीं, वरन् सारे देशमें सनसनी फैल गयी। मिल-मालिकोंपर सब तरफसे जोर पड़ने लगा। मिल-मालिक परेशान हो उठे। अन्तमें गांधीजीके तीन दिन उपवास करनेके बाद चौथे दिन श्रीआनन्दशंकर ध्रुवकी मध्यस्थतासे मिल-मालिक और मजदूरोंके बीच समझौता हो गया और मजदूरोंकी तनख्वाहमें ३५ प्रतिशत की वृद्धि कर दी गयी। यह समझौता हड़तालके उनतीसवें दिन हुआ। गांधीजीकी यह एक और अहिंसात्मक विजय थी।

खेड़ाका सत्याग्रह

१९१८ का वर्ष गांधीजीके जीवनमें बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। मजदूरोंकी हड़तालकी सफल समाप्ति करते ही उस वर्ष गांधीजीको तुरन्त खेड़ाके किसानोंके दुःखहरणके लिए जुट जाना पड़ा था। खेड़ा जिलेमें उस वर्ष फसलके खराब हो जानेसे अकालकी स्थिति पैदा हो गयी थी। गुजरात-सभाने, जिसके सभापति

गांधीजी थे, सरकारके पास इस सम्बन्धमें शिष्ट-मंडल भेजा, कमिश्नर और गवर्नरको अर्जियाँ दीं, किन्तु कोई फल न निकला। कानूनके अनुसार सरकारसे कहा गया कि फसल चार आनेसे कम हुई है, इसलिए लगान माफ हो जाना चाहिए। लेकिन सरकारका कहना था कि फसल चार आनेसे अधिक हुई है और इसलिए लगान नहीं छोड़ा जा सकता। सरकारसे तब पञ्च द्वारा फैसलेकी माँग की गयी, किन्तु सरकारने इसे धृष्टतापूर्वक ठुकरा दिया।

इस प्रकार समझौतेके सभी द्वार बन्द हो गये थे। अतः गांधीजीने अपने साथियों—वल्लभभाई पटेल, शंकरलाल बैंकर, अनसूयाबहन, इन्दुलाल याज्ञिक, महादेव देसाई आदिसे सलाह करके किसानोंको सत्याग्रह करनेकी सलाह दी। इस सलाहके दिये जानेके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए ५ फरवरी, १९१८ को बम्बईकी एक सभामें गांधीजीने कहा था—"गुजरात सभाके पास खेड़ा जिलेके लोगोंकी स्थितिके बारेमें काफी सबूत हैं, लगान देनेके लिए लोगोंको अपने मवेशीतक बेचने पड़े हैं...सभाकी प्रार्थना थी कि जबतक समझौतेकी बातें चल रही हैं, लगान वसूली बन्द कर दी जाय। यदि कमिश्नर शिष्ट-मंडलके साथ क्रोध न करता और उनसे नम्रतासे पेश आता, तो ऐसी जटिल स्थिति पैदा न हो सकती थी.....जन नेताओंको, लोगोंको उनके अधिकारोंके ज्ञान करानेका पूरा हक है। उनका विश्वास है कि वे लोग, जिन्होंने जनताको सही सलाह दी है, उसपर बने रहेंगे और न्याय हासिल करनेमें कठिनाइयोंको झेलनेसे हिचकेंगे नहीं।"

सत्याग्रहकी तैयारी पूरी हो जानेपर २२ मार्च, १९१८ को गांधीजीने खेड़ाके सत्याग्रही किसानोंसे नीचे लिखी प्रतिज्ञापर दस्तखत लिये—

"हम जानते हैं कि हमारे गाँवमें फसल चार आनेसे भी कम हुई है। इसलिए हमने अगले सालतक कर वसूल करना मुल्तवी रखनेकी अर्जी सरकारसे की, मगर तो भी लगानकी वसूली बन्द नहीं हुई। इसलिए हम नीचे सही करनेवाले प्रतिज्ञा करते हैं कि इस सालका पूरा या बकाया लगान न भरेंगे। किन्तु उसे

वसूल करनेमें सरकारको जो कुछ दण्ड देने हों, देने देंगे और उससे होनेवाला दुःख सहेंगे। हमारी जमीन जब्त होगी, तो वह भी होने देंगे। किन्तु अपने हाथों लगान चुकाकर, झूठे बनकर, हम स्वाभिमान नहीं नष्ट करेंगे। अगर सरकार दूसरी किश्ततक बकाया लगान वसूल करना सभी जगह मुल्तवी रखे, तो हममेंसे जो शक्तिमान हैं, वे पूरा या बकाया लगान चुकानेको तैयार हैं। इसमें जो शक्तिमान हैं, उनके लगान न भरनेका कारण यह है कि अगर शक्तिमान भरें, तो अशक्तिमान घबराहटमें पड़कर अपनी चाहे जो वस्तु बेचकर या कर्ज करके लगान चुकावेंगे और दुःख भोगेंगे। हमारी यह मान्यता है कि ऐसी हालत-में गरीबोंका बचाव करना शक्तिमानोंका धर्म है।"*

उक्त प्रतिज्ञा-पत्र द्वारा गांधीजीने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि सत्याग्रहियों के लिए पहिला और अन्तिम सिद्धान्त 'दूसरेको दुःख न देकर न्याय प्राप्त करनेके लिए स्वय दुःख उठाना' है।

खेड़ा-सत्याग्रहकी विशेषता

सत्याग्रहका आन्दोलन गांधीजी चम्पारनमें भी चला चुके थे। किन्तु उस आन्दोलनको गांधीजीने हर प्रकारसे राजनैतिक होनेसे रोका था। चम्पारनके आन्दोलनमें सभाएँ करनेकी मनाही थी और प्रचारकी भी। अखबारोंतकमें चम्पारनकी बहुत-सी खबरें नहीं जाने दी जाती थीं।

किन्तु खेड़ाकी लड़ाईके लिए प्रचारकी प्रारम्भसे ही आवश्यकता हुई। किसानोंको सत्याग्रहके हेतु तैयार करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता हुई कि नेतागण गाँव-गाँव घूमें और लोगोंको यह समझाकर निर्भीक बनायें कि सरकारी अफसर प्रजाके मालिक नहीं, किन्तु नौकर हैं। प्रजाके पैसेसे ही तनख्वाह पाते हैं। इस प्रचारका तात्पर्य प्रत्यक्ष रूपसे लोगोंको सरकारके विरुद्ध जाग्रत करना और अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नशील बनाना था। फलतः खेड़ाका आन्दो-

*—वही—पृष्ठ ३८६-३८७

लन प्रारम्भसे ही राजनैतिक रूप ग्रहण कर सका था और अखबारोंमें भी उसका खूब प्रचार हो गया था।

इस प्रकारसे खेड़ाका आन्दोलन सरकारके विरुद्ध प्रथम जन-आन्दोलन था। अर्जियाँ और विनयकी पुरानी परिपाटीको इस आन्दोलनने खतम कर दिया था। गांधीजीके नेतृत्वमें लोगोंने प्रथम बार घुटने टेकना छोड़कर अपने अधिकार और सम्मानके लिए चुनौती देते हुए अपने पैरोंपर सीधा खड़ा होना सीखा था। वे लोग, जो पहिले 'सरकार' को हव्वा समझते थे, अब गांधीजीके जादूमें आकर, उसीसे भिड़नेके लिए निर्भीक होकर खुले मैदानमें उतर आये थे। सर्वशक्तिशाली अंग्रेजी सत्ताके ऊपर भारतमें यह प्रथम जबरदस्त घन था।

समझौता

सरकार खेड़ाके सत्याग्रहियोंकी हिम्मत देखकर कुपित हो उठी। लगान न देनेकी सक्रिय धमकी अंग्रेज़ी सरकारको अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध आचरण मालूम पड़ा। सरकारने घोर दमन शुरू किया। सत्याग्रही किसानोंके ढोर और माल, आदि कुड़क होने लगे। चौथाई जुरमानेके नोटिस निकले। कहीं-कहीं किसी गाँवकी सारी फसल तक जब्त कर ली गयी।

इस घोर दमनके कारण सत्याग्रहियोंमेंसे बहुत लोग आतंकित होकर टूटने लगे। तब सत्याग्रहियोंको उत्साहित करने और डटे रहनेके लिए प्रेरणा देनेकी दृष्टिसे मोहनलाल पंड्याके नेतृत्वमें गांधीजीने एक जबरदस्ती जब्त किये गये प्याज-के खेतसे प्याज खुदवा डाला। इस कार्यसे लोगोंका सरकारके अनुचित कार्यके विरुद्ध आचरण करनेका हौसला फिर बढ़ गया। प्याज खोदनेवाले मोहनलाल तथा उनके साथी पकड़े गये और उन्हें सजाएँ दी गयीं। लेकिन इन सजाओंसे सत्याग्रही ढीले पड़नेके बजाय और भी तनते गये। दमनका परिणाम ही ऐसा होता है।

सरकारने सोचा था कि सत्याग्रहियोंकी माँगको कबूल करना अपनी प्रतिष्ठा

खोना है । इसीलिए सरकारने जोर और जबर करके लोगोंको कुचल देना चाहा था । अबतक वह यही करती भी आयी थी । किन्तु इस बार गांधीजीने कुछ ऐसा जादू कर दिया था कि लोग दमनको सहते हुए भी सरकारके विरुद्ध डटे ही थे । सरकारको अब अपनी प्रतिष्ठाका दम्भ तोड़नेमें ही कल्याण मालूम दिया । अतः सरकारने सत्याग्रहियोंकी माँगको स्वीकार करते हुए हुक्म निकाला—'अगर धनी-पट्टीदार लगान भर दें, तो गरीबोंका लगान मुल्तवी रहेगा ।' सत्याग्रहियोंने खुद यही माँग अपने प्रतिज्ञा-पत्रमें की थी । अतः इस हुक्मकी कलेक्टरसे सूचना पाकर गांधीजीने सत्याग्रह बन्द करा दिया । माँगें पूरी हो जानेके कारण अब सत्याग्रहकी जरूरत ही न रह गयी थी ।

परिणाम

देशमें उन्हीं दिनों श्रीमती एनी बेसेन्टके नेतृत्वमें होमरूल-आन्दोलन भी चला था, किन्तु उसकी हलचल नगर और शिक्षित-वर्गतक ही सीमित थी । लेकिन यह खेड़ेका ही आन्दोलन था, जिसने प्रथमतः जन-जागृतिका रूप ग्रहण किया और किसानोंको भी जागरूक बना दिया । अतः खेड़ाका सत्याग्रह सही अर्थोंमें पहिला जन-आन्दोलन था । इस आन्दोलनसे गुजरातके जन-जीवनमें नया तेज आया और नया उत्साह भर गया । किसानोंको अपनी शक्तिका अनुभव हुआ और सबने इस बातको समझा कि प्रजाकी मुक्तिका आधार अपने-हीमें है अथवा उनकी त्याग-शक्तिमें ही है । उन्हें यह जानकर बड़ी खुशी थी कि सत्याग्रहके रूपमें उन्हें आगेके लिए राजनैतिक दुःखोंके निवारणका मार्ग मिल गया है ।*

गांधीजीको भी खेड़ाके अनुभवसे प्रत्यक्ष हो गया कि उनके अहिंसक शस्त्र—सत्याग्रहसे भारतकी समस्त समस्याओंको अच्छी प्रकारसे हल किया जा सकता

*—वही—पृष्ठ ३९५

है। उन्हें यह भी प्रत्यक्ष हो गया कि भारतीयोंमें 'सत्याग्रह' के प्रति आकर्षण है और यह अस्त्र सफलतासे इस भूमिपर काम कर सकता है।

संक्षेपमें कह सकते हैं कि खेड़ा-आन्दोलनके द्वारा सत्याग्रहने गुजरातमें अपनी जड़ें अच्छी तरह जमा ली थीं, और वह अंकुरित तथा पल्लवित भी होने लगा था।

———

अध्याय — ६

धर्म-संकट

अप्रैल, १९१८ का समय था। यूरोपका महासमर अभी चल ही रहा था। अंग्रेज़ोंको सैनिकोंकी जरूरत बनी हुई थी। अतः लार्ड चेम्सफ़ोर्डने सैनिक भर्ती और सहायताके सम्बन्धमें भारतीय नेताओंको दिल्लीमें आयोजित युद्ध-सभामें आमन्त्रित किया था। गांधीजीसे भी इसमें शामिल होनेके लिए विशेष आग्रह किया गया था।

गांधीजी अभीतक अंग्रेज़ी सल्तनतपर विश्वास रखते थे, किन्तु लोकमान्य तिलक, ऐनीबेसेन्ट और अलीभाइयोंके सभामें आमन्त्रित न किये जानेके कारण गांधीजीने आरम्भमें सरकारके निमन्त्रणको स्वीकार नहीं किया। गांधीजीको खिलाफतके प्रश्नपर अलीभाइयोंका जेलमें ठूँस दिया जाना बहुत ही अखर रहा था। मुस्लिम-लीगके खिलाफतके प्रश्न और अलीभाइयोंकी रिहाईका प्रश्न गांधीजीके सामने सभामें जानेकी अपेक्षा अधिक महत्वका था।

गांधीजीके बारेमें यहाँपर एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यको वे दक्षिण अफ्रिकामें रहनेके समयसे ही भारतके कल्याणके लिए आवश्यक समझते थे और सदा समझते रहे हैं, और उसके लिए प्रारम्भसे ही प्रयत्न करते रहे हैं। गांधीजीको दक्षिण अफ्रिकामें यह भी मालूम हो चुका था कि भारतके हिन्दू और मुसलमानोंमें जैसा होना चाहिए, वैसा मित्रभाव और ऐक्य नहीं है। इसलिए वे वहींसे यह इरादा करके आये थे कि वे जहाँतक हो सकेगा, हर उचित उपाय द्वारा दोनों वर्गोंको प्रेम-सूत्रमें बाँधनेके काममें अपनेको जुटा देंगे।

इन्हीं भावोंसे ओत-प्रोत होकर वे दक्षिण अफ्रिकासे लौटे थे और आते ही

अलीभाइयोंसे स्नेह-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। वे किसी भी ऐसे प्रयत्नको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते थे, जिससे दोनों वर्गोंमें प्रेम-सम्बन्ध कायम हो सकता हो। इसी भावनासे प्रेरित होकर १९१७ में गांधीजीने कॉंग्रेस-लीग-योजनाको देशकी भाषाओंमें अनुवादित कराने, लोगोंको उसे समझाने और उसमें शासन-सुधारकी जो योजना थी, उसपर लोगोंके हस्ताक्षर करानेका एक बहुत ही सादा और कारगर प्रस्ताव रखा था। यह प्रस्ताव कॉंग्रेसने स्वीकृत किया था। इस प्रस्तावके अनुसार कार्य किये जानेसे देशमें एक व्यापक संगठन बनानेमें कॉंग्रेस-को सफलता भी खूब मिली थी। गांधीजीके सुझावपर ही कॉंग्रेस यह पहला देश-व्यापी संगठन कर सकी थी।

अलीभाइयोंके खिलाफतके प्रश्नको भी गांधीजीने हाथसे न जाने दिया और उसे भी देशका प्रश्न बनानेका प्रयत्न किया। अलीभाइयोंकी रिहाईके लिए गांधीजीने माँग की, लेकिन मंजूर न हुई। तथापि उनके इस प्रयत्नसे कम-से-कम मुस्लिम-लीगको मालूम हो गया कि गांधीजी उसके मित्र और हितैषी हैं। अतः कलकत्ताकी मुस्लिम-लीगने उचित सुझाव देनेके लिए गांधीजीको आमंत्रित किया। गांधीजीने उन्हें अलीभाइयोंको छुड़वानेकी सलाह दी। कलकत्तेके बाद मुस्लिम-लीगवाले गांधीजीको अलीगढ़-कालेजमें भी ले गये और वहाँ गांधीजीने 'मुसल-मानोंको देशके लिए फकीरी लेनेका न्योता दिया।'

वाइसरायका आग्रह

गांधीजीने वाइसरायके आमन्त्रणको अलीभाइयोंके जेलमें ठुँसे रहने, आदि-के कारणही पहिले अस्वीकार किया था। किन्तु बादमें लार्ड चेम्सफ़ोर्डके बहुत आग्रह करनेपर गांधीजीने दिल्लीकी युद्ध-सभामें जाना स्वीकार कर लिया। लेकिन वहाँ पहुँचते ही दीनबन्धु ऐण्डरूज़ने एक और नैतिक प्रश्न गांधीजीके सामने उपस्थित कर दिया। दीनबन्धुने कहा कि इटली और इंगलैंडके बीचमें

हुई एक गुप्त सन्धिकी चर्चा अखबारोंमें आयी है, इसलिए "अगर ऐसी गुप्त सन्धियाँ इंगलैंडने किसी सरकारके साथ की हों, तो फिर आप कैसे इस सभामें शामिल होकर मदद दे सकते हैं ?" गांधीजीके सामने सभामें शामिल होनेमें फिर धर्म-संकट आ खड़ा हुआ। लेकिन लार्ड चेम्सफ़ोर्डके यह विश्वास दिलानेपर कि गुप्त संधिके बारेमें वे स्वयं कुछ नहीं जानते, तथा हो सकता है कि वह केवल अखबारी गप्प हो, और केवल गप्पका विश्वास कर उन्हें आपत्तिके समय सल्तनतका साथ न छोड़ना चाहिए—गांधीजीने सभामें शामिल होना स्वीकार कर लिया।

गांधीजी सभामें शामिल हुए। यह सभा हिन्दुस्तानके लिए कोई विशेष महत्वकी न थी। अगर इसमें कोई विशेषता थी, तो वह यह थी कि इसमें मालवीयजी और गांधीजी सम्मिलित हुए थे। मालवीयजीने इस सभामें भारतीय और विदेशी सैनिकोंके साथ किये जानेवाले असमान व्यवहारोंको मिटा देनेकी अपील की थी। गांधीजीने केवल बड़ोदाके गायकवाड़के सम्राटकी राजभक्ति और सहायताके प्रस्तावके समर्थनमें दो शब्द कहे थे—"मुझे अपनी जिम्मेवारीका पूरा भान है और उस जिम्मेवारीको समझते हुए मैं इस प्रस्तावका समर्थन करता हूँ।" इन शब्दोंमें वैसी कोई विशेष महत्ता न थी, महत्ता थी भाषामें, जिसमें वे शब्द उच्चारित किये गये थे। गांधीजी हिन्दुस्तानीमें बोले थे। यह प्रथम अवसर था कि उस जमानेमें वाइसरायकी सभामें एक व्यक्तिने हिन्दुस्तानीमें बोलनेका साहस किया था।

सभा समाप्त होनेपर गांधीजीको अब रँगरूटोंकी भर्त्तीके लिए प्रयत्न करना पड़ा। गांधीजी खेड़ा पहुँचे और वहाँ भर्त्तीके सम्बन्धमें वल्लभभाई, आदिसे सलाह की। खेड़ामें ही प्रथम रँगरूटोंको भर्त्ती करनेका निश्चय किया गया। लेकिन खेड़ाके किसानोंसे जब इस बारेमें कहा गया तो उन्होंने गांधीजीको उत्तर दिया—आप अहिंसावादी होकर हमें हथियार लेनेको क्यों कहते हैं ? सरकारने हिन्दुस्तानका कौन-सा भला किया है, जिसके लिए आप उसे मदद देनेको कहते

है ?"* गांधीजीको स्पष्ट हो गया कि जिस बृटिश-सरकारसे वे स्वयं न्याय पानेकी सम्भावना करते हैं, जनताका उसपरसे विश्वास उठ गया है।

लेकिन गांधीजी अपने साथियोंको लेकर अपने वायदेके अनुसार भर्ती करनेके लिए सतत प्रयत्नमें लगे ही रहे। गांधीजीने भर्तीके सम्बन्धमें एक पत्रिका निकालकर लोगोंको समझाया कि "बृटिश-राज्यके अनेक कुकृत्योंमेंसे सारी प्रजाको शस्त्र-रहित करनेके कानूनका इतिहास उसका सबसे काला काम गिना जायगा। यह कानून रद कराना हो और शस्त्रोंका उपयोग सीखना हो, तो यह सुवर्ण-योग है। राज्यकी आपत्तिके समयमें मध्यम-वर्ग स्वेच्छासे मदद करेगा, तो अविश्वास दूर होगा और जिन्हें शस्त्र धारण करने हों, वे खुशीसे हथियार रख सकेंगे।"† गांधीजीकी अपील और प्रयत्नके फल-स्वरूप आखिरकार लोग काफी तादादमें भर्ती होने लगे।

गांधीजीको रँगरूट भर्ती करनेमें इतनी मेहनत उठानी पड़ी कि वे सहसा सख्त बीमार पड़ गये और नड़ियाद-आश्रमको लौट आये। यहाँ वे महीनों बीमार ही पड़े रहे। बीमारी एक बार इतनी बढ़ी कि गांधीजीके जीनेकी आशा ही समाप्त हो गयी थी। किन्तु उन्हें संसारमें अभी ईश्वरके बहुत-से कार्योंको पूरा करना था, इसलिए प्राकृतिक उपचारसे ही वे धीरे-धीरे अच्छे होने लगे। गांधीजी-ने मांसके साथ गाय और भैंसके दूध न पीनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। डाक्टर चाहते थे कि शरीर-पोषणके लिए गांधीजी मांस, नहीं तो अण्डा या दूध तो अवश्य ही ले लें। मांस और अण्डेकी सलाह देना तो व्यर्थ ही था; किन्तु डाक्टर और कस्तूरबाईके आग्रहपर गांधीजीने अब बकरीका दूध लेना कबूल कर लिया—यह भी अपनी आत्माको असन्तुष्ट करके। गांधीजीको बकरीका दूध ग्रहण करते समय भी वेदना ही हुई थी, क्योंकि इसे उन्होंने आत्माका हनन समझा था। वे

---

* आत्मकथा—खण्ड २—पृष्ठ ४०६-४०७

†—वही—पृष्ठ ४०७ ४०८

लिखते हैं—"मैं झुका। सत्याग्रहकी लड़ाईके मोहने मुझमें जीवनका लोभ पैदा किया था और मैंने प्रतिज्ञाके अक्षरोंके पालनसे सन्तोष मानकर उसकी आत्माका हनन किया। दूध-घीकी प्रतिज्ञा लेते समय यद्यपि मेरी दृष्टिके सामने गाय-भैंस-का ही विचार था, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूध-मात्रके लिए गिनी जानी चाहिए थी। यह जानते हुए भी बकरीका दूध लेनेको मैं तैयार हो गया। सत्यके पुजारीने सत्याग्रहकी लड़ाईके लिए जीवित रहनेकी इच्छा रखकर अपने सत्यको कलंक लगाया।"*

बीमार पड़ जानेसे भर्त्तीका कार्य भी शिथिल पड़ गया था। इसकी गांधी-जीको चिन्ता बनी ही रहती थी। आश्रममें पीड़ामें पड़े हुए वे कर ही क्या सकते थे? किन्तु इसी बीचमें वल्लभभाई गांधीजीके पास दौड़े हुए यह खबर लाये कि जर्मनी पूरी तरह पराजित हो गया है और कमिश्नरने कहलाया है कि अब रँगरूटों-की भर्त्ती करनेकी जरूरत नहीं है।

यह खबर पाकर गांधीजीको सन्तोष हुआ कि उनके बीमार पड़े रहनेसे अब सरकारके कामका हर्जा न होगा। फलतः रँगरूटोंकी भर्त्तीकी चिन्तासे वे मुक्त हो गये और इससे उन्हें शांति मिली। इस प्रकार दैवयोगसे गांधीजीका धर्म-संकट समाप्त हुआ।

---

*—वही– पृष्ठ ४२२–४२३

यह क्या ?

भारतकी स्थिति

गांधीजी जिस समय चम्पारन और खेड़ाके सत्याग्रहमें संलग्न थे, उन्हीं दिनों भारतमें श्रीमती बेसेण्टके नेतृत्वमें 'होमरूल'-आन्दोलनका प्रचार सर्वत्र जोरोंसे हो रहा था। गांधीजी उस आन्दोलनसे अलग रहे थे और राजेन्द्रबाबू, आदि चम्पारनमें कार्य करनेवाले साथियोंको भी उन्होंने उसमें सम्मिलित होनेसे अलग ही रखा था। राजेन्द्रबाबूने इस प्रसंगपर अपनी आत्म-कथामें लिखा है—"उन दिनों देशमें होमरूल (स्वराज्य) का आन्दोलन खूब चल रहा था। गांधीजी हम लोगोंसे कहा करते कि तुम लोग यह सबसे बड़े होमरूलका काम कर रहे हो। अगर तुम लोग उस आन्दोलनमें शरीक न होगे, तो कोई हर्ज नहीं है।"* गांधीजीके होमरूलमें सम्मिलित न होनेका प्रथम कारण तो यह था कि वे अभी भारतकी स्थिति और राजनीतिसे पूरे परिचित न हुए थे, साथ ही उन्हें अभीतक यह विश्वास था कि बृटिश-सरकार बहुत-कुछ अच्छी सरकार है और ऐसे समय, जबकि वह विपत्तिमें पड़ी है, उससे अपने लिए माँग करना उचित नहीं है। वे समझते थे कि इस विपत्ति-कालमें मदद करके, और अंग्रेज़ी-सरकारके प्रति वफ़ादारी करके उसके हृदयको जीत सकते हैं, जिससे वे स्वयमेव ही हमारे अधिकार और हकोंको हमें देनेको प्रस्तुत हो जायँगे।

होमरूल-आन्दोलन

किन्तु होमरूलके आन्दोलन-कर्त्ताओंका ऐसा विश्वास न था। काँग्रेसके नर्म-दली नेता गोखले और सर फिरोजशाह मेहता दोनों एक ही वर्षमें (१९१५ में)

*—राजेन्द्रप्रसाद—पृष्ठ ९४

सदाके लिए यहाँसे विदा हो गये थे, और कॉंग्रेसमें अब उग्रदली तिलक और श्रीमती बेसेण्टका प्रभाव बढ़ गया था। श्रीमती बेसेण्टने १९१५ से ही होमरूल-आन्दोलनके लिए तेजीसे काम करना शुरू कर दिया था। उस समय कॉंग्रेस एक शिथिल संस्था थी और बेसेण्ट चाहती थीं कि वह एक तेजतर्रार और जीती-जागती संस्था बने। इस अभिप्रायको सामने रखकर उन्होंने सन् १९१६ में लन्दन तथा मद्रासमें सहायक होमरूल-लीगकी स्थापना की। तिलक भी पूनामें बेसेण्टसे पहले ही (२३ अप्रैल, १९१६ में) होमरूल-लीगकी स्थापना कर चुके थे। दोनों नामोंमें गड़बड़ी न हो, इसलिए सन् १९१७ में बेसेण्टने अपनी होम-रूल-लीगका नाम 'ऑल इंडिया-होमरूल-लीग, रख दिया था।

१९१७में बेसेण्टका होमरूल-आन्दोलन काफी तेजी पकड़ चुका था। यह महायुद्धका समय था। अंग्रेज़ी-सरकार इस आन्दोलनके प्रचार और उससे होनेवाली जागृतिसे घबरा उठी, और इसीलिए सरकारने जोरोंसे दमन करना शुरू किया। १५ जून, १९१७ को श्रीमती बेसेण्ट, ओरण्डेल और वाडिया साहब नजरबन्द कर दिये गये। इन नेताओंकी नजरबन्दीसे होमरूल-लीग और भी लोकप्रिय हो गयी। उस समय श्रीजिन्ना भी उसमें सम्मिलित हो गये। सरकार-को डर लग रहा था कि कहीं इस आन्दोलनसे युद्धमें बाधा न आ पड़े, इसलिए वह दमन करके उसे रोक देना चाहती थी।

लेकिन ज्यों-ज्यों दवा की, त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता ही गया। नेताओंको नजर-बन्दीके कारण होमरूल-आन्दोलन विद्युत्-गतिसे दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता गया। देशकी स्थिति बड़ी विकट हो गयी थी। लेकिन इंगलैंडमें अधिकारी-वर्ग बिलकुल झुकनेको तैयार न था।

सत्याग्रहकी तैयारी

बृटिश-सरकारकी दमन-नीतिसे परेशान होकर भारतवर्षने अब सत्याग्रहकी तैयारी की। इसी समय खबर मिली कि शायद कुछ देने-दिलानेको मि० मांटेगु

भारत आ रहे हैं। सत्याग्रहके प्रयत्नमें इससे कुछ शिथिलता आयी। बम्बई, पूना और पंजाबने मांटेगुके आने तक सत्याग्रह स्थगित रखनेकी राय दी। युक्तप्रान्तने सत्याग्रहको "वर्तमान अवस्था"में अनुपयुक्त बतलाया। बिहारने भी कुछ समय रुके रहनेकी सलाह दी। केवल मद्रास प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटीने १४ अगस्त, १९१७को सत्याग्रह करनेका समर्थन करते हुए निम्न-प्रस्ताव पास किया—

"निश्चय हुआ कि मद्रास प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटीकी रायमें, जहाँतक सरकारकी अनुचित और अवैध आज्ञाओंके विरोधसे सम्बन्ध है, जो वैध आन्दोलन और शांतिपूर्ण सार्वजनिक सभाओंको जो सरकारकी दमन-नीति तथा नजरबन्दीकी आज्ञाओंका विरोध करनेके लिए की जायँ, रोकनेके लिए जारी की गयी हैं, सत्याग्रहकी नीतिका अवलम्बन किया जाय।"*

माण्टेगुकी घोषणा

आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए ये तैयारियाँ हो रही थीं कि उसी समय माण्टेगुकी घोषणा प्रकाशित हुई, जिसने भारतकी राजनीतिका रूप ही बदल दिया।

माण्टेगु साहब तब एक नौजवान पुरुष थे। ये इसके पहले चार वर्षतक उप-भारत-मन्त्री रह चुके थे। १९१२में भारतवर्षका वे पूरा दौरा भी कर चुके थे। कैम्ब्रिजमें दिये गये अपने एक भाषण द्वारा वे भारतके प्रति अपनी उदारताका परिचय भी दे चुके थे। उस भाषणमें उन्होंने अंग्रेज़ोंकी 'प्रतिष्ठा' के अभिमानपर आघात करते हुए कहा था—"और जहाँतक प्रतिष्ठाका सम्बन्ध है, ओह भारत, यदि अंग्रेज़ी भाषामें यह शब्द न होता, तो आज तेरा इतिहास कितना सुखद होता! लेकिन वहाँ तो अनुदार दल अपने नग्न रूपमें है। हमलोग हिन्दुस्तानमें, आपलोग इस बातको स्मरण रखिये, बुराईको सुधारनेके लिए नहीं

---

*—काँग्रेसका इतिहास—अनु० हरिभाऊ उपाध्याय-पृष्ठ १२८-१२९

हैं। अन्यायको दूर करनेके लिए नहीं हैं। अनुभवसे लाभ उठाना नहीं चाहते। हम तो अपनी गलतियोंपर ही चलते रहते हैं। हम लोकमतकी पूर्ण अवहेलना करके चलते रहते हैं......हमें चाहिए कि हम न्यायका सहारा लेकर ही उसे अपने अधीन रखें। और ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता जाय, त्यों-त्यों हमें प्रजा-जनकी इच्छासे ही उसपर शासन करना चाहिए।"

माण्टेगुकी इन भावनाओंके कारण भारतवासी उसे योग्य, साहसी और उदार राजनीतिज्ञ समझते थे। अतः १९१७में ओ० चेम्बरलेनकी जगह जब माण्टेगु भारत-मंत्री हुए, तो भारतको आशा बँधी। माण्टेगुने इस आशाको पुष्ट किया। २० अगस्त, १९१७ को कॉमन-सभामें मन्त्रि-मण्डलकी ओरसे मि० माण्टेगुने निम्नलिखित घोषणा की :—

"सम्राट् सरकारकी यह नीति है, और उससे भारत-सरकार पूर्णतः सहमत है कि भारतीय शासनके प्रत्येक विभागमें भारतीयोंका सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणालीका धीरे-धीरे विकास हो, जिससे कि अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्व-शासन-प्रणाली भारतमें स्थापित हो और वह ब्रिटिश-साम्राज्य-के एक अंगके रूपमें रहे। हमने यह तय कर लिया है कि इस दिशामें, जितना शीघ्र हो, ठोस रूपसे कोई कदम आगे बढ़ाया जाय।"*

इस घोषणाने भारतकी राजनैतिक स्थितिको ही पलट दिया। नयी नीतिके अनुसार श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगी १६ सितम्बरको छोड़ दिये गये। छः अक्तूबरको इलाहाबादमें कॉंग्रेस-महासमिति और मुस्लिम-लीगकी सम्मि-लित बैठकने सत्याग्रहके प्रस्तावको वापस ले लिया। सबको आशा हो गयी कि अंग्रेज स्वयं ही स्वराज्य (होमरूल) देनेको तैयार हैं।

इस घोषणाने गांधीजीके मनमें भी सम्भवतः यह आश्वासन उत्पन्न किया

*—वही, पृष्ठ १३०-१३१

होगा कि उनका अंग्रेज़ी शासकों और ब्रिटिश साम्राज्यका भरोसा और विश्वास करना गलत नहीं था।

प्रतिक्रिया

लेकिन गरम-दलवालोंको माण्टेगुकी घोषणापर विश्वास न आता था। उन लोगोंने इस घोषणाका प्रारम्भसे ही विरोध करना शुरू कर दिया था। विरोधियोंमें श्रीमती बेसेण्ट अग्रगण्य थीं। भविष्यके अनुभवोंने बतलाया कि इन्हीं लोगोंका खयाल ठीक था। १९१७की कलकत्ता-काँग्रेसके सभापतिके पदपरसे श्रीमती बेसेण्टने धमकीके साथ स्वशासनकी माँगको पेश करते हुए ब्रिटिश-सरकारसे कहा था—"भारतको ब्रिटिश-उपनिवेशोंके समान स्वराज्य दे दिया जाय। वह भी १९२३ तक या अधिक-से-अधिक १९२८ तक।"

इसी समय माण्टेगु भारत-भ्रमणके लिए यहाँ आ पहुँचे। माण्टेगु भारतकी स्थितिका स्वयं अध्ययन करना चाहते थे। नवम्बर, १९१७ से मई, १९१८ तक वे देशका भ्रमण करते रहे। माण्टेगु और चेम्सफ़ोर्डने भारतके सम्बन्धमें एक रिपोर्ट तैयार की। मईमें माण्टेगु इंगलैंड लौट गये। जुलाई, १९१८में माण्टेगु-चेम्सफ़ोर्ड-रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्टमें भारतीयोंको स्वशासन तथा कई एक सुधारोंको देनेकी सिफारिशें की गयी थीं।

भारत इस 'रिपोर्ट' को पढ़कर आशान्वित हो उठा था।

× × ×

भारतका दान

भारतमें आशा जाग उठी थी, लेकिन यूरोपमें उसी समय जर्मनीके फ्रांसपर झपटनेके कारण अंग्रेज़ दहल उठे थे। अंग्रेज़ोंको इसलिए भारतसे अधिकाधिक आर्थिक एवं मानवीय सहायताकी आवश्यकता हो गयी थी। ब्रिटिश-सरकारने मददकी पुकार की। उस पुकारमें निस्सहायता झलकती थी।

भारतने भी ब्रिटिश-सरकारको इस विपत्तिमें फँसा देखकर फिरसे धन और जनसे विपुल सहायता पहुँचायी। भारतीय सभाने पुनः ४५, ०००, ००० पौंड स्टर्लिंग युद्धकोषमें दिये और अंग्रेज़ोंकी विपत्तिमें काफ़ी हमदर्दी दिखलायी।* वास्तवमें इन्हीं कारणोंसे ब्रिटिश-सरकारने भारतको बहुत-कुछ देनेकी आशा बँधायी थी।

गांधीजीकी आशाएँ

गांधीजीने भी सुधारोंके मिलने, महासभा और मुस्लिम-लीगकी माँगोंके पूरे होने, होमरूल प्राप्त होने तथा अन्य कई प्रकारकी भविष्यमें पूर्ण होनेवाली आशाओंके बलपर ही आदमियोंकी भर्ती करके काफी मदद पहुँचायी थी।

गांधीजीने वाइसरायको अपने पत्रमें स्पष्ट लिखा था—"हमारी मददकी नींव भविष्यकी आशापर स्थित है", "और उन आशाओंको पूरा करनेमें" गांधीजीने लिखा था "साम्राज्यकी सलामती" भी निर्भर करती है; किन्तु यदि वे आशाएँ निर्मूल साबित हुईं और "इसमें हमें निराश होना पड़ा, तो साम्राज्यके बारेमें आजतक हमारी जो मान्यता है, वह केवल भ्रम गिना जायगा।"†

भ्रम

निःसन्देह वह शुद्ध 'भ्रम' ही सिद्ध हुआ। युद्ध खतम हो गया था। १९१९ का जमाना था। भारतीय आशा लगाये हुए बैठे थे कि इसी समयमें रौलेट-कमेटी-को रिपोर्ट गांधीजीके हाथ लगी। उस 'भयंकर रिपोर्ट' को देखते ही गांधीजी चौंक पड़े। वह सोच रहे थे—यह क्या?

———

*—India—Chirol—P. 165

† आत्मकथा—खण्ड २, पृष्ठ ४७०-४७७

अध्याय—७

आग भड़की

आशा

यूरोपियन महायुद्धके अन्त होनेपर लोग विश्वासके साथ सोच रहे थे कि अब शासन-सुधार होंगे, जिनसे स्वराज्यके उन्हें कुछ अधिकार मिलेंगे और उनके द्वारा उन्हें उन्नतिके नये रास्ते प्राप्त होंगे। काँग्रेस और भारतवासी सोच रहे थे कि अंग्रेज़ी पार्लियामेण्ट शीघ्र ही भारतके लिए पूर्ण उत्तरदायी शासनकी घोषणा करेगी।

भारत जब इस प्रकार आशा लगाये था, उसी समय फरवरी, १९१९ में उन्हें 'रौलट-बिल'के दर्शन हुए। रौलट-बिलके द्वारा सरकारने ऐसे कानून बनाये थे, जिनमें कानूनी कार्यवाही किये बिना भी गिरफ्तार करने और सजा देनेकी धाराएँ रखी गयी थीं। रौलट-बिलका संक्षेपमें अर्थ था—'न वकील, न अपील और न दलील।'

गांधीजीकी प्रतिक्रिया

रौलट-बिलके प्रकाशित होनेके समय गांधीजी बीमार ही थे। लेकिन बीमार-अवस्थामें ही गांधीजीने अपने साथियोंसे बिलकी चर्चा करते हुए कहा कि यदि रौलट-कमेटीकी सिफारिशोंके अनुसार कानून बनाया गया, तो हमें सत्याग्रह करना होगा। गांधीजी इतने उत्तेजित हो उठे थे कि स्वस्थ होते ही यदि किसीने साथ न दिया, तो वे अकेले ही जूझनेकी सोच रहे थे। इसी हालतमें गांधीजीने अपने सहयोगियोंकी एक सभा बुलायी, जिसमें वल्लभभाई, श्रीमती सरोजनी नायडू,

मि० हार्निमेन, उमर सुबानी आदि शामिल हुए। इस सभाने रौलट-बिलके विरोधमें सत्याग्रह करनेका निश्चय किया। तदनुसार एक सत्याग्रह-सभा बनायी गयी और उसका केन्द्र बम्बईमें रखा गया। गांधीजी इस सभाके अध्यक्ष हुए।

धारा-सभामें विरोध

फरवरीमें रौलट-बिल धारा-सभामें पेश हुआ। गांधीजी भी इस न्याय-विहीन बिलकी चर्चा सुननेके लिए धारा-सभामें पहुँचे। गांधीजीने सोचा था कि वाइसरायसे कह-सुनकर इस बिलको पास होनेसे रुकवा देंगे, किन्तु उनके सारे अनुनय-विनय निष्फल गये। सरकार रौलट-ऐक्टको पास करनेका पक्का इरादा कर चुकी थी। सुप्रीम कौंसिलमें तो वह केवल दिखावेके लिए रखा गया था। अतः बिलके पेश होनेपर जब श्रीनिवास शास्त्रीने अपने अद्भुत भाषण-शक्तिके द्वारा उस बिलका घोर विरोध किया और चेतावनी दी कि ऐसा होनेसे आग भड़क उठेगी, तो सरकारने उन उद्गारोंपर कोई ध्यान ही न दिया, और बिल पास हो गया।

गांधीजीका स्वप्न

१८ मार्च, १९१९ को बिल पास हो गया। गांधीजी उस समय देशका दौरा करते हुए मद्रासमें थे। जिस दिन इस बिलके पास होनेकी खबर मिली, उसी रातको गांधीजीको स्वप्न दिखा। सुबह होते ही उन्होंने राजगोपालाचार्यको बुलाकर कहा—"मुझे रातको स्वप्नमें विचार आया कि इस कानूनके प्रतिरोधमें हमें सारे देशको हड़ताल करनेके लिए कहना चाहिए...।"

संसारमें स्वप्न कौन नहीं देखता? किन्तु स्वप्न देखना और उसे कार्यान्वित करना दोनोंमें महान अन्तर है। स्वप्न देखते तो सभी हैं, किन्तु कार्यरूपमें परिणत कोई ही कर पाते हैं। गांधीजी उन्हीं विरलोंमेंसे हैं, जो स्वप्नोंको कार्यान्वित किया करते हैं। कहाँसे उनमें इस शक्तिका विकास हुआ, इसका उत्तर १९१९की सरकारी रिपोर्टमें मिल जायगा। इस रिपोर्टमें गांधीजीके बारेमें कहा गया था—

"मि० गांधी अपनी निःस्वार्थता और ऊँचे आदर्शोंके कारण आम तौर-पर टॉल्सटॉयके अनुयायी समझे जाते हैं। भारतीयोंके लिए दक्षिण अफ्रिकामें उन्होंने जो लड़ाई लड़ी, उसके कारण उन्हें वे सब मान-गौरव प्राप्त हैं, जो कि पूर्वी देशोंमें एक धार्मिक और त्यागी नेताको प्राप्त होता है। और इनके सम्बन्धमें एक खास बात यह है कि इनके अनुयायी किसी सम्प्रदाय-विशेषके नहीं हैं। जबसे वह अहमदाबादमें रहने लगे हैं, बराबर विभिन्न प्रकारकी समाज-सेवाओंमें लगे हुए हैं।

किसी भी व्यक्ति या जातिकी रक्षाके लिए, जिन्हें कि वह समझते हैं कि उसपर अत्याचार हो रहा है, सदैव अपने हाथमें गदा लिये तैयार रहनेके कारण वह अपने देशवासियोंके और भी प्रिय हो गये हैं।......उन्हें लोग जिस आदर-भावसे देखते हैं, उसके लिए 'पूजा' शब्दका प्रयोग करना किसी बड़े शब्दको प्रयोग करना नहीं कहा जा सकता। भौतिक बलकी अपेक्षा उनका विश्वास आत्मबलमें अधिक है। इसीलिए गांधीजीका यह विश्वास है कि उन्हें इस शक्ति-का प्रयोग सत्याग्रहके रूपमें रौलट-ऐक्टके खिलाफ करना चाहिए, जिसे कि उन्होंने दक्षिण-अफ्रिकामें सफलतापूर्वक आजमाया था।"*

अतः गांधीजीने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए देशका दौरा किया, यद्यपि उस समय वे काफी अस्वस्थ थे। सर्वत्र गांधीजीका स्वागत हुआ और सारे देशने उनके द्वारा घोपित कार्यक्रमके प्रतिज्ञा-पत्रको अपनाया। देशने गांधीजीके आदेशानुसार हड़ताल करने, रौलट-ऐक्टको न मानने और उसके विरुद्ध तबतक सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नेकी प्रतिज्ञा की, जबतक कि रौलट-ऐक्टरूपी काला कानून सरकार उठा न ले।

गांधीजीने हड़तालकी तारीख ३० मार्च नियत की। किन्तु बादमें यह तारीख बदलकर छः अप्रैल कर दी गयी। देशने सर्वत्र गांधीजीके आदेशका पूर्णरूप

---

* कॉंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ १५१

और तेजीसे पालन किया। दिल्लीको तारीख बदले जानेकी सूचना समयपर न मिल पायी थी, अतः वहाँ ३० मार्चको ही हड़ताल मना दी गयी। दिल्लीकी यह हड़ताल बड़ी ही सफलता-पूर्ण थी। हड़तालका प्रारम्भ 'व्रत' के साथ हुआ था। पशुबलके विश्वासी अफसरों और राजनीतिज्ञोंको यह 'व्रत' हास्यास्पद मालूम हुआ। उन्हें मालूम न था कि गांधीजी आत्मबलसे लड़नेवाले हैं और इसके लिए 'शुद्ध आत्मा' की आवश्यकता होती है। अतएव आत्मशुद्धिके लिए किये गये इस व्रतका अपनी अज्ञानताके कारण नये सुधारकोंने मजाक उड़ाया था। "आत्मशुद्धिकी बात ही राजनैतिक व्यक्तियोंके कानोंमें खटकती थी। वे मजाकमें पूछते थे कि पवित्रता और राजनीतिमें क्या सम्बन्ध है?"

जिस दिन दिल्लीमें हड़ताल हुई, बस, उसी समयसे देशभरमें आग भड़कनी शुरू हो गयी थी। इस पूर्ण हड़तालसे सरकार भी दहल उठी। उसने उसे दबानेके लिए पशुबलका प्रयोग किया। दमन शुरू हुआ। गांधीजीके नेतृत्वमें यह पहला भारत-व्यापी आन्दोलन था। पशुबल आत्मबलको कैसे दबाये—सरकारको यही न सूझ पड़ता था। दिल्लीके आन्दोलनका नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियोंने गोली मारनेकी धमकी दी। किन्तु शाश्वत आत्माके विश्वासी स्वामीजीने इसपर अपनी छाती खोल दी और कहा—"लो, मारो गोली।" यह सुनते ही गोरे हक्के-बक्के हो गये। वे सोचते थे, ये कैसे लड़ाकू हैं! गोरोंकी गोली बन्दूकमें ही रह गयी। सरकार सोचमें थी कि ऐसे अहिंसकोंसे कैसे लड़ा जाय।

६ अप्रैलको तो देश-भरमें ही पूर्ण हड़ताल हो गयी। सारा देश उत्तेजित हो उठा था। हिन्दू और मुसलमान एक होकर विरोधमें खड़े हो गये थे। गांधीजीके नेतृत्वमें इस समय सारा भारतवर्ष भीषण-से-भीषण आग और पानीमें कूदनेको तैयार हो उठा था। देशव्यापी आन्दोलनके इस प्रारम्भने भारतीय इतिहासमें एक नवीन युग ला दिया। इसीलिए १९१९ के अप्रैल माससे हमारे राष्ट्रीय

इतिहासमें एक नये युगका श्रीगणेश माना जाता है, जिसे विश्वके इतिहासकार गांधी-युग कहते हैं।

गांधीजीकी पुकारसे बम्बई भी विद्रोही हो उठा था। बम्बईकी हड़ताल सम्पूर्ण थी।

पंजाबमें १०-४-१९१९ को अमृतसरके जिला-मजिस्ट्रेटने वहाँके दो काँग्रेसी नेताओं—डा० किचलू और डा० सत्यपालको अपने घर बुलाया। वहाँसे चुपचाप किसी अज्ञात स्थानको भेज दिया। सारा पंजाब इस खबरको सुनकर उत्तेजित हो उठा। लोगोंकी भीड़ मजिस्ट्रेटके घरकी ओर बढ़ चली। मजिस्ट्रेट आतंकित हो उठा। उसने फौजी सिपाहियों द्वारा मार्गमें ही भीड़को रुकवा दिया। भीड़ तथा सिपाहियोंमें तनातनी हुई और फौजने भीड़पर गोली चला दी, जिसके फलस्वरूप एक या दोकी मृत्यु भी हुई और अनेक लोग घायल हुए। भीड़ अब शहरको लौटी। मरे हुए और घायल लोगोंका शहरमें जुलूस निकला। भीड़ने उत्तेजनामें आकर रास्तेमें नैशनल बैंककी इमारत जला दी और उसके मैनेजरको मार डाला। भीड़के हाथों लगभग पाँच अंग्रेज़ मार डाले गये। लोगोंने रेलवेका गोदाम तथा सार्वजनिक इमारतोंको भी जलाकर खाक कर दिया। अमृतसरकी एक सड़कपर एक अंग्रेज़ स्त्री मिस शेरवुडको भी लोगोंने साइकिलसे ढकेल दिया। सरकारको चाहिए भी यही था, उन्होंने पंजाबको रौंदना शुरू कर दिया।

अमृतसरकी तरह गुजरानवाला और कसूरमें भी इसी प्रकार आग भड़की। कलकत्तेमें भी भीषण हलचलें हुईं। सार यह कि सारे देशमें ही यह आग भड़क उठी थी।

पंजाबकी दुर्घटनाओंकी बात सुनकर और स्वामी श्रद्धानन्द तथा डा० सत्यपालके बुलावेपर ७ अप्रैलको गांधीजी बम्बईसे दिल्ली और पंजाबके लिए रवाना हुए। साथमें स्व० महादेव देसाई भी थे। पर गांधीजीको पलवल स्टेशन दिल्लीके पासके समीप ही रोक दिया गया। उनसे कहा गया—'तुम्हारे पंजाब जानेसे

अशान्ति बढ़नेका भय है, इसलिए पंजाबकी सीमामें प्रवेश न करो।' गांधीजीने हुक्म माननेसे इन्कार किया और वे गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें जबरदस्ती ट्रेनमें बैठाकर १० अप्रैलको स्वतन्त्र व्यक्तिके रूपमें बम्बई उतार दिया गया।

गांधीजीकी गिरफ्तारीसे अहमदाबाद और बम्बईमें बहुत भयंकर आग भड़की। अहमदाबादमें कई उपद्रव हुए, जिनमें कुछ अंग्रेज़ और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जानसे मारे गये।

बम्बई भी गांधीजीकी गिरफ्तारीसे अधीर और उत्तेजित हो उठी थी। लोग कुछ करनेको बेताब हो रहे थे। बम्बई पहुँचते ही जब गांधीजीको इस उत्तेजनाकी खबर मिली, तो वे शान्ति-स्थापनाके लिए घरसे निकल पड़े। गांधीजीको अपने बीचमें पाकर सारी बम्बईकी जनता—हिन्दू और मुसलमान—हर्षोन्मत्त होकर 'वन्देमातरम्' और 'अल्लाहो अकबर' की आवाजसे आसमानको गुंजाने लगी। दंगे और अशान्तिकी स्थिति काबूमें आ गयी।

जलियानवाला बाग

इस देशव्यापी आन्दोलनमें जो सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण घटना घटी, वह अमृतसरके जलियानवाला बागकी चिरस्मरणीय और दुःखपूर्ण घटना थी। यह घटना गांधीजीके बम्बई भेज दिये जानेके बाद हुई थी। अर्थात् कहा जा सकता है कि यदि गांधीजी पंजाब पहुँच गये होते, तो वैसी घटना घट ही नहीं सकती थी। किन्तु रौलट-ऐक्टकी तरह अमृतसरके काण्डके लिए भी, मालूम होता है, सरकार पहिलेसे ही योजना बनाकर बैठी थी।

लाहौर और अमृतसरमें सरकारने १५ अप्रैलसे फौजी-कानूनकी घोषणा कर दीथी। किन्तु व्यावहारिक रूपमें १० अप्रैलसे ही फौजी-कानून लागू हो चुका था। १३ अप्रैल (वर्ष-प्रतिपदा) को, जो कि हिन्दुओंके संवत्सरका दिन था, अमृतसरके बीच स्थित जलियानवाला बागमें एक सार्वजनिक सभाकी घोषणा हुई।

यह बाग शहरके मध्यमें है और चारों ओरसे शहरके मकानोंसे घिरा हुआ है। भीतर जानेके लिए उसमें केवल एक सँकरा रास्ता है।

१३ अप्रैलको घोषणाके अनुसार इस बागमें एक महती सभा हुई। लगभग २०,००० जनता उस सभामें आयी थी। सभामें अनेक स्त्री और बच्चे भी मौजूद थे। सारी सभाके लोग निःशस्त्र थे। जनताकी ओरसे किसी प्रकारकी हिंसाका भय न था, और न यह सभा किसी राजनैतिक उद्देश्यसे ही हो रही थी। नव-वर्षका वह एक उत्सव था।* किसीसे यह बात छिपी भी नहीं थी, क्योंकि सभाका ऐलान खुलेआम हुआ था।

पंजाबमें इस समय गर्वनर ओ' डोयर और जनरल डायर ये दो अति-अंग्रेज़ अधिकारी थे। इन दोनोंके नाम अंग्रेज़ राष्ट्रके इतिहासमें खूनके दो काले दागकी तरह चिरस्थायी रहेंगे। ओ' डोयरकी सम्मति और जनरल डायरके अधिनेतृत्वमें जो जुल्म जलियानवाला बागमें एकत्र निरीह जनतापर ढाया गया, उसका ध्यान आते ही कलम हाथसे छूटने लगती है।

जनरल डायरके नारकीय अत्याचारोंकी कहानीका 'काँग्रेस-इतिहास' के मान्य लेखक पट्टाभि सीतारम्मैयाने इस प्रकार वर्णन किया है—"......जनरल डायरने उस (बाग) में प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र एक सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे, उस समय हंसराज नामका एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायरने घुसते हीं गोली चलानेका हुक्म दे दिया—जैसा कि हन्टर-कमीशनके सामने अपनी गवाहीमें उसने कहा था—कि उसने लोगोंको तितर-बितर होनेकी आज्ञा दी और बस, फिर गोली चलानेका हुक्म दे दिया। लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि तितर-बितर हो जानेके हुक्म देनेके तीन मिनट बाद ही उसने गोली चलवा दी थी। यह बात तो स्पष्ट ही है कि बीस हजार आदमी दो-तीन मिनटमें तितर-बितर नहीं हो सकते

* Out of Dust by Karaka, P. 87

थे, और वह भी विशेषकर एक बहुत ही तंग दरवाजेमें होकर। गोली तबतक चलती रही जबतक कि सारे कारतूस खतम नहीं हो गये। कुल सोलह सौ फायर किये गये थे। सरकारके स्वयं अपने बयानके मुताबिक ४०० मरे और घायलोंकी संख्या १,००० और २,००० के बीचमें थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजोंसे चलवायी गयी थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियोंको लगा दिया गया था। ये सब-के-सब बागमें एक ऊँचे स्थानपर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दुःखद बात तो वास्तवमें यह थी कि गोली चलानेके बाद मृतकोंको और जो लोग सख्त घायल हो गये थे, उन्हें सारी रात वहीं पड़ा रहने दिया गया। वहाँ उन्हें रात-भर न तो पानी ही पीनेको मिला और न डाक्टरी या कोई अन्य सहायता ही। डायरका कहना था, जैसा कि बादको उसने प्रकट किया, "चूँकि शहर फौजके कब्जेमें दे दिया गया था और इस बातकी डौंड़ी पिटवा दी गयी थी कि कोई भी सभा करनेकी इजाजत नहीं दी जायगी, तो भी लोगोंने उसकी अवहेलना की, इसलिए उन्हें एक सबक सिखा देना चाहा, ताकि वे उसकी खिल्ली न उड़ा सकें। आगे चलकर उसने कहा कि मैंने और भी गोली चलायी होती, अगर मेरे पास कारतूस होते। मैंने सोलह सौ बार ही गोली चलवायी, क्योंकि मेरे पास कारतूस खतम हो गये थे।" आगे चलकर उसने कहा—"मैं तो एक फौजी गाड़ी (आरमर्ड कार) भी ले गया था, लेकिन वहाँ जाकर देखा कि वह बागके भीतर घुस ही नहीं सकती थी। इसलिए उसे बाहर छोड़ दिया था।"*

जनरल डायर इतना ही करके चुप न हो गया था। उसने लोगोंको सताने और पद-दलित करनेके लिए कई और अमानुषिक कृत्य भी किये। उसने अमृतसर-में नलोंका पानी रुकवा दिया, और बिजलीके तार कटवा दिये। खुलेआम लोगोंको बेत लगवाये। जिस गलीमें मिस शेरवुडको साइकिलसे गिराया गया था, उस गलीमें हरएक आदमीको पेटके बल रेंगकर जानेकी आज्ञा निकाली। उस गली-

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ १५५

में रहनेवाले सभीको पेटके बल जाना और आना पड़ता था, यद्यपि उस गलीके भले आदमियोंने भीड़से मिस शेरवुडकी रक्षा ही की थी। रेलवे स्टेशनोंपर तीसरे दर्जेके टिकट बन्द कर दिये गये थे। पटरियोंपर दो आदमियोंसे अधिक एक साथ चलनेकी मनाही कर दी गयी थी। सब लोगोंकी साइकिलें जब्त कर ली गयी थीं। हड़तालियोंसे जबर्दस्ती दूकानें खुलवायी गयीं। लोगोंको नंगा करके बेंत लगानेके लिए आम मार्गपर एक चबूतरा बनवाया गया था और शहरके अनेक भागोंमें बेंत लगवानेके लिए टिकटिकियाँ लगवा दी गयी थीं। और डायरके इन राक्षसी कृत्योंको सराहते हुए ओ' डोयरने तार द्वारा सन्देश भेजा था—"तुम्हारा कार्य ठीक था। लेफ्टि० गवर्नर सराहना करते हैं।"*

नवजाग्रत जनतासे अपने अधिकारोंके लिए गौरांग प्रभुओंके विरुद्ध उठनेके प्रयत्नका यह खुला 'प्रतिशोध' लिया गया था। अंग्रेज़ी सरकार काली जनताको हमेशाके लिए सबक सिखा देना चाहती थी कि निरंकुश शासनके विरुद्ध उठनेका परिणाम क्या होता है। अंग्रेज़ो सरकारने मार्शल-लॉ कमीशनके सामने २९८ आदमियोंपर इसीलिए मुकदमे चलाये थे, जिनमेंसे २१८ आदमियोंको सजा दी गयी। ५१ को फाँसीकी सजा, ४६ को आजन्म कालापानी, २ को १०-१० वर्षकी सजा, ७९ को ७-७ वर्षकी सजा, १० को ५-५ की, १३ को ३-३ की और ११ को थोड़ी-थोड़ी मीआदकी सजाएँ दी गयीं। इनके अलावा दूसरे फौजी अफसरोंने भी ५० व्यक्तियोंको सजाएँ दीं और १४५ आदमियोंको मार्शल-लॉके अनुसार मुल्की मजिस्ट्रेटोंने सजाएँ दीं।

अपने इन राक्षसी कृत्योंको जनरल डायर किस दृष्टिसे देखता था? यह हन्टर-कमीशनके आगे दिये गये उसके धृष्टतापूर्ण बयानसे स्पष्ट हो जाता है।

---

* इसी गवर्नर ओ' डोयरको सन् १९३९ में लन्दनके कैक्सटन-हालमें उधमसिंह नामक एक पंजाबीने गोलीसे उड़ाकर जलियानवाला बागका बदला लिया था।

कमीशनके एक सदस्य जस्टिन रेंकिन (कलकत्ता-हाईकोर्टके जज) ने डायरसे पूछा—"क्षमा कीजिएगा जनरल, यदि मैं आपसे यह पूछूँ कि आपने जो कुछ किया, क्या वह एक प्रकारका भय-प्रदर्शन था ?" उद्धत डायरने उत्तर दिया—"नहीं, ऐसा नहीं था। मुझे एक भयानक कर्त्तव्यका पालन करना पड़ा। मेरा खयाल है कि मैंने दयाका कार्य किया था। मैंने सोचा कि मैं खूब अच्छी तरह गोली चलाऊँ और इतने जोरके साथ चलाऊँ कि मुझे या अन्य किसीको फिर कभी गोली न चलानी पड़े। मेरा खयाल है कि यह सम्भव है कि बिना गोली चलाये हुए भी मैं भीड़को तितर-बितर कर देता। लेकिन वे फिर वापिस आ जाते और हँसी उड़ाते और मुझे खुद मूर्ख बनना पड़ता।"

डायरके उत्तरसे स्पष्ट है कि यद्यपि वह भीड को बिना गोली चलाये तितर-बितर कर सकता था, किन्तु तब भी उसने गोली सिर्फ इसलिए चलायी कि उसका उठते हुए हिन्दुस्तानियोंको ऐसा बुरी तरहसे दबा देना था कि भविष्यमें फिर कभी वे सिर उठानेका नामतक न ले सकें। यही भयानक कर्तव्य उसके सामने था—अंग्रेजी हुकूमतकी जड़ोंको मजबूत करनेके लिए उसने जनताका रुधिर बहाया, लेकिन उसे और उसके हिमायती ओ' डोयरको तब शायद यह न मालूम था कि यह 'खून' ब्रिटिश-साम्राज्यशाहीकी जड़ोंको पोपनेके बजाय घुन-का काम देगा। असलमें प्रतिशोधने अंग्रेजी सरकारकी आँखोंको मूँद दिया था। वे खूनके प्यासे हो रहे थे, इसीलिए उन्होंने अकारण खून बहाया था।

किन्तु रौलट-एक्टके विरोधमें होनेवाले इस देशव्यापी आन्दोलनने अंग्रेजों के हृदयमें अपने अस्तित्वके प्रति एक आशंका अवश्य उत्पन्न कर दी थी। सन् १८५७के बाद ऐसे उपद्रव हिन्दुस्तानमें पहले कभी न हुए थे। स्पष्ट था कि निरंकुश अंग्रेज़-शाहीके पाये इस आघातने हिला दिये थे।

अन्य स्थानोंमें जुल्म

जलियानवाला बागके अलावा पञ्जाबके अन्यान्य स्थानों—लाहौर, गुजरान-वाला, कसूर, शेखपुरा, रावलपिण्डी आदिमें भी अंग्रेज़ी-सरकारने जुल्म ढाये।

इन स्थानोंमें कर्नल जोनसन, बोसवर्थ स्मिथ और कर्नल ओब्रायन तथा अन्य अंग्रेज़-अधिकारियोंने ऐसे बर्बरतापूर्ण और अमानुषिक अत्याचार किये थे, जिनकी कथा सुनकर खून उबलने लगता है।*

पंजाबकी दुघर्टनाओंके बारेमें एक मार्केकी बात यह रही कि वहाँकी कोई भी खबर बाहर नहीं जाने दी जाती थी। काँग्रेस-कमेटीको भी वहाँकी दुर्घटनाओं-का जुलाईसे पहिले कोई समाचार न मिल सका था। लोगोंको तो एक साल बाद ही इन अत्याचारोंका पता लग सका था।

पञ्जाबके बाहर उपद्रव

पंजाबके अलावा देशके अन्यान्य स्थानों—कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, वीरमगाँव, नड़ियाद आदिमें भी सर्वत्र उपद्रव हुए। बम्बईकी अशान्ति तो गांधीजीके पहुँचनेपर शान्त हो गयी थी। चौपाटीमें शान्ति और सत्याग्रहकी मर्यादाके बारेमें समझाते हुए गांधीजीने लोगोंसे कहा था—"सत्याग्रह सच्चेका खेल है। लोग अगर शान्तिका पालन न करें, तो मुझसे सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नी पार नहीं लगेगी।†

बम्बईमें शान्ति स्थापित करनेके बाद तुरन्त ही गांधीजीको अहमदाबादकी अशान्तिकी खबर मिली। अहमदाबादके मजदूरोंमें यह अफवाह फैली थी कि अनसूयाबहन कैद कर ली गयी हैं। यह सुनकर मजदूर पागल हो उठे थे और उन्होंने सरकारके विरुद्ध एक तूफान खड़ा कर दिया था। इस तूफानमें एक सिपाही मार डाला गया था। इसी प्रकार अन्य जगहोंमें भी उपद्रव हुए थे। नड़ियादमें लोगोंने रेलकी पटरीको उखाड़ डालनेका प्रयत्न किया था। वीरमगाँवमें भी खून हुआ था। अतः इन खबरोंसे चिन्तित होकर गांधीजी अहमदाबाद पहुँचे। उस समय वहाँ मार्शल-लॉ जारी था और लोग भयातुर हो रहे थे।

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ १५६

† आत्मकथा, खण्ड २—पृष्ठ ४४४-४४५

लोगोंको शान्त करनेके लिए १३अप्रैलको अहमदाबादमें साबरमती-आश्रममें गांधीजीने एक सभा की और उसमें लोगोंको उनके हिंसक कार्योंके दोष बतलाये। हिंसाके प्रायश्चित्त-रूपमें गांधीजीने तीन दिनतक उपवास भी किया और लोगोंको भी एक दिनका उपवास करनेकी सलाह दी। जो खून-आदि में शामिल थे, उन्हें भी गांधीजीने अपना अपराध स्वीकार करनेकी सलाह दी। सरकारको भी गांधीजीने लोगोंके गुनाह माफ करनेकी सलाह दी। लेकिन प्रजा और राजा दोनोंमेंसे किसीने भी गांधीजीकी सलाह न मानी।

गांधीजीको मालूम हो गया कि अभी लोग उनके सत्याग्रह और अहिंसाके मर्मको नहीं समझ सके हैं। उन्हें लगा कि लोगोंमें उस शांति और सहिष्णुताका नितान्त अभाव है,जो 'सत्याग्रह'को चलानेके लिए बहुत ही जरूरी चीजें हैं।

अहमदाबादके बाद गांधीजी नड़ियाद गये। वहाँ भी उन्हें जनतामें सत्याग्रहके आवश्यक गुण 'शान्ति' का अभाव खटका। गांधीजीको अब ठीक तरहसे पता चल गया कि उनके देशवासियोंमें अभी सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नेके सच्चे गुण पैदा नहीं हो सके हैं और इसलिए 'सत्याग्रह' का निमन्त्रण देकर उन्होंने 'हिमालय-जैसी महान् भूल' की है।

अतः १८ अप्रैलको गांधीजीने 'सत्याग्रह' की लड़ाईको बन्द करनेकी घोषणा कर दी। उन्होंने निश्चय किया कि सत्याग्रह करनेके पहिले लोगोंको सत्याग्रह और सविनय आज्ञा-भंगकी शिक्षा दी जानी आवश्यक है। इन्हीं विचारोंको लेकर गांधीजी बम्बई पहुँचे और सत्याग्रह-सभाके द्वारा उन्होंने स्वयंसेवकोंका एक दल खड़ा किया, जिनका कार्य लोगोंको सविनय-अवज्ञाकी शिक्षा देना था। इसके साथ ही सत्याग्रहकी शिक्षा देनेके लिए गांधीजीने पत्रिकाएँ—यंगइंडिया, नवजीवन और क्रॉनिकल—भी प्रकाशित कीं।

इस प्रकार अंग्रेज़ोंकी लगायी जन-उत्तेजनाकी आगको बुझानेके प्रयत्नमें गांधीजी जुट गये थे।

———

अध्याय—८

सत्य और अहिंसा

सन् १९१९ से लेकर आगेके दो-तीन साल गांधीजीके जीवन और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनके इतिहासमें तूफानी साल थे। ये तूफानके वर्ष हमारे राष्ट्रीय उत्थानमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण साबित हुए हैं। स्वराज्य और अधिकारोंके लिए असहयोग और बहिष्कारका प्रथम प्रयोग इसी समयसे प्रारम्भ हुआ था। हिन्दू-मुस्लिम-एकता और हरिजन-उद्धारके प्रयत्न, स्वदेशी और खादीका सूत्रपात तथा राष्ट्रीय शिक्षणालयोंकी स्थापनाका श्रीगणेश भी इसी समय जोरोंसे किया गया था। इसी समयमे गांधीजीका पूर्ण सहयोग राष्ट्रीय महासभाको प्राप्त हुआ और काँग्रेस एवं गांधीजी तभीसे एक-दूसरेके पर्यायवाची बन गये। इन सब कारणोंसे हम कह सकते हैं कि उक्त दो-तीन वर्ष ऐसे थे, जिनमें हमारे इतिहासके एक उज्ज्वलतम अध्यायका समारम्भ हुआ था।

गांधीजीकी व्याकुलता

पंजाबके अत्याचारों और अन्यायोंके समाचारोंसे गांधीजीका हृदय क्षत-विक्षत हो गया था। वे चाहते थे कि जल्दी-से-जल्दी वहाँ पहुँचकर खुद स्थितिका अध्ययन करें। उन्होंने वाइसरायसे इसकी आज्ञा माँगी। लेकिन वहाँ सुनवायी न हो सकी। गांधीजी निषेध-आज्ञाका पालन न करते, किन्तु उन्होंने यह सोचकर ही उस आज्ञा-की अवहेलना की थी कि ऐसे समय, जबकि पंजाबमें चालू ब्रिटिश नादिरशाहीके कारण जनता अशान्त हो रही है, गांधीजी द्वारा कानून-भंग जन-उत्तेजनाकी आगमें घीका काम करेगा।

हन्टर-कमेटीकी जाँच हो जानेके बाद वाइसरायने १७ अक्तूबर, १९१९ के पश्चात् गांधीजीको पंजाब-भ्रमण करनेकी इजाजत दे दी थी। तदनुसार गांधीजी पंजाबके लिए चल पड़े थे। गांधीजीको शायद तबतक यह न मालूम था कि वे जनताके हृदय-सम्राट बन चुके हैं। जनताने उन्हें अपने एक महान् नेता और त्राताके रूपमें हृदय-सिंहासनपर बैठा लिया है। अतएव लाहौर स्टेशनपर अपार जनताकी भीड़को देखकर गांधीजीको आश्चर्य हुआ। लोग गाधीजीको अपने बीचमें देखकर हर्षसे पागल हो उठे थे।

लाहौर पहुँचनेपर गांधीजीकी प्रथम बार पंडित मोतीलालजी नेहरूसे भेंट हुई। इस समय श्रीऐन्ड्रूज, महामना पं० मालवीयजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी भी लाहौरमें थे। गांधीजी तथा अन्य नेताओंने मिलकर यह तय किया कि राष्ट्रीय महासभाकी ओरसे भी एक जाँच-कमेटीकी नियुक्ति होनी चाहिए। तदनुसार पं० मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, श्रीअब्बास तैयबजी, श्रीफजलुलहक, श्रीजयकर, श्रीसन्तानम् और गांधीजी इस कमेटीके सदस्य नियुक्त किये गये। कमेटीकी सारी व्यवस्था और रिपोर्ट तैयार करनेका भार गांधीजीपर छोड़ा गया था। गांधीजीको अपनी जाँच द्वारा स्पष्ट ज्ञात हो गया कि सरकारने लोगोंपर ऐसी नादिरशाही और जुल्म वर्ता है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनके हृदयमें यह सब जानकर एक ऐसा आघात हुआ, जो कभी सूखनेवाला न था।

काँग्रेसकी जाँच-कमेटीकी रिपोर्टमें कहा गया था:—

"हन्टर-कमीशनके सामने जनरल डायरने जो बातें मान लीं, उनसे साफ जाहिर होता है कि उनका १३ अप्रैलवाला कार्य बेकसूर, बेबस और बेहथियार आदमियों, स्त्रियों और बच्चोंकी जानबूझकर की गयी नृशंस हत्याके सिवाय और कुछ नहीं था। यह हृदय-हीन, कायरतापूर्ण क्रूरता वर्तमान युगमें बेजोड़ है।"*

पंजाबके इस बेमिसाल अत्याचारने पं० मोतीलालजी नेहरूको भी, जो पहिले

---

* स्वतन्त्रता-संग्रामके ९० वर्ष—श्रीकृष्णदास—पृष्ठ ६०

नर्मदली थे, उग्र बना दिया था। कानूनी और वैज्ञानिक कार्यवाहियोंसे उनका विश्वास हट गया था। और इसी समयसे वे गांधीजीके सत्याग्रह-मार्गकी ओर झुक चुके थे।

गांधीजीका बढ़ता हुआ प्रभाव

गांधीजीका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। देशको उनकी शक्तिका परिचय मिल चुका था। देश समझ गया था कि गांधीजीका अनुसरण करके ही उसका कल्याण हो सकता है। सन् १९१९की अमृतसर-काँग्रेससे यह बात स्पष्ट हो गयी थी। यह काँग्रेस बहुत दिनों बाद हुई थी। पं० मोतीलालजी नेहरू इसके सभापति थे। तिलक, महामना प० मालवीयजी, चित्तरञ्जनदास, आदि बड़े-बड़े नेताओंके अलावा गांधीजी भी इसमें गये थे। गांधीजीके वहाँ पहुँचते ही 'गांधीजीकी जय' की आवाजसे अमृतसरका कोना-कोना प्रतिध्वनित हो उठा था। गांधीजीकी जयका नारा पहिले कभी इस प्रकार बुलन्द न हुआ था। गांधीजीके अद्वितीय प्रभावका यह पूर्ण द्योतक था। यह इस बातका भी द्योतक था कि लोग गांधीजी-को अपने नेता और अगुआके रूपमें स्वीकार कर चुके थे।

प्रथम गांधी-काँग्रेस

अमृतसर-काँग्रेस भारतके राष्ट्रीय इतिहासमें बड़े ही महत्त्वकी थी। एक तो वह अधिवेशन पंजाबपर हुए आत्याचारोंके बाद हो रहा था, दूसरे, भविष्यमें कौंग्रेसकी समस्त तथा अविकल रूपरेखा कैसी हो—यह भी निःसन्देह उसमें ही निर्धारित होनेको था। इस कौंग्रेसमें चित्तरञ्जनदास और गांधीजी इन दोका ही प्राबल्य रहा था। गांधीजीका मत था कि मौंटिगू-चेम्सफ़ोर्ड-योजनामें दिये गये सुधारोंको स्वीकार किया जाय; परन्तु दासबाबू सारी योजनाको ही अस्वीकृत कर देना चाहते थे। किन्तु अन्तमें गांधीजीके प्रयत्नसे दासबाबूके अस्वीकृतिके प्रस्तावमें हेर-फेर करके यह स्वीकार कर लिया गया कि "...जहाँतक

सम्भव हो, लोग सुधारोंको इस प्रकार काममें लावें जिससे कि भारतवर्षमें शीघ्र ही पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो सके।" इस संशोधनके द्वारा गांधीजी और दासबाबूमें सुलह हो गयी, और दासबाबूका प्रस्ताव परिवर्तित रूपमें पास हो गया। निःसन्देह गांधीजीकी यह एक विजय थी। श्रीपट्टाभि लिखते हैं—"अमृतसरके शासन-सुधार-सम्बन्धी इस प्रस्तावके विषयमें भावी पीढ़ी कुछ भी अपना फैसला दे, किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि वह सारी काँग्रेस गांधीजीकी ही एक विजय थी। उनके व्यक्तित्व, दृष्टि-बिन्दु, सिद्धान्त और आदर्श, नीति-नियम एवं उनके सत्य और अहिंसा-धर्मका प्रभाव पहले ही काँग्रेसपर पड़ चुका था।"* गांधीजीकी इस विजय और प्रभावके कारण ही अमृतसर-काँग्रेसको पं० जवाहरलाल नेहरूने प्रथम गांधी-काँग्रेस कहा है।†

सुधार-योजनावाले प्रस्तावके अतिरिक्त इस काँग्रेसमें लगभग ५० प्रस्ताव और भी पास हुए थे जिनमें कानून मालगुजारी, मजदूरोंकी दुरवस्था, तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंके दुःखोंकी जाँचकी माँगके प्रस्ताव भी शामिल थे। स्वदेशी सम्बन्धी—हाथकी कताई, हाथकी बुनाई और चर्खाके प्रचारके बारेमें भी इस काँग्रेसने प्रस्ताव किये थे। प्रिंस ऑफ़ वेल्सके स्वागत करनेका प्रस्ताव भी इसमें पास किया गया था। इसी समय गांधीजीको जलियानवाला बागकी स्मृतिके लिए धन एकत्र करने और काँग्रेसका नया विधान बनानेका काम भी सौंपा गया। नया विधान बनानेका उत्तरदायित्व लेनेके समयसे ही गांधीजीका काँग्रेसमें पूर्णतया प्रवेश हो गया।

गांधीजीका क्षोभ

अमृतसर-काँग्रेसमें अपने मतकी विजयसे गांधीजीको उतनी प्रसन्नता न हुई, जितनी उन्हें अपने देशवासियोंके हिंसक मार्गको ग्रहण करनेसे दुःख हो रहा था। गांधीजीका हृदय रह-रहकर यही चाहता था कि पञ्जाब और गुजरातमें

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ १७०-१७१ † मेरी कहानी—पृष्ठ ६१

जनताके लोगोंकी तरफसे किये गये हिंसक-कृत्योंके प्रति कॉंग्रेस क्षोभ-प्रदर्शन करके 'निन्दा' का प्रस्ताव पास करे। उनका हृदय इन हिंसक कार्योंके लिए प्रायश्चित्त करनेको उतावला हो रहा था।

अतः गांधीजीने निन्दाका प्रस्ताव उपस्थित किया ; किन्तु विषय-समितिमें उनका प्रस्ताव गिर गया। गांधीजीको इससे बड़ी निराशा हुई और उन्होंने नम्रता और अदबके साथ यह घोषित कर दिया—'यदि उनके दृष्टि-बिन्दुको न अपनाया गया, तो वे कॉंग्रेसमें न रह सकेंगे।' गांधीजीके प्रस्तावसे अमृतसर-कॉंग्रेसमें उपस्थित सारे-के-सारे प्रतिनिधि और दर्शकगण, जिनकी संख्या लगभग छत्तीस हजार थी, चकित हो उठे थे। उनकी समझमें ही नहीं आ रहा था कि जिस सरकारने जलियानवाला बाग, आदि भीषण हत्याकाण्ड किये, उसकी निन्दा करनेके बजाय जनता-पक्षमें लोगोंके छिटपुट हिंसक-कार्योंकी निन्दा करनेमें क्या तुक है ? किन्तु गांधीजी तो सोच रहे थे कि यदि दूसरा बुरा हो, तो हम क्यों बुरे बनें ? बुराईका अनुकरण कभी भी नहीं किया जाना चाहिए। अन्तमें गांधीजीकी इच्छा पूरी हुई और कॉंग्रेसने निन्दाका प्रस्ताव पास किया, जो इस प्रकार है—

"यह कॉंग्रेस इस बातको स्वीकार करती है कि बहुत अधिक उत्तेजित किये जानेपर (ही) जन-समूहके लोग क्रोध से बावले हो उठे थे, तो भी पिछले अप्रैलके महीनेमें पञ्जाब और गुजरातके कुछ हिस्सोंमें जो ज्यादतियाँ हुईं और उनके कारण जानमालका जो नुकसान हुआ, उसपर यह कॉंग्रेस क्षोभ प्रकट करती है और उन कृत्योंकी निन्दा करती है।"

गांधीजी अच्छी तरह समझते थे कि उनके क्षोभ, दुःख तथा निन्दाकी बातें लोगोंकी समझमें नहीं आ सकी हैं। लोग ब्रिटिश-सरकारकी क्रूरताओंके सामने अपनी लघु भूलोंका कोई महत्त्व ही नहीं स्वीकार करते थे। किन्तु अहिंसक और सत्यके पुजारी गांधीजीके सामने बुराई बुराई ही थी—चाहे वह कितनी ही अल्पतम मात्रा और संख्यामें क्यों न की गयी हो। अपने निन्दा-प्रस्तावके बारेमें

लोगोंकी उलझनोंको सुलझाते हुए गांधीजीने कहा था—"इससे बढ़कर कोई प्रस्ताव कॉंग्रेसके सामने नहीं है। हमारी भावी सफलताकी सारी कुञ्जी इसी बातमें है कि हम इसके मूलभूत सत्यको समझ लें, हृदयसे स्वीकार कर लें और उसके अनुसार आचरण भी रखें।.....मैं कहता हूँ कि यदि हम लोगोंने मार-काट न की होती......हाँ, मैं मानता हूँ कि डा० किचलू, डा० सत्यपाल और मुझे पकड़कर.......सरकारने लोगोंको भड़काने और गरम हो जानेका जबर्दस्त कारण उत्पन्न कर दिया था—तो यह बखेड़ा न खड़ा होता ; लेकिन उस समय सरकार भी पागल हो गयी थी और हम भी पागल हो गये थे। मैं कहता हूँ, पागलपनका जवाब पागलपनसे मत दो, बल्कि पागलपनके मुकाबलेमें समझदारीसे काम लो और देखो कि सारी बाजी तुम्हारे हाथमें आ जायगी।"

आत्माको जाग्रत करनेवाले इन शब्दोंका वहाँपर उपस्थित जनतापर जैसा भी प्रभाव पड़ा हो, किन्तु इतना तो स्पष्ट हो गया कि गांधीजीके नेतृत्वमें चलने-वाली कॉंग्रेसके भविष्यमें सत्य और अहिंसा ही दो मूल आधार होंगे।

अध्याय—९

असहयोगका जन्म

अमृतसर-काँग्रेसमें गांधीजीने सरकारके साथ 'सहयोग' की नीति वर्तनेपर जोर दिया था और उस नीतिको स्वीकृत करानेमें वे समर्थ भी हुए थे ; किन्तु तब उन्हें यह न मालूम था कि शीघ्र ही 'असहयोग' आन्दोलनके लिए ब्रिटिश-सरकारके विरुद्ध खड़ा होना पड़ेगा । घटनाएँ ही ऐसी घटीं कि वे 'असहयोग' के सिवा और किसी मार्गको ग्रहण ही नहीं कर सकते थे । यह कैसे हुआ ?

असहयोगका जन्म

सन् १९२० में गांधीजीके नेतृत्वमें ही असहयोगकी आवश्यकता पैदा होनेका कारण पञ्जाबके अत्याचार और खिलाफतका प्रश्न था । पञ्जाबमें हुए अत्याचारोंसे भारत क्षुब्ध और असन्तुष्ट तो था ही, खिलाफतके प्रश्नके उठनेसे यह असन्तोष और भी भड़क उठा था । फलतः सन् १९२० की घटनाएँ विशेष-कर खिलाफतके प्रश्नको ही लेकर खड़ी हुई थीं ।

यह खिलाफत का प्रश्न क्या था ? खिलाफतका प्रश्न मुसलमानोंके धार्मिक विश्वाससे सम्बद्ध था । महायुद्धमें टर्की अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़ रहा था । भारतके मुसलमानोंको डर था कि टर्कीको परास्त करनेके बाद अंग्रेज़ वहाँके खलीफासे मुस्लिम धार्मिक स्थानोंको भी छीन लेंगे, इसलिए वे विचलित हो उठे थे और अपने सहधर्मी मुल्कके विरुद्ध लड़नेको तैयार न होते थे । अतः महायुद्धके समय ब्रिटेनके वाक्-चतुर प्रधान मन्त्री मि० लॉयड जार्जने मुसलमानोंको यह आश्वा-सन दिया कि "हम टर्कीको उसके एशिया माइनर और थ्रेसके उन प्रसिद्ध

और समृद्ध द्वीपोंसे वञ्चित करनेके लिए लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं, जिनकी आबादी मुख्यतः तुर्क है।" इस आश्वासनको पाकर ही भारतीय मुसलमान देशसे बाहर गये और अपने हम-मजहबलोगों से खूब लड़े थे। मुसलमानोंको आशा हो गयी थी कि जजीरतुल अरब—जिसमें मेसोपोटामिया, अरबिस्तान, सीरिया, फिलस्तीन और उनके सारे पवित्र स्थान शामिल हैं, हमेशा खलीफाके पूर्ण अधिकारमें रहने दिये जायँगे।

किन्तु युद्ध समाप्त होनेपर मुसलमानोंको मालूम हुआ कि अंग्रेज़ प्रधान-मन्त्री द्वारा दिये गये वचन बिलकुल असत्य थे। वे वचन तो इसलिए दिये गये थे कि जिससे मुसलमान युद्धमें मुस्लिम-देशोंसे विमुख न हो जायँ। युद्ध अब बन्द हो चुका था। सैनिकोंकी कोई आवश्यकता न रह गयी थी। मुसलमानोंको असन्तुष्ट करनेसे अब अंग्रेज़-सरकारको कोई नुकसान न था। अतः युद्ध समाप्त होनेके बाद ब्रिटिश-सरकारने अपने वायदेके खिलाफ तुर्कीको अपने प्रदेशोंसे वञ्चित कर दिया। तुर्कीके एशियाई राज्यको ब्रिटेन और फ्रांसने आपसमें बाँट लिया। मित्र-राष्ट्रों द्वारा एक हाई कमीशन नियुक्त किया गया, जो हर प्रकारसे तुर्कीका असली शासक था और सुलतान एक कैदी-मात्र।

इस वचन-भग अथवा विश्वासघातसे भारतके मुसलमान ही नहीं, अपितु अन्य धर्मके लोग भी क्रोधसे उबल पड़े थे। अमृतसर-काँग्रेसमें काँग्रेसी-नेताओंके अलावा प्रसिद्ध खिलाफती नेता भी (अली-बन्धु जो कि अमृतसर-काँग्रेसके अवसरपर छूटे थे और छूटते ही काँग्रेसमें चले आये थे) एकत्र हुए थे और तभी खिलाफतके प्रश्नको लेकर गांधीजीके नियन्त्रणमें संगठन करनेका निश्चय कर लिया गया था।

गांधीजी और खिलाफतका प्रश्न

खिलाफत-आन्दोलन अलीभाइयोंके नेतृत्वमें राष्ट्रीय महासमरके प्रारम्भसे ही चल रहा था। गांधीजी उसी समयसे इस प्रश्नको भारतीय प्रश्नके रूपमें

ग्रहण कर चुके थे। चेम्सफ़ोर्ड द्वारा युद्ध-सभामें बुलाये जानेपर अली-भाइयोंके प्रश्नको लेकर उन्होंने शामिल होनेसे इन्कार भी किया था। बादमें शामिल होनेपर उन्होंने वाइसरायसे इस बातका आश्वासन भी माँगा था कि मुसलमानी राज्योंके हकों और उनके धर्म-स्थानोंकी रक्षा की जायगी।

इस प्रकार गांधीजी प्रारम्भसे ही खिलाफतके प्रश्नको अपने हाथमें लिये हुए थे। उनके सामने मुसलमानोंका प्रश्न हिन्दुओंका ही प्रश्न था। दोनों हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तानके वासी हैं, अतः दोनोंकी कठिनाइयोंको दोनों मिलकर ही हल कर सकते हैं—गांधीजी प्रारम्भसे ही यह विश्वास करते आये थे। जिन दिनों (१९१९ में) गांधीजी पञ्जाबमें सरकारी दमनकी जाँच कर रहे थे, उन्हें दिल्लीसे खिलाफत-कॉन्फ्रेन्समें आनेका निमन्त्रण मिला था। इस निमन्त्रणके अनुसार गांधीजी दिल्ली पहुँचे। खिलाफतके प्रश्नपर वहाँ हिन्दू-मुसलमानोंकी एक सम्मिलित सभा आयोजित हुई थी। यह सभा २४ नवम्बरको हुई थी, और गांधीजी ही इसके सभापति हुए थे।

गांधीजीके नेतृत्वमें इस सभामें कई प्रस्ताव पास हुए थे। इन प्रस्तावोंमें एक यह भी था कि हिन्दू-मुसलमान स्वदेशी-व्रतका पालन करें और उसके लिए विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करें। इसी सभामें गांधीजीने सर्वप्रथम सरकारके विरुद्ध 'नॉन-कोऑपरेशन' या असहयोग करनेका प्रस्ताव भी रखा था, जिसकी पुष्टि बादमें सन् १९२० की कलकत्ता-काँग्रेसने की थी।

दिल्लीकी खिलाफत-कान्फ्रेन्सके प्रस्तावानुसार १९ जनवरी को गांधीजी और डा० अन्सारीके नेतृत्वमें एक शिष्ट-मण्डल वाइसरायसे मिलने गया। इसी अवसरपर १२ जनवरीको मौलाना अबुलकलाम आज़ादकी खिलाफतके प्रश्नको लेकर गांधीजीसे प्रथम भेंट हुई थी। शिष्ट-मण्डलने वाइसरायसे मिलकर उन्हें बतलाया कि तुर्की साम्राज्य और सुलतानको खलीफा बनाये रखना बहुत आवश्यक है। वाइसराय चेम्सफ़ोर्डने मुसलमानोंकी माँगके प्रति मौखिक रूपसे गहरी

संवेदना प्रकट की, किन्तु सन्धिकी बातोंमें कुछ भी परिवर्तन करनेके लिए असमर्थता दिखायी। यह 'गहरी संवेदना' का प्रदर्शन कटेपर नमक छिड़कनेके समान था।

विलायतको शिष्ट-मण्डल

दिल्ली-खिलाफत-कान्फ्रेन्सके निर्णयानुसार मौ० मुहम्मदअलीके नेतृत्वमें एक शिष्ट-मण्डल मार्चमें लॉयड जार्जसे मिलनेके लिए विलायत भी गया। १७ मार्च को मुस्लिम-शिष्ट-मण्डलको लॉयड जार्जका उत्तर मिला—'ईसाई राष्ट्रोंके साथ जिस नीतिका व्यवहार किया जा रहा है, तुर्कीके साथ उससे भिन्न नीतिका व्यवहार नहीं किया जा सकता। ......तुर्की अपनी (तुर्क) भूमिपर तो अधिकार रख सकेगा, पर जो प्रदेश तुर्क नहीं हैं, उनपर उसका कोई अधिकार नहीं होगा।' इस उत्तरने खिलाफतके प्रश्नकी जड़ ही काट डाली। मुसलमानोंको मालूम हो गया कि अंग्रेज़ोंके वचनोंका विश्वास करना कितनी भारी भूल थी।

गांधीजी मैदानमें

इस उत्तरके मिलनेपर दो दिन बाद १९ मार्चको राष्ट्रीय शोक-दिवस मनानेका ऐलान हुआ। इस दिन उपवास, प्रार्थनाएँ और हड़तालें की गयीं। खिलाफतके इस प्रश्नको लेकर गांधीजी फिर मैदानमें कूद पड़े। उन्होंने वीर-घोषके साथ ऐलान किया—"यदि तुर्कीके साथ सन्धिकी शर्तें भारतके मुसलमानोंके भावोंके अनुकूल न हुईं, तो मैं असहयोग-आन्दोलन करूँगा।" यह असहयोगकी तजवीज गांधीजीने १० मार्चकी घोषणामें स्पष्ट व्यक्त कर दी थी। गांधीजी, जो अबतक अंग्रेज़ी-सरकारके साथ हमेशा सहयोग करते आये थे, असहयोगके लिए मजबूर किये गये थे; क्योंकि उन्होंने कहा—"यदि सहयोगके द्वारा हमारा पतन एवं तेज-नाश होता हो और हमारे धार्मिक भावोंको आघात पहुँचता हो, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है। इंगलैण्ड हमसे यह आशा नहीं रख सकता कि हम उन अधिकारोंका हनन चुपचाप सह लेंगे, जो मुसलमानोंके

जीवन-मृत्युका प्रश्न है।"* गांधीजीने इस प्रकार मुस्लिम-प्रश्नको देशका प्रश्न बनाकर सारे भारतको एक सूत्रमें बाँध दिया था। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यका इतना सुन्दर व सुदृढ़ बन्धन पहिले कभी न हुआ था। अमृतसरके हत्याकाण्ड और खिलाफतके प्रश्नने दोनों वर्गोंके लोगोंको प्रेमके संगमपर ला दिया था। और इस प्रेमकी धाराको बहानेवाले पुण्यश्लोक राजा भगीरथ, गांधीजी ही थे।

बढ़ता हुआ खिलाफत-आन्दोलन

गांधीजीने मार्चके ऐलानके अनुसार भारतमें असहयोग-आन्दोलनका प्रचार शुरू कर दिया था। अप्रैलमें वे होमरूल-लीगके सभापति भी हो गये थे। उन्होंने स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, खिलाफत, हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा मानना, आदि बातोंको लीगकी नीतिमें भी शामिल करा दिया था। इसी बीच १४ मई, १९२० को तुर्किस्तानके साथ सन्धिकी प्रस्तावित शर्तें भी प्रकाशित हो गयीं। इसके साथ ही वाइसरायका सन्देश भी निकला कि यद्यपि सन्धिकी शर्तोंसे भारतीय मुसलमानोंके हृदयोंको ठेस पहुँची होगी, तथापि उन्हें अपने तुर्की सहधर्मियोंके इस दुर्भाग्यको सन्तोष और धैर्यके साथ सहन करना चाहिए। मुसलमान सन्धिके प्रकाशित होते ही क्रोधसे जल उठे थे।

सन्धिकी शर्तोंके बाद ही तुरन्त पञ्जाब-हत्याकाण्डके बारेमें २८ मई, १९२० को हण्टर-कमेटीकी रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई। अंग्रेज़ोंके अत्याचार और जुल्मोंका सारा चित्र भारतीयोंकी आँखोंके सामने अपने नग्न रूपमें नाच उठा था।

सन्धिकी शर्तों और हण्टर-कमेटीकी रिपोर्टने देशमें एकदम आग लगा दी। २८ मई, १९२० को मुसलमानोंने बम्बईमें खिलाफत-कमेटीकी बैठक करके गांधीजीके असहयोगके शस्त्रको स्वीकार किया।

जिस समय गांधीजी इस प्रकार असहयोगके प्रचारमें लगे हुए थे, लोकमान्य

---

* कॉंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ १७६

तिलकजी देशको माण्टेगु-सुधारोंको सफल बनाने और कौंसिलमें प्रवेश करनेकी सलाह दे रहे थे। उन्हें गांधीजीके 'असहयोग'-आन्दोलनपर विश्वास न होता था और इसलिए उन्हें असहयोगका मार्ग रुचिकर न लगा। गांधीजीसे तिलकजीने कहा था—"असहयोगमें जिस आत्म-त्यागकी जरूरत है, उसके लिए देश हमारे साथ होगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। मैं आपकी सफलता चाहता हूँ। यदि आप जनताका ध्यान अपनी ओर खींच सकें, तो मुझे अपना कट्टर समर्थक पायेंगे।" यह उल्लेख गांधीजीने 'तिलक-सम्बन्धी स्मृतियाँ' नामक पुस्तकमें किया है। अतः असहयोग-आन्दोलनके प्रति अविश्वास होनेके कारण तिलकजी ३० मईको बनारसमें होनेवाली महासमितिकी बैठकमें सम्मिलित नहीं हुए थे। बनारसकी महासमितिमें खिलाफतके प्रश्न और हण्टर-कमेटीकी रिपोर्टपर देशकी तरफसे क्रोध और रोष प्रकट किया गया था। इन मामलोंपर विचार करनेके लिए विशेष कॉंग्रेस करनेका निश्चय भी हुआ। देश-प्रेमके नाते तिलकजीने कहलवा भेजा कि महासमितिके आदेशोंका वे भी पालन करेंगे। पर शोक ! महासमितिके अधिवेशनसे पूर्व ३१ जुलाईकी आधीरातको लोकमान्य तिलक स्वर्ग सिधार गये। गांधीजीको लगा कि वे एक महान् शक्तिकी सहायतासे वञ्चित कर दिये गये और मानो उनकी ढाल ही उनसे छीन ली गयी।*

२ जून, १९२० को गांधीजीकी सलाहसे इलाबादमें नेताओंका एक सम्मेलन बुलाकर उनके सामने असहयोग आन्दोलनकी तजवीज रखी गयी। सम्मेलनने असहयोगकी नीतिको अपनाया और उसके लिए कार्यक्रम बनानेका भार गांधीजी तथा कुछ मुसलमान नेताओंकी एक कमेटीको सौंपा। इस कमेटीने स्कूलों, कॉलेजों और अदालतोंके बहिष्कारकी सिफारिश की।

१ अगस्तसे गांधीजी और अली-भाइयोंके नेतृत्वमें असहयोगकी योजनाका देशव्यापी रूपसे प्रचार प्रारम्भ हुआ। गांधीजी और अली-भाइयोंने अब देशका

---

* आत्मकथा, खण्ड २—पृष्ठ ५००

दौरा शुरू किया और लोगोंको संयम और शान्तिके साथ आनेवाले युद्धकी प्रतीक्षा करने और उसमें शामिल होनेका सन्देश दिया। इसी समय १ अगस्तको गांधीजीने अपनी 'कैसर-हिन्द' की उपाधि भी सरकारको वापिस कर दी।

अगस्तमें बड़ी कौंसिलकी बैठक भी हुई। गांधीजीके असहयोगके मन्त्रने वहाँ भी काम किया। कई सदस्य बड़ी कौंसिलसे इस्तीफा देकर बाहर चले आये। वाइसरायने इसपर घोषणा की कि असहयोगकी नीतिसे अव्यवस्था उत्पन्न होनेका भय है और इसलिए असहयोग-आन्दोलन, उन्होंने कहा, 'मूर्खता-पूर्ण सारी योजनाओंमें सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण योजना' होगी। लेकिन गांधीजी दूसरेके विवेकसे काम नहीं लेते थे, यह वाइसरायको मालूम न था। गांधीजी विवेकसे भी बढ़कर हृदयकी पुकार और देशके चीत्कारको मानते थे। अतः वाइसरायकी इस घोषणाका गांधीजी और अन्य असहयोगके नेताओंपर क्या असर पड़ता?

हिजरत

मुसलमान खिलाफतके प्रश्नपर अंग्रेजोंसे इतने क्रोधित हो उठे थे कि उन्होंने अंग्रेज़ी-शासनमें भी रहना अब उचित न समझा और अफगानिस्तानको 'हिजरत' करनेका निश्चय किया। यह आन्दोलन सिन्धसे आरम्भ होकर सीमाप्रान्ततक फैल गया था। कचगढ़ीमें मुहाजिरीन और सैनिकोंमें मुठभेड़ होनेसे मुस्लिम-जनतामें और भी रोषकी आग भड़की। फलतः अगस्तमें लगभग अठारह हजार आदमी अफगानिस्तानके लिए चल पड़े। किन्तु अफगान-सरकारने इन मुहाजिरीनको अपने राज्यमें आनेसे रोक दिया। परिणामस्वरूप मुसलमानोंको 'हिजरत' का आन्दोलन त्याग देना पड़ा।

अब उनकी एकमात्र आशा गांधीजी और उनका असहयोगका अस्त्र ही रह गया था, जिसका अभी उसी समय जन्म ही हुआ था।

———

अध्याय—१०

पूर्णाहुति

असहयोगका नारा बुलन्द करके गांधीजीने कॉंग्रेसको अपने पुराने वैध-विरोधके रास्तेको त्याग कराके नये क्रान्तिकारी मार्गपर चलनेका आह्वान किया था। यह एक नयी और असाधारण योजना थी, जिसके लिए कॉंग्रेस-महासभाकी पूर्व-स्वीकृति आवश्यक थी। इस प्रयाजनसे मईमें ही निश्चय किया गया कि कॉंग्रेसका एक विशेष अधिवेशन किया जाय। तदनुसार सन् १९२० के सितम्बर ४ से ९ तारीखतक कलकत्तेमें कॉंग्रेसका विशेष अधिवेशन आयोजित हुआ।

कलकत्ताका सितम्बर-अधिवेशन

अधिवेशनसे पूर्व गांधीजी असहयोगके प्रचारमें दत्तचित होकर काम करते रहे थे। दौरा करके तथा अपनी पत्रिकाओं द्वारा वे असहयोगके औचित्यको देशभरको समझाते रहे, ताकि कलकत्तेके अधिवेशनमें जो भी प्रतिनिधि आवें, वे असहयागसे भली भाँति परिचित रहें। वे नहीं चाहते थे कि असहयोग-आन्दोलनकी चर्चा एक अनोखी और अद्भुत चर्चाके रूपमें अधिवेशनमें पेश हो। यह उनके प्रचारका ही फल था कि आन्ध्र, पञ्जाब, बिहार, उड़ीसा, बरार, बम्बई, मद्रास, सिन्ध, आदि प्रान्तोंकी कॉंग्रेस-कमेटियोंने अधिवेशनसे पूर्व ही अपनी सम्मति प्रकट कर दी थी। और लगभग सभीने कुछ हेर-फेरके साथ 'असहयोग' की नीतिके पक्षमें राय दे दी थी। केवल बंगाल ही गांधीजीसे पूर्णतया सहमत न था और वहाँके मान्य नेता देशबन्धु दास गांधीजीके असहयोग-आन्दोलनके कतई खिलाफ थे।

कलकत्तेका अधिवेशन बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। इसमें काँग्रेसके भावी मार्ग और रूपका निर्णय होना था। देशको गांधीजी और दासमेंसे एकको अपना नेता चुनना था। गांधीजीके असहयोग और दासके सहयोगमें प्रतिद्वन्द्विता थी। सब यह देखनेको उत्सुक थे कि किसकी विजय होती है—असहयोगकी या सहयोगकी। इन दोनों में जो विजयी होता, भारत और काँग्रेसको उसीका मार्ग ग्रहण करना था।

गांधीजीका प्रस्ताव

काँग्रेसका यह विशेष अधिवेशन श्रीलाला लाजपतरायके सभापतित्वमें प्रारम्भ हुआ। अधिवेशनमें बहुत ही जोश और खरोश था। सब यह देखनेको उतावले हो रहे थे कि गांधीजीके 'असहयोग' के प्रस्तावका क्या होता है। प्रस्ताव तो बहुत-से थे, किन्तु मुख्य प्रस्ताव गांधीजीका असहयोग-प्रस्ताव ही था। सभी सदस्य गांधीजीके प्रस्तावकी प्रतीक्षा कर रहे थे; आखिरकार गांधीजीने अपना असहयोग-प्रस्ताव पेश किया। प्रस्तावका शब्द-विन्यास इस प्रकार था—

"चूँकि खिलाफतके प्रश्नपर भारत व ब्रिटेन दोनों देशोंकी सरकारें भारतके मुसलमानोंके प्रति अपना फर्ज अदा करनेमें खास तौरसे असफल रही हैं और ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीने जान-बूझकर उन्हें दिये हुए वायदे को तोड़ा है और चूँकि प्रत्येक गैर-मुस्लिम भारतीयका यह फर्ज है कि अपने मुसलमान भाईपर आयी हुई धार्मिक विपत्तिको दूर करनेमें प्रत्येक उचित उपायसे सहायता करें।

"और चूँकि अप्रैल, १९१९ की घटनाओंके मामलेमें उक्त दोनों सरकारोंने पञ्जाबकी बेकसूर जनताकी रक्षा करनेमें और उन अफसरोंको सजा देनेमें, जो पञ्जाबकी जनताके प्रति असभ्य व सैनिक-धर्म-विरुद्ध आचरण करनेके दोषी ठहरे हैं, घोर लापरवाही की है और चूँकि उक्त दोनों सरकारोंमें सर माइकेल ओवडायारको, जो अफसरों द्वारा किये गये बहुत-से अपराधोंके लिए स्वयं प्रत्यक्ष रूपसे उत्तरदायी था और जिसने जनताके दुःखों व तकलीफोंकी सरासर अवहेलना की, बरी कर

दिया है। और चूँकि इंगलैण्डकी लार्ड-सभामें हुए वाद-विवादसे भारतीय जनताके प्रति सहानुभूतिका दुःखद अभाव स्पष्ट प्रकट हो गया है और पञ्जाबमें सुसंगठित रूपसे आतङ्क और त्रास फैलाया गया है ; और चूँकि वाइसरायकी सबसे ताजी घोषणा इस बातका प्रमाण है कि खिलाफत व पञ्जाबके मामलोंपर तनिक भी पछतावेका भाव नहीं है, अतः इस काँग्रेसकी राय है कि भारतमें तबतक शान्ति नहीं हो सकती जबतक कि उक्त दोनों भूलोंका सुधार नहीं किया जाता। राष्ट्रीय सम्मानकी मर्यादाको कायम रखनेके लिए और भविष्यमें इस प्रकारकी भूलोंको दोहरानेसे बचानेके लिए उपयुक्त मार्ग केवल स्वराज्यकी स्थापना ही है। इस काँग्रेसकी यह राय है कि जबतक उक्त भूलोंका सुधार न हो जाय और स्वराज्यकी स्थापना न हो जाय, भारतवासियोंके लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि वे महात्मा गांधी द्वारा सञ्चालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोगकी नीतिको स्वीकार करें और अपनावें।

"और चूँकि इसकी शुरुआत उन लोगोंको ही करनी चाहिए, जिन्होंने अबतक लोकमतको बनाया और उसका प्रतिनिधित्व किया है, और चूँकि सरकार अपनी शक्तिका संगठन लोगोंको दी गयी उपाधियों व सम्मानसे अपने द्वारा नियन्त्रित स्कूलोंसे व अपनी अदालतों व कौंसिलोंसे ही करती है, और चूँकि आन्दोलनको चलानेमें यह वाञ्छनीय है कि कम-से-कम खतरा रहे और वाञ्छित उद्देश्यकी सिद्धिके लिए आवश्यक कम-से-कम त्यागका आवाहन किया जाय, यह काँग्रेस सरगर्मीके साथ सलाह देती है कि—(अ) सरकारी उपाधियों व अवैतनिक पदोंको छोड़ दिया जाय और जिला-म्युनिसिपल-बोर्ड व अन्य स्थानीय संस्थाओंमें जो लोग नामजद हुए हों, वे इस्तीफा दे दें ;

(ब) सरकारी दरबारों, स्वागत-समारोहों तथा सरकारी अफसरों द्वारा किये गये या उनके सम्मानमें किये गये अन्य सरकारी व अर्द्ध-सरकारी उत्सवोंमें भाग लेनेसे इन्कार किया जाय ;

(स) सरकारके, सरकारसे सहायता प्राप्त करनेवाले व सरकार द्वारा नियन्त्रित

स्कूल व कालेजोंसे छात्रोंको धीरे-धीरे निकाल लिया जाय, उनके स्थानमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें राष्ट्रीय स्कूल व कालेजोंकी स्थापना की जाय ;

(द) ब्रिटिश-अदालतोंका वकीलों व मुवक्किलों द्वारा धीरे-धीरे बहिष्कार हो और उनकी मददसे खानगी झगड़ोंको तय करनेके लिए पञ्चायती अदालतों-की स्थापना हो।

(य) फौजी, क्लर्की व मजदूरी करनेवाले लोग मेसोपोटामियामें नौकरी करनेके लिए भर्त्ती होनेसे इन्कार करें।

(फ) नयी कौंसिलोंके चुनावके लिए खड़े हुए उम्मेदवार अपने नाम उम्मेदवारीसे वापस ले लें और यदि काँग्रेसकी सलाहके बावजूद कोई उम्मेद-वार चुनावके लिए खड़ा हो, तो मतदाता उसे वोट देनेसे इनकार करे।

(ज) विदेशी मालका बहिष्कार किया जाय।

"और चूँकि असहयोगको अनुशासन व आत्म-त्यागके एक साधनके रूपमें पेश किया गया है, जिसके बिना कोई भी राष्ट्र सच्ची उन्नति नहीं कर सकता, और चूँकि असहयोगके सबसे पहले युगमें ही हर स्त्री-पुरुष व बालकको इस प्रकारके अनुशासन व आत्म-त्यागको अवसर मिलना चाहिए, यह काँग्रेस सलाह देती है कि एक बड़े पैमानेपर स्वदेशी वस्त्रोंको अपनाया जाय ; और चूँकि भारतीय श्रम व प्रबन्धसे चलनेवाली भारतकी वर्तमान मिलें देशकी जरूरियातके लिए पर्याप्त सूत व कपड़ा तैयार नहीं कर सकतीं और न इस बात-की ही कोई सम्भावना है कि एक लम्बे अर्सेतक वे ऐसा करने में समर्थ हो सकेंगी। यह कांग्रेस सलाह देती है कि हर एक घरमें हाथकी कताईको फिरसे और देशके इन असंख्य जुलाहों-द्वारा, जिन्होंने अपने पुराने व सम्मानित पेशेको उत्साह न मिलनेके कारण छोड़ दिया था, हाथकी बुनाईको पुनरुज्जीवित करके बड़े पैमानेपर वस्त्रोंकी उत्पत्ति तुरन्त ही बढ़ायी जाय।*"

महात्मा गांधीका प्रस्ताव क्या था, असहयोग-आन्दोलनकी पूर्णाहुति थी।

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ १८९-१९१

त्याग, बलिदान और सेवाका एक महान् आह्वान था। देशके लिए हर प्रकारके त्यागकी पुकार की गयी थी। यह पहिला मौका था, जब कि देश-वासियोंसे उपाधि त्यागने, स्कूल और कालेजोंको छोड़ने, नौकरीसे इस्तीफा देने, उम्मेद-वारीसे नाउम्मेद होने और विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार कर स्वदेशीका व्रत लेनेको कहा गया था। प्रस्तावसे सारी कॉंग्रेसमें एक बार खलबली मच गयी। खूब जोर-शोरसे बहस हुई। देशबन्धु चित्तरञ्जनदास और विपिनचन्द्र पालने असहयोगके प्रस्तावमें हेर-फेर करनेका प्रत्यन किया। किन्तु उनकी अद्भुत वाक्-शक्ति गांधीजीके हृदयकी पुकारको न दबा सकी। महात्माजीके प्रस्तावपर आखिरकार मत लिया गया और वह ८८४ के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियोंकी सहमतिसे पास हो गया।

गांधीजी विजयी हुए, और अनजाने ही कॉंग्रेस क्रान्तिकारी-संस्थामें परिवर्तित हो गयी, तथा असहयोगने वास्तविक स्वरूप धारण कर लिया। ब्रिटिश-सरकार, जो अबतक कॉंग्रेसको केवल एक बोलनेवाली संस्था समझे बैठी थी, उसके परिवर्तित विराट रूपको देखकर चौंक उठी। सरकार सोच रही थी, यह कॉंग्रेस नहीं, गांधी है। गांधीजी और कॉंग्रेसमें न सरकारको और न देशको ही अन्तर मालूम पड़ता था। गांधीजी और कॉंग्रेस एक हो गये थे। पुरानी कॉंग्रेस तो खतम हो गयी थी और असहयोग-प्रस्तावको स्वीकार करते ही कॉंग्रेस पूर्णतया गांधी-कॉंग्रेस हो चली थी।

इस परिवर्तनके फलस्वरूप देशमें एक नया ही वातावरण छा गया था। राजनैतिक आन्दोलनके पुराने तरीकोंको लोग बेकार समझने लगे थे और गांधीजीके क्रान्तिकारी पथकी ओर बढ़नेकी तैयारी करने लगे। सरकार भी जनतामें फैली इस नयी हलचलको अनिश्चित भावसे देख रही थी। यह समझकर भी कि अवश्य ही एक भारी तूफान उठनेवाला है, वह यह न समझ सकी कि जादूगर गांधी क्या करायेगा? इसीलिए सरकारने नवम्बरमें ही प्रान्तीय सरकारोंको आन्दोलनके प्रति जागरूक रहनेका साधारण किन्तु कड़ा निर्देश कर दिया था।

असहयोगकी प्राण-प्रतिष्ठा

कलकत्ता-काँग्रेसमें असहयोग-आन्दोलनका जन्म हुआ, और उसी व
नागपुर-काँग्रेसमें असहयोगकी प्राण-प्रतिष्ठा भी कर दी गयी। नागपुर-काँग्रेस
(२६ दिसम्बर) में असहयोगके कार्यक्रमपर विचार करके उसका अन्तिम रू
निश्चित होना था। अतः इस काँग्रेसमें प्रतिनिधियोंकी उपस्थिति बहुत अधिक
संख्यामें हुई थी। कुल प्रतिनिधियोंकी संख्या १४,५८२ थी, जिसमें ११५०
मुसलमान और १६९ स्त्रियाँ थीं। सभापति दक्षिणी नेता श्री० सी० विजय-
राघवाचार्य थे। सभापतिने गांधीजीसे असहयोगके कारणोंमें स्वराज्यकी माँगको
समाविष्ट करनेको कहा—इसे गांधीजीने तुरन्त मान लिया।

देशबन्धु दास इस काँग्रेसमें कलकत्तेके निर्णयको रद्द करानेका पक्का इरादा
लेकर आये थे। किन्तु अन्तमें गांधीजीकी ही विजय हुई। देशबन्धु दास विरोध
करनेके बजाय प्रस्तावके समर्थक हो गये। दास ही नहीं बल्कि असहयोगके पुराने
विपक्षी पं० मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय भी गांधीजीके समर्थक हो
गये। फलत: कलकत्तेका असहयोग-प्रस्ताव, जो उस समय केवल गांधीरूपी
अकेले पाये पर खड़ा था, नागपुरमें वह चारों पायोंपर प्रतिष्ठित हो गया—
क्योंकि गांधीजीके साथ-साथ दास, नेहरू और लालाजी भी उसके पक्षमें हो गये थे।

निःसन्देह गांधीजीके व्यक्तित्वकी ही यह विजय थी। इस अद्भुत विजयके
कारणकी समीक्षा करते हुए श्रीपट्टाभि लिखते हैं—"अधिवेशनमें गांधीजीके
व्यक्तित्वकी विजय हुई। पुराने-पुराने लोग, काँग्रेसी नेता व बड़े-बूढ़े भौंचक्के-से
रह गये। वे लोग मन-ही-मन सोचने लगे और एक दूसरेसे पूछने लगे कि 'यह
कौन आदमी है, जो इस प्रकार अधिकारसे बोलता है और यह कहाँसे आया है?'
पाल, मालवीयजी, जिन्ना तथा खापर्डे-जैसे प्रौढ़ अनुभवी और मँझे हुए जन-
नायक, दास व लालाजी-जैसे जबरदस्त सेनानी देखते-के-देखते ही रह गये। यदि
ऐसी आश्चर्यजनक परिस्थितिने ईर्ष्याके भावोंको पैदा नहीं किया तो इसका कारण

गांधीजीकी अहिंसा-नीति तथा हमारे राजनैतिक नेताओंका उज्ज्वल चरित्र ही कहा जा सकता है।"

गांधीजीकी यह विजय 'महात्मा गांधीकी जयके' नारेके साथ सारे देश-भरमें गूँज उठी और सम्पूर्ण देश उनके असहयोगके अग्नि-पथपर बढ़ चलनेके लिए उतावला हो उठा था।

नागपुर-काँग्रेससे भारतमें एक नये सक्रिय युद्धका ही प्रारम्भ हो गया। और इस नये युगके प्रवर्त्तक थे गांधीजी, जिनके बनाये विधानको भी इसी समय काँग्रेसने अपना लिया था। अब काँग्रेसका ध्येय "शान्तिमय और उचित उपायोंसे स्वराज्य प्राप्त करना" हो गया था। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा नागपुर-काँग्रेसने ड्यूक ऑफ़ कनाटके स्वागतके बहिष्कार की भी घोषणा की थी।

ड्यूक ऑफ़ कनाटका आगमन

नागपुर काँग्रेसके निर्णयने भारतके राजनैतिक गगनको जनताके क्षोभ-रूपी काली-काली घटाओंसे आच्छन्न कर लिया था। इस उठते हुए तूफानको देखकर ब्रिटिश-सरकारका भी भयभीत होना स्वाभाविक था। उसने सोचा कि भारतमें उमड़े हुए इस प्रलय-मेघको किसी प्रकार शांत करना ही चाहिए; नहीं तो उससे ब्रिटिश-साम्राज्यशाहीकी ही हानि होनेकी संभावना है। अतः इस अभिप्रायसे प्रेरित होकर इंगलैण्डकी सरकारने प्रिन्स ऑफ़ वेल्सकी जगह ड्यूक ऑफ़ कनाटको भारतके प्रति ब्रिटेनकी सद्भावना प्रकट करनेके लिए हिन्दुस्तान भेजा। सरकार सोचती थी कि ड्यूकके मधुर और आशा-भरे वचनोंसे उत्तप्त भारतवासी शांत हो जायँगे। ड्यूकने नवीन व्यवस्थापक-सभाका उद्घाटन करते हुए योजनानुसार एक मीठा और सुनहला भाषण दिया—

"मैं अपने जीवनके उस कालमें पहुँच गया हूँ जब कि मेरी यही इच्छा हो सकती है कि पुराने जख्मोंको भरूँ और जो अलग हो गये हैं, उन्हें फिरसे मिलाऊँ। मैं भारतका एक पुराना मित्र हूँ और उसी नाते आप—क्या अंग्रेज़ और क्या

हिन्दुस्तानी—सबसे अपील करता हूँ कि मृत भूत-कालके साथ पिछली गलतियों और गलतफहमियोंको भी कब्रमें गाड़ दीजिए; जहाँ माफ ही करना है, माफ कर दीजिए और कन्धेसे कन्धा मिलाकर एक साथ काम कीजिए, जिससे उन सब अशाओंकी पूर्ति हो, जो आजके दिन पैदा हो रही हैं।"

किन्तु इस मिष्ठ भाषणका कोई असर न पड़ा। जलियानवाला बागके नृशंस आघातने और खिलाफतके प्रश्नने भारतीयोंके हृदयको चलनी कर दिया था, फलतः मीठे-मीठे वचनोंसे उस जख्मका धुलना भी सम्भव न था, भरनेकी तो बात ही क्या? भारतीयोंके हृदयमें अंग्रज़ोंके सहयोगकी भावना टूट-फूट चुकी थी और उसकी जगह असहयोग जड़ जमाता जा रहा था।

असहयोगकी सफलता

गांधीजीके आदेशानुसार सारे देशने असहयोग-आन्दोलनमें जोर-शोरसे भाग लेना शुरू किया। गांधीजीने देशके नौजवानोंको सरकारी स्कूल और कालेजोंको छोड़कर अपना जीवन देश-सेवामें अर्पित कर देनेकी अपील की थी, जिसका सभी लोगोंने खूब स्वागत किया। देशबन्धु दासके आह्वान करनेपर जनवरी, १९२१ में हजारों विद्यार्थियोंने कालेजों और स्कूलोंसे तुरन्त मुख मोड़ लिया। गांधीजीकी ही प्रेरणाके आधारपर इसी समय बंगाल, बिहार, सयुक्त-प्रान्त और गुजरातमें कई राष्ट्रीय विद्यापीठ भी खोले गये।

गांधीजीने इसी समय यह व्रत भी लिया कि वे जबतक आध घण्टे रोजाना चर्खा न कात लेंगे, भोजन न करेंगे। जनवरी, १९२१ में गांधीजीके प्रयत्नोंसे पहिला खादी-भण्डार भी खुला। बेजवाड़ाकी महासमितिमें (३१ मार्च और १ अप्रैलको) गांधीजीने २० लाख चर्खे चलवाने की माँग रखवायी। इस प्रकार असहयोग-आन्दोलनने 'खद्दर' का खूब जोरोंके साथ प्रचार करा दिया। खद्दरके प्रचार और विदेशी वस्त्रके बहिष्कारसे इंगलैण्डकी लंकाशायर और मैनचेस्टरकी कपड़ेकी मिलोंको बहुत बड़ा धक्का लगा और भारतके अनेक गरीब

जुलाहोंको अपनी रोटी कमानेका एक साधन फिर मिल गया। गरीबोंके आर्थिक कल्याणके अतिरिक्त विदेशीके विरुद्ध खद्दरके प्रचार द्वारा गांधीजी भारतीयोंकी अराष्ट्रीय मनोवृत्तिको राष्ट्रीय मनोवृत्तिमें परिवर्तित कर देना चाहते थे। विदेशी वस्त्रके बहिष्कार और 'स्वदेशी' खद्दरके प्रचारका अर्थ ही यह था कि लोगोंमें स्वदेशीके लिए प्रेम उत्पन्न हो ताकि उनकी मनोवृत्ति स्वदेशमय हो जाय। क्योंकि जबतक स्वदेशी वस्तुओंके प्रति हममें प्रेम नहीं उत्पन्न हो जाता, हम तबतक अपने 'स्वदेश' से प्रेम कर ही नहीं सकते। प्रेम न होनेसे बलिदान और त्याग भी नहीं हो सकता। अतः 'खद्दर' गरीबीके प्रतीकके साथ-साथ देश-प्रेमका भी प्रतीक माना जाने लगा। खद्दर राष्ट्रीय और अराष्ट्रीय, देश-प्रेम और देश-द्रोहका माप-दण्ड बन गया। फलतः प्रत्येक देश-प्रेमी और काँग्रेसीके लिए खद्दरका पहिनना एक स्वाभाविक नियम हो चला। इस प्रकार असहयोग-आन्दोलनके फलस्वरूप 'स्वदेशी' के आन्दोलनने भी जोर पकड़ा।

खद्दरके प्रचार और विदेशी वस्त्रके बहिष्कारके साथ देशने कौंसिलोंका भी पूर्णतया बहिष्कार किया। अदालतोंका भी बहिष्कार हुआ, किन्तु इसमें अधिक सफलता न मिली; यद्यपि देशभरमें कितने ही वकीलोंने भी वकालत छोड़ दी थी और अपनेको आन्दोलनमें झोंक दिया था। इस प्रकार असहयोग-आन्दोलनकी ज्वाला देशके कोने-कोनेमें व्याप्त हो उठी।

धन और जन

असहयोग-आन्दोलनकी पूर्ण सफलताके लिए जन और धन दोनोंकी नितान्त आवश्यकता थी। अतः गांधीजीने अप्रैल, १९२१ में देशसे आन्दोलनके हेतु स्वराज्य-कोषके लिए १ करोड़ रुपये और १ करोड़ आदमी माँगे। गांधीजी और बेजवाड़ा में हुई महासमिति (३१ मार्च, १ अप्रैल) की अपीलपर देशने धन और जन दोनों दिये। सरकारने सोचा था कि इस असहयोग-आन्दोलनसे देशके धनी-मानी अलग रहेंगे जिससे काँग्रेसको धन और जनकी मदद न मिल

पायेगी और परिणाम-स्वरूप गांधीके पागलपन की उपज असहयोग-आन्दोलन स्वयमेव खतम हो जायगा। सरकारने अपने इस विश्वासको व्यक्त करते हुए नवम्बरके एक वक्तव्यमें कहा था—"उच्च-वर्गके व्यक्ति व सर्व-साधारण दोनों ही असहयोग-आन्दोलनको एक खयाली और हवाई योजना समझकर रद्द कर देंगे। क्योंकि यदि यह योजना सफल हो जाय तो उससे चारों ओर अशान्ति व राजनैतिक गोलमाल फैले बिना नहीं रह सकता और जिन लोगोंके देशमें कुछ भी स्वार्थ-सम्बन्ध हैं, उनका सर्वनाश हुए बिना नहीं रह सकता। असहयोग-आन्दोलन अज्ञान और पूर्व-विश्वासोंके सहारे ही टिक सकता है; और उसके उद्देश्यमें रचनात्मक बातोंका तो नामों-निशां भी नहीं है।" निःसन्देह सरकारको अपने इस विश्वासके ढहनेपर आश्चर्य हो रहा था। गांधीजीको आखिर मुँह-माँगे रुपये और आदमी कैसे और कहाँसे मिल गये—यह पता न लगा सकी। लेकिन इतना तो सरकारको प्रत्यक्ष हो ही गया था कि भारतने, जो अबतक दबकर चला करता था, अपनी कमर सीधी कर ली है।

गांधीजी और लार्ड रीडिंग

इसी समय वाइसराय लार्ड चेम्सफ़ोर्ड भी बदले गये और उनकी जगह लार्ड रीडिंग वाइसराय होकर आये। महामना मालवीयजीकी मध्यस्थतासे रीडिंग और गांधीजी परस्पर मिले। इस मुलाकातसे वाइसरायको गांधीजीकी सचाई और शुद्धभावका पता चला और उन्होंने घोषित किया कि वे खुद असहयोग-आन्दोलनके खिलाफ तबतक कोई कार्यवाही न करेंगे जबतक उसमें हिंसाको नहीं अपनाया जायगा। गांधीजीने यह स्वीकार किया। प्रसंगवश वाइसरायने इसी समय अली-भाइयोंके कुछ व्याख्यानोंकी ओर गांधीजीका ध्यान दिलाया और बतलाया कि इन व्याख्यानोंका अर्थ हिंसाको उत्तेजना देना भी लगाया जा सकता है। अहिंसा और सत्यके पुजारी गांधीजीने उन व्याख्यानोंको देखा और उन्हें भी लगा कि हाँ, उनका अर्थ हिंसा लिया जा सकता है। फलतः गांधीजीने

'माफीके' तौरपर अली-भाइयोंसे एक ऐसा व्यक्तव्य प्रेषित करवाया जिससे कि उनका आशय हिंसासे न था।

इस 'माफीसे' नौकरशाही खुश हो उठी। अँग्रेजोंने इसे लार्ड रीडिंग और सरकारकी भारी विजय समझी और खुशीमें फूले न समाये।

किन्तु गांधीजीका असहयोग-आन्दोलन बढ़ता ही गया। आन्दोलनके लिए तिलक-स्वराज्य-कोषमें पूर्व निश्चित रकमसे १५ लाख रुपये अधिक आ गये थे। चर्खे भी २० लाख चलने लगे थे। फलतः विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार खूब जोरोंसे चल रहा था। जुलाई, १९२१ में बम्बईमें महासमितिने विदेशीके पूर्ण बहिष्कारके लिए यह आदेश भी जारी किया कि "समस्त काँग्रेसी आगामी ९ अगस्तसे विदेशी कपड़ोंका उपयोग छोड़ दें।" इस प्रकार विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार पूर्णताको पहुँच गया।

विदेशी वस्त्रोंके साथ सरकारी नौकरियोंके बहिष्कारका आन्दोलन तथा मद्य-निषेध आन्दोलन भी काफी तेजीसे चला। इन सब बहिष्कारोंके परिणामसे सरकार बौखला उठी। सरकारने अहिंसक पिकेटरोंपर जुल्म करने शुरू कर दिये। यह जुल्म और दमन सर्वत्र बड़े भयानक रूपसे होने लगा। पर सरकार द्वारा बहुत उत्तेजित किये जानेपर भी अधिकतर सत्याग्रही अहिंसाके मार्गपर दृढ़ ही बने रहे। अलीगढ़में कुछ लोगोंने सरकार द्वारा बहुत उत्तेजित किये जानेपर थोड़ा-सा हिंसाकी ओर भी कदम बढ़ाया जरूर था; लेकिन गांधीजी और महासमितिने तुरंत उन्हें हिंसासे मुख मोड़नेका आदेश दिया। लोग मान गये। फलतः धारवाड़, मतियाँ गुन्तूर, चिराला-पेराला, केरल, मलाबार तथा अन्य स्थानोंमें भारी उत्तेजनाके बावजूद भी लोगोंने अपने आत्म-संयमको नहीं खोने दिया। सरकार दमन करती गयी और लोग सहते चले गये। सबसे भयंकर दमन तो युक्त-प्रान्तमें हुआ। युक्त-प्रान्तमें कई जगहोंपर गोली चली, आदमी मारे गये और बहुत-से लोग गिरफ्तार करके जेलोंमें ठूँस दिये गये। इस दमनसे

ऊबकर लोग सविनय-अवज्ञा शुरू करनेके लिए कॉंग्रेस और गांधीजीसे जोरदार प्रार्थना करने लगे।

देशभरमें उपद्रव केवल उन्हीं स्थानोंमें हुए थे, जहाँ कॉंग्रेस व खिलाफत-आन्दोलनको रोका गया था, लेकिन तब भी कॉंग्रेस व खिलाफतके कार्यकर्त्ताओंने काफी खतरा उठाकर, लोगोंके जोशको काबूमें रखकर, उन्हें हिंसात्मक कार्य करनेसे रोका था।

मोपला-उपद्रव

इन देशव्यापी उपद्रवोंमें सबसे खेदजनक और दुःखपूर्ण उपद्रव मोपलोंका था। मलाबारके मोपला मुसलमानोंने भी असहयोग-आन्दोलनमें भाग लिया था। अतः केरल प्रान्तके उस भागमें (वालुनाद और अरनाद तालुकों) जहाँ मोपला मुसलमान ही अधिकतर रहते थे वहाँ सरकारने १४४ धारा लगा दी। मोपलोंके धार्मिक नेताओं या थुंगलोंका अपमान किया गया। इसपर मोपलोंने उत्तेजित होकर विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह हिंसात्मक था। सरकारने अवसर पाकर मोपलोंको बुरी तरहसे कुचल डाला।

इसी समय असहयोग व खिलाफत आन्दोलनके विरोधी मोपलोंके एक दलने मोपलोंके राजनैतिक विद्रोहको साम्प्रदायिक रूप दे डाला। फलतः सैकड़ों हिन्दू मोपलोंद्वारा मार डाले गये और मंजेरीके आसपास रहनेवाले बहुत-से हिन्दू-परिवारोंको जबरदस्ती मुसलमान भी बना लिया गया। कॉंग्रेसको मोपलोंके इस व्यवहारसे दुख हुआ और देशपर भी उसका बहुत बुरा असर पड़ा। मोपलोंके दंगेने एक प्रकारसे देशमें साम्प्रदायिक दंगोंके फैलानेका बहुत निन्दनीय कार्य किया। इन साम्प्रदायिक दंगोंके कारण हिन्दू-मुस्लिम-एकता खतरेमें पड़ गयी।

असहयोग जोरोंपर

देशमें एक तरफ उपद्रव प्रारम्भ किये जाते थे, पर दूसरी ओर असहयोग-

आन्दोलन भी बढ़ता ही जाता था। घटनाएँ तेजीसे घट रही थीं। जुलाई, १९२१ को करांचीमें अखिल भारतीय खिलाफत-परिषद् हुई, जिसमें मौलाना मुहम्मदअलीने सभापतिके पदसे एक बहुत ही गर्म और महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था। मुहम्मदअलीने आवाज दी थी—"आजसे किसी भी ईमानदार मुसलमानके लिए फौजमें नौकर रहना, या उसकी भर्तीमें नाम लिखाना, या उसमें मदद करना हराम है।" परिषद्ने भी एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की थी। इस प्रकारकी धमकी देना निश्चय ही एक बहुत बड़ी बात थी—बड़े साहसका कार्य था। सरकारने इस घोषणामें राजद्रोह पाया और इस डरसे कि कहीं राजद्रोहकी आग तेजीसे भड़क न उठे, सरकारने परिषद्में भाग लेनेवाले अली-बन्धु, डा० किचलू, शारदापीठके जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य, आदिको गिरफ्तार कर उनपर मुकदमे दायर कर दिये।

इन गिरफ्तारियों और मुकदमेकी धमकीके द्वारा सरकारने एक प्रकारसे काँग्रेसको चुनौती दी थी। गांधीजी और काँग्रेसने इस चुनौतीको स्वीकार कर लिया। सारा देश गांधीजीके नेतृत्वमें सरकारके द्वारा संघर्षके लिए ललकारे जानेपर सत्याग्रहके लिए तैयार हो गया। गांधीजीने जब यह खबर पायी कि करांचीके भाषणके लिए मौ० मुहम्मदअली, आदिपर मुकदमा चलाया जायगा, तो उन्होंने स्वयं त्रिचनापल्ली में—जहाँपर वे उस समय थे—उस भाषणको दोहराया। काँग्रेस-कार्य-समितिने ५ अक्तूबरको करांचीके भाषणके आधार पर लोगोंको फौज और पुलिससे नौकरी छोड़नेका प्रस्ताव पास किया। गांधीजीने सम्पूर्ण राष्ट्रको सलाह दी कि वे मुहम्मदअलीके भाषण व कार्य-समितिके प्रस्तावको सर्वत्र दोहरायें। परिणाम यह हुआ कि मौ० मुहम्मदअलीका भाषण २६ अक्तूबरको देशभरमें हजारों सभाओंमें दोहराया गया। नवम्बरमें हुई दिल्लीकी महासमितिने प्रान्तोंको सत्याग्रहकी इजाजत भी दे दी। सत्याग्रह और असहयोग-आन्दोलनमें अब पूर्ण वेग पैदा हो गया था। गांधीजीने असहयोग-आन्दोलनको शुरू करते समय स्वराज्य प्राप्तिके लिए एक वर्षकी अवधि दी

थी और उस अवधिमें अब केवल एक महीना रह गया था। अतः सम्पूर्ण देश अपने इष्टको तेजीसे प्राप्त करनेके लिए उतावला हो रहा था। लोग स्वराज्यकी लड़ाईमें सब कुछ झोंक देनेको तैयार हो उठे थे। गांधीजीका ही यह जादू था जिसने सम्पूर्ण देशके निहत्थे जन-समुदायमें सर्वशक्तिमान् सरकारका निर्भय होकर मुकाबला करनेकी शक्ति और प्रवृत्ति पैदा कर दी थी।

युवराजका पूर्ण बहिष्कार

इसी समय, जबकि सम्पूर्ण देशमें अस्तव्यस्तता फैली हुई थी, युवराज (प्रिन्स ऑफ़ वेल्स) ब्रिटिश-सरकारकी प्रतिष्ठा कायम करनेके लिए भारत भेजे गये। नवम्बर, १९२१ में युवराज बम्बई पहुँचे। कॉंग्रेसने युवराजके स्वागतका बहिष्कार करनेका निश्चय कर रखा था। अतः युवराजके बम्बईमें पाँव रखते ही जोरोंकी हड़ताल की गयी। पुलिसने हड़तालियों और बहिष्कार करनेवाली जनतापर प्रहार किये। लोग भड़क उठे और उन्होंने भी पुलिसपर उलटकर आक्रमण किया। सरकारने फौजको भी बुलाया। चार दिनों तक बम्बईकी उत्तेजित जनता और पुलिस-फौजमें मुठभेड़ होती रही, जिसके फलस्वरूप ५२ आदमी मरे और ४०० घायल हुए। लोग इतने उत्तेजित हो रहे थे कि अच्छे-बुरे और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका विचार ही उनके हृदय वा मस्तिष्कसे उठ गया था। वे ब्रिटिश-सरकारसे खुलकर लोहा लेनेको उद्यत हो उठे थे। वे इतने उत्तेजित थे कि गांधीजी और सरोजनीदेवीके रोके भी न रुकते थे। गोरे प्रभुओंका भय उनके हृदयसे काफूर हो चुका था। गांधीजीको भीड़के हिंसात्मक और अशान्तिपूर्ण कृत्योंसे दुःख हुआ और उन्होंने जनताकी ज्यादतियोंका प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पाँच दिनका व्रत लिया। अहिंसाके पथसे लोगोंको दूर हटा देखकर गांधीजीने उस समय ठीक ही कहा था, "मेरे नथुनोंमें स्वराज्यकी सड़ांद आ रही है।"

युवराज जहाँ भी गये, देशकी जनताने उनका बहिष्कार किया। २५

दिसम्बरको युवराज कलकत्ता जानेवाले थे। अतः बंगाल-सरकारने वहाँ पहिलेसे ही क्रिमिनल-ला-अमेंडमेन्ट-ऐक्टके अनुसार काँग्रेस द्वारा स्वयं-सेवक भर्ती करना गैर-कानूनी करार दे दिया था और देशबन्धु दास, उनकी पत्नी और पुत्रके साथ बहुत-से आदमियोंको गिरफ्तार भी कर लिया। कलकत्तेकी भाँति संयुक्त-प्रान्त और पंजाबमें भी गिरफ्तारियाँ की गयीं। फलस्वरूप दिसम्बरमें देशके सभी बड़े-बड़े नेता—सपरिवार देशबन्धु दास, लाला लाजपतराय, पंडित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आज़ाद, राजगोपालाचार्य आदि—जेलमें ठूँस दिये गये। हजारोंकी संख्यामें दूसरे छोटे-मोटे काँग्रेसी भी गिरफ्तार करके जेलोंमें भर दिये गये।

इन गिरफ्तारियोंसे सम्पूर्ण देशभरमें एक अजीब सनसनी और तेजकी लहर फैल उठी थी। उस समय भारतीयोंकी मनोदशा कैसी थी, इसका विवरण देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू अपनी आत्मकथामें लिखते हैं :—

"हममें बहुत-से लोग, जो काँग्रेस-कार्यक्रमको पूरा करनेमें लगे हुए थे, सन् १९२१ में मानो एक किस्मके नशेमें मतवाले हो रहे थे। हमारे जोश, आशावाद और उछलते हुए उत्साहका ठिकाना न था। हमें वैसा आनन्द और सुखका स्वाद आता था जैसा किसी शुभ कामके लिए धर्म-युद्ध करनेवालेको होता है। हमारे मनमें न शंकाओंके लिए जगह थी, न हिचकके लिए। हमें अपना रास्ता अपने सामने बिलकुल साफ दिखायी देता था, और हम आगे बढ़ते चले जाते थे, दूसरोंके उत्साहसे उत्साहित होते तथा औरोंको आगे धक्का देते थे। हमने जी-जान लगाकर काम करनेमें कोई बात उठा न रखी थी, इतनी बड़ी मेहनत हमने कभी न की थी; क्योंकि हम जानते थे कि सरकारसे मुकाबला शीघ्र ही होने-वाला है, और सरकार हमें उठाकर अलग कर दे, इससे पहिले हम ज्यादा-से-ज्यादा काम कर डालना चाहते थे।

इन सब बातोंसे बढ़कर हमारे अन्दर आजादीका और आजादीके गर्वका भाव आ गया था। यह पुराना भाव, कि हम दबे हुए हैं और हमें कामयाबी

नहीं हो सकती, बिलकुल चला गया था। अब न तो डरसे कानाफूसी होती थी और न गोल-मोल कानूनी भाषा ही इस्तेमाल की जाती थी, जिससे अधिकारियोंके साथ झगड़ा मोल लेनेसे अपनेको बचाया जा सके। हम वही करते थे जो हम मानते थे और महसूस करते थे, और उसे खुल्लमखुल्ला डकेकी चोटपर कहते थे। हमें उसके नतीजेकी क्या परवाह थी ?—जेल ! उसकी तो हम राह ही देख रहे थे। उससे तो उद्देश्य-सिद्धिमें मदद ही पहुँचनेवाली थी। बेशुमार भेदिया और खुफिया पुलिसके लोग हमें घेरे रहते थे और हम जहाँ जाते वहाँ साथ रहते थे। उनकी हालत दयनीय हो गयी थी ; क्योंकि हमारे पास उनके पता लगानेके लिए कोई बात छिपी ही न थी। हमारी सारी बाजी खुली हुई थी ।

ज्यों-ज्यों हमारा नैतिक तेज और हमारा सत्य बढ़ता गया, त्यों-त्यों सरकारका तेज घटता गया। उसकी समझमें नहीं आता था कि यह क्या हो रहा है। ऐसा जान पड़ता था कि हिन्दुस्तानमें उसकी परिचित पुरानी दुनिया एकाएक ढही जा रही है। दूर-दूर तक एक नया आक्रामक भाव, 'आत्मावलम्बन और निर्भयताके भाव फैल रहे हैं और भारतमें ब्रिटिश-हुकूमतका बहुत बड़ा सहारा —रोब—स्पष्टतया दूर होता जा रहा है। थोड़ा-थोड़ा दमन करनेसे आन्दोलन उलटा बढ़ता जाता था और सरकार बहुत देर तक बड़े-बड़े नेताओंपर हाथ डालनेमें हिचकती ही रही। वह नहीं जानती थी कि इसका नतीजा आखिर क्या होगा। हिन्दुस्तानी फौजपर भरोसा रखा जा सकता है या नहीं ? पुलिस हमारे हुक्मोंपर अमल करेगी या नहीं ? दिसम्बर, १९२१ में लार्ड रीडिंगने तो कह ही दिया था कि हम 'हैरान और परेशान हो रहे हैं।"

ब्रिटिश-अफसरोंकी परेशानी कैसी बढ़ी हुई थी, इसका जिक्र करते हुए नेहरूजी आगे लिखते हैं—"कितने ही ब्रिटिश अफसरोंके होश-हवास गुम होने लगे थे। दिमागी परेशानी कम न थी। दिनोंदिन विरोध और हुकूमतका मुकाबला करनेकी भावना प्रबल होती जा रही थी, जिससे हाकिमोंके हृदयाकाशपर चिन्ताके घने बादल मँडरा रहे थे।"

किन्तु इतनेपर भी, चूँकि कांग्रेसके साधन शान्तिमय थे, सरकार उनपर प्रहार करनेमें घबराती थी। काँग्रेस-आन्दोलनके इस अहिंसक और नैतिक पक्ष-पर खुश होते हुए नेहरूजी लिखते हैं—"मैं जिस बातका आदर करता था वह थी उस आन्दोलनका नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी पहलू तथा सत्याग्रह। मैंने अहिंसाके सिद्धान्तको सोलहों आने नहीं मान लिया था, या हमेशाके लिए नहीं अपना लिया था, लेकिन हाँ, वह मुझे अपनी तरफ अधिकाधिक खींचता चला जाता था और यह विश्वास मेरे दिलमें बैठता जाता था कि हिन्दुस्तानकी जैसी परिस्थिति बन गयी है, हमारी जैसी परम्परा और संस्कार हैं, उन्हें देखते हुए यही हमारे लिए सही नीति है। राजनीतिको आध्यात्मिकता-के—सकीर्ण धार्मिक मानी में नहीं—साँचेमें ढालना मुझे एक उम्दा ख्याल मालूम हुआ। निस्सन्देह एक उच्च ध्येयको पानेके लिए साधन भी वैसे ही उच्च होने चाहिएँ—यह एक अच्छा नीति-सिद्धान्त ही नहीं, बल्कि निर्भ्रान्त व्यावहारिक राजनीति भी थी; क्योंकि जो साधन अच्छे नहीं होते, वे प्रायः हमारे उद्देश्यको ही निष्फल बना देते हैं, और नयी समस्याएँ और नयी दिक्कतें पैदा कर देते हैं। और ऐसी दशामें, एक व्यक्ति या एक कौमके लिए, ऐसे साधनोंके सामने सिर झुकाना, दलदलमेंसे गुजरना कितना बुरा, कितना स्वाभि-मानको गिरानेवाला मालूम होता था। उससे अपनेको कलुषित किये बिना कोई कैसे बच सकता था? अगर हम सिर झुकाते हैं, या पेटके बल रेंगते हैं, तो कैसे हम अपने गौरवको कायम रखते हुए तेजीके साथ आगे बढ़ सकते हैं?"*

इस प्रकार १९२१ का भारत एक क्रान्तिकारी भारत था। उस समय सब लोग पुरानी गुलामीकी स्थितिको त्यागकर स्वतन्त्रता और स्वराज्यकी ओर तेजी और स्फूर्तिके साथ कदम बढ़ाये चले जा रहे थे। उनके इस अदम्य

---

*—मेरी कहानी—पृष्ठ ९३-९९

उत्साहको देखकर नेहरूजी लिखते हैं—"जनताकी यह असाधारण चुस्ती और मजबूती ही हममें विश्वास भर देती थी। हिम्मत हारे, पिछड़े और दबे हुए लोग अचानक अपनी कमर सीधी और सिर ऊँचा करके चलने लगे और एक देशव्यापी, सुनियन्त्रित और सम्मिलित उपायमें जुट पड़े।"*

इस प्रकारसे और उत्साहित करने या मरनेको तैयार एवम् जनताको जोर-जबरसे दबाना निःसन्देह मुश्किल कार्य था। सन् १९२१ में सरकारके दमन-कार्योंके फलस्वरूप लगभग तीस हजार आदमी जेलोंमें ठूँस दिये गये थे। किन्तु इतनेपर भी आन्दोलनके दबनेका कोई चिह्न नजर नहीं आता था—सरकारकी दमन दवासे सत्याग्रहका मर्ज बढ़ता ही गया। सरकार सोचती थी कि सम्भवतः इस प्रकारके दमनसे हिन्दुस्तानी भयभीत होकर युवराजका बहिष्कार करना छोड़ देंगे; लेकिन इसके विपरीत बहिष्कार और भी अधिक उग्र होता गया।

गांधीजी अभी बाहर ही थे। असहयोग और सत्याग्रहका इतना जोर होने-पर भी सरकार उनपर हाथ डालनेमें हिचकती थी, क्योंकि उसे डर था कि ऐसा करनेसे कहीं सम्पूर्ण हिन्दुस्तान तथा फौज और पुलिस भी विद्रोह न कर बैठे। गांधीजीके बाहर रहनेसे जनताका उत्साह और स्फूर्ति बढ़ती ही जाती थी। जनताको अपने सेना-नायकपर गर्व था। वे देख रहे थे कि सरकार भी उनसे कितना भय खाती है कि उनको हाथ नहीं लगा पाती। और बेचारे गांधीजी अनियन्त्रित भीड़को अहिंसाके मार्गसे जहाँ डिगती देखते थे, फौरन् वहीं दौड़ पड़ते थे और उन्हें सही रास्तेपर ला देते थे। निःसन्देह, गांधीजी इस दरमियान अपने अनुयायियोंको शुद्धाचरणके प्रति जाग्रत रखनेके लिए हर प्रकारसे प्रयत्न करते रहे जिसके फलस्वरूप कई अवाञ्छनीय घटनाएँ घटनेसे बच गयीं।

इधर सरकार इस समय हर प्रकारसे ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहती थी कि युवराजके कलकत्ता पहुँचनेपर कोई हड़ताल आदि न हो। इसके लिए सरकार

*—वही—पृष्ठ १०२

काँग्रेस और गांधीजीसे समझौता तक कर लेना चाहती थी। सरकार और काँग्रेसके बीचमें समझौता करानेके लिए महामना मालवीयजी काफी प्रयत्नशील थे ; किन्तु युवराजको कलकत्ते पहुँचनेका समय आ पहुँचा और तबतक गांधीजीके साथ समझौतेकी शर्तें तय न हो सकीं। देशबन्धु समझौतेके लिए राजी हो गये थे, लेकिन गांधीजी दृढ़ थे। वे ऐसी शर्तोंको कबूल नहीं कर सकते थे जिनमें कराँचीके भाषणवाले कैदियों—अलीबन्धु आदिको रिहा करनेसे इनकार किया गया था। इसके अलावा गांधीजी चाहते थे कि सरकारने जिस कॉन्फ्रेन्सको करके भारतीय समस्याओंके बारेमें विचार करनेका जो वायदा किया है, उस कॉन्फ्रेन्सकी तिथि और कार्यक्रम निश्चित हो जाना चाहिए। किन्तु ऐसा न हो सका। सन्धिकी चर्चा टूट गयी और युवराजका बहिष्कार किये जानेके निश्चयमें काँग्रेसने कोई परिवर्तन न किया।

फलतः युवराजके कलकत्ता पहुँचनेपर खूब जोरोंसे हड़ताल हुई—ऐसी हड़ताल और जगहोंपर भी न हुई थी। कलकत्तेमें कसाइयोंतकने अपनी दूकानें बन्द रखीं। लोगोंके हृदयोंसे गौरांग-प्रभुओंका भय और आतंक खत्म हो चुका था। लोग केवल एक व्यक्तिकी बातें सुननेको तैयार थे—केवल गांधीजी उनसे जो चाहें कहें और करावें, बाकी युवराज अथवा सम्राट्की बातोंको सुननेके लिए उनमें न उत्साह था और न अनुराग। युवराजका प्रेम-संदेश सुननेकी किसीको इच्छा ही न रह गयी थी। अंग्रेजी सरकारके शब्दोंपरसे हिन्दुस्तानियोंका विश्वास ही उठ गया था। अंग्रेज यह सब देखकर क्रोधसे तमतमा उठे, पर करते क्या ? लोगोंको जेलमें ठूँसते, परन्तु इस 'जेल' से गांधीजीके अनुयायी डरते ही न थे। करीब तीस हजार तक लोग जेलोंमें जा चुके थे और तब भी कोई पीछे न हटता था।

इस प्रकार असहयोग और बहिष्कारका आन्दोलन बढ़ता ही गया। युवराज-का सर्वत्र ही सम्पूर्ण बहिष्कार हुआ और सर्वत्र विदेशी वस्त्रोंकी होलिकाएँ जलायी गयीं। उन दिनों हिन्दुस्तानके सभी नगरोंमें जनता द्वारा वस्त्रोंके जलाये जानेका

दृश्य देखनेको मिलता था। लोग इस तरहसे उत्साहित होकर अंग्रेजी वस्त्रोंको जलाया करते थे मानो कोई भारी यज्ञ कर रहे हों। वस्त्रोंकी होलीके समीप सैकड़ों और हजारों देखनेवालोंकी भीड़ एकत्र हो जाती थी और उनमेंसे जो विदेशी कपड़ेके कोट, कमीज या टोपी पहने हुए होते थे उसे तुरन्त निकालकर अग्नि-कुण्डके सुपुर्द कर देते थे। लोगोंके उत्साहका ठिकाना न था। असहयोग और बहिष्कार अपनी चरम सीमाको पहुँच गये थे।

अहमदाबाद-कॉंग्रेस

जनताके अपार उत्साहका एक जबरदस्त कारण गान्धीजीकी भविष्यवाणी भी थी। गान्धीजीने कहा था कि यदि जनताने हमारे आदेशानुसार कार्य किया, तो एक सालके अन्दर स्वराज्य दिला दूँगा। सन् १९२१ में यह भविष्यवाणी हुई थी और अब साल पूरा होनेमें एक या डेढ़ महीना ही रह गया था। अतः लोग जल्दी-से-जल्दी और पूरी तेजीके साथ गान्धीजीके असहयोग और बहिष्कारकी आज्ञाओंका पालन करके सन् १९२२ के प्रारम्भमें स्वराज्यको वास्तविक रूपमें देखनेके लिए उत्सुक हो रहे थे। उन्हें अपने नेताके वचनोंपर विश्वास था।

इस समय हर एकके दिलमें यही आशाएँ उमड़ रही थीं—एक सालमें स्वराज्य। अतः सब लोग अपनी इस आशाको सफल रूपमें देखनेके लिए सब-कुछ करने और भोगनेको तैयार हो रहे थे। लोग भय छोड़ चुके थे और आत्म-सम्मानका भाव अब उत्कर्षको पहुँच चुका था। लोग गान्धीजीके आदेशपर मर मिटनेको सन्नद्ध थे। बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि गांधीजी द्वारा स्वराज्य-प्राप्तिकी दी हुई तिथि खत्म होनेको जा रही थी, लेकिन तब भी लोग गान्धीजीके कथनपर अटल रूपसे विश्वास किये हुए थे। लोग चाहते थे कि गान्धीजी उन्हें एकदम सामूहिक सत्याग्रहकी आज्ञा दे दें, यद्यपि गान्धीजी स्वयं सामूहिक सत्याग्रहके स्वरूपको उस समय तक ठीक तरहसे चित्रित न कर पाये थे।

श्री पट्टाभि सामूहिक सत्याग्रहके स्वरूपकी समीक्षा करते हुए लिखते हैं—"गांधी जीने इसका खुद कोई लक्षण नहीं बनाया, कभी उसे विस्तारसे नहीं समझाया, न खुद उनके दिमागमें ही इसकी स्पष्ट कल्पना रही होगी।" क्योंकि "वह तो एक शोधक, एक शुद्ध हृदयके सामने उसी तरह अपने-आप खुल जाता है, उसके एक-एक कदम दिखायी पड़ते हैं जिस तरह एक बियाबान जंगल में एक आदमी चलता है और उस थके-माँदे, निराश मुसाफिरको घूमते-घामते अपने-आप रास्ता मिल जाता है।"*

देशकी जब ऐसी मनोदशा थी और काँग्रेसके बहुत-से नेता जेलोंमें थे, सन् १९२१ के दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें अहमदाबाद-काँग्रेस हुई। उसके मनोनीत सभापति देशबन्धु दासके जेलमें होनेके कारण उनकी जगह हकीम अजमलखाँ सभापति चुने गये। वल्लभभाई उसके स्वागताध्यक्ष थे। देशबन्धुका भाषण उनकी तरफसे सरोजनी देवीने पढ़ा था। असहयोगको त्यागकर सहयोगकी नीतिके बारेमें भाषणमें कहा गया था,—'वह इंगलैंडके साथ सहयोग करनेपर बिल्कुल तैयार थे, परन्तु एक ही शर्तपर कि वह भारतवर्षके जन्म सिद्ध अधिकार अर्थात् आजादीको तसलीम करे।'.........'मैं इज्जतको खोकर शान्ति खरीदना नहीं चाहता।'......और जबतक हम अपने घरका इन्तजाम अपने-आप करें, अपने स्वतंत्र व्यक्तित्वका विकास करें और अपने भाग्यका निर्माण अपने-आप करें, इस अधिकारको तसलीम नहीं कर लिया जाता, मैं सुलहकी किसी शर्तपर विचार करनेको तैयार नहीं हूँ।'†

अधिवेशनका मुख्य प्रस्ताव गान्धीजीके द्वारा पेश किया गया था। इस काँग्रेस-में भी अकेले गान्धीजी ही सर्वोपरि थे। काँग्रेसकी नीति और देशके भाग्यका निर्णय उन्हींके हाथोंमें था। प्रस्तावको पेश करते समय सरकारको ललकारते हुए गान्धीजीने कहा था—"यह प्रस्ताव किसी व्यक्तिके लिए कोई उद्धत चुनौती नहीं

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २१७। †—वही—पृष्ठ २१८।

है, बल्कि यह तो उस हुकूमतको चुनौती है, जो उद्धतताके सिंहासनपर विराजमान है। यह एक नम्र किन्तु दृढ़ चुनौती है—उस हुकूमतको जो अपनेको बचानेकी गरजसे राय देने और मिलने-जुलनेकी आजादीको कुचल देना चाहती है;—और यह दो तरहकी आजादी तो मानो स्वाधीनताकी शुद्ध वायुकी साँस लेनेके लिए दो फेफड़ोंके समान है।'' प्रस्तावमें असहयोग और उसके प्रति देशके संबन्धमें कहा गया था।......'अहिंसात्मक असहयोगके करनेसे देशने निर्भयता, आत्म-बलिदान और आत्म-सम्मानके मार्गपर बहुत उन्नति की है और चूँकि इस आन्दोलनने सरकारके सम्मानको बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया है और चूँकि देशकी प्रगति स्वराज्यकी ओर तीव्र गतिसे हो रही है, इसलिए यह काँग्रेस कलकत्तेके विशेष अधिवेशन द्वारा स्वीकृत और नागपुरमें दोहराये गये प्रस्तावका स्वीकार करती है—और अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक पंजाब और खिलाफतके अत्याचारोंका निवारण नहीं हो जायगा, स्वराज्यकी स्थापना नहीं हो जायगी और भारतवर्षका शासन-सूत्र एक उत्तरदायित्व-हीन संस्थाके हाथसे निकलकर भारतीयोंके हाथमें नहीं आ जायगा, तबतक अहिंसात्मक असहयोगका कार्यक्रम इस समयकी अपेक्षा अधिक उत्साहसे···चलता रहेगा।......वाइसरायने अपने हालके भाषणमें धमकी दी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि भारत-सरकारने अनेक प्रान्तोंमें स्वयं-सेवक संस्थाओंको गैर-कानूनी और उच्छृंखल रूपसे विच्छिन्न करके, सार्वजनिक सभाओं और समितियोंकी बैठकोंकी भी मनाही करके और भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें अनेक काँग्रेस-कार्यकर्त्ताओंको गिरफ्तार करके दमन आरम्भ किया है,......इसलिए यह काँग्रेस निश्चय करती है कि जहाँ तक आवश्यक हो, काँग्रेसके सब कार्य स्थगित रखे जायें—और सब लोगोंसे प्रार्थना करती है कि वे शान्तिके साथ बिना किसी धूम-धामके स्वयंसेवक-संस्थाओंके सदस्य होकर गिरफ्तार होवें।'* भरती होनेवाले स्वयं

*—वही—पृष्ठ २१८-२१९

सेवकोंको बहुत-से नियमोंका पालना भी जरूरी था जैसे—अहिंसा, अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और सेवा, त्याग, बलिदान, आदि। राष्ट्रीय विद्यालयोंके विद्यार्थी और अध्यापकोंसे भी स्वयंसेवकोंमें पूर्णरूपसे भर्ती होनेका भी कॉंग्रेसने अपने प्रस्तावमें ऐलान किया था। प्रस्तावकी घोषणाके अनुसार गान्धीजीको सर्वेसर्वा नियुक्त कर उन्हें महासमितिके सारे अधिकार दे दिये गये थे।

इस कॉंग्रेसमें मौलाना हसरत मोहानीने एक तजवीज पेश की थी कि कॉंग्रेसका ध्येय "पूर्ण स्वतन्त्रता, विदेशियोंके नियन्त्रणसे पूरी आज़ादी" कर दिया जाय, लेकिन गांधीजीने इसका विरोध किया। यह विरोध इसलिए नहीं किया गया था कि गान्धीजी पूर्ण आजादीके पक्षमें न थे, बल्कि इसलिए कि गान्धीजी तब यह विश्वास नहीं करते थे कि देशमें इतनी एकता और सामर्थ्य आ गयी है कि वह पूर्ण स्वतन्त्रताका भार सँभाल सके।

सर्वदल-सम्मेलन

गान्धीजीके नेतृत्वमें कॉंग्रेसने और जोरोंसे असहयोग और सत्याग्रहको चलानेका निश्चय किया ही था कि अन्य कुछ नेताओंने कॉंग्रेस और सरकारके बीचमें शान्ति-स्थापनाके लिए तभी (जनवरी, १९२२ में) बम्बईमें एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलनमें भिन्न-भिन्न दलोंके लगभग ३०० व्यक्तियोंने भाग लिया था। गान्धीजी भी व्यक्तिगत रूपसे उसमें शामिल हुए थे। सम्मेलनने सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव पास किया जिसमें सरकारकी दमन-नीतिकी निन्दा की गयी थी और साथमें कॉंग्रेसको भी यह सलाह दी गयी थी कि जबतक समझौतेकी बात-चीत चलती रहे, अहमदाबादके प्रस्तावके अनुसार सत्याग्रह शुरू न किया जाय। प्रस्तावमें एक ऐसी गोल-मेज परिषद शीघ्र ही बुलानेकी माँग की गयी, जिसे खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी मामलोंपर समझौता करनेका अधिकार हो। और साथ ही जो देशमें अनुकूल वातावरण तैयार करनेके लिए क्रिमिनल-

लॉ-अमेन्डमेन्टके अन्तर्गत संस्थाओंको गैर-कानूनी करार देनेवाले सारे आदेशोंको, राजद्रोहात्मक सभा-विरोधी कानूनोंको रद्द करने, उनके द्वारा सजायाफ्ता या विचाराधीन लोगोंको मुक्त कराने और 'फतवा-कैदियों' को छुड़ानेके लिए सरकार से अनुरोध करे।"*

बारडोली—सामूहिक सत्याग्रहकी तैयारी

सम्मेलनके इस प्रस्तावको काँग्रेसकी कार्यसमितिने स्वीकार कर लिया। गान्धीजी भी जनवरी-भर सत्याग्रहको बन्द करनेके लिए राजी हो गये। किन्तु वाइसरायने सम्मेलनकी शर्तोंको मंजूर न किया। फलतः गान्धीजीने भी पहली फरवरी, १९२२ को वाइसरायको पत्र लिखकर बारडोलीमें सामूहिक सत्याग्रह करनेकी सूचना भेज दी।

गान्धीजीके इस निश्चयके साथ भारतकी राजनैतिक हलचलका केन्द्र गुजरातके बारडोली प्रान्तमें चला गया। गान्धीजीने बारडोलीमें कर-बन्दी आन्दोलनका श्रीगणेश करनेका निश्चय किया था। अन्य प्रान्तोंको प्रारम्भमें गान्धीजीने ऐसे आन्दोलनको करनेकी सम्मति नहीं दी क्योंकि वे ऐसा करनेके पहले स्वयं उसका बारडोलीमें प्रयोग करके यह देख लेना चाहते थे कि अहिंसात्मक रीति-पर ऐसा आन्दोलन चलाया जा सकता है या नहीं। यह आन्दोलन गान्धीजी इसलिए कर रहे थे कि लोगोंको बोलने, लिखने और सभा करनेके हक प्राप्त हो जायँ।

ऐतिहासिक पत्र

बारडोली-सत्याग्रहके आधार-भूत कारणोंपर गान्धीजीने पहली फरवरी, २२ को वाइसरायको लिखे अपने पत्रमें पूरा प्रकाश डाल दिया था। भारतके

*—वही—पृष्ठ १२३-१२४

सत्याग्रह-आन्दोलनके इतिहासमें वह पत्र बहुत ही महत्वका है। पत्रकी महत्ता और विशेषता उसके पूरी तरह पढ़नेसे ही मालूम होती है। पत्रमें लिखा गया था—

"बारडोली बम्बई प्रान्तके सूरत जिलेका एक छोटा-सा ताल्लुका है जिसकी जन-संख्या कुल मिलाकर ८७,००० है।

"गत नवम्बरकी दिल्लीवाली महासमितिकी बैठकमें जो प्रस्ताव पास हुआ था, तदनुसार इस ताल्लुकेने उसकी सारी बातोंके पालनकी अपनी योग्यता साबित कर दी है और गत २९ जनवरीको विट्ठलभाई जवेरभाई पटेलकी अध्यक्षतामें सामूहिक सत्याग्रह करनेका निश्चय किया था। पर चूँकि इस निश्चय-की जिम्मेवारी मुख्यतः शायद मेरे ही ऊपर है, इसलिए मैं उस हालतको, जिसमें यह निश्चय किया गया है, आपके और जनताके सामने रखना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

"महासमितिके प्रस्तावके अनुसार बारडोलीको सामूहिक सत्याग्रहका पहला केन्द्र बनानेका निश्चय किया था जिससे सरकारकी, भारतके खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-संबंधी संकल्पकी अक्षम्य अवहेलना करनेकी नीतिके विरुद्ध देश-व्यापी असंतोष प्रकट किया जा सके।

"इसके बाद ही बम्बईमें १७ नवम्बरको शोचनीय दंगा हो गया, जिसके फलस्वरूप बारडोलीकी कार्यवाही स्थगित कर देनी पड़ी।"

"इधर भारत-सरकारकी रजामन्दीसे बंगाल, आसाम, युक्त-प्रान्त, पंजाब, दिल्ली प्रान्त और एक प्रकारसे बिहारमें और अन्य स्थानोंपर भी घोर दमनसे काम लिया गया। मैं जानता हूँ कि इन प्रान्तोंके अधिकारियोंने जो कुछ किया है, उसे 'दमन' के नामसे पुकारनेपर आपको ऐतराज है। पर मेरी सम्मति यह है कि यदि जरूरतसे ज्यादा सरकारी कार्रवाई की गयी हो तो निस्सन्देह उसे दमनके नामसे ही पुकारा जायगा। सम्पत्तिका लूटना, निर्दोष व्यक्तियोंपर हमला करना, जेलमें लोगोंपर पाशविक अत्याचार करना और उनपर कोड़े बरसाना

किसी तरह भी कानूनी, सभ्यतापूर्ण या आवश्यक कार्य नहीं कहा जा सकता। इस सरकारी गैर-कानूनी रवैयेको केवल गैर-कानूनी दमनके नामसे ही पुकारा जा सकता है।

"हड़ताल और पिकेटिंगके सिलसिलेमें असहयोगियों या उनके साथ हमदर्दी रखनेवालोंको डराने-धमकानेकी बात किसी हद तक ठीक है, पर केवल इसी कारण शान्तिपूर्ण पिकेटिंग या उतनी ही शान्तिपूर्ण सभाओंको हिंसापूर्ण उद्देश्य और कार्योंकी हलचलोंको दबानेके लिए पास किये गये, एक ऐसे असाधारण कानूनका अनुचित उपयोग करके, अन्धाधुन्धीसे गैर-कानूनी करार देना न्याय-पूर्ण नहीं कहा जा सकता। निर्दोष व्यक्तियोंके ऊपर साधारण कानूनका भी जिस गैर-कानूनी ढंगसे प्रहार किया गया है, उसे भी दमनके अलावा और किसी नाम-से नहीं पुकारा जा सकता है। रही प्रेसकी आजादीका अपहरण करनेकी बात, सो यह जिस कानूनके अनुसार किया गया है वह अब रद्द होने ही वाला है। यह सरकारी हस्तक्षेप भी दमनके नामसे ही पुकारा जा सकता है।

"फलतः देशके सामने सबसे बड़ा काम लिखने-बोलने और सभा करनेकी आजादीको इस मारू दमनसे जीवन-दान देना है।

"आजकल भारत-सरकार जिस मनोवृत्तिका परिचय दे रही है, और हिंसाके मूल स्रोतोंपर अधिकार करनेके लिए देश जिस प्रकार अप्रस्तुत है, उसे देखते हुए असहयोगियोंने मालवीय-परिषदसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर दिया था। इस परिषदका उद्देश्य था कि वह आप (सरकार) को एक गोल-मेज-परिषद करनेके लिए तैयार करे। मैं अनावश्यक दुःख-कष्टसे लोगोंको बचाना चाहता था, इसलिए मैंने बिना संकोच काँग्रेसकी कार्य-समितिको मालवीय-परिषद की सिफारिशोंको स्वीकार करनेकी सलाह दी।

"जैसा मैंने आपके कलकत्तेवाले भाषण और अन्य सूत्रोंसे समझा, मेरी सम्मतिमें शर्तें आपकी आवश्यकताओंके अनुसार वाजिब ही थीं; फिर भी आपने उन्हें एकबारगी नामंजूर कर दिया।

"ऐसी हालतमें अपनी माँगें मनवानेके लिए—जिनमें भाषण देने, मिलने-जुलने और लिखनेकी आजादी-सम्बन्धी माँगें भी शामिल हैं—किसी अहिंसात्मक उपायका अवलम्बन करनेके सिवा देशके आगे और कोई रास्ता नहीं है। मेरी विनम्र सम्मतिमें हालकी घटनाएँ उस सभ्यता-पूर्ण नीतिके बिलकुल खिलाफ हैं, जिसका आरम्भ आपने अली-भाइयोंकी उदार, वीरतापूर्ण और बिना किसी प्रकारकी शर्तके क्षमा-याचना करनेके अवसरपर किया था। वह नीति यह थी कि जबतक असहयोगी शब्दों और कार्योंमें अहिंसात्मक रहे, तबतक उनके कार्य-कलापमें सरकार कोई बाधा न डाले। यदि सरकार उदासीन रहनेकी नीति बरतती और जनताकी सम्मतिको ठोस रूप धारण करने और अपना प्रभाव दिखानेका अवसर देती, तो उस समय तकके लिए सत्याग्रह मुल्तवी करना सम्भव होता जबतक काँग्रेस हिंसाके मूल स्रोतोंपर पूरा अधिकार न कर लेती और अपने लाखों अनुयायियोंमें अधिक संयम और नियम-बद्धता न ला देती। परन्तु गैर-कानूनी दमन-नीतिके कारण (जो इस अभागे देशके इतिहासमें अपने ढंगकी निराली है) सामूहिक सत्याग्रह तत्काल ही आरम्भ करना हमारा कर्त्तव्य हो गया है। कार्य-समितिने सत्याग्रहको कुछ खास-खास इलाकों तक ही सीमित कर दिया है। इन इलाकोंको समय-समयपर मैं स्वयं निश्चित करूँगा। फिलहाल सत्याग्रह बारडोली तक ही सीमित रहेगा। यदि मैं चाहूँ तो इस अधिकारके द्वारा तत्काल ही मद्रास प्रान्तके गुन्तूर जिलेके १०० गाँवोंमें सत्याग्रह आरम्भ करनेकी स्वीकृति दे दूँ, बशर्ते कि वे अहिंसा, भिन्न श्रेणियोंमें मेल बनाये रखना, हाथका कता-बुना खद्दर पहनना और बनाना और अस्पृश्यता दूर करनेकी शर्तोंका पालन कर सकें।

"परन्तु पेश्तर इसके कि बारडोलीकी जनता सचमुच सत्याग्रह आरम्भ करे, सरकारके प्रधान अफसर होनेके नाते मैं आपसे एक बार अनुरोध करता हूँ कि आप अपनी नीतिमें परिवर्तन करें और उन सारे असहयोगी कैदियोंको मुक्त कर दें, जो अहिंसात्मक कार्योंके लिए जेल गये हैं, या जिनका मामला अभी

विचाराधीन है। मैं आपसे यह भी अनुरोध करता हूँ कि आप साफ-साफ शब्दोंमें देशकी सारी अहिंसात्मक हलचलों में—चाहे वह खिलाफतके संबंधमें हों, चाहे पंजाब या स्वराज्यके सम्बन्धमें, चाहे और किसी विषयोंमें हों, यहाँ तक कि वह ताजीरात हिन्द या जाब्ता फौजदारी ऐसी दमनकारी धाराओंके या दूसरे दमन-कारी कानूनोंके भीतर क्यों न आती हों—सरकारकी तटस्थताकी घोषणा कर दें। हाँ, अहिंसाकी शर्त अवश्य सदा लागू रहे। मैं आपसे यह भी अनुरोध करूँगा कि आप प्रेसपरसे बन्धन उठा लें और हालमें जो जुर्माने किये गये हैं उन्हें वापस करा दें। मैं जो आपसे यह करनेका अनुरोध कर रहा हूँ, संसारके उन सभी देशोंमें किया जा रहा है, जहाँकी सरकारें सभ्य हैं। यदि आप सात दिनके भीतर इस प्रकारकी घोषणा कर दें तो मैं उस समय तकके लिए सत्याग्रह मुल्तवी करनेकी सलाह दूँगा जबतक सारे बन्दी छूटकर नये सिरेसे अवस्थापर विचार न कर लें। यदि सरकार उक्त प्रकारकी घोषणा कर दे तो मैं उसे सरकारकी ओरसे लोकमतके अनुकूल कार्य करनेकी इच्छाका सबूत समझूँगा और फिर निस्संकोच भावसे सलाह दूँगा कि दूसरेपर हिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी अपरिवर्तनीय माँगोंकी पूर्तिके लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे। ऐसी अवस्थामें उग्र सत्याग्रह केवल तभी किया जायगा जब सरकार बिलकुल तटस्थ रहनेकी नीतिका परित्याग करेगी, या जब वह भारतके अधिकांश जन-समुदायकी माँगोंको माननेसे स्पष्ट इन्कार कर देगी।"*

पूर्णाहुति

यह पत्र गान्धीजीके सत्याग्रह-यज्ञकी पूर्णाहुति थी। पत्र क्या था, सरकारको अपने अधिकारोंके बारेमें एक चुनौती थी जिसके लिए ७ दिनका सरकारको अवसर दिया गया था। भारतीय इतिहासमें देशकी तरफसे एक शक्तिशाली

---

*—काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २२६-२२८

सरकारको इस प्रकारकी चुनौती तथा धमकी दिये जानेका यह पहला मौका था। ऐसा साहस गान्धीजीसे पहले कोई व्यक्ति नहीं कर पाया था। सरकार भी सोचती थी, यह गान्धी कैसा बवंडर है!

किन्तु चुनौतीके ७ दिन पूरे भी न हो पाये थे कि देशमें एक ऐसी दुर्घटना हो गयी जिसने गान्धीजीके सारे कार्यक्रमको ही उलट-पलट डाला। देश तथा काँग्रेसका यह दुर्भाग्य था। ५ फरवरीको युक्त-प्रान्तमें गोरखपुरके निकट चौरी-चौरामें काँग्रेसका एक जुलूस निकाला गया था। जुलूसमें एकत्र भीड़ने इस अवसरपर २१ सिपाहियों और एक थानेदारको थानेमें खदेड़कर आग लगा दी। परिणाम यह हुआ कि वे सब जल मरे। इस हिंसक दुर्घटनाने गान्धीजीके हृदयपर निर्मम आघात किया। उनकी आहत आत्मासे आवाज आयी—"अभी शुद्ध अहिंसाके आधारपर पूर्ण सत्याग्रहका समय नहीं आया है; क्योंकि लोग अभीतक अपनी हिंसक प्रवृत्तियोंको त्याग नहीं पाये हैं।" फलतः गान्धीजीने १२ फरवरीको बारडोलीमें कार्य-समितिकी एक बैठक करके 'सत्याग्रह' आरम्भ करनेका विचार त्याग दिया। बारडोलीका यह निश्चय २४ और २५ फ़रवरीको दिल्लीकी महासमितिने भी स्वीकार किया।

इस प्रकार सत्याग्रह एकाएक बन्द हो गया। सारा देश गांधीजीके इस निर्णयसे सन्न रह गया था। देशके प्रत्येक नेता और नवयुवक गान्धीजीके इस निर्णयसे क्षुब्ध और क्रोधित भी हो उठे थे। पं० मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतरायने जेलसे गान्धीजीको विरोधमें लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होंने पत्रमें यह भी आग्रह किया था कि सत्याग्रहको जारी रहने दिया जाय। दो युवकोंने भी गान्धीजीको ऐसे ही पत्र लिखे थे और उनमें आन्दोलनको एकाएक बन्द करनेपर अपना क्षोभ और क्रोध जाहिर किया गया था। गान्धीजीने जेलसे आये पत्रोंके उत्तरमें केवल इतना ही कहा, "जो लोग जेलमें हैं, नागरिक-दृष्टिसे उनकी मृत्यु हो चुकी है और उन्हें जेलसे बाहरके लोगोंको किसी तरहकी सलाह देनेका कोई अधिकार नहीं हैं।" दिल्लीकी महासमितिमें भी महाराष्ट्र

और बंगालके नेताओंने गांधीजीकी आड़े-हाथों खबर ली थी। महाराष्ट्रके नेता मुंजेने तो निन्दाका प्रस्ताव तक गान्धीजीके विरुद्ध पेश किया था। महासमितिमें इस प्रकार गान्धीजीके विरुद्ध एक भयावह तूफ़ान ही उठ खड़ा हुआ था। किन्तु गान्धीजी उस तूफानमें हिमालयकी तरह अचल और अडिग खड़े रहे। विरोधियोंके प्रस्ताव गिर गये—गान्धीजी विजयी हुए। तूफ़ान जैसे आया था वैसे ही निकल गया।

गांधीजीके सत्याग्रह बन्द करनेपर पं० जवाहरलाल नेहरूने उस समयकी अपनी और दूसरोंके मनमें होनेवाली प्रतिक्रियाका वर्णन करते हुए लिखा है—
"चौरीचौरा-कांडके पश्चात् हमारे आन्दोलनके एकाएक स्थगित कर दिये जानेसे, मेरा खयाल है, कॉंग्रेसके सभी प्रमुख नेताओंमें (अवश्य ही गांधीजीको छोड़कर) बहुत ही नाराजगी फैली थी।.........स्वभावतः नौजवान कॉंग्रेसियोंको तो यह बात और भी ज्यादा बुरी लगी थी। हमारी बढ़ती हुई उम्मीदें धूलमें मिल गयीं। इसलिए उनके खिलाफ इतनी नाराजगीका फैलना स्वाभाविक ही था। आन्दोलनके स्थगित किये जानेसे जो तकलीफ हुई उससे भी ज्यादा तकलीफ स्थगित करनेके जो कारण बताये गये, उनसे तथा उन कारणोंसे पैदा होनेवाले नतीजोंसे हुई।"*

'आजके भारत' (India To-day) पर लिखते हुए श्रीपामदत्त कहते हैं कि बारदोलीके फैसलेका कारण, 'अहिंसा' न थी, बल्कि वर्ग-स्वार्थ था। लगान-बन्दी कानून साम्राज्यशाहीके साथ-साथ जमींदारशाहीके लिए भी घातक था; अतः 'अहिंसा' का बहाना करके सत्याग्रहको रोक दिया गया था।†

ये सब कथन और समीक्षाएँ असलमें गांधीजीके अहिंसा और सत्यको न समझनेके फल हैं। गांधीजी हिंसा और असत्यसे स्वर्गका राज्य भी प्राप्त करनेको

---

*—मेरी कहानी—पृष्ठ १०९

†—India To-day—P. 290-291

तैयार नहीं हो सकते थे। अहिंसा और सत्यके लिए वे स्वराज्यका भी बलिदान कर सकते थे। चौरीचौरा-काण्ड अकेली घटना थी, किन्तु उस घटनापर विचार करके राजेन्द्रप्रसादके शब्दोंमें "गांधीजीने देख लिया कि देशने अभीतक अहिंसाके तत्व और महत्वको नहीं समझा है; इसलिए यदि सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो इस प्रकारकी घटनाएँ अनेक स्थानोंमें होने लगेंगी; इसके फलस्वरूप सरकारकी ओरसे भी दमन-नीति जोरोंसे बरती जायगी और जनता उसको बर्दाश्त नहीं कर सकेगी"; अतः गांधीजीने निर्णय किया—"सत्याग्रहको स्थगित ही करना चाहिए।"*

सरकार गांधीजीके सामूहिक सत्याग्रहके इरादेसे बहुत ही भयभीत हो रही थी। देशकी ऐसी स्थितिमें जबकि सम्पूर्ण देश—युक्त-प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम, पंजाब—के किसान और साधारण जनता अँग्रेजोंका विरोध करनेके लिए उतावली होकर भी गम्भीर बनी हुई थी,—क्रुद्ध और रोषपूर्ण थी, गांधीजीके सामूहिक सत्याग्रहसे भीषण ज्वाला भड़कनेकी आशंका पैदा हो गयी थी। यह स्थिति सरकारके लिए बहुत ही चिन्तादायिनी हो रही थी। ९ फरवरी, १९२२ को वाइसरायने तारद्वारा भारत-मन्त्रीको लन्दन सूचना भेजी थी :—

"नगरोंकी साधारण जनतापर असहयोग-आन्दोलनका बहुत असर पड़ा है।......कुछ क्षेत्रों, विशेषकर आसाम-घाटी, संयुक्त-प्रान्त, बिहार, उड़ीसा और बंगालके किसानोंपर भी असर हुआ है। पंजाबमें अकालियोंका आन्दोलन, किसान सिखों तकमें पहुँच गया है। मुसलमान जनताका एक बहुत बड़ा भाग देश-भरमें असन्तुष्ट और क्रुद्ध है......गम्भीर आशंकाएँ हैं...... भारत-सरकार पिछले आन्दोलनोंसे भी बढ़कर आन्दोलनके लिए तैयार बैठी है, किन्तु इस बातको किसी तरह छिपाना नहीं चाहती कि स्थिति बहुत ही नाजुक हो रही है।"†

*—आत्मकथा—पृष्ठ १७५

†—India To-day—Palme Dutta, P. 288-289

किन्तु जब एकाएक गांधीजीने सत्याग्रहको बन्द करा दिया तो ब्रिटिश-सरकार मुसकरा उठी। वह सरकार, जो अबतक भयभीत हो रही थी, उग्र बन बैठी। श्रीपट्टाभिके शब्दोंमें "पाँसा पड़ चुका था। अब गांधीजीको धर दबोचनेकी सरकारकी बारी थी।"* सत्याग्रह वापस ले लिया गया था। गांधीजीको गिरफ्तार करनेका यही सुअवसर था। फलतः राजद्रोहके अपराधमें गांधीजीको श्रीशंकरलाल बैंकरके सहित गिरफ्तार कर, सेशन सुपुर्द कर दिया गया। १३ मार्च, १९२२ के दिन यह गिरफ्तारी हुई थी।

---

*—कॉंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २३०

अध्याय — ११

ऐतिहासिक मुकद्मा

बन्दी बनाये जानेपर गान्धीजी प्रसन्न थे। उनकी तबीअत अत्याचारी तथा अन्यायी ब्रिटिश हुकूमतमें रहते-रहते ऊब गयी थी। वे चाहते थे, वे बन्दी कर लिये जायँ। १३ मार्चको उनकी यह हार्दिक इच्छा भी पूरी हो गयी। वे बन्दी थे, किन्तु अपनेको उस अवस्थामें आजाद महसूस कर रहे थे।

बन्दी गान्धी

गान्धीजी १३ मार्चकी रातमें साढ़े दस बजे अहमदाबाद पुलिसके उप-सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० हेले (Mr. Healey) द्वारा गिरफ्तार किये गये थे। गिरफ्तारी बहुत ही शान्तिपूर्ण ढंगमे हुई थी। हेले शंकरलाल बैंकरको गिरफ्तार करनेके बाद आश्रमके बाहर सड़कपर ही गांधीजीकी प्रतीक्षा करते रहे। इस बातकी सूचना आश्रममें फैलते देर न लगी। सारे आश्रमवासी स्त्री, पुरुष और बच्चे तुरन्त गान्धीजीको विदाई देनेके लिए उनके पास आ जुटे। गान्धीजीकी विदाई में उनका प्यारा गीत 'वैष्णवजन तो तेणे कहिये' उच्च स्वरमें गाया गया। इसके पश्चात् सबको अपना प्यार और आशीर्वाद देकर गान्धीजीने विदा ली और अपने-आपको मि० हेलेके सुपुर्द कर दिया। विदाई लेते समय गांधीजीने अपने बन्दी किये जानेपर हर्ष और संतोष प्रकट किया। उनकी यही इच्छा थी।

गान्धीजीको श्रीशंकरलाल बैंकरके सहित साबरमती जेल पहुँचा दिया गया। दूसरे ही दिन दोनों मजिस्ट्रेट मि० एलान ब्रॉन (Mr. Allan Brown) की अदालतमें पेश किये गये। गान्धीजी और शंकरलाल बैंकरपर राजद्रोहका अभियोग लगाकर मजिस्ट्रेटने उनका मुकदमा सेशन जजके सुपुर्द कर दिया।

ऐतिहासिक मुकदमेका आरम्भ

गान्धीजीके ऐतिहासिक मुकदमेका आरम्भ शनिवार १८ मार्च, १९२२ को दोपहरमें हुआ। यह मुकदमा शाही बागके सरकिट हाउसमें डिस्ट्रिक्ट और सेशन्स जज मि० सी० एन० ब्रूमसफील्ड (C. N. Broomsfild) की अदालत में पेश हुआ था। इस मुकदमेके प्रारम्भ होते ही सारा राष्ट्र स्तब्ध था। देशके सर्वमान्य और सर्वप्रिय नेतापर जो मुकदमा होने जा रहा था, वह मुकदमा एक व्यक्तिका मुकदमा न था—गान्धीजीके रूपमें, क्योंकि गान्धीजी अब काँग्रेस और भारतीय जनताके प्रतीक बन चुके थे, सारे भारतपर ही यह मुकदमा दायर हुआ था। ऐसा मुकदमा पहिले कभी न हुआ था। एक तरफ सरकार थी और दूसरी तरफ गान्धीजीके रूपमें भारतवर्ष।

गान्धीजी अपने साथी-सहित १२ बजे ब्रूमसफील्डकी अदालतमें पेश किये गये। सरोजनीदेवीने लिखा है, "जिस समय गांधीजीकी कृश, शान्त और अजेय देहने अपने भक्त, शिष्य और सहबन्दी शंकरलाल बैंकरके साथ अदालतमें प्रवेश किया, उस समय कानूनकी निगाहमें इस कैदी और अपराधीके सम्मानके लिए सब एक साथ उठ खड़े हुए।"*

गान्धीजीपर यंग इंडियामें लिखे तीन लेखों—राजभक्तिमें दखल (Tampering with Loyalty); समस्या और उसका हल (The puzzle and its solution) और गर्जन-तर्जन (Shaking the Manes), के आधार पर पेनाल कोडकी धारा १२४ ए० में राजद्रोहका अपराध लगाया गया था। ये लेख गान्धीजीने क्रमशः २९ सितम्बर, १५ दिसम्बर, १९२१, और २३ फरवरी, १९२२ को लिखे थे और शंकरलालने उन्हें प्रकाशित करवाया था। किन्तु क्या ये ही लेख राजद्रोहात्मक थे और बाकी जो कुछ गान्धीजीने दूसरे लेख लिखे थे,

---

*—काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २३०

वे राजद्रोहात्मक न थे? इसका उत्तर श्रीपट्टाभिने बहुत ही सुन्दरताके साथ इस प्रकार दिया है:—

'जब आप किसी कपड़े या गहनेकी दूकानपर, अपनी पोशाक या हीरे-जवाहरात खरीदनेके लिए जाते हैं, तो आपको यह परेशानी होती है कि अपने गिने-चुने पैसोंसे क्या-क्या खरीद डालें। सरकारी अहलकार भी कुछ ऐसी ही परेशानीमें पड़े होंगे कि गान्धीजी जो प्रति सप्ताह लेख-पर-लेख लिखते आ रहे हैं उनमेंसे कौन-कौनसे लेख राजद्रोहात्मक हैं जिन्हें लेकर गान्धीजीपर मुकदमा चलाया जाय। गान्धीजी हमेशासे कहते आ रहे थे कि राजद्रोहका प्रचार करना मेरा कर्त्तव्य है। यदि उनके लेख काफी राजद्रोहात्मक न हों तो कहना होगा कि उनकी कलम कमजोर है। अन्तमें कानूनी अहलकारों ने तीन लेख छाँटे—'राज-भक्तिमें दखल', 'समस्या और उसका हल' और 'गर्जन-तर्जन।'

पेशी

जजने गान्धीजीपर लगाये गये राजद्रोह के अभियोग पढ़कर सुना दिये और फिर उनसे पूछा कि क्या वे अपराधोंको स्वीकार करते हैं या अपनी सफाई देना चाहते हैं?

गान्धीजीने इसपर तुरन्त उत्तर दिया—"मैं सब अपराधोंको स्वीकार करता हूँ। मैं देखता हूँ, अभियोगोंमें सम्राट्का नाम नहीं है, और यह ठीक ही है।"

जज—मि० बैंकर, क्या आप अपराधको स्वीकार करते हैं......?

श्रीबैंकर—मैं अपराध स्वीकार करता हूँ।

दोनों अपराधियोंकी तरफसे कोई वकील न था, और सरकारकी तरफसे सर० जे० टी० स्ट्रॉगमैन (J. T. Strongman), एडवोकेट-जनरल पैरवी कर रहे थे। एडवोकेटने उपर्युक्त बयान होनेपर जजसे अनुरोध किया कि मुकदमेकी पूरी सुनवाई की जाय। लेकिन जज इसपर सहमत न हुआ। अपराधी अपराध स्वीकार कर चुके थे, अतः उसकी जरूरत ही न रह गयी थी। जजने

एडवोकेटसे कहा कि वे एडवोकेट और गान्धीजी जो कहना चाहते हों उसे सुननेको तैयार हैं और तब ही वह दण्डका निश्चय करना चाहते हैं।

गान्धीजी जजका यह फैसला सुनकर मुसकरा दिये।

ऐडवोकेट-जनरलने तब अदालतको बयान देते हुए बतलाया कि अभियुक्त (गान्धीजी) बहुत पहिले १९२१ से ही सरकारके विरुद्ध राजद्रोहका प्रचार कर रहा था और मुल्कको असहयोगके लिए तैयार करता जाता था। इस सिलसिलेमें उसने गान्धीजीके लिखे १९२१ के कई एक लेख पेश किये। उसने कहा—अभियुक्त एक ऊँचे दर्जेका विद्वान् और सर्वमान्य नेता है। ऐसे बड़े आदमीके लिखे हुए लेखोंका कैसा विकट असर पड़ सकता है, यह स्पष्ट ही है। इस असरको प्रदर्शित करनेके लिए ऐडवोकेटने बम्बई और चौरीचौराकी दुर्घटनाओंको पेश किया, उसने साथ ही यह भी कहा कि गान्धीके लेखोंमें अहिंसाके सिद्धान्त और धर्मपर जोर दिया गया है, यह तो सच है; लेकिन सरकारके विरुद्ध असन्तोष और तख्त उलटनेकी भावनाओंके खुल्लमखुला प्रचार करते हुए 'अहिंसा' की बातें करना व्यर्थ है। अतः ऐडवोकेटने जजको स्मरण कराया कि सजा देते समय इन बातोंपर अवश्य ध्यान दिया जाय।

अदालतने तब गान्धीजीसे प्रश्न किया—क्या आप अभियोगके बारेमें कुछ बयान देना चाहेंगे?

गान्धीजी—बयान देना चाहूँगा।

अदालत—क्या आप रेकर्ड करनेके खातिर मुझे अपना लिखित बयान देंगे?

गान्धीजी—पढ़नेके बाद ही आपको दे दूँगा।

किन्तु बयान पढ़नेसे पहिले भूमिकाके रूपमें गांधीजीने कुछ बातें और भी कहीं। उन्होंने कहा कि ऐडवोकेट-जनरलने सब बातें सही ही कही हैं, और मैं खुद अदालतसे कोई बात छिपाकर नहीं रखना चाहता। निस्सन्देह, उन्होंने कहा कि 'यंग इण्डिया' के साथ सम्बन्ध होनेके बहुत पहलेसे मैं राजद्रोहका प्रचार करता आ रहा हूँ।.....मैं ऐडवोकेटके लगाये तमाम अपराधोंको स्वीकार करता

हूँ, और मद्रास, बम्बई और चौरीचौरामें जो कुछ हुआ है उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ।...........मैं जानता हूँ कि मैं आगके साथ खेल रहा हूँ। मैंने वह खतरा उठाया, और यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैं फिर वही करूँगा। यदि मैं ऐसा न करूँ तो अपना फर्ज अदा न करूँगा।......यह तो मेरे लिए धर्म-सा हो गया है। मुझे दोनोंमेंसे एक बात चुननी थी। या तो मुझे एक ऐसे राज्यकी सत्ताको मानना पड़ता जिसने मेरे विश्वासके अनुसार मेरे देशको कभी न पूरी होनेवाली क्षति पहुँचायी है, या फिर मुझे उस समय अपने देशवासियोंके क्रोधोन्मादके खतरेका सामना करना पड़ता जब वे मेरे मुँहसे सच्ची बात जान जाते। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी मेरे देशवासियोंने पागलपनसे काम लिया है। इसपर मुझे बड़ा दुःख है और यहाँ जो मैं खड़ा हुआ हूँ, सो कोई साधारण सजा सुननेके लिए नहीं, बल्कि कड़ी-से-कड़ी सजा पानेके लिए। मैं दयाकी प्रार्थना नहीं करता, न मैं किसी तरहका बहना ही पेश करनेको तैयार हूँ। मैं तो एक ऐसे कामके लिए, जो कानूनकी निगाहमें जान-बूझकर किया गया अपराध है, पर मेरे दृष्टिकोणसे एक नागरिकका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, बड़ी-से-बड़ी सजा चाहता हूँ और उसके आगे सिर झुकानेको तैयार हूँ।"

जज गांधीजीकी वाणी सुन रहा था, उसे लगता था कि यह व्यक्ति अपराध कबूल कर रहा है, या उसे अपराधी बनानेवाली सरकारको ही अपराधी ठहरा रहा है। वह दयाकी याचना नहीं करता, वह तो सत्यके लिए मर मिटनेको कहता है। उसके सामने मनुष्य-द्वारा बनाये कृत्रिम न्याय और कानूनका कोई मूल्य ही नहीं दीख पड़ता; कानूनसे ऊपर वह कर्त्तव्यको मानता है और उसके लिए बड़ी-से-बड़ी शक्ति और सरकारका मुकाबला करनेकी चुनौती दे रहा है।

इतना ही नहीं, वह जजको भी ललकारने लगा है और चाहता है कि कृत्रिम कानूनका पक्ष छोड़कर यदि जज चाहे तो सत्यका पक्ष ले सकता है। किन्तु वह ऐसा करनेके लिए कोई दबाव नहीं डालता, वह तो केवल यह कह रहा है—

"जज महोदय, आपके सामने केवल दो मार्ग हैं। या तो आप अपने पदको छोड़ दें, या यदि आप समझते हैं कि जिस शासन-व्यवस्था और जिस कानूनके व्यवहारमें आप सहायता दे रहे हैं वह देशके लिए मंगलदायी है, तो मुझे बड़े-से-बड़ा दण्ड दें। मुझे यह आशा नहीं है कि आप अपना मत-परिवर्तन कर सकेंगे, पर मेरा बयान समाप्त होते-होते आपको कुछ आभास अवश्य हो जायगा कि मेरे हृदयमें ऐसी कौन-सी ज्वाला धधक रही है जिसने मुझे इस भारी खतरनाक कामको करनेके लिए तैयार कर दिया।"*

ऐतिहासिक बयान

इस प्राक्कथनको समाप्त कर गान्धीजीने तब अपना लिखित बयान पढ़ा जो इस प्रकार है :—

"यह जो मुकदमा चलाया जा रहा है सो इंग्लैंडकी जनताको सन्तुष्ट करनेके लिए। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मैं इंग्लैंडकी और भारतीय जनताको यह बता दूँ कि मैं कट्टर सहयोगीसे पक्का राजद्रोही और असहयोगी कैसे बन गया। मैं अदालतको भी बताऊँगा कि मैं इस सरकारके प्रति, जो देशमें कानूनन् कायम हुई है, राजद्रोहपूर्ण आचरण करनेके लिए अपने-आपको दोषी क्यों मानता हूँ

"मेरे सार्वजनिक जीवनका आरम्भ १८९३ में दक्षिण-अफ्रिकामें हुआ और बुरे समयमें हुआ। उस देशके ब्रिटिश-अधिकारियोंके साथ मेरा पहला अनुभव कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानीके नाते वहाँ मेरे कोई अधिकार नहीं हैं। मैंने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्यके नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नहीं है कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ।"

"पर मैंने हिम्मत न हारी। मैंने समझा था कि भारतीयोंके साथ जो यह

---

* —वही—पृष्ठ २३१ २३२,—Young India —1919-1922, 2nd ed. 1924, pp. 1043-1047.

दुर्व्यवहार किया जा रहा है, यह दोष एक अच्छी-खासी शासन-व्यवस्थामें योंही आकर घुस गया है। मैंने खुद ही दिलसे सरकारके साथ सहयोग किया। जब कभी मैंने सरकारमें कोई दोष पाया, मैंने उसकी खूब आलोचना की; पर मैंने उसके विनाशकी इच्छा कभी नहीं की।"

"जब १८९० में बोअरोंकी चुनौतीने सारे ब्रिटिश साम्राज्यको महान् विपद् में डाल दिया, उस अवसरपर मैंने उसे अपनी सेवाएँ भेंट कीं—घायलोंके लिए एक स्वयं-सेवक दल बनाया और लेडी स्मिथकी रक्षाके लिए जो कुछ लड़ाइयाँ लड़ी गयीं उनमें काम किया। इसी प्रकार जब १९०६ में जुलू लोगोंने विद्रोह किया तो मैंने स्ट्रेचरपर घायलोंको ले जानेवाला दल संगठित किया और जबतक 'विद्रोह' दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनों अवसरोंपर मुझे पदक मिले और खरीतों तकमें मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रीकामें मैंने जो काम किया उसके लिए लार्ड हार्डिंजने मुझे 'कैसर-ए-हिन्द' पदक दिया। जब १९१४ में इंग्लैंड और जर्मनीमें युद्ध छिड़ गया तो मैंने लन्दनमें हिन्दुस्तानियोंका एक स्वयं-सेवक दल बनाया। इस दलमें मुख्यतया विद्यार्थी थे। अधिकारियोंने इस दलके कामकी सराहना की। जब १९१७ में लार्ड चेम्सफ़ोर्डने दिल्लीकी युद्ध-परिषदमें खास तौरसे अपील की तो मैंने खेड़ामें रंगरूट भर्ती करते हुए अपने स्वास्थ्य तकको जोखिममें डाल दिया। मुझे इसमें सफलता मिल ही रही थी कि युद्ध बन्द हो गया और आज्ञा हुई कि अब और रंगरूट नहीं चाहिए। इन सारे सेवा-कार्योंमें मेरा एकमात्र यही विश्वास रहा कि इस प्रकार मैं साम्राज्यमें अपने देशवासियोंके लिए बराबरीका दर्जा हासिल कर सकूँगा।

"पहला धक्का मुझे रोलट-ऐक्टने दिया। यह कानून जनताकी वास्तविक स्वतन्त्रताका अपहरण करनेके लिए बनाया गया था। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानूनके खिलाफ मुझे जोरोंका आन्दोलन करना चाहिए। इसके बाद पंजाबके वीभत्स काण्डका नम्बर आया। इसका आरम्भ जालियाँवाला बागमें कत्ले-आमसे और अन्त पेटके बल रेंगने, खुले-आम बेंत लगाने और दूसरे

बयानसे बाहर अपमानजनक कारनामोंके साथ हुआ। मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान-मन्त्रीने भारतके मुसलमानोंको जो आश्वासन दिया था कि तुर्की और इस्लामके तीर्थ-स्थानोंकी एकता बदस्तूर रखी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही था।

"वैसे सन् १९१९ की अमृतसर-काँग्रेसमें अनेक मित्रोंने मुझे सावधान किया और मेरी नीतिकी सार्थकतामें सन्देह प्रकट किया, पर फिर भी मैं इस विश्वास-पर अड़ा रहा कि भारतीय मुसलमानोंके साथ प्रधान मन्त्रीने जो वादा किया है, उसका पालन किया जायगा; पंजाबके जख्मोंको भरा जायगा और लाखों कमियोंके कारण असन्तोषजनक होनेपर भी सुधार भारतके जीवन में एक नयी आशाको जन्म देंगे। फलतः मैं सहयोग और माँटेगु-चेम्सफोर्ड-सुधारोंको सफल बनानेकी बातपर अड़ा रहा।"

"पर मेरी सारी आशाएँ धूलमें मिल गयीं। खिलाफत-सम्बन्धी वचन पूरा किया जानेवाला नहीं था। पञ्जाब-सम्बन्धी अपराधोंपर लीपापोती कर दी गयी थी। इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे हैं। वे यह नहीं समझते कि उन्हें जो थोड़ा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है, वह विदेशी शोषककी दलाली करनेके कारण हैं तथा सारा नफा और सारी दलाली जनताके खूनसे निकाली जाती है। वे यह नहीं जानते कि ब्रिटिश-भारतमें जो सरकार कानूनन्-कायम है, वह इसी जनताके धन-शोषणके लिए चलायी जाती है। चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्कसे काम लिया जाय, हिन्दुस्तानके साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय, असंख्य गाँवोंमें जो नर-कंकाल दिखायी पड़ रहे हैं, उनकी मूर्तिमान गवाहीको किसी तरह भी नहीं झूठा किया जा सकता। यदि हमारा कोई ईश्वर है, तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इतिहासमें जो यह अपने ढंगका निराला अपराध किया जा रहा है, उसकी जवाबदेही इंग्लैण्डकी जनता और हिन्दुस्तानके नगरवासियोंको करनी होगी। इस देशके कानूनका उपयोग विदेशी धन-शोषकों-के सुभीतेके लिए किया गया है। पंजाबके फौजी कानूनके सम्बन्धमें मैंने जो

निष्पक्ष जाँच की है उससे मैं इस नतीजेपर पहुँचता हूँ कि १०० पीछे ९५ मामलोंमें सजाके फैसले बिलकुल अनुचित रहे। हिन्दुस्तानके राजनैतिक मुकदमोंका तजुर्बा मुझे बताता है कि दस पीछे नौ दण्डित आदमी सोलह आने निर्दोष थे। इन आदमियोंका, केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देशसे प्रेम करते थे। १०० पीछे ९९ मामलोंमें देखा गया है कि हिन्दुस्तानकी अदालतोंमें हिन्दुस्तानीको यूरोपियनके मुकाबलेमें न्याय नहीं मिलता, मैं अतिशयोक्तिसे काम नहीं ले रहा हूँ। जिस-जिस भारतवासीको इस तरहके मामलोंसे काम पड़ा है उसका यही तजुर्बा है। मेरी रायमें कानूनका दुरुपयोग, जान-बूझकर सही या बिना जाने-बुझे सही, धन-शोषकके लाभके लिए किया जाता है।"

"सबसे बड़े दुर्भाग्यकी बात यह है कि जिन अंग्रेजों और उनके हिन्दुस्तानी सहयोगियोंके जिम्मे इस देशका शासन-भार है, वे खुद यह नहीं जानते कि मैंने जिस अपराधका वर्णन किया है उसमें उनका हाथ है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि बहुत-से अंग्रेज और हिन्दुस्तानी अधिकारी हृदयसे इस बातमें विश्वास करते हैं कि वे जिस शासन-व्यवस्थाको अमलमें ला रहे हैं, वह संसारकी बढ़िया-से-बढ़िया शासन-व्यवस्थाओंमेंसे है और हिन्दुस्तान धीरे-धीरे किन्तु निश्चिन्त रूपसे उन्नति कर रहा है। वे यह नहीं जानते कि कैसे सूक्ष्म किन्तु सफल ढंगसे आतंकका सिक्का बैठाया गया है और किस तरह एक ओर शक्तिका संगठित प्रदर्शन करके दूसरी ओर आत्म-रक्षा या बदलेमें प्रहार करनेकी तमाम शक्तियाँ छीनकर लोगोंका निःसत्व और पौरुषहीन बना दिया गया है। इससे लोगोंको अब इस प्रकार रहनेकी टेव पड़ गयी है जिससे कि शासकवर्गका अज्ञान और आत्म-प्रवञ्चना और भी बढ़ गयी है। जिस १२४ ए० धाराके अन्तर्गत मुझपर मामला चलाया गया है वह नागरिकोंकी आजादीका अपहरण करनेमें ताजीरात हिन्दकी धाराओंमें सरताज है। प्रेम न तो उत्पन्न किया जा सकता है, और न कायदे-कानूनके मातहत रह सकता है। यदि किसी आदमीके हृदयमें किसी दूसरे आदमीके प्रति प्रेमके भाव न हों, तो जबतक वह हिंसापूर्ण कार्य, विचार या

प्रेरणा न करे तबतक उसे अपनी अप्रीतिके भाव प्रकट करनेका पूरा अधिकार होना चाहिए। पर श्रीयुत बैंकर और मुझपर जिस धाराका प्रयोग किया गया है, उसके अनुसार अप्रीति फैलाना अपराध है। इस धाराके अन्तर्गत चलाये गये कुछ मामलोंका मैंने अध्ययन किया है, और मैं जानता हूँ कि इस धाराके अनुसार देशके कई परमप्रिय देश-भक्तोंको सजा दी गयी है। इसलिए मुझपर जो इस धाराके अनुसार मामला चलाया गया है, उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मैंने संक्षेपमें अपनी अप्रीतिके कारणोंका दिग्दर्शन करा दिया है। किसी शासकके प्रति मेरे मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं है और स्वयं सम्राट्के व्यक्तित्वके प्रति तो मुझमें अप्रीतिका भाव बिलकुल है ही नहीं। परन्तु जिस शासन-व्यवस्थाने इस देशको अन्य सारी शासन-व्यवस्थाओंकी अपेक्षा अधिक हानि पहुँचायी है, उसके प्रति अप्रीतिके भाव रखना मैं सद्गुण समझता हूँ। अन्य अमलदारियोंकी अपेक्षा अंग्रेजोंकी अमलदारीमें हिन्दुस्तानमें पुरुषत्वका अधिक अभाव हो गया है। जब मेरी ऐसी धारणा है तो इस शासन-व्यवस्थाके प्रति प्रेमके भाव रखना मैं पाप समझता हूँ। और इसलिए मैंने अपने इन लेखोंमें, जो मेरे खिलाफ प्रमाणके तौरपर पेश किये गये हैं, जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।

"वास्तवमें मेरा विश्वास तो यह है कि इंग्लैंड और भारत जिस अप्राकृतिक रूपसे रह रहे हैं,—मैंने असहयोगके द्वारा उससे उद्धार पानेका मार्ग बनाकर दोनोंकी एक सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मतिमें जिस प्रकार अच्छाईसे सहयोग करना कर्त्तव्य है, उसी प्रकार बुराईसे असहयोग करना भी कर्त्तव्य है। परन्तु इससे पहले बुराई करनेवालेको क्षति पहुँचानेके लिए असहयोगको हिंसात्मक ढंगसे प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियोंको यह बतानेकी चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराईको कायम रखती है, इसलिए बुराईकी जड़ काटनेके लिए यह आवश्यक है कि हम हिंसासे बिलकुल अलग रहें। अहिंसाका मतलब यह है कि बुराईसे असहयोग करनेके लिए जो कुछ भी दण्ड मिले, उसे

स्वीकार कर लें। इसलिए मैं यहाँ उस कार्यके लिए, जो कानूनकी निगाहमें जानबूझकर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाहमें किसी नागरिकका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, सबसे बड़ा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करनेको तैयार हूँ। आपके तथा जज और असेसरोंके सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। यदि आप लोग हृदयसे समझते हैं कि जिस कानूनका प्रयोग करनेके लिए आपसे कहा गया है, वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदोंसे इस्तीफा दे दें और बुराईसे अपना सम्बन्ध अलग कर लें, अथवा यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानूनका प्रयोग करनेमें आप सहायता दे रहे हैं, वह वास्तवमें इस देशकी जनताके मंगलके लिए है, और मेरा आचरण लोगोंके अहितके लिए है तो मुझे बड़े-से-बड़ा दण्ड दें।"*

अपना बयान देकर गान्धीजीने स्थान ग्रहण किया। उनका बयान क्या था, सरकारपर आरोपित अपराधोंकी एक सूची थी। जज सोचता था कि वह व्यक्ति, जिसको अभियुक्त बनाकर पेश किया गया है, क्या सचमुच अभियुक्त है? वह अभियुक्त थे तो भी जजने स्वयं गान्धीजीके सामने यह स्वीकार किया—"यह छिपाना असम्भव है कि आप उन व्यक्तियोंसे बिलकुल भिन्न हैं, जिनका कि मैंने कभी फैसला किया है या कभी करनेकी उम्मीद करता हूँ। इस बातकी अवहेलना करना भी असम्भव है कि आप अपने लाखों देशवासियोंकी निगाहोंमें एक महान् देशभक्त और नेता हैं। जो राजनीतिमें आपसे सहमत नहीं हैं वे भी आपको ऊँचे आदर्शों, भद्रता तथा साधुतामय जीवनका व्यक्ति मानते हैं।"

जज पशोपेशमें पड़ गया कि किस प्रकार वह अभियुक्तको सजा दे? श्री केलकर, जो गान्धीजीके मुकदमेके समय अदालतमें ही थे, जजकी इस पशोपेशी अवस्थाका जिक्र करते हुए कहते हैं—"जजकी अवस्था बड़ी ही दयनीय थी। इससे पूर्व उसे कभी ऐसा अप्रिय कर्त्तव्य न निभाना पड़ा था। उसके मुखकी

* कॉंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २११-२३४, Young India-pp. 1049-1054

श्रा ही उतर गयी थी......वह किस प्रकार सजाकी घोषणा करे, 'जिसके चरणों-पर बैठकर उसे साधुताका पाठ पढ़ना चाहिए, उस महान् व्यक्तिको किस प्रकार कैदकी लम्बी सजा सुनावे।'*

आखिर साहस करके जजने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकका आधार लेते हुए गान्धीजीको छः सालकी सजा सुना दी ; क्योंकि तिलकजीको भी इस घटनाके १२ वर्ष पूर्व ऐसे ही अपराधोंके लिए इतनी ही अवधिकी सजा दी गयी थी। गान्धीजीके साथी बैंकरको एक सालकी सजा और १,०००) एक हजार रुपये जुर्मानेका दण्ड दिया गया।

फैसला सुनकर गान्धीजीने जजको उत्तर देते हुए कहा—"यह मेरे लिए परम सौभाग्यकी बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलकके नामके साथ जोड़ा गया है।" और फिर भारतीय शिष्टता और शौर्यके साथ जजके द्वारा दी हुई सजाका अनुमोदन करते हुए गान्धीजीने कहा—"जहाँ तक फैसलेका सम्बन्ध है, मैं कह सकता हूँ कि वह इतना हल्का किया गया है जितना कि कोई जज दे सकता था, और जहाँ तक सारे मुकदमेकी कार्यवाहीका सम्बन्ध है, उसमें जितनी शिष्टतासे काम लिया गया है, उससे अधिककी मैं स्वयं आशा नहीं रखता था।"†

सजा सुनाकर जज मन-ही-मन अपनेको कोसता हुआ विदा हुआ। अदालत भंग हो गयी और सारे अफसर विदा हो गये। उन लोगोंके विदा होते ही अदालतमें उपस्थित सारे स्त्री, पुरुष तथा बच्चे महात्माजीको घेरकर बैठ गये। सुकरातके शिष्योंकी तरह महात्माजीके लम्बे कारावासकी सजा सुनकर उनके मुख कुम्हलाये हुए थे, किन्तु महात्माजीका मुख सजा पाकर भी सुकरातकी तरह खुशीसे खिला हुआ था। उन्हें आज ऐसी प्रसन्नता थी मानो उन्हें सजा नहीं, दुनियाका राज्य मिल गया है। वे अपने सारे शिष्योंको भी इस अवसरपर

* Young India—P. 1355
† Young India—Page 1056

प्रसन्न देखना चाहते थे, इसलिए वे अपनी मनोहर मुसकान और मधुर वचनोंसे सबको सान्त्वना देते जाते थे। जो रोनेकी कोशिश करता था, उसे आँसू गिरानेके बजाय हँसनेको प्रेरित करते थे। स्त्रियाँ उनका आशीर्वाद और बच्चे उनका प्यार पाकर खिल उठे थे और पुरुष-वर्ग महात्माजीको विदा देते हुए उनसे हाथ मिलाकर अपनेको सौभाग्यशाली मान रहे थे।

अन्तमें गान्धीजी पुलिसके साथ साबरमती जेलको जानेके लिए उठ खडे हुए। उन्हें जाते देखकर सारा शिष्य-समाज—स्त्री व पुरुष—उनके कोमल चरणोंपर गिर पड़ा। अदालतका कमरा स्त्री और पुरुषोंकी संयुक्त सिसकियोंसे गूँज उठा था। लेकिन गान्धीजी स्थिर-मन और स्थिर-चित्त थे, वे मुसकराते ही रहे। सबको विदा करके और देशकी सेवाका सन्देश देकर अन्तमें अपने शिष्योंको छोड़कर गान्धीजी पुलिसकी मोटरमें बैठे और साबरमती जेलको चले गये।

यद्यपि उस बड़े मुकदमेका अन्त हो गया था, तथापि घरोंको लौटते हुए लोग सोचते जाते थे कि यह मुकदमा महात्माजीपर चला था ; या सरकारपर।

———

अध्याय—१२

विश्रान्ति कहाँ ?

गांधीजीके बन्दी होनेके साथ-साथ स्वातन्त्र्य-संग्रामका प्रथम अध्याय पूर्ण हो जाता है। गांधीजीके बन्दी होनेसे एक प्रकार भारतकी स्वतन्त्रता देवी ही बन्दिनी हो गयी थीं। भारतमें इससे सर्वत्र एक अवसाद छा गया था। गांधीजी-के बिना काँग्रेस और देश अनाथ-सा हो गया था।

जेलमें

देशकी निगाहें महात्मा गांधीके कारागृह यरवदा-जेलपर ही लगी रहीं। प्रतिदिन हजारों श्रद्धालु भक्त और शिष्य यरवदा जेलका चक्कर काटा करते थे, इसी आशामें कि महात्माजीकी एक झाँकी उन्हें मिल सके। कई एक राज-नैतिक नेता भी गांधीजीसे भेंट करने कारागृहमें जाया करते थे ; किन्तु कैदीकी हैसियतमें गांधीजी उनसे किसी प्रकारकी राजनैतिक चर्चा करना स्वीकार न करते थे। गांधीजी शांत एवं दृढ़चित्तसे जेलके दिनोंको बिताते रहे। यह समय (१९२२–१९२४) उन्होंने अपने 'सत्यके प्रयोगों' अथवा आत्मकथा लिखनेमें लगाया था जिसे १९२५ में रिहा होनेपर प्रथम बार उन्होंने नवजीवन प्रेससे प्रका-शित कियाथा। जेलमें रहते समय भी उन्होंने उन सत्त्वों तथा सुविधाओंको स्वीकार नहीं किया, जो उनके अन्य साथी कैदियोंको प्राप्त नहीं थीं। १ मई, १९२३ को निम्न-आशयका एक पत्र भी उन्होंने जेल-सुपरिन्टेन्डेन्टको लिख भेजा था।

काँग्रेसकी दशा

गांधीजीके जेलमें बन्द हो जानेसे काँग्रेसकी हालत भी एक चालकहीन

गाड़ीकी-सी हो रही थी। ऐक्यका सुदृढ़ बन्धन ढीला पड़ता जा रहा था और राजनैतिक नेता अपने-अपने ढंगमें काँग्रेसको रँगनेका प्रयत्न कर रहे थे। गांधीजी-के नेतृत्वमें जिस प्रकारका संगठन, ऐक्य और संयम था, उसमें दरारें पड़ने लगी थीं। देशके सार्वजनिक जीवनमें एक गहरी खाई उत्पन्न हो गयी थी। नवम्बर-में खिलाफतका प्रश्न भी एकाएक शांत हो गया। नवम्बरके अन्तमें तुर्कीके शासनकी बागडोर कमालपाशाके हाथोंमें चली गयी और तुर्कीके सुलतानको प्राण बचानेके लिए एक अंग्रेजी जहाजमें छिपकर मालटा भाग जाना पड़ा। उसके विदा होते ही वह सुलतान और खलीफ़ा दोनों पदोंसे च्युत कर दिया गया। खलीफाका इस प्रकार अन्त हो जानेसे खिलाफतके प्रश्नका भी अन्त हो गया और इसके साथ हिन्दू-मुस्लिम राजनैतिक संगठन और ऐक्यका आधार भी ढीला पड़ गया।

गया-काँग्रेस

दिसम्बरमें गयामें काँग्रेसका अधिवेशन हुआ। इस काँग्रेसमें काँग्रेसी नेताओंके पारस्परिक मतभेद स्पष्ट रूपसे सामने आये। इस काँग्रेसके सभापति देशबन्धु दास थे। गया-काँग्रेस क्या थी, तीन प्रकारके दलोंका अखाड़ा थी, तीन दलोंकी पृथकता तथा मतभेदका कारण कौंसिल-प्रवेशकी समस्या थी। कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नको उपस्थित करनेवाले श्रीदास थे। इसीको लेकर काँग्रेसमें तीन दल उत्पन्न हो गये थे। एक दल यह चाहता था कि काँग्रेसके असहयोगके कार्यक्रममें कोई रद्दोबदल न हो। अपरिवर्तनवादियोंका यह दल गान्धीजीका पूर्ण अनुयायी था। उनका कहना था कि गान्धीजीकी अनुपस्थितिमें उनके आदेशके विरुद्ध कार्य करना उनके प्रति कृतघ्नता होगी। वे नहीं चाहते थे कि कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध उठाया जाय, क्योंकि ऐसा करनेसे असहयोगकी योजना भंग हो जाती थी। दूसरा दल यह कहता था कि 'हम कौंसिलोंमें जाकर न शपथ लेंगे, न स्थान ही ग्रहण करेंगे और इस ढंगसे शत्रुको पराजित कर देंगे।' अन्तिम दलमें वे जोशीले

राजनीतिज्ञ थे, जो कहते थे कि 'हम कौंसिलोंपर अधिकार कर लेंगे, मंत्रि-मंडलों और मंत्रियोंको तहस-नहस कर देंगे, शेरको उसकी माँदमें जाकर पराजित करेंगे। रुपयेकी मंजूरी न देंगे और निन्दा वा धिक्कारका प्रस्ताव पास करेंगे, और शासन-यन्त्रका चलना असम्भव कर देंगे।'

अतः कौंसिल-प्रवेशपर काफी बहस हुई। देशबन्धुने उसके पक्षमें काफी युक्तियाँ दीं। काँग्रेसमें उपस्थित बहुसंख्यक प्रतिनिधियोंने इस प्रस्तावका जोरदार विरोध किया। एस० श्रीनिवास आयगरने संशोधन पेश किया कि कौंग्रेसी उम्मीदवार हों, किन्तु निर्वाचनके बाद कौंसिलोंमें स्थान न ग्रहण करें। प० मोतीलालजी भी इसपर रजामन्द हो गये थे। विट्ठलभाई पटेलने भी दासका पक्ष ग्रहण किया था। किन्तु दास जैसे व्यक्तित्वशाली पुरुष, पंडित मोतीलालजी और विट्ठलभाई-जैसे तार्किक प्रभावशाली नेताओंका सहयोग पाकर भी पूरी काँग्रेसको असहयोगके पथसे विचलित नहीं कर सके। इससे स्पष्ट हो गया था कि यद्यपि गान्धीजीका कौंग्रेसपर अभी पूर्णरूपसे प्रभाव नहीं जम सका था, किन्तु बहुसंख्या तब भी उन्हींके नेतृत्वमें विश्वास करती है। काँग्रेसमें मतभेद है, लेकिन मतभेदकोंकी संख्या बढ़ नहीं सकी है और काँग्रेस अधिक अंशोंमें गान्धीमय हो चुकी है।

फलतः कौंग्रेसके बहुमतको अपने पक्षमें करनेसे असफल होकर श्रीदासने पं० मोतीलालजी नेहरू और विट्ठलभाई पटेलका आश्रय लिया। उन्होंने 'अपरिवर्तनवादी' एवं 'गान्धीवादी'-काँग्रेसमें रहना उचित नहीं समझा और उससे अलग होकर, 'स्वराज्य-पार्टी' नामसे अपना एक अलग दल कायम कर लिया। स्वराज्य-पार्टीका कार्यक्रम भी निश्चित कर लिया गया था। श्रीदासको बगालकी प्रान्तीय कौंसिलपर कब्जा करनेका भार सौंपा गया; और पं० मोतीलालजी नेहरूको दिल्ली और शिमलापर धावा बोलनेका भार दिया गया। महाराष्ट्रके जिम्मे नागपुरकी देख-रेख रही। इन लोगोंका विश्वास था कि "यदि बारडोलीके कर-बन्दी-आन्दोलनकी सफलता बाकी सारे

भारतमें उसी ढंगके आन्दोलनकी आवश्यकताको दूर कर सकती थी, तो नागपुर और बगालमें मंत्रिमण्डलोंको चकनाचूर करनेकी सफलता बाकी भारतके लिए उदाहरण क्यों नहीं बन सकती थी? तब बाकी सारा भारत इस कष्टसे क्यों न बचाया जाय?"*

बम्बई-महासमिति

श्रीदेशबन्धुके कौंसिल-प्रवेश आन्दोलनके कारण बम्बईमें २५, २६, २७ मईको काँग्रेस-महासमितिकी बहुत जरूरी बैठक बुलायी गयी। देशबन्धु दासने महासमितिको यह सुझाया कि काँग्रेसके दो विभाग कर दिये जायँ जिनमेंसे एक वर्गका काम रचनात्मक कार्य करना हो और दूसरेका कौंसिलोंपर कब्जा करनेका दायित्व रहे। किन्तु अपरिवर्तनवादियोंने कौंसिल-प्रवेशका घोर विरोध किया। विरोधी दलने, जिसमें राजगोपालाचार्य, वल्लभभाई पटेल और राजन्द्रबाबू आदि थे, कार्यसमितिसे इस्तीफे तक दे दिये। श्रीदास भी इसी समय इस्तीफा देकर काँग्रेससे अलग हो गये।

दिल्ली-काँग्रेस

कौंसिल-प्रवेशके प्रश्न और स्वराज्यपार्टीकी स्थापनाके कारण काँग्रेसके संगठन को भारी धक्का पहुँचा। उस समय अपने वास्तविक नेता गांधीजीके न रहनेसे काँग्रेस अपना मार्ग ही निश्चित न कर पाती थी। क्या किया जाय, क्या न किया जाय?—यह निश्चित करना ही कठिन था। इस द्विविधापूर्ण अवस्थाका समाप्त करनेके लिए ही बम्बईमें पुनः काँग्रेसका एक विशेष अधिवेशन करनेका निश्चय किया गया था। किन्तु यह अधिवेशन सितम्बर, १९२३ में बम्बईके बजाय दिल्लीमें हुआ। इसके सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद थे, जो राष्ट्र-नेता

* काँग्रेसका इतिहास— पृष्ठ २४४

होनेके साथ-साथ मुसलमानोंके बड़े इमाम भी हैं। अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी दोनों दलोंका उनपर विश्वास था। इस अधिवेशनकी समाप्ति परिवर्तनवादियोंकी विजयके साथ हुई। दासकी मनोकामना पूर्ण हुई। दासके समर्थक परिवर्तनवादियोंने बिना कठिनाईके दिल्ली-काँग्रेससे यह अनुमतिसूचक प्रस्ताव पास करा लिया था कि "जिन काँग्रेस-वादियोंको कौंसिल-प्रवेशमें धार्मिक अथवा दूसरे किसी प्रकारकी विशेष आपत्ति न हो, उन्हें अगले निर्वाचनोंमें खड़े होने और अपनी राय देनेके अधिकारका उपयोग करनेकी आजादी है, इसलिए कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध सारा प्रचार बन्द कर दिया जाता है।"

इस प्रकार स्वराज्य-पार्टीके प्रमुख नेता श्रीदास और पं० मोतीलालजीने गयामें जो बगावत शुरू की थी वह दिल्ली-अधिवेशनमें पूर्ण हो गयी। दिल्लीकी काँग्रेसने यह भी बतला दिया कि काँग्रेसके अधिनायकोंमें अब परिवर्तन हो गया है और गान्धीजीके असहयोगके मार्गसे वे हटने-से लगे हैं। किन्तु काँग्रेसमें अनुमति-सूचक युक्त प्रस्ताव पास हो जानेपर भी ऐक्य स्थापित न हो सका। गान्धीजीके अनुयायी इससे क्षुब्ध और असंतुष्ट ही बने रहे।

कोकनाडा-काँग्रेस

सन् १९२३ के दिसम्बरमें काँग्रेसका अधिवेशन पुनः कोकनाडा में हुआ। गान्धीजीके भक्त अपरिवर्तनवादी अभी भी यह आशा लगाये बैठे थे कि सम्भव है, कोकनाडाकी काँग्रेसमें दिल्लीका अनुमति-सूचक प्रस्ताव गिर जाय और असहयोगका झण्डा फिर खड़ा कर दिया जाय। इस काँग्रेसके सभापति मौलाना मुहम्मदअली चुने गये। मौलानाने कौंसिल-प्रवेशके बारेमें दिल्लीसे ही यह कहना शुरू कर दिया था कि उनके कानमें चिड़िया कह गयी है कि महात्माजी भी कौंसिल-प्रवेशका विरोध न करेंगे। असलमें ऐसा कोई संदेश गान्धीजीने नहीं भिजवाया था। वे जेलसे किसी प्रकारका सन्देश अपने सहयोगियोंको भेजना सत्यके विरुद्ध समझते थे। जेलसे छूटनेपर गान्धीजीने मौ० मुहम्मदअलीको यह

जरूर कहलवाया था—"मेरे विचार जाने-बूझे हैं। जेल जानेसे पहिले मैं उन्हें प्रकट कर ही चुका हूँ, और इधर उनमें कोई अन्तर नहीं पड़ा है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपका मुझसे मतभेद हो, तो भी मेरे और आपके बीचमें जो सौहार्द्र है, वह वैसा ही रहेगा।" इस सन्देशसे स्पष्ट है कि गान्धीजी एक चित्तसे अपने असहयोगपर ही दृढ़ थे। कौंसिल-प्रवेश उन्हें पसन्द न था। अतः मौ० मुहम्मदअलीने कौंसिल-प्रवेशमें गान्धीजीकी सहमतिकी जो खबर उड़ायी थी, वह निराधार थी और सम्भवतः इसलिए उड़ायी गयी थी जिससे काँग्रेसमें शान्ति और ऐक्य कायम रह सके। राजेन्द्रबाबू-जैसे कुछ प्रसिद्ध अपरिवर्तनवादी नेता कोकनाडा-काँग्रेसके रुखको देखकर उसमें शामिल न हुए। फलतः कोकनाडामें भी परिवर्तनवादियों अथवा स्वराज्य-पार्टीवालोंकी ही विजय हुई। इस काँग्रेसने निश्चय किया कि असहयोगकी नीति कायम रहेगी, किन्तु असहयोग जिस प्रकार बाहरसे किया जा सकता है, उसी प्रकार कौंसिलोंमें प्रवेश कर भीतरसे भी किया जा सकता है। दासका असहयोग-विद्रोह अब पूरी तरहसे सफल हो चुका था; तथापि काँग्रेसमें ऐक्य और शान्ति स्थापित न हो सकी। अपरिवर्तनवादी क्षुब्ध और असंतुष्ट बने ही रहे। परिवर्तनवादी विजयी होनेपर भी अपने-आपको मन-ही-मन काँग्रेसकी शान्तिका भेदक तथा नीतिका विरोधी अनुभव करते रहे। उनके दिलको तभी शान्ति मिल सकती थी जब महात्मा गान्धीजी उनके पक्षकी पुष्टि कर देते।

किन्तु आत्मामें शल्य होते हुए भी स्वराज्य-पार्टीवालोंने अपना काम जोरोंसे जारी रखा। १९२३ के चुनावमें श्रीदास और मोतीलालजीकी स्वराज्य-पार्टीने खूब जोरोंसे भाग लिया। देशकी विभिन्न कौंसिलोंके निर्वाचनोंमें तगड़ा मुकाबला किया गया। स्वराज्य-पार्टीकी खूब विजय हुई और केन्द्रीय असेम्बली या बड़ी कौंसिलके लिए ४५ स्वराजी निर्वाचित हुए, जिनमें पारस्परिक पूर्ण सहयोग और कार्य करनेकी दृढ़ता थी।

बंगालकी प्रान्तीय कौंसिलमें श्रीदासके नेतृत्वमें सरकारके विरुद्ध विद्रोह

खड़ा किया गया, और केन्द्रीय असम्बलीमें पं० मोतीलालजी नेहरूके नेतृत्वमें सरकारके विरुद्ध बगावत होने लगी। स्वराज्य-पार्टीके सदस्योंने जहाँ-तहाँ प्रान्तीय कौंसिलोंमें अवरोध पैदा कर दिये। बड़ी कौंसिलका कार्य उनके कारण इतना दुर्गम हो गया कि वाइसरायको अकसर अपने विशेष अधिकार और 'वीटो' काममें लाने पड़े। विशेष अधिकारोंके निरन्तर प्रयोगने दुनियाको जाहिर कर दिया कि भारतपर ब्रिटिश-सरकार उसकी इच्छाके विरुद्ध शासन करती है। स्वराज्य-पार्टीने इस प्रकार कार्य करते हुए कई विजयें प्राप्त कीं और दुनियाकी दृष्टिमें ब्रिटिश-सरकारकी ज्यादतियाँ प्रत्यक्ष कर दीं। स्वराज्य-पार्टीकी पहली विजय तब हुई जब श्री टी० रंगाचारीने शासन-व्यवस्थामें तत्काल परिवर्तन करनेके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पेश किया और प० मोतीलाल नेहरूने यह संशोधन पेश किया कि भारतमें पूर्ण उत्तरदायी सरकारकी सिफारिश करनेके लिए एक गोलमेज-परिषद् बुलायी जाय। सरकारको अन्य कई प्रस्तावोंको लेकर खूब हार खानी पड़ी थी। जिनमेंसे कुछ राजनैतिक कैदियोंको छोड़ने, १८१८ के रेगुलेशन ३ को रद करने, दक्षिण अफ्रिकासे मालमें आनेवाले कोयलेपर कर लगानेका प्रस्ताव, और सिख-आन्दोलनकी अवस्थाके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए एक समिति बैठानेके प्रस्ताव विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। स्वराज्य-पार्टीको राष्ट्रीय एवं नरम-दलका भी सहयोग प्राप्त था। स्वराज्य-पार्टीने ग्रान्ट्स की चार मदोंको भी अस्वीकार कर दिया था। ब्रिटिश-शासनके इतिहासमें ऐसा पहिले कभी न हुआ था। स्वराज्य-पार्टीके इस अन्दरूनी असहयोगने निःसन्देह सरकारके लिए एक बहुत बड़ा अड़गा पैदा कर दिया था और उसकी निरंकुशताका नंगा चित्र दुनियाके सामने प्रकट कर दिया था। स्वराज्य-पार्टीकी इन विजयोंने विद्रोही देशबन्धु दासके इस कथनकी पुष्टि कर दी कि भीतर घुसकर भी सरकारके विरुद्ध बगावत की जा सकती है। किन्तु इतना होते हुए भी काँग्रेसका एक बहुत बड़ा भाग, जो गान्धीजीके इशारेके बिना असहयोगके मूल प्रस्तावमें कोई परिवर्तन न चाहता था, असन्तुष्ट ही बना रहा और काँग्रेस तथा स्वराज्य-पार्टीके बीचकी खाई

पुरने न पायी। १९२३ की इस स्थितिको देखते हुए देशके सामने यह प्रत्यक्ष हो गया था कि गान्धीजीकी अनुपस्थितिमें उनके लिए दो ही मार्ग रह गये थे—पहिला यह कि वे श्रीदेशबन्धु और पं० मोतीलालजी नेहरूका नेतृत्व स्वीकार कर लें, या जबतक गान्धीजी छूट न जायँ, तबतक अपरिवर्तनवादी बनकर चुप चाप बैठे रहें। क्योंकि दूसरी स्थतिमें बिना नेताके वे कर भी क्या सकते थे?

गांधीजीकी रिहाई

देश जब इस संदिग्ध अवस्थामें था और कॉंग्रेसमें फूट काफी बढ़ चुकी थी, तभी अनायास गांधीजी जेलसे रिहा होकर बाहर चले आये। १६२४ का आरम्भ था। देशमें अनैक्य और फूटसे भारी उदासी छायी हुई थी, कि इसी समय गांधीजीके सख्त बीमार होनेका समाचार आया। इस दुःखद समाचारने सारी बातोंको दबा दिया। सभी लोगोंका ध्यान गांधीजीकी ओर आकृष्ट हो गया। १२ जनवरी, १९२४ को गांधीजीपर भयंकर रूपसे 'अपेंडिसाइटिस' रोगका आक्रमण हुआ था। रोगने ऐसा भयंकर रूप धारण कर लिया था कि बिना 'ऑपरेशन' के उसका अच्छा होना मुश्किल मालूम देता था। सरकारी अंग्रेज डाक्टर कर्नल मैडॉकको साहस न हुआ कि महात्माजीको उनके सिद्धान्त-के विरुद्ध चीरा लगावे। किन्तु उसे तब अवश्य आश्चर्य हुआ होगा जब महात्माजी ने अंग्रेज डाक्टरपर अपना विश्वास और भरोसा प्रकटकर चीरा लगानेकी स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पाकर कर्नल मैडॉकने पूना-जेलके अस्पतालमें आधी-रातके समय महात्माजीके नश्तर लगाया। यह नश्तर बहुत ही सफल रहा और महात्माजी मौतके मुखसे बाहर निकल आये।

गांधीजी बच गये, लेकिन बहुत-से लोगोंके मनमें यह विचार अवश्य आया कि गांधीजी, जो प्राकृतिक चिकित्साके समर्थक हैं और अंग्रेजी दवाओं तथा नश्तर लगाने, आदिके कट्टर विरोधी हैं, क्योंकर वे नश्तर लगवानेको तैयार हो गये। क्या उन्होंने अपना सिद्धान्त त्याग दिया, या क्या उनका आत्मबल कम

हो गया ? इन सबके समाधानमें गांधीजीने अपनी मानवीय कमजोरीको स्वीकार करते हुए कहा था—"मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं पूर्ण नहीं हूँ। मैं पूर्णताको पहुँचनेका अभिलाषी अवश्य हूँ। मैं उस तक पहुँचनेका मार्ग भी जानता हूँ। लेकिन मार्गको जान लेनेसे ही कोई ध्येय तक नहीं पहुँच जाता। जिस प्रकार मेरा विचार है कि मेरी बीमारीका कारण मेरे शरीर और मस्तिष्ककी कमजोरी थी, उसी प्रकार नश्तर लगानेके लिए तैयार होना भी मेरे मस्तिष्ककी बढ़ी हुई कमजोरी थी। यदि मैं अहंकारसे पूर्णतया रिक्त होता, तो मैं अपनेको बिलकुल दैवपर छोड़ देता, किन्तु मैं तो इस देहमें जीवित रहना चाहता था। पूर्ण विराग कोई यांत्रिक विधि नहीं है। इसे सतत प्रयत्न और प्रार्थनाके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।"

गान्धीजी अभी इस देहमें रहना चाहते थे, क्योंकि उन्हें इस बातका आभास था कि वे सत्य और अहिंसाके अपने प्रयोगोंसे अपने देशको स्वतन्त्र बना सकेंगे। वे सत्याग्रह और देशकी स्वतंत्रताके लिए जीवित रहना चाहते थे। वे समझते थे कि केवल वे ही ऐसा कर सकते थे और ऐसा सोचनेके कारण ही उन्होंने अपनेमें अहंकारको चमकता देखा था। किन्तु क्या वह अहंकार था ? क्या वह ईश्वरीय प्रेरणा नहीं थी ? सम्भव है, ईश्वरकी इच्छा यही थी कि गान्धीजी मानवताके लिए बहुत कुछ करें। और इसीलिए उन्हें जीनेका प्रयत्न करना ही चाहिए। आगेके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे ये बातें सत्य ही मालूम देती हैं। दूसरी ओर गान्धीजीका यह कहना भी सही था कि वे तब पूरी तरहसे योगी न हुए थे, हाँ उसके लिए प्रयत्नशील थे और इन आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए भी वे जीवित रहना चाहते थे। जो भी हो, यह भारतका सौभाग्य था कि महात्माजीने भारतकी खातिर अपने सिद्धान्तका क्षणिक परित्याग करके भी अपने प्राणोंको बचा लिया और भारतको अनाथ न होने दिया।

महात्माजीकी बीमारी और नश्तर लगनेकी खबरसे सारा देश क्षुब्ध हो उठा था, किन्तु नश्तर सफल रहा और महात्माजी खतरेसे पार हो गये हैं, यह

समाचार मिलते ही सबने मुक्तिकी गहरी साँस ली। नश्तर लगनेके कुछ दिन बाद तक महात्माजीको अस्पताल हीमें रखा गया। ५ फरवरी, १९२४ को सरकारने अनायास ही गांधीजीको बिना किसी शर्तके रिहा कर दिया। तब देशकी चिन्ता पूरी तरहसे दूर हो गयी।

विश्रान्ति कहाँ

महात्माजीके रिहा होनेपर उनके मित्र और सहयोगियोंने निश्चय किया कि महात्माजी कुछ दिन बम्बईके पास जुहूमें विश्राम करें। किन्तु जेलसे मुक्त होकर जुहूमें रहनेपर भी गान्धीजीको शान्ति वा विश्रान्ति न मिल सकी। उनके छूटते ही परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दोनों दल गान्धीजीको पक्षमें लानेका प्रयत्न करने लगे। अपरिवर्तनवादी आशा करने लगे कि अब तो गान्धीजी छूट गये हैं, इसलिए काँग्रेस अब पूर्णरूपसे सत्याग्रहके मार्गपर आ जायगी। परिवर्तन-वादी सोचने लगे कि गान्धीजीके पास जाकर और अपने पक्षका समर्थन कराके वे दिल्ली और कोकनाडा-काँग्रेसमें प्राप्त हुई विजयोंको पक्का करा लेंगे और इस प्रकार फूट पैदा करनेका कलंक अथवा धब्बा, जो उनपर लगा है, उसे धो डालेंगे। इस प्रकारकी फूट और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंको देखकर ऐक्य और पूर्णताके समर्थक गान्धीजीको भला कैसे जुहूमें शान्ति या विश्रान्ति मिल सकती थी? इन भिन्न दृष्टि-कोणोंके अलावा गान्धीजीके हृदयपर सबसे अधिक आघात तो यह जानकर हुआ कि हिन्दू-मुसलमानोंके बीचमें जैसा ऐक्य खिलाफतके समयमें था, वह भग हो गया है और परस्पर कलह बढ़ी चली जाती है।

जुहू-वक्तव्य

कुछ दिन आराम करनेके पश्चात् थोड़ा स्वस्थ होते ही गांधीजी फिर अपने कर्म-पथपर अग्रसर हो गये। फरवरीमें वे छूटे थे और छूटनेके दो ही महीने बाद अप्रैलसे उन्होंने 'यंग-इंडिया' और 'नव-जीवन' का सम्पादन-कार्य

अपने हाथोंमें ले लिया था। इसी समयसे उन्होंने नव-जीवनमें क्रमशः अपनी आत्मकथा तथा जेल-डायरीको छापना शुरू किया था।

किन्तु पूर्ण स्वास्थ्य लाभ न होनेसे गांधीजी जुहूमें ही टिके रहे। इसी समय श्रीदास और पं० मोतीलाल नेहरूने जुहू पहुँचकर गांधीजीसे भेंट की और अपने पक्षके समर्थनमें उनका आशीर्वाद लेना चाहा। जुहूमें कुछ दिन गांधीजी और स्वराज्य पार्टीके नेताओंमें बातचीत चलती रही, जिससे लोगोंको यह आशा बँधी कि दोनों विरोधी दलोंमें अवश्य कोई समझौता हो जायगा।

लोगोंकी आशाएँ बिलकुल निष्फल न हुईं। पूर्ण समझौता तो न हो सका, किन्तु गांधीजीने उस समय ऐसा मार्ग अपनाया जिससे कॉंग्रेसमें उत्पन्न हुई फूट और वैषम्य काफी क्षीण हो गया और दोनों दलोंके दृष्टिकोण समताकी ओर आने लगे। जुहूकी बातचीतमें गांधीजीने हृदयकी विशालतासे काम लिया। उनका रुख इस समय 'आदान-प्रदान' का था। जुहूकी बातचीतपर गांधीजीने जो वक्तव्य प्रकाशित किया था उससे उक्त बातोंकी पुष्टिके साथ यह भी प्रत्यक्ष हो गया कि गांधीजी एक ऊँचे आदर्शवादी ही नहीं अपितु एक व्यवहारिक राजनीतिज्ञ भी हैं। उनका वक्तव्य इस प्रकार था :—

"अपने स्वराजी मित्रों तथा कॉंग्रेसवादियोंके साथ कौंसिल प्रवेशकी जटिल समस्यापर बातचीत करनेके बाद मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि मैं उनसे (परिवर्तनवादियोंसे) सहमत न हो सका।...यदि मैं उनके साथ सहमत हो सकता, तो मेरा काम बहुत आसान हो जाता। देशके कुछ आदरणीय और महत्व-शाली नेताओंके विरोधका विचार करना भी मेरे लिए सुखदायी नहीं हो सकता। इनमें कुछने तो देश-हितके लिए बहुत बड़ी कुर्बानियाँ की हैं। और देशको स्वतन्त्र बनानेकी इच्छामें वे किसीसे पीछे नहीं हैं। परन्तु चेष्टा करने और इच्छा रखनेपर भी मैं उनके तर्कको न समझ सका। मेरे और उनके बीचमें सिर्फ तफसीलका ही भेद हो सो बात भी नहीं है। भेद प्रामाणिक और सैद्धान्तिक है। मेरी अब भी यही सम्मति है कि असहयोगके सम्बन्धमें जैसी मेरी धारणा है

उसके अनुसार कौंसिल प्रवेश असंगत है।......परन्तु मैं स्वराजी मित्रोंको अपने दृष्टिकोणपर सहमत न कर सका। किन्तु मैं यह समझता हूँ कि जबतक उनका विचार दूसरा है, तबतक उनका स्थान निःसन्देह कौंसिलोंमें ही है। हम सबके लिए भी यही अच्छा है।

यह आशा करना व्यर्थ था कि बातचीतके दौरानमें मैंने अपने स्वराजी मित्रोंके आगे जो तर्क पेश किये हैं, वे उनके कायल हो जायँगे। उनमेंसे बहुत-से अत्यन्त योग्य, अधिक अनुभवी और सच्चे देश-भक्त हैं। वे कौंसिलोंमें अच्छी तरह सोचे-समझे बिना नहीं गये हैं, और जबतक अनुभव द्वारा अपने तरीकेकी निःसारताका उन्हें विश्वास न हो जायगा तबतक वे अपने निश्चयसे हटेंगे, ऐसी आशा नही करनी चाहिए।

इसलिए इस समय देशके सामने जो प्रश्न है, वह स्वराजियोंके दृष्टिकोण और मेरे दृष्टिकोणके न्यूनाधिक मूल्य आँकनेका नहीं है। कौंसिल-प्रवेशको तो अब एक निश्चित बात मानकर चलना चाहिए। तब सवाल यह है कि अब हमें क्या करना चाहिए? असहयोगियोंको स्वराजी दलका उसी प्रकार विरोध करते रहना चाहिए, या तटस्थ रहना चाहिए और जहाँ कहीं उनके सिद्धान्तोंपर आँच न आती हो वहाँ उनकी सहायता भी करनी चाहिए?

दिल्ली और कोकनाडा-काँग्रेसने केवल उन काँग्रेसवादियोंको इच्छा होनेपर कौंसिलों और असेम्बलीमें जानेकी इजाजत दी है जिनको आत्मा उन्हें न रोकती हो। इसलिए मेरी रायमें स्वराजियोंको कौंसिलोंमें जानेका और अपरिवर्तनवादियोंसे तटस्थताका व्यवहार पानेका अधिकार हैं। उनका वहाँ जाकर अड़ंगा-नीतिको अपनाना भी ठीक ही है; क्योंकि उनकी नीति ही वह है। काँग्रेसने भी उनके कौंसिल-प्रवेशके साथ किसी प्रकारकी शर्त नहीं लगायी थी। यदि स्वराजियोंको सफलता हुई और देशको लाभ पहुँचा तो मेरे-जैसे संशयशील व्यक्तियोंको अपनी भूल अवश्य मालूम हो जायगी। और यदि अनुभवके द्वारा स्वराजियोंका मोह दूर हो गया, तो मैं जानता हूँ कि वे देश-भक्त हैं; फलतः

अपना कदम अवश्य ही पीछे हटा लेंगे। इसलिए मैं उनके मार्गमें बाधा डालनेके काममें शरीक न होऊँगा और न स्वराजियोंके कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध प्रचार करनेमें ही भाग लूँगा। हाँ, मैं ऐसे कार्यमें स्वयं कोई ऐसी सहायता नहीं दे सकता, जिसमें मेरा विश्वास नहीं है। दिल्ली और कोकनाडा-काँग्रेसके प्रस्तावोंका उद्देश्य यही था कि स्वराजियोंको कौंसिल-प्रवेशके उपायका अवलम्बन करनेका मौका दिया जाय। यह तभी हो सकता है, जब अपरिवर्तनवादी पूरी ईमानदारीके साथ स्वराजियोंको अपना कार्यक्रम पूरा करनेकी बेरोक-टोक आजादी दे दें और अपनी ओरसे कोई बाधा न डालें।

कौंसिलोंमें क्या ढंग अपनाना चाहिए, इसके सम्बन्धमें मेरा कहना यही है कि मैं कौंसिलोंमें जाऊँगा तो मैं सोलह आने अड़ंगा-नीतिका अवलम्बन न करके काँग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको सबल बनानेकी चेष्टा भी करूँगा। मैं उस हालतमें प्रस्ताव पेश करके केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारोंसे आशा करूँगा कि —

(१) वे सारे कपड़े हाथके कते और हाथके बुने खद्दरके खरीदें।

(२) विदेशी कपड़ोंपर बहुत भारी चुंगी लगा दें।

(३) शराब आदिकी आयको ही रद्द कर दें, और सेना-विभागके व्ययमें, अपेक्षाकृत ही सही, कमी कर दें।

यदि सरकार कौंसिलोंमें पास होनेके बाद भी इन प्रस्तावोंपर अमल करनेसे इनकार कर दे, तो मैं सरकारसे कौंसिलोंको भंग करनेके लिए कहूँगा और उन्हीं खास-खास बातोंपर फिर निर्वाचकोंके वोट हासिल करूँगा। यदि सरकार कौंसिलोंको भंग करनेसे इनकार कर दे, तो मैं अपनी जगहसे इस्तीफा दे दूँगा और देशको सत्याग्रहके लिए तैयार करूँगा। जब यह अवस्था आ जायगी तो स्वराजी मुझे फिर अपने साथ और अपने नेतृत्वमें पायेंगे। सत्याग्रह-सम्बन्धी योग्यताके सम्बन्धमें मेरी कसौटी वही पुरानी है।

इस आजमाइशकी अवस्थामें मैं अपरिवर्तनवादियोंको सलाह दूँगा कि वे इस बातकी बिलकुल चिन्ता न करें कि स्वराजी क्या कर या कह रहे हैं। उन्हें

तो रचनात्मक कार्यक्रमको एकचित्तसे समग्र शक्ति लगाकर पूरा करके ही उसमें अपनी श्रद्धा सिद्ध करनी चाहिए। जो कार्यकर्त्ता शान्ति, नैतिक तथा प्रदर्शन-रहित काम पसन्द करते हों, उन सबके लिए खद्दर और राष्ट्रीय विद्यालयोंका काम पर्याप्त है। हिन्दू-मुस्लिम-समस्याके सुलझावमें भी कार्यकर्त्ताओंको आस्था-पूर्वक सारी शक्ति लगानेकी जरूरत है। अपरिवर्तनवादी कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें अपने विरोधकी यथार्थताको केवल तभी साबित कर सकेंगे जब वे रचनात्मक कार्यक्रमके द्वारा फल-सिद्धि कर सकेंगे, अपरिवर्तनवादी एक दृष्टिसे लाभमें रहेंगे, क्योंकि वे परिवर्तनवादियोंका सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। परिवर्तनवादी भी रचनात्मक कार्यक्रमके कायल हैं, मगर उनका कहना है कि अकेले रचनात्मक कार्यक्रमसे ही देश अपनी लक्ष्य-सिद्धि न कर सकेगा। परन्तु कौंसिलसे बाहर रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करनेमें सारे अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी और अन्य सब लोग यदि चाहें तो, अपनी-अपनी संस्थाओं द्वारा एक साथ मिलकर काम कर सकते हैं।"*

गांधीजीके इस वक्तव्यने निःसन्देह दो विरोधी दलोंके बीचकी गहरी खाई-को पाटनेमें काफी सहायता की। उन्होंने स्वयं कौंसिल-प्रवेशको स्वीकार तो नहीं किया, पर एक यथार्थवादी नीतिज्ञकी तरह जो हो चुका था उसे मेटा भी नहीं। उनके इस मध्यम मार्गने दोनों दलोंके पारस्परिक मतभेदको बहुत-कुछ शांत कर दिया। परिवर्तनवादियोंको अपने कार्यक्रमकी आजमाइश करनेका उन्होंने पूरा अवसर प्रदान किया। अपरिवर्तनवादियोंको उसमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करके तटस्थताकी नीति धारण करनेकी सलाह दी। इस उपायसे दोनों दलोंके बीच अबतक जो कशमकश चली आती थी वह काफी शान्त हो गयी, यद्यपि दोनों दल अपने-अपने पक्षपर ही डटे रहे और दोनों ही अपने भिन्न कार्यक्रमपर चलते रहे। गांधीजीकी भाँति श्रीदास और मोतीलालजी अपने पक्षसे एक इंच भी न हटे। उन्होंने अपने वक्तव्यमें स्पष्ट घोषित किया कि बात-

* कॉंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २६१-२६२

चीतके दौरानमें गांधीजीने जो विचार प्रकट किये हैं और प्रेसको दिये गये, वक्तव्यमें उन्होंने जो कुछ कहा है, उन सबपर हमने उनके महान् व्यक्तित्वके अनुरूप ही विचार किया है। परन्तु उनके और उनकी सम्मतियोंके प्रति अत्यन्त आदर होते हुए भी हम उनके तर्कोंसे सहमत न हो सके।*

गांधीजीके उपर्युक्त वक्तव्यसे उनकी उस समयकी मनोदशा और विचारों-पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। वक्तव्यसे स्पष्ट हो गया था कि सत्याग्रह और असहयोगके प्रति जो विचार गांधीजीके जेल जानेसे पूर्व थे अब भी वे उनपर उसी प्रकार कायम थे। अपने असहयोगकी धारणाके अनुसार ही उन्होंने कौंसिल-प्रवेश-को अमान्य बतलाया था। सत्याग्रहका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा था कि उसके जाँचनेकी उनकी कसौटी वही पुरानी थी। इस प्रकार स्पष्ट था कि गांधीजीमें अपने दलकी भाँति कोई परिवर्तन न हो सका था। किन्तु अपनी महानताके कारण उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको नये प्रकारके कार्यक्रमकी आजमाइश करनेकी पूरी आजादी दे दी थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि यदि स्वराजियोंको सफलता मिली और उनके कार्यक्रमसे देशको लाभ पहुँचा तो वे अपनी भूलको स्वीकार करके उनके नेतृत्वमें चले जायँगे। लेकिन जबतक ऐसा साबित नहीं हो सकता तबतक वे स्वराजी मित्रोंको निजी सहायता भी नहीं पहुँचायेंगे।

अपने वक्तव्यके द्वारा गांधीजीने काँग्रेसका भावी कार्यक्रम क्या होना चाहिए, यह भी बहुत-कुछ स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने कहा था कि अपरिवर्तनवादियों-को पूरी तरहसे रचनात्मक कार्य और हिन्दू-मुस्लिम-एकताको सफल बनानेमें लग जाना चाहिए। अपरिवर्तनवादियोंको प्रदर्शनसे दूर रहते हुए 'खद्दर' और 'राष्ट्रीय विद्यालयों' के काममें जुट जाना चाहिए। ये काम उन्होंने कहा 'काफी' हैं। इन आदेशोंसे स्पष्ट है कि गांधीजी जेलसे बाहर आनेपर उस संघर्ष वाली स्थितिमें न थे जैसे वे जेल जानेसे पूर्व थे। उन्हें शायद अभी देशकी स्थिति वैसी ही लग रही थी जैसी उस समय थी जबकि उन्होंने बारदोलीके सत्याग्रह

*—वही—पृष्ठ २६३

को स्थगित किया था। और थी भी बात कुछ ऐसी ही। काँग्रेसमें फूट तो थी ही, उसके अलावा हिन्दू-मुस्लिम-एकता भी टूटने लगी थी। अतः ऐसी स्थितिमें देश को साक्षात संघर्षमें ले जानेके बजाय उसे सुधारनेका काम ही उनकी दृष्टिमें ज्यादा जरूरी था। संघर्षके लिए स्वतंत्रताको लड़ाई लड़नेके लिए काँग्रेसकी पुष्टि और हिन्दू-मुसलमानोंका एक होना पहिलेसे भी ज्यादा आवश्यक हो गया था और इसी उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर गांधीजीने काँग्रेसके सामने शांतिके साथ रचनात्मक कार्य करनेका कार्यक्रम पेश किया था।

महान् उपवास

जेलसे छूटनेके बादसे गान्धीजीको थोड़ी-सी भी शान्ति लेनेका अवसर न मिल पाया। पहिले तो उन्हें काँग्रेसकी फूटके प्रश्नको सुलझाना पड़ा। उसे शान्त किये अधिक दिन न हुए थे कि देशमें भयकर रूपसे हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगे। इन दंगोंने गान्धीजीको अशान्त बना दिया। उनका हृदय इस पारस्परिक संघर्ष और कत्ले-आमको देखकर उद्विग्न हो उठा। खिलाफतके समय जिस हिन्दू-मुस्लिम-एकताका विशाल भवन उन्होंने खड़ा किया था, इन दंगोंकी आगमें वह उनकी आँखोंके सामने ही जलकर राख होता जा रहा था। दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद और जबलपुर सभी जगह १९२४ के अभागे सालमें दंगे हुए थे। किन्तु सबसे भयंकर दंगा कोहाटमें हुआ था। कोहाटके दंगेमें हिन्दुओंको बुरी तरहसे कत्ल किया गया था। यह कत्लेआम १९२४ के कुमास सितम्बरकी ९ और १० तारीखको हुआ था। इस दंगेके फौरन् बाद ही कोहाटके भ्रातृस्कूलके हेडमास्टर लाला नन्दलालने जो रिपोर्ट लिखी थी, उसे पढ़नेसे आज भी रोमांच हो आता है।

अतः श्रीपट्टाभिके शब्दोंमें—"ऐसी दशामें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं, जो गान्धीजीने २१ दिनके उपवासका व्रत लिया।" गान्धीजीको लगा कि इस भयकर संघर्ष, कत्लेआम और क्रोधोन्मादके वे ही जिम्मेदार हैं; क्योंकि उन्होंने

अहिंसक बननेकी शिक्षा दिये बिना ही देशमें असन्तोष और संघर्षका बीज बो दिया था। अतः इस पापका प्रायश्चित्त करनेके हेतु ही उन्होंने २१ दिनका उपवास करनेका निश्चय किया था, यद्यपि अभी अपेण्डिसाइटिसके भयंकर और सांघातिक रोगसे मुक्त हुए उन्हें अधिक दिन न हुए थे। निःसन्देह इस दुर्बल शारीरिक स्थितिमें यह उपवास उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। किन्तु आत्माकी शुद्धि उनके सामने शरीर-रक्षासे अधिक जरूरी हो गयी थी। उन्हें चिन्ता न थी, शरीर रहे या जाय। प्रायश्चित्त आवश्यक था। अतः गान्धीजीने देशको चिन्ता और व्यग्रतामें डालकर दिल्लीमें मौलाना मुहम्मदअलीके मकानमें १९२४ के १८ सितम्बरसे उपवास प्रारम्भ कर दिया। किन्तु कुछ दिन बाद उन्हें मुहम्मदअलीके घरसे हटाकर शहरके बाहर एक मकानमें कर दिया गया। डॉ० अंसारी और श्रीऐंडरूज दिन-रात महात्माजीकी सेवा करने लगे।

गांधीजीके इस उपवासने सारे देशको चिंतित कर दिया। सब साँस रोककर यह प्रार्थना करने लगे कि भगवान् किसी तरह गांधीजीकी इस अग्नि-परीक्षाका सफल अन्त हो। महात्माजी अब एक व्यक्ति न रह गये थे, वे देशकी प्रतिमूर्ति और सम्पूर्ण राष्ट्रके प्राण हो गये थे।

गांधीजीको हिन्दू-मुस्लिम-प्रेम और मेलके लिए अपनेको होम करता देखकर देशकी सारी जातियोंके नेता चिन्तित और शोकातुर हो उठे। मौलाना मुहम्मद-अलीकी प्रेरणापर दिल्लीमें सर्वजाति-सम्मेलन किया गया जिसमें हिन्दू-मुस्लिम और सिख नेताओंके अतिरिक्त ईसाई नेता भी शामिल हुए थे। कलकत्तेके लार्ड बिशप डाक्टर कौस वेस्टकोट भी सम्मेलनमें आये थे। सम्मेलनमें उन सब बातोंपर विचारा किया गया जिनकी वजहसे हिन्दू-मुसलमानोंमें परस्पर संघर्ष हुआ करते थे। सम्मेलनके सदस्योंने तय किया कि वे लोगोंमें धर्म और मतकी स्वतन्त्रताका पालन करानेका अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजना मिलने-पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरणकी निन्दा करनेमें कोई कसर न रखेंगे। एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत भी बनायी गयी जिसे यह अधिकार दिया गया कि

वह भिन्न धर्मोंके स्थानीय प्रतिनिधियोंकी रायसे वहाँके लिए स्थानीय पंचायत कायम करे, जो धर्मके सभी झगड़ोंका निपटारा किया करे। गांधीजी इस पंचायतके सभापति बनाये गये और हकीम अजमलखाँ, श्री सी० के० नरीमन (पारसी), डा० एस० के दत्त (ईसाई), मास्टर सुन्दरसिंह लायलपुरी (सिख) सदस्य चुने गये।

सम्मेलनने यह भी तय किया कि महात्माजीके उपवासके सफलतापूर्वक अन्त होनेपर ८ अक्तूबरको सभाओं द्वारा ईश्वरको धन्यवाद दिया जाय और महात्माजीकी दीर्घायुके लिए प्रार्थना की जाय।

जितने दिन गांधीजी उपवास करते रहे, प्रत्येक दिन उनका चर्खा कातना जारी रहा। कर्मवीर प्राण रहते कर्मको कैसे त्याग सकता था। उपवासकी अवधि पूरी होनेपर गांधीजीने प्रार्थना करके, चर्खा चलाकर और भजन-पाठ करके उपवासको समाप्त किया। उनके सफलतापूर्वक उपवास तोड़नेपर देश-भरमें खूब उत्सव मनाया गया। मौलाना मुहम्मदअलीने इस अवसरपर गांधीजीको बूचड़-खानेसे एक गाय खरीदकर भेंट की थी। यह भेंट मुस्लिम-सद्भावना और प्रेमका एक प्रतीक थी।*

यद्यपि गांधीजीके उपवाससे सर्व-जाति-सम्मेलन हुआ और हिन्दू-मुस्लिम-एकताके लक्षण पुनः दिखायी पड़ने लगे; लेकिन ये लक्षण स्थायी न साबित हो सके। दुर्भाग्यसे आगे चलकर फिर दंगे शुरू हो गये और सम्मेलनसे देशको जो आशा बँधी थी, वह पूरी न हो सकी। सम्मेलन यथार्थमें केवल नेताओंका हुआ और साधारण जन-समुदाय उससे अलग ही रहा था। फलतः जन-साधारणपर सम्मेलन-का कोई प्रभाव न पड़ सका जिससे वे पूर्ववत् ही जाहिल अवस्थामें पड़े रहे।

काँग्रेस-संगठन

उपवास समाप्त करनेके बाद गांधीजीने विश्रांतिके लिए अधिक समय न

* आत्मकथा—राजेन्द्रप्रसाद—पृष्ठ २२९

लिया और तुरन्त काँग्रेसके संचालन और संगठन-कार्यमें जुट गये। कर्मवीरको कर्ममें ही शांति तथा विश्रांति प्राप्त होती है। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके प्रश्नके साथ इस समय गांधीजीके सामने अपरिवर्तनवादियोंके भेदका मिटाकर काँग्रेसमें ऐक्य स्थापित करना भी था। यह ऐक्यका प्रश्न कौंसिल-प्रवेशकी समस्याके सुलझाये बिना हल न हो सकता था। इसी समय बंगाल-सरकारने स्वराज्य-पार्टीके विरुद्ध उनके स्वराज्यकी माँगके कारण जोरोंसे दमन जारी कर दिया था। भय था कि कहीं स्वराज्य-पार्टीके नेता देशबन्धु दासको बंगालकी सरकार गिरफ्तार न कर ले। अतः इस दमनका विरोध करनेके लिए बम्बईमें १९२४ के २१ और २२ नवम्बर को एक सर्वदल-सम्मेलन किया गया। गांधीजी इसमें शामिल हुए और उन्होंने भरसक ऐसा प्रयत्न किया, जिससे सब-दल मिलकर और संगठित होकर बंगाल-सरकारका मुकाबला कर सकें। इस सम्मेलनके फलस्वरूप बंगाल-सरकारकी दमन-नीतिपर भी कुछ असर हुआ और देशबन्धु चित्तरंजनदासकी गिरफ्तारी टल गयी।

इस सर्वदल-सम्मेलनके फलस्वरूप देशके विभिन्न राजनैतिक दल भी बंगालके प्रश्नको लेकर एक दूसरेके निकटतर आ सके; किन्तु इस सम्मेलनके बाद जो सबसे मुख्य घटना घटी, वह थी गान्धी और दासके कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नपर समझौता। सर्वदल सम्मेलनके बाद ही २३ और २४ नवम्बरको बम्बईमें महासमितिकी बैठक भी हुई। गान्धीजीके विशाल प्रयत्नसे बिछुड़े हुए देशबन्धु दास और पं० मोतीलाल नेहरू पुनः काँग्रेसके प्रमुख नेताके रूपमें देशके सामने आये। कौंसिल-बहिष्कारके मामलेमें गान्धीजीके झुक जानेका ही यह सुपरिणाम था। गान्धीजीने झुककर काँग्रेसको भंग होनेसे बचा लिया। उन्होंने दास और मोतीलालके साथ मिलकर एक वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमें उन्होंने असहयोगको राष्ट्रीय कार्यक्रमके रूपमें स्थगित करना कबूल किया, तथा कौंसिल प्रवेशको नीतिको स्वीकार कर लिया। ये चीजें गान्धीजीने योंही स्वीकार न की थीं, बल्कि उनकी एवजमें यह तय करा लिया था कि प्रत्येक काँग्रेस-सदस्यको चार आना सालके

बजाय २००० गज हाथका कता सूत प्रतिमास देना पड़ेगा। बम्बईमें स्वीकृत इन शर्तोंका ही परिणाम था कि आगे चल कर बेलगाँव-कांग्रेसने कौंसिल-प्रवेशको स्वीकार किया तथा १९२५ के २२ सितम्बर को हुई पटनाकी महासमितिने कौंसिलके स्वराजी सदस्योंको कांग्रेसके सदस्य कहना कबूल किया और खद्दरके विस्तृत प्रचारके लिए अखिल भारतीय चर्खा-संघकी योजना बनायी, जिसके प्रमुख गान्धीजी नियुक्त किये गये। चर्खा-संघ यद्यपि कांग्रेसका एक अंग स्वीकार कर लिया गया था तथापि संघर्षमय राजनीतिसे उसे जहाँ तक हो सके, अलग रखनेका भी निश्चय किया गया था।

बेलगाँव-कांग्रेस

बम्बई-महासमितिके पश्चात् दिसम्बर, १९२४ में बेलगाँव कांग्रेस होनेवाली थी। यद्यपि देश और कांग्रेसके गान्धीजी हर प्रकारसे एकमात्र नेता, प्रेरक और प्राण बन चुके थे; तथापि अभी तक वे पदके लिहाजसे पीछे रहकर ही सब काम करते रहे। किन्तु इस समय कांग्रेस ऐसी स्थितिमें थी कि गान्धीजीके सिवा कोई दूसरा उसे न सम्हाल सकता था। कांग्रेसमें परिवर्तन और अपरिवर्तन-वादियोंके संघर्षके कारण ऐसी स्थिति पैदा हो चुकी थी, जिससे यह भय हो रहा था कि कहीं कांग्रेस दो परस्पर-विरोधी दलोंमें न बँट जाय। अतः इस जटिल स्थितिको सुलझाने और दोनोंमें समझौता कराके भेद-भाव मिटा देनेका दुष्कर कार्य गान्धी-जीके सिवा और कौन कर सकता था? पट्टाभिके शब्दोंमें "केवल गान्धीजी ही ऐसे थे जो सत्याग्रहका कार्यक्रम वापस लेकर भी अपरिवर्तनवादियोंको शान्त कर सकते थे और कौंसिल-प्रवेशके विरोधका भी सामना करके स्वराजियोंको भी प्रसन्न कर सकते थे। यदि किसी महती योजनाके आरंभ करनेके लिए महान् व्यक्तिकी आवश्यकता होती है, तो उसे बन्द करने के लिए भी महत्तर व्यक्ति ही समर्थ होता है।" अतः ये ही कारण थे कि इस समय बेलगाँव-कांग्रेसके सभापति महात्मा गांधीजी ही हुए। कांग्रेसका असहयोगके इतिहासमें बड़े ही महत्त्वका

स्थान है, क्योंकि उस समयके दो मुख्य प्रश्नों— हिंदू-मुस्लिम एकता और गांधी-दास समझौतेपर उसमें अन्तिम निर्णय किया गया था।

बेलगाँव-काँग्रेसका अधिवेशन प्रारम्भ होनेके एक सप्ताह पूर्वसे ही गांधीजी प्रधान प्रश्नोंके हल करनेके लिए भूमिका तैयार करनेमें लग गये थे। वैषम्य और अनैक्यको तोड़ना उनका हमेशा ही सर्वोपरि कर्त्तव्य रहा है। वे अपरिवर्तनवादियों और स्वराजियोंसे भेंट करके दोनोंको ही एक दूसरेके भाव और विचारोंको समझने और आदर करनेके लिए प्रेरित करते रहे। इन वार्तालापोंके दौरानमें वे दोनों दलोंको 'चर्खा' अपनानेके लिए निरन्तर सलाह भी देते रहते थे। उन्होंने बतलाया कि यदि विदेशी कपड़ेका समुचित रूपसे बहिष्कार किया गया, तो उससे सहज ही में सत्याग्रहके लिए उपयुक्त वातावरण भी तैयार हो सकेगा। फलतः भारतको स्वराज्य पानेमें सरलता होगी। चर्खेके साथ-साथ उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणके रचनात्मक कार्योंपर भी जोर दिया और दोनों पक्षोंको उनकी रचनात्मक महत्ता को समझाया।

इस प्रकार भूमिका तैयार करनेके बाद गांधीजीने बेलगाँव-काँग्रेसके सभापतिका आसन ग्रहण किया था। सभापतिके पदसे दिया गया उनका भाषण बहुत ही संक्षिप्त और अद्भुत था। वह भाषण क्या था, तत्कालीन समस्त समस्याओंका एक स्पष्ट सुलझाव था।

गांधीजीने सभामें अपना भाषण संक्षेपमें ही किया था। इस भाषणमें गांधीजीने १९२० से उस समय (१९२४) तककी घटनाओंपर प्रकाश डाला था। भाषणकी भूमिकामें उन्होंने असहयोगके विकासपर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि इस भेद और अशक्तिके समयमें उसे वापस लेना ही ठीक है। उनकी रायमें भारतके सामने प्रथम आवश्यक कार्य ठोस रचनात्मक-कार्य थे, क्योंकि बिना उन्हें पूरा किये स्वराज्यकी, असहयोगकी या सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नी अत्यन्त कठिन है। यह उन्हें अबतकके असहयोग आन्दोलनसे पूरी तरह मालूम हो गया था। अतः उन्होंने अपने भाषणमें कहा, 'सब तरहके बहिष्कारोंको भिन्न-भिन्न

दलोंने अपनाया। यद्यपि एक भी बहिष्कार कहीं भी पूरा न हो सका, फिर भी जिन-जिन संस्थाओंका बहिष्कार किया गया, उनकी प्रतिष्ठा बहुत कुछ कम हो गयी। सबसे महत्वपूर्ण बहिष्कार हिंसाका बहिष्कार था। एक दफे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसमें पूर्ण सफलता मिल गयी, किन्तु जल्दी ही यह मालूम हो गया कि वह अहिंसा केवल ऊपरी थी। वह असहायावस्थाकी निष्क्रिय अहिंसा थी, न कि साधन-सम्पन्न और परिष्कृत रूप-युक्त अहिंसा। इसीका परिणाम था कि जिन्होंने असहयोगमें भाग नहीं लिया था, उनके प्रति असहिष्णुताका व्यवहार किया गया। किन्तु इस गंभीर दोषके रहते हुए भी मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि अहिंसाके प्रचारने हिंसाको दबाकर रखा, और यदि अहिंसात्मक असहयोगका जन्म न होता, तो उसका उभड़ना अनिवार्य था। यह मेरा साक्षात् विश्वास है के अहिंसात्मक असहयोगने लोगोंको अपनी शक्तिका अनुभव करा दिया है। उसने लोगोंमें छिपे कष्टोंके सहनकी शक्तिको ऊपर ला दिया है। उसने लोगोंमें ऐसी जागृति उत्पन्न कर दी है जैसी किसी दूसरे उपाय से होना सम्भव न था।

"अतः, यद्यपि अहिंसात्मक असहयोगने हमें स्वराज नहीं दिलाया है, यद्यपि उसके बहुत-से निन्दनीय परिणाम हुए हैं तथा, यद्यपि वे संस्थाएँ जिनका बहिष्कार केया गया था, अब भी कायम हैं, तब भी मेरी विनम्र राय में अहिंसात्मक असहयोग राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका एक साधन बन चुका है और उसकी अधूरी सफलता हमको स्वराज्य के समीप तक ले आयी है। इस विषयमें भूल नहीं की जा सकती कि किसी ध्येयके लिए कष्ट सहनेकी क्षमता उस कार्यको आगे बढ़ा सकती है।"

विगत असहयोग-आन्दोलनके प्रति ये भाव व्यक्त करनेके बाद गान्धीजीने उसके वापस करनेके कारणोंपर प्रकाश डाला :

"हम ऐसी परिस्थितिमें हैं जो हमें 'ठहरो' कहनेको बाध्य करती है। क्योंकि यद्यपि कुछ व्यक्ति अभी भी असहयोगमें विश्वास रखते हैं, किन्तु अधिकतर लोगोंका, केवल विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारको छोड़कर, शेषपरसे विश्वास उठ

गया है। कई वकीलोंने वकालत शुरू कर दी है। कुछ लोगोंको ऐसा करनेपर पश्चात्ताप तक नहीं हुआ है। वे लोग जिन्होंने कौंसिलोंको त्याग दिया था, उनमेंसे बहुतसे पुनः प्रवेश कर गये हैं। जिनका कौंसिल-प्रवेशमें विश्वास था, उनकी संख्या बढ़ी चली जा रही है। सैकड़ों लड़के और लड़कियाँ, जिन्होंने गवर्नमेण्ट स्कूल और कालेज छोड़ दिये थे, पुनः उनमें पढ़ने चले गये हैं। इस परिस्थितिमें इन बहिष्कारोंको राष्ट्रीय योजनाके रूपमें नहीं चलाया जा सकता.....।"

आगे विभिन्न राजनैतिक दलोंमें पारस्परिक ऐक्यकी आवश्यकता और महत्ता-पर प्रकाश डालते हुए गान्धीजीने कहा :—

"हिन्दू मुस्लिम-एकताके लिए जो जरूरी है, वही विभिन्न राजनैतिक दलोंके ऐक्यके लिए भी आवश्यक है। हमें एक दूसरेके प्रति सहिष्णु होना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि समय आनेपर हम एक दूसरेको अपने आदर्शोंमें दीक्षित कर सकेंगे। हमें आगे बढ़ना चाहिए। हमें उदारपन्थी तथा अन्य दलोंको, जो काँग्रेससे अलग हो गये हैं, पुनः काँग्रेसमें आनेके लिए कहना चाहिए। यदि असहयोगका बन्द कर दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि वे काँग्रेसमें न आयेंगे। काँग्रेसवालो ! कदम उठानेका कार्य हमारा है। हमें उन्हें आदरपूर्वक आमन्त्रित करना चाहिए और उनके लिए आनेका मार्ग सुगम बना देना चाहिए।"

गांधीजीके भाषण से स्पष्ट है कि इस समय वे काँग्रेसको सत्याग्रह और युद्धके पथपर नहीं ले जाना चाहते थे। इसके कारण भी स्पष्ट थे। काँग्रेसमें फूट तथा मतभेद होनेसे वह कमजोर हो गयी थी। उसकी कमजोरी हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके टूटनेसे और भी बढ़ गयी थी। देशमें हिंसात्मक साम्प्रदायिक दंगे होनेसे सत्याग्रहके लिए आवश्यक अहिंसात्मक वातावरण भी नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। अतः ऐसी परिस्थितिमें युद्धके बजाय प्रथम और जरूरी कार्य था काँग्रेसका पुनः-संगठन। इसी हेतुसे गान्धीजीने 'ठहरो' कहकर देशको असहयोगके मार्गसे मोड़कर रचनात्मक कार्योंकी ओर अभिमुख किया था।

इसके अलावा दूसरा रास्ता ही न रह गया था। यों तो गान्धीजीकी मूल

भावनाओंमें कोई परिवर्तन न हुआ था और वे उस समय भी पुराने ढगपर सत्याग्रह और असहयोग करनेमें विश्वास करते थे। उन्होंने अपने इस विश्वासको प्रकट करते हुए कहा था :--

"एक काँग्रेसजनकी हैसियतसे काँग्रेसको संगठित रखनेके हेतु मैं असहयोगका रोकनेकी सलाह देता हूँ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि देश इसके लिए तैयार नहीं है। किन्तु एक व्यक्तिकी हैसियतसे मैं ऐसा नहीं कर सकता और न करूँगा हां, जबतक कि सरकारका यही ढर्रा चलता है। मेरे लिए यह केवल नीतिका प्रश्न नहीं है, वह तो मेरा धर्म भी है। असहयोग और सविनय अवज्ञा सत्याग्रहरूपी एक ही पेड़की दो शाखाएँ हैं। वह मेरा कल्पद्रुम है। सत्याग्रहका अर्थ ईश्वरकी खोज है; और ईश्वर ही सत्य है। अहिंसा उस सत्यको आलोकित करनेवाला प्रदीप है। स्वराज्य भी मेरे लिए उसी सत्यका एक अंग है। इस सत्याग्रहने ही मुझे दक्षिण अफ्रीका, खेड़ा, चम्पारन, आदि कई अन्य जगहोंपर असफल नहीं होने दिया है। इसमें किसी प्रकारकी हिंसा और घृणाका स्थान नहीं है। इसलिए मैं किसी अंग्रेजसे न तो घृणा ही करूँगा और न मैं उनके जुएको ही सहूँगा। ब्रिटिश तरीकों और ब्रिटिश संस्थाओंका भारतपर लादे जानेके उपक्रमोंका मैं मृत्युपर्यन्त विरोध करूँगा। किन्तु मेरा प्रयत्न अहिंसात्मक होगा। मेरा विश्वास है कि भारतमें अपने अंग्रेज शासकोंसे अहिंसात्मक लड़ाई लड़नेकी सामर्थ्य है। यह प्रयोग असफल नहीं हुआ है। इसमें सफलता ही हुई है, किन्तु इतनी अधिक नहीं जितनीकी हमें आशा और कामना थी। मैं निराश नहीं हुआ हूँ। इसके विपरीत मेरा विश्वास है कि भारत अपने ध्येयको प्राप्त करेगा और वह भी सत्याग्रह द्वारा। आजका 'ठहरो' प्रस्ताव उसी प्रयोगका एक अंग है। असहयोगकी कदापि जरूरत नहीं पड़ सकती, यदि मेरा दिया हुआ कार्यक्रम पूरा कर दिया जाय। लेकिन यदि रचनात्मक कार्यक्रम असफल रहा, तो अहिंसात्मक असहयोग किसी भी प्रकारसे काँग्रेसके द्वारा या उसके बिना पुनः जारी किया जा सकता है। मैं कई बार कह चुका हूँ कि सत्याग्रही कभी असफल नहीं होता।

एक भी पूर्ण सत्याग्रही इस सत्यका प्रतिपादन कर सकता है। हम सबको पूर्ण सत्याग्रही बननेका प्रयत्न करना चाहिए।"

अतः स्पष्ट है कि गांधीजी देशको उस समय सत्याग्रह और असहयोगके लिए तैयार न देखते थे। इसलिए जबतक देश तैयार न हो जाय, काँग्रेस संगठित न हो जाय, और प्रत्येक काँग्रेस-जन अर्थात् स्वराज्यकी लड़ाई लड़नेको इच्छुक पुरुष अथवा स्त्री पूरी तरहसे सत्याग्रहका मर्म न समझ जाय तबतक गांधीजी 'ठहरने' में ही देशका कल्याण समझते थे। ये ही विचार गांधीजीने १९२५ की कानपुर-काँग्रेस (२६ दिसम्बर) में भी प्रकट किये थे। असहयोगके बन्द कर दिये जानेसे उन राजनैतिक दलोंके लिए, जो उस सिद्धांतपर काँग्रेससे सहमत न थे—उन्हें भी मिलनेका मार्ग सुगम हो गया था। गांधीजीने स्वराजियोंके साथ भी समझौता कर लिया। स्वराजियोंने भी सूत कातकर देनेकी शर्त मंजूर की और गांधीजीने उनके कौंसिलमें काम करनेकी माँगको स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अपरिवर्तनवादियों और परिवर्तनवादियोंके बीचकी कलह समाप्त हुई और दोनों दलोंके बीचकी खाई भर गयी तथा पटनाकी महासमिति (२२ सितम्बर, १९२५) के अधिवेशनसे स्वराजी सदस्य काँग्रेसी सदस्य कहलाने लगे।

काँग्रेसके इस पुराने घातक विवादका खतम करना गांधीजीका एक महान् कार्य था। उनकी इस कुशलता और नीतिज्ञताका ही यह सुफल था कि काँग्रेस भग्न होते-होते बच गयी।

ध्येय

गांधीजीने अपने भाषणमें काँग्रेसके ध्येयका स्पष्टीकरण भी किया था। उन्होंने बतलाया कि स्वराज्य हमारा लक्ष्य है, पर हम इसे नहीं जानते कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए चरखा, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण साधन हैं। इन

साधनोंपर जोर देते हुए उन्होंने कहा—"मेरे लिए तो साधनोंका जानना ही काफी है! मेरे जीवनमें साधन और साध्य परस्परमें—विनिमयशील शब्द हैं।"

स्वराज्यका जिक्र करते हुए गांधीजीने कहा—"मैं साम्राज्यके भीतर ही स्वराज्य पानेकी चेष्टा करूँगा, पर यदि स्वयं ब्रिटेनके दोषोंके कारण ही उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ तो मैं ऐसा करनेमें भी संकोच नहीं करूँगा।"

यह स्वराज्य क्या और कैसा होगा? उसकी योजना और रूप-रेखा कैसी होगी? इन प्रश्नोंका उत्तर देते हुए गांधीजीने बतलाया कि उनकी कल्पनाके स्वराजी राज्यमें, मताधिकारके लिए शारीरिक परिश्रमकी शर्त होगी। जायदाद तथा पदका विचार न किया जायगा। साम्राज्यवादी योजनाओंके लिए उसमें भारी सैनिक व्यय न किया जायगा—सुरक्षाके लिए जितना आवश्यक है सेना-पर उतना ही व्यय होगा; न्याय सस्ता कर दिया जायगा। मादक द्रव्य और उससे आनेवाली चुङ्गीका अन्त कर दिया जायगा; उसमें नागर (सिविल) और सैनिक नौकरियोंके वेतनमें मुल्ककी सामान्य आर्थिक स्थितिके अनुरूप कमी कर दी जायगी। प्रांतोंका विभाजन भाषाकी दृष्टिसे किया जायगा, आन्तरिक शासन तथा विकासके लिए उन्हें स्वतंत्रता दी जायगी; निरंकुश शासनका अन्त हो जायगा, ऊँचे पद सबके लिए खुले होंगे, जिसकी एकमात्र कसौटी योग्यता होगी, विदेशियों के एकाधिकारों की नये सिरसे जाँच-पड़ताल की जायगी; भारतीय नरेशोंको उनके पद-मर्यादाका आश्वासन और केन्द्रीय सरकार द्वारा हस्तक्षेप न किया जानेका वचन दिया जायगा। सभी धर्मोंको उसमें अपने प्रचार, आदिकी स्वतंत्रता होगी। सरकारी काम-काज उसमें देशी भाषाओंमें ही किया जायगा। और राष्ट्रकी भाषा हिन्दी होगी।" यह थी उस समय महात्मा गांधीजीके स्वराजी राज्यकी कल्पना। इस स्वराज्यमें देशके जन-समुदायका ही केवल खयाल न रखा गया था, बल्कि राजाओं और विदेशियों तथा अंग्रेजी साम्राज्यका भी पूरा-पूरा खयाल रखा गया था, क्योंकि तबतक गांधीजीको विश्वास था कि उनका नैतिक सहृदयतापूर्ण बर्ताव सत्ताधारियोंको भी

अपने कार्योंमें सहृदय बना सकेगा। लेकिन यदि ब्रिटिश हुकूमतने अपने निरंकुश रवैयेको न बदला तो गांधीजीने अपने वक्तव्यमें ब्रिटिश-साम्राज्यसे बाहर हो जानेकी शान्त और संयत धमकी भी स्पष्ट दे दी थी जिसने सन् ४२ में 'भारत छोड़ोके' रूपमें अपने दृढ़ तथा भयंकर रूपका प्रदर्शन किया ही।

गांधीजीके भाषणमें उस समय ब्रिटिश-शासनसे मोर्चा लेनेका भाव बिलकुल गौण हो गया था। उस समय उनका सारा ध्यान केवल स्वराज्य प्राप्तिके साधनोंपर ही केन्द्रित था। जिन्होंने गांधीजीके १९२१–२२ के रौद्ररूप और १८ मार्चके ऐतिहासिक मुकदमेंमें उनका विकट भाषण देखा और सुना था, उन्हें अवश्य ही गांधीजीके शान्त और सरल भाषण को सुनकर आश्चर्य हुआ होगा। किन्तु गांधीजी कल्पनाके पखोंपर नहीं उड़ते, वे तो पैरोंपर चलते हैं। उन्होंने स्पष्ट अनुभव कर लिया था कि देश तब उस प्रकारसे स्वराज्यकी लड़ाईके लिए प्रस्तुत नहीं था जिस प्रकारसे वे चाहते थे। देशमें न उन्हें पूर्णरूपसे अहिंसाका व्यवहार दिखलायी दिया, न हिन्दू-मुसलमानोंमें मेल और न हिन्दू-हिन्दूमें समता। जबतक स्वराज्य पथके ये अवरोध और शूल दूर न किये जायँ, तबतक वे देशको उस मार्गपर ले जाकर आपत्ति और असफलतामें नहीं घसीटना चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट कह ही तो दिया था कि यदि ये तीन बातें देशने कर दीं, तो स्वराज्य आप ही टपक पड़ेगा और असहयोग तथा सत्याग्रहकी आवश्यकता तक न पड़ेगी।

यही कारण है कि उन्होंने बेलगाँवके अपने भाषणमें रूढ़िवादी हिन्दुओंको ललकारते हुए बताया था कि अस्पृश्यता स्वराज्यके मार्गमें एक बहुत बड़ी बाधा है। 'यह अस्पृश्यता", वे आगे कहते गये, "मूलतः एक हिन्दू-प्रश्न है, और हिन्दू तबतक स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते जबतक वे दबायी हुई जातियोंकी स्वतन्त्रता वापस न कर दें। वे दूसरोंको दबानेमें खुद डूब रहे हैं। इतिहासज्ञ कहते हैं कि आर्योंने भारतके आदिवासियोंके साथ उसी प्रकार का व्यवहार किया था, जैसा अंग्रेज हमारे साथ करते हैं। यदि ऐसा है, तो हमारी गुलामी

हमारे एक वर्गको अस्पृश्य बनानेका ही युक्तिसंगत परिणाम है। जितनी जल्दी हम इस कलंकको मिटा सकें, उतना ही हमारे लिए लाभप्रद होगा। लेकिन पुरोहित अस्पृश्यताको दैवी विधान बतलाते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पुरोहित गलतीपर हैं। यह कहना घातक है कि ईश्वरने मानवके एक अंगको अस्पृश्य बनाया है। और वे हिन्दू, जो काँग्रेस-जन हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस विभाजनको जल्दी-से-जल्दी खतम कर दें। वायकोम सत्याग्रही हमें मार्ग दिखा रहे हैं। वे अपनी लड़ाई नम्रता और दृढ़ताके साथ लड़ रहे हैं।......मैं हिन्दू भाइयोंकी उस प्रवृत्तिके लिए उन्हें आगाह किये देता हूँ जिसके कारण आजकल राजनैतिक उद्देश्यसे वे अस्पृश्य-वर्गका शोषण कर रहे हैं। सवर्ण जातियोंका अस्पृश्यता-निवारण करना अपने और हिन्दू-धर्मके उत्थानके लिए प्रायश्चित्त करना है। शुद्धिकी आवश्यकता अस्पृश्योंको नहीं, ऊँची जातिवालोंके लिए है।......यह हमारा अहंकार है, जो हम ऊँची जातिवालोंको अपने दुर्गुण नहीं देखने देते और उनकी त्रुटिको विशदरूपमें दिखलाते हैं, जिन्हें हमने दबाकर और दलित बनाकर रखा है।......ईश्वरका प्रकाश और आशीर्वाद किसी एक जाति या राष्ट्रकी ठेकेदारी नहीं है। वे सभी ईश्वरकी भक्ति करनेवालोंको प्राप्त होते हैं। वह धर्म और राष्ट्र संसारसे मिट जायगा जिसका विश्वास अन्याय, असत्य और हिंसामें है। ईश्वर प्रकाश है, अन्धकार नहीं। ईश्वर सत्य है, असत्य नहीं। केवल ईश्वर महान् है। ईश्वर प्रेम है, घृणा नहीं। उसके जीव हम सब केवल धूल हैं। हमें विनम्र होकर उसके बनाये हुए निकृष्टतम जीवका भी आदर करना चाहिए। भगवान् कृष्णने दरिद्र सुदामाका ऐसा सत्कार किया था जैसा किसीका भी नहीं हो सकता। प्रेम ही धर्म और यज्ञका मूल है और यह नश्वर देह अहंकार और अधर्मका मूल है—यह तुलसीदासजीकी उक्ति है। हम चाहे स्वराज्य प्राप्त कर सकें या नहीं, किन्तु हिन्दुओंको यदि वे वैदिक दर्शनको पुनर्जीवित कर उसे वास्तविक रूपमें देखना चाहते हैं तो अपनेको स्वयं-शुद्ध कर लेना चाहिए।"

इस प्रकार गांधीजीने स्पष्ट कर दिया कि स्वराज्य अहिंसाकी अडिग श्रद्धा हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य तथा अस्पृश्यता-निवारणसे ही प्राप्त हो सकता है। इन चीजोंको प्राप्त करना स्वराज्य पानेसे भी बड़ा है। हो सकता है, बहुतोंको उस समय गांधीजीके बेलगाँवके भाषणमें संघर्षमय राजनीतिका त्याग तथा उसके साधनभूत केवल उक्त बातोंकी चर्चा अखरी हो, अच्छी न लगी हो, किन्तु आज कोई यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि इन साधनोंकी सिद्धिमें ही निस्सन्देह 'स्वराज्य' निहित था।

इस प्रकार गांधी और दासके समझौते, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारणके लिए उद्योग करनेके संकल्पको स्वीकार करके बेलगाँव-कॉंग्रेस समाप्त हुई, और भविष्यमें आनेवाले स्वराज्य-संग्रामकी तैयारीमें जुट गयी।

बेलगाँव-कॉंग्रेसके समाप्त होते ही गांधीजीने बिना विश्राम लिये देशकी स्थितिका अध्ययन करनेके लिए देशव्यापी भ्रमण आरम्भ कर दिया। मार्च-अप्रैलमें वे दक्षिण भारत पहुँचे। ट्रावनकोरमेंउस समय वायकोममें अस्पृश्यों-का सत्याग्रह चल रहा था। गांधीजीके वहाँ पहुँचनेपर वायकोमके सत्याग्रहियोंको काफी बल और उत्साह प्राप्त हुआ और उनका पक्ष इतना मजबूत हो गया कि सवर्ण हिन्दुओंको उनके साथ समझौता कर लेना पड़ा। अस्पृश्योंको वाय-कोमके एक राजमार्गसे न चलने देनेके प्रश्नपर ही यह सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ा था।

दक्षिण भारतका भ्रमण समाप्त करके गांधीजी कलकत्ता आये और वहाँ राटेरी क्लबमें उन्होंने चर्खाके आर्थिक और आध्यात्मिक पहलुओंपर भाषण दिया।

मई २९ को गांधीजी कवीन्द्र रवीन्द्रसे मिलने शांतिनिकेतन पहुँचे।

इस प्रकार गांधीजी देशके भ्रमणमें लगे थे कि एकाएक १६ जूनको उन्हें देशबन्धु दासके स्वर्गवासका हृदय-विदारक समाचार प्राप्त हुआ। तिलकके पश्चात् भारतका यह दूसरा महान् बौद्धिक नेता था, जिसके निधनसे देशके मर्मपर भारी आघात लगा। गांधीजी इस दुःखद समाचारके सुनते ही

शोकाकुल हो उठे और तुरन्त कलकत्ता चले आये। जब महात्माजी ही देशबन्धुकी मृत्युसे शोकातुर हो उठे तो सारे देशका कहना ही क्या था !

देशबन्धुकी श्मशान-यात्राके जुलूसके आगे-आगे सम्पूर्ण देशवासियोंके सहित गांधीजी भी चल रहे थे। उस दिन गांधीजीके एक महान् अन्तरंग साथी, निर्भीक सत्याग्रही और बाह्यरूपमें यदा-कदा प्रतिद्वन्द्वीका अन्त हुआ था। उनके हृदयमें देशबन्धुके स्वर्ग सिधारनेसे निराशाका तूफान उठ खड़ा हुआ था ; अतः वे अशांत थे।

देशबन्धु दासकी मृत्युके पश्चात् गांधीजीको उनकी स्मृति चिरस्थायी बनानेका कार्य अपना कर्त्तव्य प्रतीत हुआ। अतः कुछ समय तक गांजीजी बंगालमें ही रुके रहे और उनके स्मारकके वास्ते रुपया एकत्र करने लगे। इस प्रकार १० लाख रुपये एकत्र कर गांधीजीने देशबन्धुके चरित्रके अनुरूप उनके नामपर और उन्हींके घरपर (क्योंकि दासने १६२४ में अपना मकान और सारी सम्पत्ति देशके नाम लिख दी थी) स्त्री और बच्चोंके हितार्थ एक चिकित्सालय खुलवा दिया। गांधीजी और राष्ट्र देशबन्धुको कैसे भूल सकते थे ?

इस प्रकार जेलसे छूटनेपर गांधीजीको निरन्तर एकके बाद दूसरे जटिल कार्योंमें फँसा रहना पड़ा और जब उन कार्योंको सुलझाकर वे कुछ शांत होनेको थे ही कि उनका एक महान् मित्र और साथी ही चल बसा। इससे पुनः उनके हृदयको भीषण अशान्तिके समुद्रमें डूबना पड़ा।

जेलसे छूटनेपर ऐसी आशा की जाती थी कि कुछ दिन गांधीजी शांतिसे विश्राम कर सकेंगे, लेकिन उनके जीवनमें शांति और विश्रान्ति कहाँ ?

———

अध्याय—१३

घटाएँ

बेलगाँव-काँग्रेसके समयसे गांधीजीने संघर्षकी राजनीतिको त्यागकर रचनात्मक कार्यक्रमपर ही अपनी दृष्टिको केन्द्रित कर दिया था। देशके जोशीले युवक उनके इस प्रकार शांति ग्रहण करने तथा संघर्षसे पीछे हट जानेके कारण क्षुब्ध हो रहे थे। किन्तु गांधीजी अपने पूर्वनिश्चयोंपर दृढ़ रहे। वे जानते थे कि देश अभी सत्याग्रहकी लड़ाई लड़नेकी योग्यताको प्राप्त नहीं कर सका है। अभी देशमें हिन्दू-मुस्लिम-अनैक्य और अस्पृश्यताका पाप बना ही हुआ है। हिन्दू-मुस्लिम दंगोंसे यह भी प्रत्यक्ष था कि देश अहिंसाको नहीं अपना सका है। ऐसी हालतमें वे कैसे देशको एक संगठित पशुबल-सम्पन्न विशाल साम्राज्यका मुकाबला करनेके लिए कह सकते थे? १९२५ में दिसम्बर २६ को हुई कानपुर-काँग्रेसमें अपने इसी दृष्टिकोणको पेश करते हुए गांधीजीने अपने पाँच मिनटके भाषणमें कहा था—"अपने ५ सालके कामका पर्य्यालोचन करनेके बाद मैं अपनी ऐसी एक भी बात नहीं पाता जिसे रद्द करूँ, न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूँ, जिसे वापस लूँ। मैंने ज्यों-ज्यों जीवनको परखा, त्यों-त्यों मुझे विश्वास होता गया कि मैंने पग-पगपर जो कुछ किया, वह सब ठीक था। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगोंमें जोश और उत्साह है, तो मैं आज सत्याग्रह आरंभ कर दूँ। पर खेद! हालत ऐसी नहीं है?"*

और सचमुच तब देशकी ऐसी हालत नहीं थी। वह देश ब्रिटिश-सरकार-

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २८५

जैसे शक्तिशाली साम्राज्यसे क्या लड़ता, जिसके अधिवासी धर्मके नामपर तब-एक-दूसरेका गला घोंट रहे थे और धोखेसे छुरा चलाकर कलेजे और अँत-ड़ियोंको चीर रहे थे। सारे देशमें १९२५ के अभागे वर्ष निकृष्ट हिन्दू-मुस्लिम-दंगोंका ताँता बँध गया था। १९२५ का सारा जुलाई मास दंगोंमें ही व्यतीत हुआ। दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद, उस्मानाबाद (निजाम-रियासत) आदि नगरोंमें जिधर देखते उधर ही हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेके खूनकी होली खेल रहे थे। इन दंगोंका जिक्र करते हुए दुःख, ग्लानि तथा नैराश्यसे ओत-प्रोत गांधीजीने कलकत्ताके मिर्जापुर-पार्कमें कहा था—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोगकी औषधि बतानेवाले वैद्यकी विशेषता मुझमें नहीं है। मैं तो नहीं देखता कि हिन्दू या मुसलमान मेरी औषधि-को स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं। इसलिए आजकल मैंने इस समस्याकी यों ही उड़ती-सी चर्चा करके संतोष करना आरंभ कर दिया है। मैं यह कहकर संतोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देशका उद्धार करना चाहते हैं, तो एक-न-एक दिन हमें—हिन्दू और मुसलमानोंको एक होना पड़ेगा। और यदि हमारे भाग्यमें यही बदा है कि एक होनेसे पहले हमें एक दूसरेका खून बहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें, हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक दूसरेका सिर तोड़नेपर उतारू हैं, तो हमें ऐसा मर्दानगीके साथ करना चहिए, हमें झूठ-मूठके आँसू न बहाने चाहिए, और यदि हम दूसरेके साथ दया नहीं करना चाहते, तो हमें किसी दूसरेसे सहानुभूति-की याचना भी नहीं करनी चाहिए।"*

स्पष्ट है कि आपसकी ऐसी खूँ-रेजीके चलते हुए गांधीजी मुल्कको किसी प्रकारके राजनैतिक संघर्षके योग्य नहीं समझ सकते थे। कानपुर-काँग्रेसके समय कुछ लोगोंने गांधीजीको यह भी सलाह दी थी कि दक्षिण अफ्रिकाके प्रश्नको

---

*—वही—पृष्ठ २८८-२८९

लेकर वे सत्याग्रह आरम्भ कर दें, किन्तु देशके अनैक्यको देखते हुए उन्होंने इस रायको ग्रहण करनेसे इन्कार कर दिया।

यहाँपर यह स्मरण करानेकी अधिक जरूरत न पड़ेगी कि दक्षिण अफ्रिकासे लौट आनेके बाद भी वहाँके प्रमुख मामलों और समस्याओंपर वहाँके भारतीय नेता और कार्यकर्ता हमेशा गांधीजीकी राय लिया करते थे और बहुत कुछ उसी रायके आधारपर कार्य किया करते थे। समय-समयपर गांधीजी स्वयं भी दक्षिण-अफ्रिका-संबंधी समस्याओंको लेकर उनकी समीक्षा करते हुए अपने प्रवासी बन्धुओंको अपनी परिपक्व और उत्साहपूर्ण राय देकर उनका बल और उत्साह बढ़ाया करते थे। उनकी ये रायें सर्वमान्य हुआ करती थीं। जिस समय भारतीयों-के विरुद्ध ट्रान्सवालकी व्यवस्थापिका-सभामें 'क्लास-एरिया बिल' पेश किया गया था, गांधीजीने उसके विरोधमें बहुत ही समीक्षापूर्ण आलोचनाएँ लिखी थीं। इन लेखोंके जरिये उन्होंने वहाँके भारतीयोंको यह भी समझाया और सुझाया था कि उन्हें उस अपमानजनक 'बिल' के साथ किस तरह पेश आना चाहिए। उनकी रायपर कार्य करते हुए दक्षिण-अफ्रिकाके भारतीय इस 'बिल' का अन्त करनेमें सफल भी हुए। भारतसे मुहम्मद हबीबुल्लाके नेतृत्वमें भारतीयोंका एक शिष्ट-मण्डल वहाँकी सरकारसे मिला। शिष्ट-मंडल और दक्षिण अफ्रिकाकी सरकारके बीचमें १७ दिसम्बर, १९२६ से १३ जनवरी, १९२७ तक बातें चलीं। परिणामस्वरूप दोनों पक्षोंमें 'बिल' के प्रश्नपर समझौता हो गया। गांधीजीने इसे "सम्मानपूर्ण समझौता" कहते हुए २४ फरवरी, १९२७ के यंग इंडियामें लिखा था:—

"सर मुहम्मद हबीबुल्ला और उनके सहयोगियोंको एक ऐसा समझौता करनेके लिए, जो दोनों पक्षोंके लिए सम्मानपूर्ण है, बधाई दी जानी चाहिए। यह इतना अच्छा नहीं जितना कि हो सकता था, पर जितना संभव था, उस लिहाजसे वह बहुत अच्छा है। मुझे सन्देह है कि कोई दूसरा शिष्ट-मंडल इससे

बढ़कर काम कर सकता। क्लास-एरिया-बिल जिसके कारण कान्फ्रेन्स हुई और जिसे लेकर संघर्ष छिड़ा मर चुका और विदा हो चुका है।"*

इस समझौतेके अनुसार दक्षिण अफ्रिकामें भारत सरकार द्वारा एक एजन्ट भेजना भी तय हुआ था, जिसके लिए गांधीजीने श्रीनिवास शास्त्रीका नाम पेश किया था और जो स्वीकृत कर लिया गया था।

दक्षिण अफ्रिकाकी जिक्रको छोड़कर अब हम पुनः अपने देशमें आते हैं। जैसा कि उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है, १९२५ तक गांधीजीकी मनोवृत्ति देशकी विषम अवस्थाके फलस्वरूप संघर्षमय राजनीतिसे हटकर केवल संगठनात्मक और रचनात्मक कार्यों पर ही केन्द्रित हो गयी थी। बेलगाँव-काँग्रेसके समयसे उनका कार्यक्रम—खद्दर-प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम-एकतामें ही सीमित हो गया था, और इन तीनों ध्येयोंकी उपलब्धिके लिए वे तभीसे देश-भरका दौरा कर रहे थे। उनके देशव्यापी भ्रमणने उत्सुक जनताको निकटसे गांधीजीको—'अपने महात्माको' देखनेका अवसर दिया और जिसके नामपर वे मुग्ध थे उसे देखकर वे तृप्त हुए।

गान्धीजी अभी शान्त ही थे। संघर्षकी राजनीतिसे अलग थे। किन्तु काँग्रेस-में उनका प्रभाव किसी प्रकार कम न हुआ था। देशमें और काँग्रेसमें इस समय ब्रिटिश-नीतिके कुकर्मोंके परिणामस्वरूप उग्रता बढ़ती ही जा रही थी, जिसे गान्धीजी भरसक शान्त करनेमें लगे रहे। लेकिन गान्धीजीके प्रयत्नोंके बावजूद काँग्रेसमें उग्र स्वराज्यवादियोंका जोर बढ़ता ही गया।

२६ दिसम्बर, १९२६ को हुई गोहाटी-काँग्रेसमें गान्धीजीकी ओजस्विताके महाप्रकाशमें स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव अन्तर्हित हो गया था। इस प्रकार उग्रदलवालोंको उन्होंने शान्त भी कर दिया था, किन्तु मद्रास-काँग्रेस (२६

* Mahatma Gandhi—The Man and his Mission—P.—108.

दिसम्बर, १९२७) के समय उग्रदल इतना जोर पकड़ता गया कि गांधीजीको उन्हें शान्त करना कठिन हो गया। श्रीनिवास ऐयंगर और पं० जवाहरलालके प्रभावमें आकर काँग्रेसने इस समय स्वतंत्रताके उस प्रस्तावको पास करके ही छोड़ा, जो गोहाटीमें पास न हो सका था। मद्रासके इस प्रस्तावमें काँग्रेसके ध्येयकी परिभाषा करते हुए कहा गया था कि "यह काँग्रेस उद्घोषित करती है कि भारतीय जनताका लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है।"

गान्धीजी इस प्रस्तावके पास होनेपर बहुत झुँझलाये थे। जिस समय विषय-समितिमें इस प्रस्तावपर बात चल रही थी, गान्धीजी वहाँ मौजूद नहीं थे और उन्हें इस प्रस्तावका पता तभी चला जबकि वह पास हो गया। यदि गान्धीजी विषय-समितिमें मौजूद होते, तो बहुत सम्भव था कि वे उस प्रस्तावको पास ही न होने देते। प्रस्ताव पास हो जानेपर गान्धीजीने उसपर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए 'यंग इंडिया' में लिखा था :—

"मैं यह देखनेमें नहीं चूक सकता कि गैर-जिम्मेदार बातें और काम आजके दिन साधारण चीजें हो गयी हैं, और असंयम भी किसी प्रकार कम नहीं दीख पड़ता। विषय-समितिमें महान् परिणामोंवाले प्रस्ताव पैदा किये जाकर महा-समिति द्वारा सहसा बिना अधिक विचार या विवादके स्वीकार कर लिये जाते हैं, स्वतन्त्रताका प्रस्ताव, जिसका पारसाल विरोध किया गया था, बिना किसी विरोधके पास कर लिया गया। मैं जानता हूँ कि उसकी शब्दावलि अहिंसक है, किन्तु मेरी रायमें उसे जल्दीमें तैयार किया गया, और बिना विचार किये मंजूर कर लिया गया। ब्रिटिश-मालके बहिष्कारका प्रस्ताव भी विचार-शून्य मनोवृत्तिसे मंजूर किया गया। इस प्रकारके प्रस्तावोंको साल-ब-साल दुहराकर काँग्रेस अपने ही को नीचा करती है, जबकि वह जानती है कि वह उन्हें कार्यान्वित करनेमें समर्थ नहीं है। ऐसे प्रस्तावोंको पासकर हम अपनी अमर्दानगीको ही प्रदर्शित करते हैं, आलोचकोंकी हँसीके पात्र बनते हैं और दुश्मनकी आँखोंमें नीचे गिरते हैं।"

किन्तु दो ही सालके अन्दर भारतके राजनैतिक आकाशमें ऐसी घटनाएँ घटीं कि वही गान्धीजी, जो मद्रासके उग्र स्वतन्त्रतावादियोंके कटु आलोचक थे, स्वयं ही उग्रतर और स्वतन्त्रतावादी बनकर ब्रिटिश-सरकारके विरुद्ध 'नमक' के छोटे-से प्रश्नको लेकर पूरे बल और प्रकोपके साथ जूझ पड़े।

ये घटनाएँ क्या थीं? ६ अप्रैल, १९२६ को लार्ड अर्विन लार्ड रीडिंगकी जगह वाइसराय होकर भारतमें आये। उसी समय ह्वाइट हालमें भारत-मन्त्रीके पदपर लार्ड बर्कनहैड नियुक्त हुए। लार्ड बर्कनहैड एक निरंकुश साम्राज्यवादी था और भारतके प्रति उसका रुख बहुत ही अनुदार और अशिष्ट था। भारतके राष्ट्रको वह एक ऐसा गुलाम उपनिवेश समझ बैठा था जिसके साथ ब्रिटिश-सरकार जैसा चाहे वैसा बर्ताव कर सकती थी। अतः उसका भारत-मन्त्रीके पदपर नियुक्त किया जाना ब्रिटेन और भारत दोनोंके लिए दुर्भाग्यकी बात थी। क्योंकि लार्ड बर्कनहैडकी नीतिके फलस्वरूप जब भारतके भावी विधानकी रचनाके लिए ब्रिटिश-सरकारने नवम्बरमें एक कमीशन—जो साइमन-कमीशन के नामसे प्रसिद्ध है—की घोषणा की जिसमें केवल गौरांग सदस्य रखे गये थे, तो भारतके राजनैतिक क्षितिजसे उस शान्तिका स्वयं लोप हो चला, जिसे बनाये रखनेके लिए गांधीजी तबतक अविरल रूपसे प्रयत्नशील रहे थे।

गांधी और लार्ड अर्विन

गांधीजी अभीतक राजनीतिसे दूर ही थे और शान्तिपूर्ण रचनात्मक कार्य-क्रमके प्रचारार्थ देश-भरका दौरा कर रहे थे। नवम्बरमें गांधीजी बंगलौरमें थे कि उसी समय उन्हें सुविधानुसार ५ नवम्बर व उसके बादकी तारीखोंमें वाइस-रायसे मिलनेका निमन्त्रण मिला। वाइसरायके निमन्त्रण देशके सभी प्रमुख नेताओंको भेजे गये थे जिससे मालूम होता था कि दिल्लीमें अवश्य कोई नयी और महत्वकी बात होने जा रही है। गांधीजी भी यही सोचकर अपना अन्य कार्यक्रम स्थगित करके दिल्ली जा पहुँचे। किन्तु जब वे वाइसरायसे जाकर

मिले तो कोई ऐसी विशेष और महत्वकी बात न निकली। गांधीजीके मिलने-पर वाइसरायने उनके हाथमें साइमन-कमीशनकी घोषणा रख दी। इसपर गांधीजीने कुछ चकित-से होकर वाइसरायसे पूछा—कि क्या बस यही काम है, तो लार्ड अर्विनने कुछ झेंपते हुए उत्तर दिया—"बस, यही।" यह उत्तर पाकर गांधीजी सोचने लगे कि यह संदेश तो एक आनेके लिफाफेके जरिये भी उनके पास पहुँच सकता था, तब वाइसरायने क्यों उनका कार्यक्रम रद्द करवा-कर उन्हें बंगलौरसे दिल्ली तक दौड़नेका कष्ट दिया ?

भेंटका निष्कर्ष

गांधी और अर्विनकी इस भेंट और बातसे स्पष्ट झलक गया था कि गांधीजी साइमन-कमीशनके घोषणा-पत्रको ऐसा महत्वका न समझते थे कि अपना सारा कार्यक्रम रद्द करके उसे पानेके लिए ही दिल्ली खुशीसे आते। यदि उन्हें पहिले ही यह मालूम हो गया होता, तो शायद वे दिल्ली आते ही नहीं। वाइसरायको भी गांधीजीका शीतल अनुत्साह और साइमन-कमीशनके प्रति उपेक्षाके भावसे मन-ही-मन यह खटका पैदा हो गया कि साइमन-कमीशनके बहुत अच्छे दिन नहीं आनेवाले थे। यदि गांधीजी-जैसा शांतिवादी साइमन-कमीशनको तुच्छ समझता है, तो उग्रदल तो उसके चिथड़े-चिथड़े ही उड़ा देगा। यह वायसरायकी समझमें भलीभाँति आ गया था। लार्ड अर्विन-का बस चलता, तो संभव है कि उनका-जैसा सहृदय व्यक्ति अनादृत और उपेक्षित साइमन-कमीशनको जहाँ-का-तहाँ रुकवा देता, किन्तु अपने ऊपरके अधिकारी बर्कनहैडके सामने उसकी कुछ भी चलती न थी। बर्कनहैड अपनी बातपर तुले हुए थे, और इसलिए पट्टाभिके शब्दों में "लार्ड अर्विन लाचार थे, वह कुछ झेंपते हुए अपने कर्त्तव्यको निभा रहे थे और कुछ समय पहिले ही भारतके राजनीतिज्ञोंकी सहानुभूति प्राप्त कर लेना चाहते थे।"

जिद्दी बर्कनहैड

लार्ड बर्कनहैड निःसन्देह एक जिद्दी और अन्ध साम्राज्यवादी था जिसके सामने जनता और उसके प्रतिनिधियोंकी रायका कोई मूल्य ही न था। बर्दवानके महाराजने लार्ड बर्कनहैडको जब जबरदस्ती अपने निर्णयवादके लिए चेतावनी दी तो उसके उत्तरमें बर्कनहैडने दर्प-घोष किया था—"हम तुम्हें जो कुछ देनेके लिए तैयार हैं उसे तुम हर्गिज नहीं ठुकरा सकते। हम भी देखेंगे कि तुम उसे कैसे ठुकराते हो?" और प्रत्युत्तर देते हुए तभी डा० बेसेण्टने कहा था—"ठीक है, सारा संसार इसे देखेगा और सारा संसार इस बातको याद रखेगा कि लार्ड बर्कनहैड उन लोगोंमेंसे थे जिन्होंने एक दंगेके षड्यन्त्रमें भाग लिया और उत्तरी आयलैंण्डमें सम्राटकी सेनासे ही युद्ध करनेके लिए एक फौज तैयार कर डाली और अपने खजानेको भर लिया। चूँकि अब एक ऐसा कमीशन नियुक्त हुआ है जिसमें भारतीयोंके भावी भाग्यका फैसला होना है तथापि उसमें भारतीयोंका बहिष्कार किया गया है, तो लार्ड बर्कनहैड अब हमारे इस प्रस्तावपर क्यों बिगड़ते हैं कि हम अर्थात् भारतीय भी उनकी ही बहिष्कार-नीतिका अनुकरण करेंगे?"

साइमन-कमीशन

वह कमीशन क्या था? जिसके प्रति गांधीजीने उपेक्षा दिखलायी और काँग्रेस तथा भारतके अन्य सभी दलोंने उसका प्रारम्भसे ही बहिष्कार करना शुरू कर दिया। यह कमीशन ब्रिटिश-सरकार द्वारा १९२७ में नियुक्त किया गया था और ८ नवम्बर, १९२७ में उसकी भारतमें घोषणा की गयी थी और कहा गया था कि यह कमीशन १९२८ के आरम्भमें भारत पहुँचकर जाँचका काम शुरू करेगा। इस कमीशनके सभापति सर जॉन साइमन थे, जिनके नाम-

* काँग्रेसका इतिहास–पृष्ठ ३०८

पर वह साइमन-कमीशनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सरकारके शब्दोंमें इस कमीशनको यह काम सौंपा गया था कि वह "ब्रिटिश-भारतके शासन-कार्यकी, शिक्षा-वृद्धिकी, प्रतिनिधि-संस्थाओंके विकासकी एवं तत्सम्बन्धी विषयोंकी जाँच करे और इस बातकी रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासनका सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नहीं। यदि है तो किस सीमा तक, और अभीतक उत्तरदायी शासन जिस मात्रामें स्थापित किया गया है उसे बढ़ाया जाय, या कम किया जाय, या उसमें और किसी प्रकारका कोई हेर-फेर किया जाय? इन प्रश्नोंके साथ इस बातकी रिपोर्ट भी पेश की जाय कि प्रान्तोंमें दो-दो कौंसिलोंका स्थापित करना वाञ्छनीय है या नहीं?" आदि। इस कमीशनके सदस्योंमें सब-के-सब अंग्रेज थे।

सर्वत्र विरोध

इस कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित होते ही हिन्दुस्तानमें सर्वत्र उसका विरोध शुरू हो गया। पं० मोतीलाल नेहरू उस समय इंग्लैण्डमें ही थे। कमीशनका विरोध करते हुए उन्होंने कहा था कि यह कमीशन तो केवल आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए है; और "यदि सरकार सचमुच कुछ करना चाहती है तो वह पहले यह बतावे कि उसका इरादा क्या है और फिर उस इरादेको निश्चित रूप देने और तदनुसार योजना बनानेके लिए एक कमीशन नियुक्त कर दे।"

श्री० डी० ई० वाचा-जैसे अखिल भारतीय नरम नेताओंने भी कमीशनका विरोधकर उसके विरुद्ध एक घोषणा-पत्र निकाला था। इसमें काँग्रेसके सिवा सभी दलके नेताओंने हस्ताक्षर किये थे। इस प्रकार भारतके सभी दलोंने और काँग्रेसने एक स्वरसे कमीशनका विरोध किया था। किन्तु काँग्रेस और दूसरे दलोंके नाराज होनेके कारण समान न थे। पट्टाभिके शब्दोंमें "काँग्रेसके सिवाय भारतकी सब पार्टियाँ साइमन-कमीशनकी नियुक्तिसे इसलिए नाराज हुईं कि उसमें एक भी

भारतीय नहीं रखा गया था। किन्तु कॉंग्रेसका यह मत स्वाभाविक ही था कि साइमन-कमीशन तो उसकी अधकचरी माँगके निकट भी कहीं नहीं पहुँचता।"*

निःसन्देह साइमन-कमीशनमें भारतीयोंका बहिष्कार करके नर्मदलवालोंको और कॉंग्रेसकी माँगोंका तिरस्कार करके सम्पूर्ण देशके राजनैतिक दलोंको अपने विरुद्ध कर लिया था। भारतीयोंका कमीशनमें नियुक्त न किया जाना भारतका तिरस्कार करना था। इससे बहुतसे नरम-दली क्षुब्ध हो उठे थे। किन्तु कॉंग्रेस, जो सरकारसे पहिलेसे ही कोई आशा न रखती थी और जिसने गांधीजीके नेतृत्त्वमें अपने पैरोंपर खड़ा होना सीख लिया था, इस कमीशनसे निराश न हुई। कॉंग्रेस समझ चुकी थी कि ब्रिटेनसे आशा करना व्यर्थ है और वास्तवमें जो कुछ हासिल हो सकता है, वह अपने बलपर ही हो सकता था।

किन्तु लार्ड बर्कनहैड समझते थे कि भारतमें अपने बूतेपर कुछ करनेकी कोई सामर्थ्य नहीं है, इसलिए वे जैसा चाहें भारतके साथ बर्ताव कर सकते हैं। उनका यह अस्वाभाविक और कठोर व्यवहार कुछ अँगरेज तथा मजदूर-पार्टीको भी बुरा मालूम दिया। मिस विलकिन्सनने तो यहाँ तक कह डाला कि अमृतसर-काण्डके पश्चात् ब्रिटिश सरकारके किसी भी कार्यकी भारतमें इतनी भारी निन्दा न हुई जितनी कि साइमन-कमीशनकी नियुक्ति की। इंग्लैंडकी मजदूर-पार्टीने भी इस सम्बन्धमें लार्ड बर्कनहैडको समझानेके लिए श्रीलैन्सबरी, मैकडानल्ड और स्नोडनको भेजा, परन्तु बर्कनहैड अपने निश्चयपर एक पक्के दुराभिमानीकी भाँति डटे रहे।

कॉंग्रेस

यदि बर्कनहैड साइमन-कमीशनको सफल बनानेके लिए दृढ़ थे, तो गांधीजीके आशीर्वादके साथ देश और कॉंग्रेस भी उसे असफल बनानेके लिए दृढ़तर थे।

---

*—वही—पृष्ठ ३०८

यद्यपि गांधीजीने स्वय इस कमीशनके बारेमें अधिक न कहा था, तथापि उनकी उपेक्षासे ही स्पष्ट हो गया था कि वे उसका पूर्ण विरोध करते हैं और उसपर कुछ कहनेके बजाय अवसर आनेपर कुछ करना ही ठीक समझते हैं। किन्तु कमीशन-के विरोधमें बोलनेका कार्य उनकी तरफसे उनके प्रिय शिष्य और अनुयायी डा० अन्सारीने मद्रास-कॉंग्रेसके सभापतिकी हैसियतसे बोलते हुए किया था। मद्रास-कॉंग्रेस (दिसम्बर २६, १९२७) के सभापतिके पदसे भाषण देते हुए डा० अन्सारी-ने कमीशनका जिक्र करते हुए कहा :—

"यह सवाल किसी हिन्दू अमीर या मुसलमान नवाबके रखे जानेका नहीं है, न सवाल इस बातका है कि आया हिन्दुस्तानियोंको उसके कार्य में सदस्य, निरीक्षक या सलाहकारके रूपमें भाग मिलना चाहिए था। उसका सिद्धान्त ही बिलकुल भिन्न है।.........कोई भी विवेकी और स्वाभिमानी भारतीय ब्रिटेनके इस अधिकारको नहीं मान सकता कि भारतके राजनैतिक विकासका वही एकमात्र अधिष्ठाता है। अपनी आवश्यकता और जरूरतोंको केवल हम ही समझ सकते हैं और अपने भविष्यके निश्चयमें हमारी आवाज ही सर्वोपरि होनी चाहिए। यह हमारा नैसर्गिक और अविभाज्य अधिकार है। इन सिद्धान्तोंके आधारपर कॉंग्रेसने हमेशासे एक ऐसी गोलमेज सभाकी माँग की है जिसमें भारत और ब्रिटेन दोनोंके प्रतिनिधि हों और जिन्हें भारतके भावी विधानके आधारको, जिसे पार्लियामेण्टके ऐक्ट से स्वीकार कर लिया जाय, निर्धारित करनेकी शक्ति प्राप्त हो। इन्हीं आधारपर भारत अपने राष्ट्रीय सम्मान और गौरवकी रक्षा करता हुआ ब्रिटेनके साथ सहयोग करनेको राजी हो सकता है।"

शाही कमीशनपर कॉंग्रेसके सभापतिका यह फैसला एक प्रकारसे सम्पूर्ण देशका ही फैसला था। इस फैसलेमें सहयोगकी शर्तोंपर प्रकाश डालते हुए असहयोगका पूरा इशारा भी कर दिया गया था। ब्रिटेनकी कुनीतियोंका विरोध करनेके लिए गांधीजीके अचूक मंत्र असहयोगके सिवा कॉंग्रेस और देशके पास कोई दूसरा चारा ही क्या हो सकता था? सहयोग और असहयोगका जिक्र करते

हुए डा० अन्सारीने बतलाया कि 'कॉंग्रेसकी नीति ३५ साल तक तो सहयोगकी, फिर डेढ़ साल तक असहयोगकी और फिर चार साल तक कौंसिलोंमें अड़ंगेबाजी करने और कौंसिलका काम ही रोक देनेकी रही है।' "असहयोग असफल सिद्ध नहीं हुआ, हम ही असहयोगके लिए असफल सिद्ध हुए।"

अतः इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि साइमन-कमीशनके साथ असहयोग करनेके लिए कॉंग्रेस बिलकुल उतावली हो रही थी, क्योंकि यह शाही कमीशन हिन्दुस्तान-के स्वाभिमान और स्वाधिकारपर एक जबरदस्त आघात था। इसलिए मद्रास-कॉंग्रेसने जोरदार शब्दोंमें कमीशनके विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया, जो उस वर्षका मुख्य प्रस्ताव था, "चूँकि ब्रिटिश-सरकारने भारतके स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारकी पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है; यह कॉंग्रेस निश्चय करती है कि भारतके लिए आत्मसम्मानपूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशनका हर हालतमें और हर तरहसे बहिष्कार करे।" आदि......।

कॉंग्रेसके इस निर्णय और गान्धीजीकी उपेक्षाने जाहिर कर दिया कि लार्ड बर्कनहैडकी जोर-जबरदस्तीकी नीति जागृत और स्वाभिमानी भारतपर न लद सकेगी और भारतके ओरसे-छोर तक कमीशनको ठुकराया और धिक्कारा ही जायगा। अतः इस बल-प्रयोगकी नीतिके फलसे दूसरेको नीचा दिखानेके प्रयत्नमें ब्रिटेनको खुद नीचा और बहुत नीचा देखना पड़ेगा। गान्धीजीके सत्याग्रह और असहयोग तथा अहिंसाके शस्त्रोंसे सुसज्जित भारत तब पशुबलके सामने घुटने टेकना और कमर झुकाना भूल चुका था।

गरम वातावरण

१९२२ के प्रथम संघर्षको हुए काफी दिन व्यतीत हो चुके थे, परन्तु भारत-वासी अमृतसर-काण्डको न भूल सके थे। जलियांवाला बागका निर्मम घाव अभी पुरने न पाया था कि शाही कमीशनकी नियुक्तिने उसे तगड़ी ठोकर मारी, जिससे वह फिरसे हरा हो गया। इस ठेसके लगते ही सारा देश तिलमिला

उठा। अशान्तिकी आँधी उठी और उसकी तीव्रता तथा उष्णतासे सारा वातावरण उष्ण और धूमिल हो गया। चारों तरफ कमीशनके विरोधमें बहिष्कारकी ज्वाला धधक उठी।

चुनौती

किन्तु ब्रिटिश गवर्नमेंटने विरोधकी इस भड़कती रोषाग्निकी परवाह न की। २ फरवरी, १९२८ को लार्ड अर्विनने भारतीयोंको इस बातकी धमकी दी कि यदि कमीशनके कार्यमें भारतीयोंने सहयोग न किया, तब भी कमीशन अपना कार्य नियमानुसार चलाता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लियामेण्टके सामने पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश हो जानेके बाद वह उसपर अपनी इच्छाके अनुसार जो निर्णय करना चाहेगी, करेगी। इस घोषणाके द्वारा वाइसरायने एक प्रकारसे स्पष्ट रूपमें 'चुनौती' दे दी थी। किन्तु भारत इस 'चुनौती' के लिए पहिलेसे ही तैयार बैठा था।

'गो बैक साइमन'

अतः जब ३ फरवरी, १९२८ को सर जॉन साइमनके नेतृत्वमें कमीशन बम्बईमें उतरा, तो उस दिन भारत-भरमें हड़ताल मनायी गयी और इस प्रकार कमीशनके बहिष्कारका श्रीगणेश कर दिया गया।

कमीशन बम्बईसे पहिले दिल्ली आया। दिल्लीमें प्रवेश करते ही कमीशनका विरोधी प्रदर्शनों-द्वारा विराट् स्वागत किया गया। चारों ओरसे भारतीयोंका समेत स्वर गर्जा "गो बैक साइमन।" "साइमन वापस लौट जाओ।"

इस भारी विरोधको देखकर सरकारने भारतीयोंको पशुबल द्वारा दबानेका निश्चय किया। अतः जब लाहौरमें कमीशनका विरोध करनेके लिए लाला लाजपतरायके नेतृत्वमें अपार जन-समूह एकत्र हुआ, तो पुलिसने भीड़पर लाठियोंसे आक्रमण किया। यही वह अशुभ मुहुर्त था जब निरंकुश ब्रिटिश

सरकारने पुलिसकी लाठीके प्रहारोंसे देशके मान्य नेता लालाजीको कई जगह गहरी चोटें पहुँचायी थीं जिनके परिणामस्वरूप उनका शरीरान्त ही हो गया था। सरकार और पुलिसके इस दुर्व्यवहारसे सारा देश रोष और क्रोधसे तम-तमा उठा। पं० जवाहरलाल नेहरूके शब्दोंमें "हमारे सबसे बड़े नेता, पंजाबके सबसे बड़े और सबसे ज्यादा लोकप्रिय व्यक्तिके साथ ऐसे बुरे व्यवहारका होना बिलकुल हैवानियत मालूम पड़ी और उस व्यवहारको देखकर हिन्दुस्तान-भरमें खासकर उत्तरी हिन्दुस्तानमें, एक जबरदस्त गुस्सा फैल गया।"*

लाहौरकी तरह लखनऊमें भी कमीशनके आनेके दिन पुलिसने निःशस्त्र और शान्त भीड़पर जान-बूझकर लाठी-प्रहार किये। पुलिसने पं० जवाहरलाल तकको न छोड़ा। इस प्रकार समझे-बे-समझे लाठी-प्रहार करके पुलिसने अनेको को, मान्य भारतीयोंको घायल किया था। पुलिसवालोंने घरोंमें घुसकर भी 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगानेवालोंको पकड़कर गिरफ्तार किया था। किन्तु पुलिस की सारी ज्यादतियों और दमनके होते हुए भी लखनऊके नागरिक अन्त तक पूरे जोश और ताकतके साथ कमीशनका बहिष्कार करते ही रहे। जितना ही उन्हें दबाया गया, उतने ही जोशसे उन्होंने विरोधमें सिरको ऊपर उठाया।

इसी प्रकार जब कमीशन पटना आया, तो वहाँभी पचास हजारकी भीड़ने उसके विरोधमें प्रदर्शन किया। इस सार्व देशिक वहिष्कारने सरकारकी आँखें खोल दीं। उसने विचार किया कि अब क्या उपाय है?

इधर भारत भी सोच रहा था, अपने आहत मानका किस प्रकार ब्रिटेनसे बदला ले? सम्पूर्ण भारतकी जनताकी आँखें इसके इलाजके लिए काँग्रेस और गांधीजीको निहार रही थीं।

सर्वदल-सम्मेलन और नेहरू-रिपोर्ट

मद्रास-काँग्रेसके अनुसार भारतकी विभिन्न समस्याओं का हल ढूंढ़नेके लिए

---

* आत्म कथा—पृष्ठ २३९-२४०

फरवरी १९२८में दिल्लीमें सर्वदल सम्मेलनकी बैठक बुलायी गयी। इस सम्मेलन ने निश्चय किया कि भारतकी वैधानिक समस्यापर "पूर्ण उत्तरदायी शासन" को मानकर ही विचार होना चाहिए। काँग्रेसने सोचा कि कमीशनका विरोध करना ही काफी नहीं है, इसलिए १९ मईको डा० अन्सारीके सभापतित्वमें सर्व-दल सम्मेलनने यह निश्चय किया कि प० मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें एक कमिटी नियुक्त की जाय जो सब दलोंके लोगोंके साथ मिलकर खुद भारतके लिए एक विधान तैयार करे। इस कमिटीको १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट पेश कर देनी थी!

नेहरू-कमिटीकी रिपोर्टपर विचार करनेके लिए २८, २९ व ३० अगस्तको फिर लखनऊमें सर्वदल सम्मेलनकी बैठकें हुईं। सम्मेलनने अपने लक्ष्यको औपनि-वेशिक स्वराज्यकी प्राप्ति घोषित किया। इस घोषणसे पूर्ण-स्वतंत्रतावादी दल क्षुब्ध हो उठा। प० जवाहरलाल, श्रीसुभाषबोस आदिने इसका विरोध किया। पूर्ण स्वतंत्रतावादियोंने सम्मेलनमें एक वक्तव्य पढ़कर स्पष्ट रूपसे घोषित किया कि भारतका विधान केवल पूर्ण स्वतन्त्रताके आधार परही बनाया जाना चाहिए!

कलकत्ता-काँग्रेस

देशमें जब साइमन-कमीशनके कारण आग भड़की हुई थी और नेहरू-रिपोर्टके ऊपर कांग्रेसी नेताओंमें मत भेद चल रहा था, उसी समय दिसम्बर १९२८ में कलकत्तामें कांग्रेसका अधिवेशन भी होनेवाला था। यह अधिवेशन बड़े ही महत्त्वका था, क्योंकि पट्टाभिके शब्दोंमें 'उसके भाग्यमें काँग्रेसका भावी मार्ग निर्दिष्ट करना बदा था। सम्पूर्ण भारतकी निगाह भी इस समय कलकत्ता काँग्रेसपर ही केन्द्रित हो रही थी। यह देखनेके लिए कि इस कठिन समयमें ब्रिटेनका मुकाबला करनेके लिये काँग्रेस क्या तै करती है!

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ ३२३

साइमन-कमीशन इस समय भी देशका दौरा कर रहा था और भारतीयोंका तिरस्कार करनेके लिए विरोधके बावजूद कटिबद्ध होकर घूमताही रहा। कमीशनका भारतीय किसी प्रकार विरोध और बहिष्कार न करने पावें, इसके लिए कलकत्तेके गोरे अखबार यहाँ तक सलाह देने लगे कि कमसे कम बीस वर्ष तक भारतमें फ़ौलादि शासन होना चाहिए और जबतक एक रत्ती भर भी गोला-बारूद रहे तबतक भारतीय स्वतंत्रताका प्रतिरोध किया जाना चाहिए। अखबार ही नहीं अर्विन तकने कमीशनके प्रति विरोध-प्रदर्शनोंका जिक्र करते हुए कहा था कि सरकार का तो यह एक साथ फर्ज है कि इस प्रकारकी बेहुदी घटनाओंको फिर होनेसे रोकनेके लिये वह उन सब उपायोंको काममें लावे जिन्हें वह जरूरी समझती है।

और वाइसरायके इस कथनपर कलकत्ता काँग्रेसके सभापति पं० मोतीलाल नेहरूने पूछा था, क्या कोई अंग्रेज इस बातको पसन्द करेगा कि बाहरके लोग उसके मकानमें घुस आये, उसके मेहमान खूब पीटे जांय और जब वह अपने घरसे इसके विरुद्ध शान्तिमय प्रदर्शन करे, तो उसे गिरफ्तार करके कैद कर दिया जाय?

अतः इस तनातनी, रोप और क्रोधके वातावरणमें कलकत्ताकी काँग्रेस भारतके भावी मार्ग और पथका निर्णय करनेके लिए बैठी। इस काँग्रेसमें सर्व-प्रधान प्रस्ताव भावी राजनैतिक लक्ष्यके विषय में था। नेहरू-रिपोर्टने 'औपनिवेशिक स्वराज्य' को लक्ष्य स्वीकार किया था, किन्तु उग्रदली पूर्ण स्वराज्यवादी नेता प० जवाहरलाल, सुभाषबोस और ऐयंगर आदि केवल पूर्ण-स्वराज्यको ही काँग्रेसका ध्येय मानना चाहते थे। इस विषयपर काँग्रेसकी विषय-निर्धारिणी-समितिमें बहुत विवाद हुआ। गांधीजी नेहरू-रिपोर्टके पक्षमें थे, किन्तु जैसा कि गांधीजी हमेशा अपने विरोधियोंके साथ सहयोग करनेके लिए तैयार रहते हैं, उन्होंने पूर्ण स्वराज्यके समर्थकों पं० जवाहरलाल, ऐयंगर और सुभाषबोसके साथ यह समझौता कर लिया कि यदि सरकार एक वर्षके अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे तो

कॉँग्रेस उससे संतुष्ट हो जायगी, नहीं तो फिर कॉँग्रेसका ध्येय एकमात्र पूर्ण स्वतंत्रता ही रहेगा। इस समझौतेको पूर्ण स्वराज्यवादी तीनों नेताओंने स्वीकार कर लिया, केवल सुभाष बाबू दूसरे दिन उससे मुकर गये। अन्त-में गांधीजीने उस समझौतेके साथ कॉँग्रेसके मुख्य प्रस्तावको महासभामें प्रवेश किया और वह स्वीकार कर लिया गया।

यह प्रस्ताव क्या था, सरकारको अन्तिम चेतावनी और खुली चुनौती थी। प्रस्ताव इस प्रकार था—

"सर्व-दल,सम्मेलन (नेहरू-कमिटी) की रिपोर्टमें शासन-विधान सम्बन्धी जो तजवीज पेश की गयी है उसपर विचार करके कॉँग्रेस उसका स्वागत करती है और उसे भारतकी राजनैतिक व साम्प्रदायिक समस्याओंको हल करनेमें बहुत अधिक सहायता देनेवाली मानती है और अपनी सब सिफारिशोंको प्रायः सर्व-सम्मतिसे ही करनेके लिए कमिटीको बधायी देती है। यद्यपि यह कांग्रेस मद्रास कांग्रेसके पूर्ण स्वाधीनताके निश्चयपर कायम है, फिर भी वह कमिटी द्वारा तैयार किये गये विधानको राजनैतिक प्रगतिकी दिशामें एक बड़ा पग मानकर उसे मंजूर करती है, खासकर इस विचारसे कि देशके मुख्य-मुख्य राजनैतिक दलोंमें जितना अधिक-से-अधिक मतैक्य हो सकता है, उसका वह सूचक है।

अगर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट इस विधानको ज्यों-का-त्यों ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार कर ले तो यह कांग्रेस इस विधानको अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थितिमें कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लियामेन्ट उसे मंजूर न करे, या इसके पहले ही उसे नामंजूर कर दे, तो कांग्रेस देशको यह सलाह देकर कि वह करों का देना बंद कर दे और उन अन्य तरीकों—द्वारा जिनका बादमें निश्चय होगा, अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनको सगठित करेगा।"

"कॉँग्रेसके नामपर पूर्ण स्वाधीनताका प्रचार करनेमें यह प्रस्ताव कोई बाधा नहीं डालेगा, यदि ऐसा कार्य इस प्रस्तावके विरुद्ध न हो।"

शांति-पथसे पुनः संघर्ष और असहयोगके पथपर लानेवाले इस प्रसिद्ध प्रस्तावके साथ एक ऐसी दुःखभरी और विवादग्रस्त कहानी भी जुड़ी हुई है जिसने गांधीजीके हृदयको काफी आघात पहुँचाया था। मूल प्रस्तावमें गांधी-जीने अपने सदैवकी विनम्रता और शिष्टाचारके अनुरूप यह भी जुड़वा रखा था कि "सभापतिको यह अधिकार दिया जाता है कि वह इस प्रस्तावकी प्रति-लिपि और रिपोर्ट की प्रति वाइसराय महोदयके पास भिजवा दें, जिससे कि वह उसपर अपनी मर्जीके माफिक जो कार्यवाही करना चाहें, कर सकें।" गांधीजी का कहना यह था कि शिष्टाचारके नाते जिससे किसीका कोई नुकसान नहीं हो सकता वाइसरायके पास रिपोर्ट भिजवाना आवश्यक है। किन्तु नवीन युवक पूर्ण स्वराज्यवादी दलके नेता श्रीसुभाष बाबू और पं० जवाहरलाल इस बातको कांग्रेसकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझते थे, अतः विषय समितिमें प्रस्तावके उस अंग पर काफी विवाद हुआ। आखिरमें पूर्ण स्वाधीनतावालों और विषय समितिके अन्य सदस्योंमें इसपर समझौता हो गया। किन्तु खुले अधिवेशनमें इस समझौतेको नहीं निबाहा गया और सुभाषचन्द्रबोसने प्रस्तावके उस हिस्सेपर संशोधन पेश कर ही दिया। पं० जवाहरलालनेहरूने उसका समर्थन किया, यद्यपि पहले दिन समझौता करनेवालोंमें ये दोनों व्यक्ति भी थे। इस वचन-भंगने गांधीजीके हृदय पर बड़ा ही आघात किया और वे बिना यह कहे न रुक सके—

"आप लोग चाहे स्वतंत्रताका राग अलापा करें, जैसे कि मुसलमान अल्ला का राग अलापते हैं और हिंदू राम या कृष्ण का, लेकिन यदि इस अलापके पीछे सच्चाई नहीं है, तो आपका यह अलाप कोई मतलब नहीं रखता। आप यदि अपने शब्दोंकी ही कद्र नहीं कर सकते, तो फिर स्वतंत्रता कहाँकी रही? आखिर स्वतंत्रता तो बड़ी ठोस चीज है। वह शब्दोंके प्रपंचसे थोड़े ही आ सकती है।"*

---

*—वही—पृष्ठ ३२५—३२६

इन शब्दों में गांधीजीने सुभाषबोस और जवाहरलालजीको ही नहीं, सम्पूर्ण देशको डाँटते हुए आगाह कर दिया कि स्वतंत्रता बढ़बढ़कर बात करने से नहीं, किन्तु सच्चाईका व्यवहार करनेस ही मिल सकती है, और उनके सत्याग्रह के आन्दोलनकी कुंजी वही थी।

भविष्य वाणी

इसी समय जब भारतका राजनैतिक वातावरण विरोधी घटनाओंके संघर्षण से उष्ण हो रहा था, गांधीजीको अगले वर्ष (१९२९)में यूरोप आनेका निमंत्रण-मिला। लेकिन देशकी परिस्थिति ऐसी डावाँडोल हो रही थी कि कहा नहीं जा सकता था कि कब क्या हो और देशको अपने मान और स्वत्वके लिए सरकारसे जूझना पड़ जाय। कलकत्ता प्रस्ताव द्वारा कॉंग्रेसने सरकारको एक सालका समय देकर अहिंसात्मक असहयोगकी चुनौती भी दे रखी थी, इसलिए स्पष्ट था कि यदि सरकारने कलकत्ता-प्रस्तावकी शर्त्तें नामंजूर कर दीं तो कॉंग्रेसको सत्याग्रहके लिए तैयार रहना पड़ेगा। अतः ऐसी स्थितिमें बहुत इच्छा रखते हुए भी गांधीजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कम-से-कम एक वर्ष तक उन्हें यूरोप जानेका विचार छोड़ ही देना चाहिये। निष्कर्षके अनुसार गांधीजीने लिखा, " मैं अगले वर्षके बारेमें विचार भी नहीं कर सकता। डेनमार्कके मेरे एक मित्रने लिखा है कि स्वतंत्र भारतका प्रतिनिधी होकर ही मेरा यूरोप आना श्रेयस्कर है। मैं इस कथनकी सचाई महसूस करता हूँ।" किन्तु, हृदयकी पुकारको पहिचानते हुए गांधीजीने आगे लिखा—

"अन्तरात्माकी पुकार मुझे यूरोप जानेको नहीं कहती। इसके विपरीत कॉंग्रेसके सामने रचनात्मक कार्य-क्रमका प्रस्ताव रखकर और उसका इतना सर्व-व्यापी समर्थन देखकर मुझे यह महसूस होता है कि यदि अब मैं यूरोप चला गया, तो मैं कार्यको छोड़ भागनेका दोषी होऊँगा। यह हो सकता है, कि जिन लोगोंने प्रस्तावके पक्षमें मत दिये हैं उनका उसे पूरा करनेका कोई इरादा नहीं

था। यह भी सम्भव है कि इस वर्षमें इस कार्यक्रमके संबंधमें मुझे कुछ न करना पड़े, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रकारका तर्क नहीं करना चाहिए। मुझे कार्यकर्त्ताओंका विश्वास नहीं खो देना चाहिए। अन्तरात्माकी एक आवाज मुझको कह रही है कि जो कुछ कार्य मेरे सामने आवे, उसके लिएही केवल तैयार न रहूँ, बल्कि उस कार्यक्रमको जो मेरी दृष्टिमें बहुत बड़ा है, कार्यान्वित करनेके लिए उपाय भी बताऊँ और सोचूँ। इन सबके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह है कि मुझे अगले सालकी लड़ाईके लिए भी अपने-आपको तैयार करना चाहिए। चाहे उस लड़ाईका स्वरूप कैसी ही हो।"

यह फरवरी १९२९ के प्रथमकी बात है, आत्मा और परमात्माके श्रद्धालु गांधीजीके हृदयने तभी आनेवाले सत्याग्रहकी छायाको देख लिया था। उन्हें प्रतीत हो गया था कि अगले वर्ष शायद कुछ ऐसी घटनाएँ संगठित हो जायँ कि उन्हें सरकारके विरुद्ध देशको लड़नेके लिए तैयार करना पड़ जाय। यह एक प्रकारसे महात्माजीकी भविष्यवाणी थी।

नयी घटनाएँ

निःसन्देह घटनाएँ तेजीसे उसी ओर बहाये ले जा रही थीं। गांधीजीकी अंतरात्माकी आवाजको देशकी परिस्थितियोंको देखते हुए, 'आत्मा' को ढोंग और सन्देहसे समझने वाले भी गलत नहीं समझ सकते थे! घटनाएँ कुछ इसी प्रकार घटित हो रही थीं।

साइमन-कमीशनसे देश क्रुद्ध और क्षुब्ध था ही, उसके साथ कुछ और घटनाएँ भी ऐसी हो गयीं जिन्होंने आगमें घीका काम किया। इन घटनाओंको थोड़ेमें नीचे दिया जाता है—

(१) गान्धीजीपर जुर्माना

कलकत्ता-कॉंग्रेसके अधिवेशनके बाद कॉंग्रेसके निश्चयोंको कार्य-रूप देनेके

लिए कार्य-समितिने अनेक उप-समितियाँ बनायी थीं, जिनका कार्य विदेशी वस्त्रके बहिष्कार, मादक-द्रव्योंके निषेध, अस्पृश्यताके निवारण, महासभाके संगठन स्वयंसेवकों और स्त्रियोंकी बाधाओंको दूर करना था। आखिरी समितिके अलाव बाकी सभी उप-समितियोंने अपने-अपने विभागमें खासा अच्छा काम किया था

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार उप-समितिके अध्यक्ष महात्माजी स्वयं थे, और मंत्र श्रीजयरामदास। इस समितिका केन्द्र बम्बई में था। इस समितिके कार्यके फल से विदेशी वस्त्रका देश-भरमें खूब जोरोंसे बहिष्कार हुआ और कई जगहोंप विदेशी-कपड़ोंकी होलियाँ भी जलायी गयीं। मार्चमें गान्धीजी देशका दौरा क रहे थे और बर्मा जाते हुए कलकत्तेसे गुजरे। इसी समय कलकत्तेमें विदेशी कपड़ेकी होली हुई और इस सम्बन्धमें बंगाल सरकारने गान्धीजीपर मार्च १६२९ के दूसरे सप्ताहमें यह अभियोग लगाया कि उन्होने 'सार्वजनिक स्थानोंप घास-फूस आदि न जलाने' की आज्ञा भंग की या आज्ञा भंग करनेमें सहायत दी है। गान्धीजी तब बर्मा जा रहे थे, लेकिन थोड़े दिन बाद जब वे लौटक आये, तो उनपर मुकदमा चला और एक रुपया जुर्माना हुआ। जुर्मानेकी रकम नगण्य थी, परन्तु राष्ट्रकी प्रतिष्ठाको ठेस पहुँचानेके लिए वह काफी था इसके पश्चात् गान्धीजीने आन्ध्र देशकी चिरस्मरणीय यात्रा की और डेढ़ मासमे खद्दरके लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये एकत्र किये।

(२) मेरठ-षड्यन्त्र-केस

२० मार्च, १९२९ का दिन भी भारतके इतिहासमें एक दुःखका दिन था इस दिन बम्बई, पंजाब और संयुक्तप्रान्तमें ताजीरात हिन्दकी १२१ अ धाराके अनुसार सैकड़ों घरोंकी तलाशियाँ ली गयी थीं। कई आदमी गिरफ्तार भी किये गये थे, जिनमें महा-समितिके आठ सदस्य भी थे। इन गिरफ्तार किये गये लोगोंपर मेरठमें मुकदमा चलाया गया था। यह मुकदमा मेरठ-षड्यन्त्र केसके नामसे विख्यात है। अभियुक्तोंपर साम्यवादी प्रचारका अपराध लगाया

गया था। यह मुकदमा साढ़े चार वर्ष तक चला। इसके कारण भारतमें काफी क्षोभ पैदा हुआ था। सरकारकी ज्यादतियोंको देखकर काँग्रेस कार्यसमितिने अपनी साधारण परिपाटी छोड़कर अभियुक्तोंकी सफाईके लिए १५००) रु० की रकम मंजूर की थी।

(३) मेरठके अलावा इसी समय असेम्बली-बम केसके अभियुक्त श्रीभगतसिंह और दत्तको आजन्म काले पानीकी सजा दी गयी थी।

(४) कलकत्तेमें भी इसी प्रकार एक सामूहिक अभियोग चल रहा था। इसमें कार्य-समितिके सदस्य श्रीसुभाषचन्द्र वसु और कई एक प्रमुख काँग्रेसी नेता अभियुक्त थे। शंघाई और मलाया तकमें राजनैतिक कारणोंसे भारतीयोंको गिरफ्तार किया जा रहा था।

(५) लाहौरमें पुलिस बड़े भयंकर रूपसे दमन कर रही थी। 'साम्राज्यवाद का नाश हो' और 'क्रान्ति अमर हो' के नारे लगाने पर युवकोंको बुरी तरहसे पीटा जाता था। लाहौर-षड्यन्त्रके अभियुक्तोंके साथ पुलिस बहुत ही पाशविक व्यवहार कर रही थी। यह केस १७ सितम्बर, १९२८ का लाहौर-पुलिसके मि० सांडर्सके हत्याके कारण हुआ था। गत भगतसिंह और दत्त दोनो इसमें भी अभियुक्त थे, यद्यपि पीछेसे दत्तको इस मुकदमेसे बरी कर दिया गया था।

(६) लाहौर-केसके अभियुक्त श्रीयतीन्द्रनाथ दासने इसी समय जेलके दुर्व्यवहारोंके विरुद्ध भूख हड़ताल की थी। मैक्स्विनीको भाँति यह अकेला वीर युवक अन्त तक अपने प्रणपर डँटा रहा और इकसठवें दिन १३ सितम्बर, १९२९ को प्राण देकर भी प्रणकी रक्षा करता हुआ इस लोकसे विदा हो गया।*

(७) इस प्रकार जेलोंमें कठोरताका व्यवहार हो रहा था और बाहर लोग योंहीं पकड़े जा रहे थे। अगस्तमें कई जगह नेतागण पकड़े गये। पंजाबमें

---

* Gandhi, His Life and works pub. Bombay Oct 2. 1944.

सरदार मंगलसिंह, मौलाना जफरअली खाँ और डाक्टर सत्यपाल तथा आन्ध्रमें अन्नपूर्णय्या आदि पकड़े गये थे।

अतः देशमें इस प्रकार दमनके होते हुए गान्धीजीकी भविष्यवाणीमें कितना सार और सत्य था, इसका अन्दाजा लगाना कठिन नहीं था। निःसन्देह १९२९ के सालकी घटनाओंको देखते हुए यह कहना कठिन न था कि सम्पूर्ण देशमें कभी भी आग भड़क उठेगी।

लार्ड अर्विनकी परेशानी

दूसरी ओर लार्ड अर्विन भी परेशान था। भारतकी बाह्यदशा एवं मनः स्थिति और साइमन-कमीशन ये तीनों उसकी चिन्ताके विषय बने हुए थे। वह किसी प्रकार कमीशनके मामलेको सुलझाकर भारतको शान्त करना चाहता था। ऐसी विषम स्थितिके दिनोंमें ही १४ अप्रैल, १९२९ को कमीशन भारतमें अपना कार्य समाप्त करके इग्लैण्ड लौट गया। कमीशनके सदस्य इगलैण्ड पहुँचे ही थे कि मई, १९२९ के चुनावमें अनुदार-दलकी सरकार हार गयी, और बाल्डविन तथा बर्कनहैडको अपने पदोंसे हट जाना पड़ा। उनकी जगह मजदूर-दलका मन्त्रिमण्डल बना और मैकडानल्ड प्रधान-मन्त्री तथा वेजवुडबेन भारतमंत्री हुए।

इस परिवर्तनको देखकर लार्ड अर्विन ने सोचा कि अनुदार और जिद्दी बर्कनहैडकी जगह मजदूर-दली बेनके भारत-मन्त्री होनेसे सभव है कि वह साइमन-कमीशनको पूर्णरूपसे असफल होने से बचा सकें। अतः ऐसा मनमें विचार कर और यह उद्देश्य लेकर कि—"साइमन-कमीशनके परिणाम-स्वरूप भारतके लिए जो सुधार-योजना पार्लियामेण्टके समक्ष रखी जाय, उससे पहले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाय और भारतके भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलोंका अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके"—लार्ड अर्विन चार मासकी छुट्टी लेकर तुरन्त जूनमें इगलैण्ड पहुँचे।

वाइसरायकी अक्तूबर-घोषणा

चार महीनेके बाद वाइसराय लार्ड अर्विन २५ अक्तूबरको भारत लौटे और ३१ अक्तूबरको उन्होंने एक घोषणा की, जिसमें उन्होंने शुरूमें यह जाहिर किया कि ब्रिटिश सरकार भारतीय सहयोगका महत्त्व समझती है और इस प्रयोजनसे साइमन-कमीशनके अध्यक्षका प्रस्ताव है कि "साइमन-कमीशन और सेंट्रल कमिटीकी रिपोर्टोंपर विचार होकर उनके प्रकाशित होनेके पहिले तथा पार्लियामेण्टकी दोनों सभाओंकी सम्मिलित समितिकी नियुक्तिके पहिले ही ब्रिटिश सरकारको ब्रिटिश भारत और देशी राज्योंके प्रतिनिधियोंसे विचार-विनिमय करना चाहिए जिससे सरकारकी ओरसे पार्लियामेण्टके सम्मुख पेश होनेवाली अन्तिम सुधार-योजनाके पक्षमें अधिक-से-अधिक सहमति प्राप्त हो सके।"

इस घोषणाके अन्तमें ब्रिटिश सरकारकी भारतीय नीति और लक्ष्यपर प्रकाश डालते हुए वाइसरायने यह भी घोषित किया कि—

"अगस्त, १९१७ की घोषणामें ब्रिटिश नीतिका ध्येय यह बताया गया था कि स्वशासन-संस्थाओंका क्रमशः विकास किया जाय जिससे ब्रिटिश साम्राज्यका अंग रहकर भारत धीरे-धीरे दायित्वपूर्ण शासन प्राप्त कर सके। मुझे सरकारने जो अधिकार-पत्र दिया है उसमें भी इस बातका समर्थन स्पष्ट रूपसे इस प्रकार किया गया है कि १९१९ में पार्लियामेण्टने जो योजना बनायी है उसमें हमारी मंशा यही है कि उसके द्वारा ब्रिटिश भारतको ब्रिटिश उपनिवेशोंमें उचित स्थान मिले। सम्राट्के मन्त्रियोंने भी अनेक बार खुली घोषणा की है कि समय आते ही भारतको भी साम्राज्यके उपनिवेशोंमें समानताका स्थान देना ही ब्रिटिश सरकारकी इच्छा है। परन्तु १९१९ के सुधार-कानूनका अर्थ लगानेमें विलायत और भारत दोनों ही देशोंमें ब्रिटिश सरकारकी सदिच्छा पर सन्देह किया गया है। इसलिए ब्रिटिश-सरकारने मुझे यह स्पष्ट घोषित करनेका अधिकार दिया है

कि १९१७ की घोषणामें यह अभिप्राय असंदिग्ध रूपसे है कि भारतको अन्तमें स्वतन्त्र समान उपनिवेशका दर्जा मिले।"*

काँग्रेस-कार्य-समिति

३१ अक्तूबरको इस घोषणाके होते ही २४ घण्टेके अन्दर देशके प्रमुख नेता पं० मालवीयजी, सर तेजबहादुर सप्रू, डॉ० बेसेण्ट, आदि दिल्ली पहुँच गये। वहाँ काँग्रेसकी कार्य-समिति हुई और वाइसरायकी घोषणापर विचार-विमर्ष करके समितिने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें ब्रिटिश सरकारकी घोषणाकी सचाईकी और भारतीय लोकमतको सन्तुष्ट करनेकी सरकारकी इच्छाकी प्रशंसाकी गयी थी। किन्तु वक्तव्यमें यह भी कहा गया था कि "हमें आशा है कि भारतकी आवश्यकताओंके अनुकूल औपनिवेशिक विधान तैयार करनेके सरकारी प्रयत्नमें हम सहयोग दे सकेंगे, परन्तु हमारी रायमें देशकी मुख्य-मुख्य राजनैतिक संस्थाओं-में विश्वास उत्पन्न करने और उनका सहयोग प्राप्त करनेके हेतु कुछ कार्योंका किया जाना और कुछ बातोंका साफ होना जरूरी है।" इन बातों या शर्तोंमें मुख्य ये थीं—वातावरणको शान्त करनेके लिए व्यापक रूपसे मेल-मिलापकी नीति अख्तियार की जाय; राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँ, और प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओंको काफी प्रतिनिधित्व दिया जाय और सबसे बड़ी संस्था होनेके कारण काँग्रेसके प्रतिनिधि सबसे अधिक लिये जायँ।

इन शर्तोंके साथ वक्तव्यमें औपनिवेशिक दर्जेके बारेमें वाइसरायने जो घोषणा की थी उसकी सफाईके लिए भी माँग करते हुए कहा गया था—"औप निवेशिक दर्जेके सम्बन्धमें वाइसरायकी घोषणामें सरकारकी ओरसे जो कुछ कहा गया है उसके अर्थ क्या हैं, इस विषयमें लोगोंने सन्देह प्रकट किया है। किन्तु हम समझते हैं कि प्रस्तावित परिषद् औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापनाका समय

---

* – काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ २४३

निश्चित करनेको नहीं बुलायी जा रही है, बल्कि ऐसे स्वराज्यका विधान तैयार करनेका आमन्त्रित की जायगी। हमें आशा है कि वाइसरायके महत्वपूर्ण वक्तव्य का यह भावार्थ और फलितार्थ लगानेमें हम भूल नहीं कर रहे हैं।......"

गांधीजी सहयोगको तैयार

गांधीजी तो सहयोगके लिए प्राणपणसे ही तैयार थे। गांधीजीके अंग्रेज़ मित्र तार-पर-तार भेजकर उनपर जोर डाल रहे थे कि वे भारतकी सहायता करनेके प्रयत्नमें मजदूर सरकारका साथ दें। इसपर गांधीजीने उत्तरमें लिखा था।...

"मैं तो सहयोग देनेको मर रहा हूँ। इसी हेतुसे पहला मौका आते ही मैंने हाथ बढ़ा दिया है। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-कांग्रेसके प्रस्तावके प्रत्येक शब्दपर कायम हूँ, वैसे नेताओंके इस सम्मिलित वक्तव्यके हर्फ हर्फपर भी अटल हूँ। इन दोनोंमें कोई विरोध नहीं है। किसी भी दस्तावेजके शब्दोंमें क्या धरा है, यदि व्यवहारमें उसकी भावनाकी रक्षा हो जाय—यदि मुझे व्यवहारमें सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधानके लिए मैं ठहरा भी रह सकता हूँ। अर्थात् आवश्यकता इस बातकी है कि हृदय-परिवर्त्तन सच्चा हो, अंग्रेज़ लोग भारतवर्षको एक स्वतन्त्र और स्वाभिमानी राष्ट्रके रूपमें वस्तुतः देखना चाहें और भारतमें अधिकारी-मण्डलकी भावना सेवामय हो जाय। इसका अर्थ यह है कि संगीनोंके बजाय जनताके सद्भाव द्वारा शासन किया जाय। क्या अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष अपने जान-मालकी रक्षाके लिए अपने किलों, तोप-बन्दूकों आदिके स्थानपर प्रजाके सद्भावपर विश्वास रखनेको तैयार हैं? यदि उनकी यह तैयारी अभी नहीं है, तो मुझे कोई भी औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्ध संतुष्ट नहीं कर सकता। औपनिवेशिक-स्वराज्यकी मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश का विच्छेद कर सकूँ। ब्रिटेन और भारतके पारस्परिक सम्बन्धोंका निर्णय करनेमें जबरदस्ती जैसी कोई बात नहीं चल सकती।"

"यदि मैं साम्राज्यके भीतर रहना पसन्द करता हूँ, तो इसलिए नहीं कि शोषण या जिसे ब्रिटेनका साम्राज्यवादी ध्येय कहते हैं उसकी वृद्धि हो, बल्कि इसलिए कि संसारमें शान्ति और सद्भावना फैलानेके कार्यमें हिस्सा मिले।"*

इस वक्तव्यके द्वारा गांधीजीने स्पष्ट कर दिया था कि सरकार जो देनेको कहती है, यदि उसमें सचाई है और शब्दजाल नहीं, तो वे सहर्ष सहयोगके लिए तैयार हैं; किन्तु यदि सरकारकी घोषणा केवल भारतीयोंको भरमानेके लिए है तो सहयोगका प्रश्न ही नहीं उठता। अतः गांधीजी सर्वप्रथम औपनिवेशिक-स्वराज्यकी घोषणाको सरकार द्वारा स्पष्ट करा लेना चाहते थे। उन्हें भय था कि सरकार कहीं फिर धोखा देनेकी तैयारी न कर रही हो।

भारतवासियों, काँग्रेस और गांधीजीकी ये आशंकाएँ निर्मूल नहीं थीं। वाइसरायकी घोषणामें भारतके प्रति जो औपनिवेशिक स्वराज्य और सहयोगकी बातें कही गयी थीं, उनपर जल्दी ही पार्लियामेण्टमें एक तूफान खड़ा हो गया। अनुदार-दली सदस्योंने भारतीय नेताओंके साथ समझौता करनेकी नयी नीतिका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। अतः मजदूर-दलके भारत-मन्त्री बेनने उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिए पार्लियामेण्टके सदस्योंको यह दिलासा दिलाया कि सरकारकी नीति नहीं बदली है। किन्तु दूसरी ओर कैप्टिन बेन साहब हिन्दुस्तानियोंसे यह भी कहते जाते थे कि हमने अपनी नीति बदल दी है। बेनके इन कृत्रिम और प्रतारणापूर्ण वचनों और वाक्योंसे काँग्रेसमें सन्देह, रोष और निराशा फैल गयी थी।

गांधीजी दिल्लीको

कॉमन-सभाकी छल-कपट-पूर्ण कार्यवाही और बेनके दुमुँहेपनपर काँग्रेसी नेता क्रोधसे उबलने लगे थे। वे समझ रहे थे कि 'ब्रिटिश-मण्डल जो चित्र खींच रहा था वह ऐसा था कि भारतवासियोंको उसमें स्वराज्य दिखे और विलायत

*—वही—पृष्ठ ३४५

वालोंको ब्रिटिश-राज्य ।' ऐसी स्थितिमें गांधीजी वाइसरायसे मिलकर औपनिवेशिक स्वराज्यके बारेमें चीजें स्पष्ट करा लेना चाहते थे। फलतः गांधीजी और पं० मोतीलालजी काँग्रेसकी तरफसे २३ दिसम्बर, १९२९ को वाइसरायसे मिलने दिल्ली पहुँचे। वाइसराय लार्ड अर्विन भी उसी दिन दक्षिण भारतका दौरा करके दिल्ली लौटे थे। दुर्भाग्यवश उस दिन नयी दिल्लीसे १ मील दूर पुराने किलेके पास उनकी गाड़ीके नीचे बम फटा। लेकिन बमके आघातसे वे बाल-बाल बच गये। गांधीजीको इस दुर्घटनासे बड़ा दुःख हुआ। इसलिए जब वे उस दिन वाइसरायसे मिले तो प्रारम्भमें बमपर ही बड़ी देर तक चर्चा करते रहे। अन्तमें वाइसरायने प्रस्तुत विषयको हाथमें लेते हुए गांधीजीसे प्रश्न किया—"कहिए, कहाँसे शुरूआत की जाय? यह लीजिए आप लोगोंका सम्मिलित वक्तव्य राजनैतिक कैदियोंसे प्रारम्भ करें।" लार्ड अर्विन इस प्रकार भारतीय नेताओंका सहयोग प्राप्त करनेके लिए स्वयं अच्छी शुरूआत करना चाहते थे, किन्तु उनके ऊपरके ह्वाइट-हॉलके प्रभु जब उन्हें ऐसा करने देते। दूसरी ओर गांधीजीके सामने इस समय केवल औपनिवेशिक-स्वराज्यके प्रश्नको साफ करनेकी चिन्ता थी। इसलिए वह यह जान लेना चाहते थे कि क्या गोलमेज-परिषद्की कार्यवाही पूर्ण औपनिवेशिक-स्वराज्यको आधार मानकर होगी? इसपर वाइसरायने उत्तर दिया—सरकारने अपने विचार अपने वक्तव्यमें स्पष्ट कर दिये हैं। इससे आगे मैं कोई वचन नहीं दे सकता। मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि औपनिवेशिक-स्वराज्य देनेका वायदा करके गोलमेज-परिषद्में आप लोगोंको—बुला सकूँ।"

वाइसरायके इस वक्तव्यने काँग्रेसको स्पष्ट बता दिया कि ब्रिटिश सरकारका घोषणा-पत्र केवल एक वाग्जाल-मात्र है, और उनके आश्वासन सार-रहित हैं।

लाहौर-काँग्रेस

इस सन्देहपूर्ण मनोवृत्तिके वातावरणमें तभी ३१ दिसम्बरको लाहौरमें काँग्रेसका अधिवेशन हुआ। सब लोग चाहते थे कि इस संकटापन्न अवसरपर

गान्धीजी काँग्रेसके सभापति हों और उसका नेतृत्व करें। किन्तु गान्धीजी यद्यपि नेतृत्व करनेसे पीछे न हटना चाहते थे, और न कभी हटे ही, तथापि काँग्रेसके सभापतिके पदपर वे खुद न बैठकर किसी ऐसे युवकको बैठाना चाहते थे, जिस-पर देशके नवयुवक-हृदयोंकी श्रद्धा हो। इस निर्वाचनकी भावनाने जवाहरलाल नेहरूको पकड़ा और तदनुसार वे लाहौर-काँग्रेसके सभापति बनाये गये। यह चुनाव बहुत ही सुन्दर और उपयुक्त हुआ, पट्टाभिके शब्दोंमें—'पंडित जवाहर-लाल नेहरू जितने कम उम्र थे उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे।'

लाहौर-काँग्रेस एक बहुत ही संदिग्ध और रोषभरे वातावरणमें हुई थी। काँग्रेसका युवक-दल बहुत पहिलेसे ही पूर्ण स्वतंत्रताके पक्षमें था। किन्तु गान्धी-जीके इशारेसे कलकत्ता-काँग्रेसमें सभीने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया था कि १९२९ के भीतर यदि औपनिवेशिक स्वराज्य न मिला तो काँग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना ध्येय बना लेगी। यही गुत्थी लाहौर-काँग्रेसके सामने भी उपस्थित थी। ब्रिटिश-सरकारकी अक्तूबर की घोषणामें जो औपनिवेशिक स्वराज्यकी बात कही गयी थी, उसकी निराधारता गांधीजी और मोतीलालजीके वायसरायसे मिलनेपर साबित हो चुकी थी। यह भी स्पष्ट हो गया था कि सरकारकी वह घोषणा एक वाक्चातुरी-मात्र है।

अतः घोषणाके समय गांधीजी और काँग्रेस जो समझौते और सहयोगके लिए तैयार हो गये थे, अब वे स्पष्ट विद्रोहकी ओर झुकने लगे। समझौतेके इस प्रकार टूट जानेसे लाहौर-काँग्रेसमें लोगोंमें जोश और गर्मी काफी बढ़ गयी थी। ब्रिटेनके द्वारा भारतका इस प्रकार पद-दलित किये जानेपर काँग्रेसका बहुत रोष था। इस रोष और जोश भरी काँग्रेसमें युवक सम्राट् प० जवाहर-लालका वीरत्व और उत्साहपूर्ण भाषण हुआ।

पं० जवाहरलालने वाइसरायकी घोषणाका जिक्र करते हुए कहा—"वाइस रायकी घोषणा देखनेमें समझौतेका प्रस्ताव है। वाइसराय साहबका इरादा नेक और उनकी भाषा मेल-मिलापकी भाषा है। परन्तु हमारे सामने जो कठोर

वस्तु-स्थिति है उसमें इन मीठी-मीठी बातोंसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। हम अपनी ओरसे कोई घोर राष्ट्रीय संग्राम आरम्भ करनेकी जल्दी नहीं कर रहे हैं। समझौतेका द्वार अब भी खुला है, परन्तु कैप्टिन वेजवुडबैनका व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे लिए जाल-मात्र है। हम तो कलकत्तेके प्रस्तावपर कायम हैं। हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनताका।"

इस आत्म-गौरवपूर्ण भाषणसे स्पष्ट हो गया था कि काँग्रेस किस ओर जानेवाली थी। घटनाएँ कुछ ऐसी ही घट रही थीं कि काँग्रेसको औपनिवेशिक-स्वराज्यपर सम्भव समझौतेसे हटकर पूर्ण-स्वराज्यकी ओर बढ़ना अनिवार्य हो गया था।

इस भाषणमें जवाहरलालजीने आनेवाले संग्रामका भी संकेत कर दिया था। यह भी जतला दिया था कि यह संग्राम अहिंसाके आधारपर चलेगा। अहिंसात्मक मार्गकी श्रेष्ठतापर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा—

"हिंसाके परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करनेवाले होते हैं। हमारे देशमें तो खासकर इससे सत्यानाश हो सकता है। यह बिलकुल सच है कि आज जगत्में संगठित हिंसाका ही बोलबाला है। सम्भव है, हमें भी इससे लाभ हो; परन्तु हमारे पास तो संगठित हिंसाके लिए न सामग्री है, न तैयारी। और व्यक्तिगत अथवा स्फुट हिंसा तो निराशाको कबूल करता है। मैं समझता हूँ, हममेंसे अधिक लोग नैतिक दृष्टिसे नहीं, प्रत्युत् व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करते हैं और यदि हमने हिंसा-मार्गका परित्याग किया है तो सिर्फ इसीलिए कि हमें इससे कोई सार निकलता नहीं दिखायी देता। स्वतन्त्रताके किसी भी बड़े आन्दोलनमें जनता का शामिल होना जरूरी है और जनताके आन्दोलन तो शान्त ही हो सकते हैं। हाँ, संगठित विद्रोहकी बात अलग है।"

अन्तमें जवाहरलालजीने देशको बड़े और भारी प्रयत्नके लिए तैयार रहनेका सन्देश देते हुए कहा—

"यह कोई नहीं कह सकता कि सफलता कब और कितनी मिलेगी। सफलता

हमारे काबूकी चीज नहीं। परन्तु विजयका सेहरा प्रायः उन्हींके सिर बँधता है, जो साहस करके कार्य-क्षेत्रमें बढ़ते हैं। जो सदा परिणामसे भयभीत रहते हैं, ऐसे कायरोंके भाग्यमें सफलता क्वचित् ही पड़ती है। खेलमें बड़े-बड़े दाव लगाने पड़ते हैं और महान् वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए विपत्तियोंमेंसे गुजरना ही पड़ता है।"

देशके सामने आनेवाले स्वतंत्रता-संग्रामका यह संकेत लाहौर-कॉंग्रेसके प्रमुख प्रस्ताव-द्वारा पूरी तरह पुष्ट हो गया था। मुख्य प्रस्तावमें पूर्ण स्वाधीनताका जिक्र करते हुए कहा गया था—"औपनिवेशिक स्वराज्यके सम्बन्धमें ३१ अक्तूबर को वाइसराय साहबने जो घोषणा की थी और जिसपर कॉंग्रेस एवं अन्य दलोंके नेताओंने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था, उस सम्बन्धमें की गयी कार्य-समितिकी कार्यवाहीका यह कॉंग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्यके राष्ट्रीय आन्दोलनको निबटानेके लिए वाइसराय महोदयकी कोशिशोंकी कद्र करती है। किन्तु उसके बाद जो घटनाएँ हुई हैं और वाइसराय साहबके साथ महात्मा गांधीजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओंकी मुलाकातका जो नतीजा निकला है, उसपर विचार करनेपर कॉंग्रेसकी यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज-परिषद्में कॉंग्रेसके शामिल होनेसे कोई लाभ नहीं। इसलिए गत वर्ष कलकत्तेके अधिवेशनमें किये हुए अपने निश्चयके अनुसार यह कॉंग्रेस घोषणा करती है कि कॉंग्रेस-विधानकी पहली कलममें 'स्वराज्य' शब्दका अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा। कॉंग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-कमिटीकी रिपोर्टमें वर्णित सारी योजना खतम समझी जाय। कॉंग्रेस आशा करती है कि अब समस्त कॉंग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्षकी पूर्ण स्वाधीनताको प्राप्त करनेमें ही लगायेंगे।"

कॉंग्रेसका यह प्रस्ताव गांधीजीकी सलाहसे ३१ दिसम्बर, १९२९ की आधी-रातके समय पास किया गया और सारी कॉंग्रेसने मिलकर उसी समय औपनिवे-शिक स्वराज्यके आदर्शको खतम करनेकी घोषणा करते हुए पूर्ण स्वाधीनताका

झण्डा भी फहरा दिया। ३१ दिसम्बर, १६२६ तकका समय कलकत्ता-कॉंग्रेसके प्रस्तावके अनुसार सरकारको औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्वीकृतिके लिए दिया गया था। चूँकि तबतक १२ महीने व्यतीत होनेपर भी सरकारने उस माँगकी पूर्ति न की थी, इसलिए औपनिवेशिक स्वराज्यकी माँगको तब पूर्ण स्वतन्त्रताकी माँगमें परिवर्तित कर दिया गया था।

देशभरमें इस निश्चयको घोषित करनेके लिए कॉंग्रेस-कार्यसमितिकी २ जनवरी, १९३० को हुई बैठकने निश्चय किया कि २६ जनवरीको देशभरमें पूर्ण स्वराज्य-दिवस मनाया जाय और उस अवसरपर यह घोषणा-पत्र पढ़ा जाय—

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रोंकी भाँति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रमका फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन-निर्वाहके लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों, जिससे हमें भी विकासका पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार जनतासे ये अधिकार छीन लेती है और उसे सताती है, तो प्रजाको उस सरकारके बदल देने या मिटा देनेका भी अधिकार है। भारतकी अंग्रेजी सरकारने भारतवासियोंका ही अपहरण नहीं किया है, बल्कि उसका आधार भी गरीबोंके रक्तशोषणपर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवम् आध्यात्मिक दृष्टिसे भारतवर्षका नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्षको अंग्रेजोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।"

प्रतिज्ञा-पत्रमें अंग्रेजी शासनके फलस्वरूप आर्थिक बरबादी और ग्राम-उद्योगोंकी बरबादी, आदिका जिक्र करते हुए कहा गया कि—अंग्रेजोंके जमानेमें राजनैतिक दृष्टिसे भारतका दर्जा जितना घटा है, उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार-योजनासे जनताके हाथमें वास्तविक राजनैतिक सत्ता नहीं आयी है। हमारे बड़े-से-बड़े आदमीको विदेशी सत्ताके सामने सिर झुकाना पड़ता है। अपनी राय आजादीसे जाहिर करने और आजादीसे मिलने-जुलनेके हमारे हक छीन लिये गये हैं और हमारे बहुत-से देशवासी निर्वासित कर दिये

गये हैं। हमारी सारी शासनकी प्रतिभा मारी गयी है और सर्व-साधारणको गाँवोंके छोटे-छोटे ओहदों और मुंशीगिरीसे संतोष करना पड़ता है।

"संस्कृतिकी अपेक्षा अंग्रेजी शिक्षा-प्रणालीने हमारी जड़ ही काट दी है। हमें जो तालीम दी जाती है, उसके फलस्वरूप हम अपनी गुलामीकी जंजीरोंको ही प्यार करने लगे हैं।

"आध्यात्मिक दृष्टिसे, हमारे हथियार जबर्दस्ती छीनकर हमें नामर्द बना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छातीपर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबलेकी भावनाको बड़ी बुरी तरहसे कुचल दिया है। उसने हमारे दिलोंमें यह बात बैठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमणसे देशकी रक्षा कर सकते हैं। इतना ही नहीं, चोर, डाकू और बदमाशोंके हमलोंसे भी हम अपने बाल-बच्चों और जान-मालको नहीं बचा सकते। जिस शासनने हमारे देशका इस प्रकार सर्वनाश किया है, उसके अधीन रहना हमारी रायमें मनुष्य और भगवान् दोनोंके प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसाके द्वारा स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश सरकारसे यथासंभव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकारका सहयोग न करनेकी तैयारी करेंगे और सविनय अवज्ञा एवं कर-बन्दी तकके साज सजावेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलनेपर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके, तो इस अमानुषी राज्यका नाश निश्चित है। अतः हम शपथपूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्यकी स्थापनाके हेतु काँग्रेस समय-समयपर जो आज्ञाएँ देगी, उनका हम पालन करते रहेंगे।"

स्वतन्त्रताकी यह प्रतिज्ञा देशभरमें सर्वत्र लोगोंने जिस उत्साह और जोशके साथ ली, उससे यह प्रकट हो गया कि देशमें वस्तुतः बहुत जागृति है, और लोग उत्साहके साथ देशकी आजादीके लिए त्याग और बलिदान करनेको प्रस्तुत हैं। श्रीराजेन्द्रप्रसादके शब्दोंमें—"इन शुभ चिह्नोंसे मालूम पड़ता था, मानो देश

कोई बड़ा कदम उठाने जा रहा है। सभी जगहोंमें सत्याग्रहकी चर्चा हो रही थी।"

सत्याग्रहकी यह चर्चा निःसन्देह आनेवाले महान् स्वतन्त्रता-संग्रामका द्योतक थी। सत्याग्रहके लिए कारण-पर-कारण जुटते ही जा रहे थे। स्वतन्त्रता-दिवसका समारोह खत्म ही हुआ था कि २५ जनवरीको असेम्बलीमें दिया गया वाइसरायका भाषण भी प्रकाशित हो गया, जिसमें उन्होंने कहा था—

"यह सही है कि साम्राज्यके अन्य लोगोंके साथ व्यवहार करनेमें भारतको स्वराज्य-भोगी उपनिवेशोंके समान कई अधिकार मिल चुके हैं। परन्तु यह भी सही है कि भारतीय लोकमत इन अधिकारोंको सम्प्रति बहुत महत्त्व देनेके लिए तैयार नहीं है। इसका कारण यह है कि इन अधिकारोंका प्रयोग ब्रिटिश-सरकारके नियन्त्रण तथा स्वीकृतिमें है। ब्रिटिश-सरकार जो परिषद् बुलायेगी, वह वस्तुतः वही चीज नहीं है जो भारतवासी चाहते हैं। उनकी माँग तो यह है कि उसके निर्णय बहुमतसे हों और वह जो विधान बना दे, उसे पार्लियामेण्ट ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर ले।

"परिषद् भिन्न-भिन्न मतोंको स्पष्ट करने, एक करने और सरकारको रास्ता दिखानेके हेतु की जायगी, योजना बनाकर पार्लियामेण्टके सम्मुख रखनेकी जिम्मेवारी तो सरकारपर ही होगी।"

वाइसरायके इस भाषणने स्पष्ट कर दिया कि औपनिवेशिक स्वराज्य बेनके कथनानुसार १० वर्ष पूर्वसे चला ही आ रहा है, तथा भारतको अपना भविष्य निर्णय करनेमें स्वयं कोई अधिकार नहीं है।

देशमें जो आग सुलग रही थी, वह वाइसरायके इस अपमानजनक और स्वेच्छाचारपूर्ण भाषणसे और भभक उठी। उसके उत्तरमें गांधीजीने यंग-इंडियामें लिखा था—

"वाइसरायने वातावरण साफ कर दिया और हमें ठीक-ठीक बता दिया कि

वे कहाँ और हम कहाँ हैं ? इसके लिए प्रत्येक काँग्रेसवादीको उनका आभारी होना चाहिए।

"वाइसराय साहबको क्या परवाह है ? जबतक भारतका प्रत्येक करोड़पति ७ पैसे रोजकी मजदूरी पानेवाला भिखारी न बन जाय, तबतक औपनिवेशिक स्वराज्यके मिलनेकी चाहे प्रतीक्षा ही क्यों न करनी पड़े। यदि काँग्रेसका बस चले तो आज वह प्रत्येक भूखे किसानको पेट-भर खाना ही नहीं दे, बल्कि करोड़पतिकी हालत तक भी पहुँचा दे। वैसे भी जब उसे अपनी दुर्दशाका पूरा ज्ञान हो जायगा और जब वह समझ जायगा कि उसकी यह निस्सहाय अवस्था किस्मतके कारण नहीं हुई, बल्कि वर्तमान शासनके द्वारा हुई है, तो वह संगठित होकर सिर उठायेगा और अधीर होकर एक ही सपाटेमें वैध-अवैधका ही नहीं, हिंसा-अहिंसाका भेद भी भूल जायगा। काँग्रेसको आशा है कि ऐसी दशामें वह किसानोंको सच्चा मार्ग बतायेगी।"

गांधीजीने इन शब्दों द्वारा ब्रिटिश-सरकारको एक प्रकारसे खुली चुनौती दे डाली थी। तब घटनाएँ ही इस प्रकार वेगसे घटित हो रही थीं कि बिना सरकारसे जूझे गांधीजीको कोई रास्ता ही नहीं दिखायी देता था। तथापि चुनौतीके साथ-साथ गांधीजीने लार्ड अर्विनके सामने अपनी निम्न ११ शर्तें भी रखीं—सम्पूर्ण मदिरा-निषेध, विनिमयकी दर घटाकर एक शिलिंग चार पेंस रख दी जाय, जमीनका आधा कर जिसपर कौंसिलका नियंत्रण रखा जाय, नमक-कर उठा दिया जाय; सैनिक-व्ययमें कम-से-कम ५० फीसदी कमी कर दी जाय; बड़ी-बड़ी नौकरियोंके वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायँ; विदेशी कपड़ेकी आयातपर निषेध-कर लगा दिया जाय; भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजोंके लिए सुरक्षित रखनेका प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय; समस्त राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँ; १२४ अ धारा और १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयोंको लौट आने दिया जाय; खुफिया-पुलिस उठा दी जाय, अथवा उसपर जनताका नियंत्रण कर दिया जाय;

आत्म-रक्षार्थ हथियार रखनेके परवाने दिये जायँ, तथा उनपर जनताका नियंत्रण रहे।

इन शर्तोंको रखते हुए गांधीजीने स्पष्ट रूपसे यह बतला दिया था कि यदि वाइसराय भारतकी सारी आवश्यक माँगोंमेंसे उपर्युक्त कुछ जरूरी और मामूली माँगोंको स्वीकार नहीं करेंगे, तो काँग्रेसको सविनय-अवज्ञा या सत्याग्रहका प्रयोग करना पड़ेगा।

अतः इन सारी चीजोंको सामने रखते हुए इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं रह गया था कि गांधीजी भारतके मान और स्वतंत्रताके लिए अब और अधिक समय तक शान्ति धारण करके बैठे नहीं रह सकते थे। वे कोई भारी लड़ाई लड़नेका पक्का निश्चय कर चुके थे। इस निश्चयसे प्रेरित होकर ही अपने देश-वासियोंको भविष्यमें आनेवाली लड़ाईके लिए सचेत करते हुए गांधीजीने कहा था—

"अन्य देशोंके लिए स्वतंत्रता-प्राप्तिके दूसरे उपाय भले ही रहे हों, परन्तु भारतवर्षके लिए अहिंसात्मक असहयोगके सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। परमात्मा करें कि आप लोग स्वराज्यके इस मन्त्रको सिद्ध तथा प्रकट करें, और स्वाधीनताकी जो लड़ाई निकट आ रही है, उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करनेका भी वह (परमात्मा) आपको बल और साहस प्रदान करे!"

आगे क्या होनेवाला था—अब इसमें कोई संशय नहीं रह गया था। लोग केवल गांधीजीकी आज्ञाकी बाट देख रहे थे।

घटाएँ घिर चुकी थीं और बरसनेमें अधिक देर न थी।

अध्याय—१४

आँधी

विराट गांधी

शान्त गांधीजीने अब गीताके कृष्णका विराट् रूप धारण कर लिया था। काँग्रेसके सारथी बनकर गांधीजी सत्याग्रहके लिए सन्नद्ध हो गये थे। अपनी जो ११ शर्तें वे वाइसरायको भेज चुके थे, उनके ही स्वीकार न किये जानेपर वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन चलानेका निश्चय कर चुके थे।

सक्रिय रूपसे काँग्रेस और सम्पूर्ण देश भी गांधीजीके पीछे चलने और उनके इशारेपर काम करके त्याग तथा बलिदान करनेके लिए प्रस्तुत था। अतः १४, १५ और १६ फरवरीको साबरमतीमें काँग्रेस-कार्य-समितिने तुरन्त ही पूर्ण-स्वतन्त्रताके लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ करनेका प्रस्ताव पास कर, गांधीजी और उनके साथियोंको सविनय-अवज्ञा करनेका अधिकार दे दिया। इसके पश्चात् आगे जब अहमदाबादमें २१ मार्चको पुनः काँग्रेस-कार्य-समिति-की बैठक हुई, तो उसने सविनय-अवज्ञा चलानेकी पूरी सत्ता ही गांधीजीके हाथोंमें सुपुर्द कर दी। इस प्रकार गांधीजीको काँग्रेस और देशका पूर्ण नेतृत्व सौंप दिया गया। उन्हें स्वतन्त्रता दे दी गयी कि वे चाहे जिस तरहसे आन्दोलनको चलावें और समाप्त करें। उनके हाथमें काँग्रेस अपनेको सौंपकर निश्चिन्त हो गयी। महारथी गांधीजीको अपने आगे देखकर देश प्रसन्नता और उत्साहसे ओत-प्रोत हो उठा था। गांधीजी-जैसे सेनापतिके पीछे-पीछे युद्धमें जानेसे किसे हिचक या घबड़ाहट हो सकती थी?

सविनय अवज्ञा या सत्याग्रहका प्रकार

साबरमती-आश्रममें जब सत्याग्रहका निश्चय हुआ, तभी वहाँपर उपस्थित लोगोंमें इसपर काफी बहस होने लगी कि सत्याग्रहका श्रीगणेश किस कानूनको तोड़कर किया जाय? लेकिन जब महात्मा गांधीने कहा कि 'नमक-कानून' को भंग करके, तो उपस्थित मंडलीको आश्चर्य हुआ कि इससे भला सरकारपर क्या दबाव पड़ सकेगा? लोग सन्देह करने लगे कि क्या स्वयं बनाया हुआ नमक सस्ता पड़ सकेगा? खैर, सस्ता पड़े या मँहगा, लेकिन हर जगह तो नमक बनानेके साधन भी नहीं हैं, समुद्रके तटवासी ता समुद्रके पानीको उबालकर नमक बना भी सकते हैं, परन्तु दूसरे लोग क्या करेंगे? सरकारी कर्मचारी भी खुश हो रहे थे कि समुद्रके पानीसे बनाये गये नमकपर नमक-करसे तिगुना खर्चा पड़ेगा। इससे कोई फ़ायदा तो होने से रहा। परन्तु पट्टाभिने ठीक ही लिखा है कि "ये वेचारे यह न समझ सके कि यह संग्राम भौतिक नहीं, नैतिक था।"

नमक-करपर सन्देह

इस नैतिक पहलूको काँग्रेसके बड़े-से-बड़े नेता भी तब सहसा न समझ सके थे। उन्हें गांधीजीपर विश्वास था, इसीलिए नमक-कानूनको भंग करनेमें सन्देह करते हुए भी वे गांधीजीके पीछे चलनेको तैयार थे। नमक-कानूनका भंग करनेसे आन्दोलन चलाया जा सकेगा, इसपर उन्हें सहज ही विश्वास न होता था। इस सन्देह और अविश्वासका उल्लेख करते हुए श्रीराजेन्द्रप्रसादजीने लिखा है—

"हमारे सामने कई दिक्कतें थीं। हममेंसे बहुतेरे यह नहीं समझ पाते थे कि सरकारपर जोर डाले बिना हम उसे मजबूर कैसे कर सकेंगे? साथ ही इससे भी बड़ी अड़चन इस बातमें मालूम होती थी कि नमकका कानून हम तोड़ेंगे तो कैसे? जो समुद्रके किनारे रहते हैं, वे तो वहाँ किनारेपर सरकारी आज्ञाके विरुद्ध नमक जमा करके अथवा नमकीन पानी गर्म करके कानून भंग कर सकते हैं।

परन्तु भारतकी अधिकांश जनता, जो समुद्रके किनारे नहीं रहती, कैसे कानून तोड़ेगी ?......"

इस प्रकारके सन्देहोंमें पड़कर ही राजेन्द्रबाबू आगे लिखते हैं—

"मुझे भी इस कार्यक्रमकी सफलतामें काफी सन्देह था। मैंने उन (गांधीजी) से कहा कि बिहारमें चौकीदारी-टिकस एक ऐसा 'कर' है, जो सभी लोगोंको देना पड़ता है। उससे गरीब बहुत असन्तुष्ट हैं। उसकी वसूलीमें भी गरीबोंपर काफी सख्ती की जाती है।......बिहारमें इस टैक्सको बन्द करनेमें ज्यादा आसानी होगी।......बिहारके लिए चौकीदारी-टैक्स बन्द करनेकी आज्ञा दी जाय।" किन्तु महात्माजी कब कुछ सुननेवाले थे, वे जानते थे कि बड़ी चीजसे कार्य आरम्भ करना अन्तमें कठिनाई ही पैदा करता है। अतः राजेन्द्रबाबूको उत्तर मिला—"यदि तुम इससे काम शुरू करोगे तो बहुत जल्द हार जाओगे। पहले नमक-कानून तोड़कर ही कार्यारम्भ करो। पीछे यदि लोगोंमें काफी उत्साह आ जायगा तो टिक्सबन्दीका विचार करना।" किन्तु इसपर भी नमक-कानून-भंगकी उपयोगितापर राजेन्द्रबाबूको विश्वास न हो सका। वे लिखते हैं—"मैंने बात सुन तो ली, पर मनमें बैठी नहीं। मैं सोचता था कि इस सीधे रास्तेको छोड़कर नमक-कानूनके फेरमें पड़ना क्यों जरूरी है?" लेकिन इतना अविश्वास होते हुए भी अपने नेतामें उनका इतना विश्वास था कि उन्हें आँख मूँदकर अनुसरण करना ही एकमात्र उचित मार्ग मालूम दिया; "पर गांधीजीके इन विषयोंके अनुभवका मैं कायल था। मुझे विश्वास हो गया था कि वह दूर तक देख लेते हैं, जहाँ तक हम नहीं देख सकते। इसलिए कुछ दिनोंसे मैंने यह तरीका बना लिया था कि अपने विचार उनके सामने रख दूँ, यदि वह मानलें तो ठीक, नहीं तो उनकी रायके मुताबिक काम करना ही ठीक है।"* यह बात अनुभवसे राजेन्द्रबाबूको ही नहीं जँची थी, अपितु सभी सन्देही कार्यकर्त्ताओंको अन्तमें प्रत्यक्ष हो गयी थी कि गांधीजीकी ही राय ठीक थी।

* आत्मकथा—पृष्ठ ३२२-३२३

नमक-करको लेकर सत्याग्रह शुरू करने की बातको समझना निःसन्देह तब लोगोंको कठिन ही रहा होगा ; क्योंकि वे नहीं समझ पाते थे कि इससे सरकार-पर कैसे और क्योंकर असर पड़ सकेगा। किन्तु गांधीजी समझ रहे थे। उन्हें देशकी आजादीके संग्राममें समस्त भारतीय जनताको अपने साथ ले चलना था, इसलिए कोई ऐसी वस्तु लेकर संग्रामको शुरू करना चाहते थे जिसे भारतका प्रत्येक भोला किसान और अपढ़ मजदूर भी आवश्यकताकी वस्तु समझता हो। यदि वे 'स्वराज्य' के बड़े मसले या किसी भारी कानूनको तोड़नेकी बातको लेकर चलते, तो पहिले पूरी जनता उसकी उपयोगिता ही न समझती और उसके लिए विद्रोहमें सक्रिय भाग लेना कठिन हो जाता। यदि प्रारम्भमें प्रचारके प्रभावसे वे विद्रोहमें बिना समझे-बूझे शामिल हो भी जाते, तो अधिक दिनोंतक उसमें नहीं टिकते। अतः महात्माजीने दृढ़ विचार किया कि प्रारम्भ में हल्के 'नमक-कर' से ही सत्याग्रह किया जाना चाहिए। गरीब और अमीर दोनोंको ही नमककी बराबर जरूरत पड़ती है, दोनों ही उसकी उपयोगिता अच्छी प्रकार समझते हैं। गांधीजीने बतलाया कि नमकपर सरकार-द्वारा कर लगानेसे गरीबोंको जो नमक मुफ्त मिल सकता है, या बहुत कम दाममें मिल सकता है, वही काफी महँगा पड़ता है, और इस कारण बहुत-से गरीब उतना नमक नहीं खा सकते, जितना उनके स्वास्थ्यके लिए जरूरी है। 'नमक हमारे खाद्य पदार्थोंमें एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। यह समुद्रके किनारे जमा करनेसे ही मुफ्तमें मिल सकता है, दूसरी जगहोंमें भी मिट्टीसे बनाया जा सकता है। जहाँ नमकका पहाड़ है वहाँ भी लोग खोदकर बिना दामके निकाल सकते हैं, पर गवर्नमेण्ट केवल 'कर' प्राप्त करनेके लिए इसके जमा करनेपर प्रतिबन्ध लगाती है। ईश्वरने जल और वायुकी ही तरह नमक भी मुफ्त बाँटनेका प्रबन्ध किया है, मगर सरकार लेने नहीं देती।' अतः गांधीजीका कहना था कि इससे अधिक बुरा दूसरा 'कर' नहीं हो सकता, और गरीब भी उसके विरुद्ध सत्याग्रह करनेकी बात आसानीसे समझ सकेंगे, तथा संसारके लोग भी स्वीकार करेंगे कि हमारी यह माँग न्याय्य है।

राजेन्द्रबाबूके शब्दोंमें, गांधीजीका पूरा विश्वास था कि "यदि एक अन्याय-पूर्ण 'कर' का हम इस तरह प्रतिरोध कर सकेंगे, तो दूसरे सभी करोंका नियन्त्रण हम कर सकेंगे।"*

अन्तिम चेतावनी

सत्याग्रहके लक्ष्यको निश्चित कर लेनेपर एक सच्चे और अहिंसक सत्याग्रहीके नाते गांधीजीने वाइसरायको अपने और कॉंग्रेसके इरादोंके बारे में बहुत देर तक अँधेरेमें रखना उचित न समझा। अतः सदाकी भाँति इस बार भी २ मार्च १९३०को उन्होंने लार्ड अर्विनको अन्तिम चेतावनी देते हुए सत्याग्रहाश्रम, साबरमतीसे एक चिट्ठी भेजी। यह चिट्ठी ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टिसे बड़े ही महत्वकी है। यह प्रसिद्ध पत्र प्रजाके एक प्रतिनिधिने सरकारके प्रतिनिधिको भेजा था। यह पत्र एक साधारण पत्र भी नहीं था, किन्तु सरकारपर लगाया गया एक आरोप-पत्र था। पत्रके महत्वको समझनेके लिए उसके कतिपय अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"प्रिय मित्र,

सविनय अवज्ञा शुरू करने और जिस जोखिमको उठानेके लिए मैं इतने सालोंसे सदा हिचकिचाता रहा हूँ, उसे उठानेसे पहले मुझे आप तक पहुँचकर कोई मार्ग निकालनेका प्रयत्न करनेमें प्रसन्नता है।

"अहिंसापर मेरा व्यक्तिगत विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणीको दुःख नहीं पहुँचा सकता। मनुष्योंको दुःख पहुँचानेकी तो बात ही नहीं, भले ही वे मेरा या मेरे स्वजनोंका कितना ही अहित कर दें। अतः जहाँ मैं ब्रिटिश राज्यको अभिशाप समझता हूँ, वहाँ मैं एक भी अंग्रेज़को या भारतमें उसके किसी भी उचित स्वार्थको नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता।

---

*—वही—पृष्ठ ३१२

"मेरा अंग्रेजी राज्यके बारेमें इतना बुरा खयाल क्यों है ?"

"इसलिए कि इस राज्यने करोड़ों मूक मनुष्योंका दिन-ब-दिन अधिकाधिक रक्त-शोषण करके उन्हें कंगाल बना दिया है। उनपर शासन और सैनिक-व्ययका असहनीय भार लादकर उन्हें बर्बाद कर दिया है।

"राजनैतिक दृष्टिसे हमारी स्थिति गुलामोंसे अच्छी नहीं है······इसके साथ-ही-साथ हम सबको निःशस्त्र करके कायरोंकी भाँति निःसहाय भी बना दिया गया है।

"घोषणाके बाद अनेक घटनाएँ ऐसी हुई हैं, जिनसे ब्रिटिश नीतिकी दिशाका स्पष्ट संकेत मिलता है।

"अब यह सूर्यकी भाँति साफ-साफ जाहिर हो गया है कि जिम्मेदार ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपनी नीतिमें ऐसा कोई परिवर्तन करनेका विचार तक नहीं रखते, जिससे ब्रिटेनके भारतीय व्यापारको धक्का पहुँचनेकी संभावना हो, अथवा भारतके साथ ब्रिटेनके लेन-देनकी निष्पक्ष और पूरी जाँच करनी पड़े। यदि इस शोषणकी क्रियाका अन्त नहीं किया गया, तो भारत दिन-ब-दिन अधिकाधिक निःसत्व ही होता जायगा। विनिमयकी दर बात-की-बातमें १८ पेंस कर दी गयी और देशको कई करोड़की हानि सदाके लिए हो गयी। अर्थ-सदस्य इस निश्चयको अटल समझते हैं। जब और-और बुराइयोंके साथ इस अटल निर्णयको मेटनेके लिए सविनय किन्तु सीधा हमला किया जाता है, तो आप चुप नहीं रह सकते। आपने भी भारतवर्षको पीस डालनेवाली प्रणालीकी ही दुहाई देकर उस उपायको विफल करनेके लिए धनी और जमींदार-वर्गकी मदद माँग ही ली है।

"राष्ट्रके नामपर काम करनेवालोंको खुद भी समझ लेना चाहिए और दूसरोंको समझाते रहना चाहिए कि स्वाधीनताकी इस तड़पके पीछे हेतु क्या है। इस हेतुको न समझनेसे स्वाधीनता कितने विकृत रूपमें आ सकती है! यह खतरा हमेशा बना रहेगा कि जिन करोड़ों मूक किसानों और मजदूरोंके

लिए स्वाधीनताकी प्राप्तिका प्रयत्न किया जा रहा है और किया जाना चाहिए, उनके लिए वह स्वाधीनता कदाचित् निकम्मी ही सिद्ध हो। इसी कारण मैं कुछ अर्सेसे जनताको वांछित स्वाधीनताका सच्चा अर्थ समझा रहा हूँ।

"मुख्य-मुख्य बातें आपके सामने भी रख दूँ।

"सरकारी आयका मुख्य भाग जमीनका लगान है। इसका बोझा इतना भारी है कि स्वाधीन भारतको उसमें काफी कमी करनी पड़ेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज है, परन्तु इससे भी मुट्ठी-भर अमीर जमींदारोंको लाभ है, गरीब किसानोंको कोई लाभ नहीं, वे तो सदासे बेबसीमें रहे हैं। उन्हें जब चाहे बेदखल किया जा सकता है।

"भूमि-करको ही घटा देनेसे काम नहीं चलेगा, सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पड़ेगी कि रैयतकी भलाई ही उसका मुख्य लक्ष्य रहे। परन्तु मालूम होता है, सरकारने जो तरीका जारी किया है, वह रैयतकी जान निकाल लेनेके लिए ही किया है। नमक तो उसके जीवनके लिए भी आवश्यक है। परन्तु उसपर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यों दीखनेमें तो वह सबपर बराबर पड़ता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षताका भार सबसे अधिक गरीबोंपर ही पड़ता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है, जो अलग-अलग भी और मिलकर भी अमीरोंसे गरीब लोग अधिक मात्रामें खाते हैं। इस कारण नमक-करका बोझा गरीबोंपर और भी ज्यादा पड़ता है। नशेकी चीजोंका महसूल भी गरीबोंसे ही अधिक वसूल होता है, इससे गरीबोंके स्वास्थ्य और सदाचार दोनोंपर कुठाराघात होता है। इस करके पक्षमें व्यक्तिगत स्वतंत्रताकी झूठी दलील दी जाती है, परन्तु दरअसल यह लगाया जाता है आमदनीके लिए। १९१९ की सुधार-योजनाके जन्मदाताओंने बड़ी होशियारीसे इस आयको द्वैध-शासनके जिम्मेवार कहलानेवाले विभागके सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार मदिरा-निषेधका भार मंत्रीपर आ गया और वह बेचारा भलाई करनेके लिए शुरूसे ही निकम्मा हो गया। यदि अभागा मंत्री इस आमदनीको बन्द कर

देता है तो उसे शिक्षा-विभागका खर्च बिलकुल कम कर देना पड़ता है, क्योंकि वर्तमान स्थितिमें आबकारीके बजाय उसके पास और कोई आमदनीका साधन नहीं है। इधर ऊपरसे करका भार लाद-लादकर गरीबोंकी कमर तोड़ दी गयी है, उधर हाथ-कताईके मुख्य सहायक-धन्धेको नष्ट करके उनकी उत्पादन-शक्ति बर्बाद कर दी गयी है।

"भारतवर्षके विनाशकी दुःखद कहानी उसके नामपर लिये गये कर्जका उल्लेख किये बिना पूरी नहीं हो सकती। हालमें इस विषयपर समाचार-पत्रोंमें काफी लिखा जा चुका है। इस ऋणकी स्वतंत्र न्यायालय-द्वारा पूरी जाँच कराना और जो रकम अन्यायपूर्ण सिद्ध हो, उसे चुकानेसे इन्कार करना स्वाधीन भारतका कर्त्तव्य होगा।

"उपर्युक्त अन्याय संसारके सबसे महँगे विदेशी शासनको कायम रखनेके लिए किये जाते हैं। आपके वेतनको ही देखिए। दूसरे अनेक लवाजमातके अलावा आपको २१ हजार रुपये मासिक मिलते हैं। आजके विनिमयके भावसे ब्रिटिश प्रधान मंत्रीको ५,००० पौंड वार्षिक अर्थात् ५४०० रुपये माहवार ही दिये जाते हैं। भारतवासियोंकी औसत दैनिक आय दो आनेसे कम है और आप ७००) रु० रोजसे ज्यादा पाते हैं। एक अंग्रेजकी रोजाना आमदनी लगभग दो रुपये है और वहाँके प्रधान मंत्रीकी १८०) रुपये। इस प्रकार आपको प्रत्येक हिन्दुस्तानीसे पाँच हजार गुनासे भी ज्यादा मिलता है, और ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीको प्रत्येक अंग्रेजसे सिर्फ ९० गुना ही अधिक दिया जाता है। मैं आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि इस करिश्मेपर गौर कीजिए। यह व्यक्तिगत उदाहरण मैंने इसलिए दिया है कि एक हृदय-विदारक सत्यको आप भलीभाँति समझ जायँ। आपके लिए व्यक्तिशः मेरे मनमें इतना आदर है कि मैं आपके दिलको चोट पहुँचानेकी इच्छा भी नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, आपको इतने भारी वेतनकी जरूरत नहीं है। शायद आप सारी तनख्वाह खैरात ही कर देते होंगे। परन्तु जिस शासन-प्रणालीमें ऐसी व्यवस्था हो, वह

तो मूलसे उखाड़ फेंकनेके लायक है। जो बात वाइसरायके वेतनके बारेमें सच है, सामान्यतः वही सारे शासनपर भी लागू होती है।

"अतः करका भार अधिक मात्रामें उसी हालतमें कम किया जा सकता है, जब शासन-व्यय भी उतना ही घटा दिया जाय। इसका अर्थ है शासन-योजनाकी काया-पलट कर देना। मेरी रायमें २६ जनवरीके स्वाभाविक प्रदर्शनमें लाखों ग्रामीणोंने स्वेच्छासे जो भाग लिया, उसका भी यही अर्थ है। उन्हें लगता है कि इस नाशकारी भारसे स्वाधीनता ही छुटकारा दिलायेगी।

"फिर भी यदि भारतीय राष्ट्रको जीवित रहना है और यदि भारतवासियोंको भूखसे तड़प-तड़पकर शनैः-शनैः मिट नहीं जाना है, तो कष्ट-निवारणका कोई-न-कोई उपाय तुरन्त ढूँढ़ना पड़ेगा। प्रस्तावित परिषद् तो ऐसा उपाय हो ही नहीं सकती। यह बात तर्कसे मनवानेकी नहीं है। यहाँ तो बराबरकी शक्ति खड़ी करनी होगी, तर्क-वितर्क कुछ नहीं। ब्रिटेन अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने व्यापार एवं हितोंकी रक्षा करेगा। इसलिए भारतवर्षको मृत्युके बाहुपाशमेंसे मुक्त होनेके लिए उतनी ही शक्ति सम्पादित कर लेनी होगी।

"यह सभीको मालूम है कि भले ही हिंसक-दल कितना ही असंगठित या सम्प्रति महत्वहीन हो, फिर भी उसका जोर बढ़ता जा रहा है। इसका और मेरा ध्येय एक ही है। परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह मूक जनताका कष्ट-निवारण नहीं कर सकता, मेरा यह विश्वास भी दिन-दिन दृढ़तर होता जा रहा है कि ब्रिटिश-सरकारकी संगठित हिंसाको शुद्ध अहिंसा ही रोक सकती है। मेरा अनुभव अवश्य ही सीमित है, परन्तु वह बताता है कि अहिंसा बड़ी जबरदस्त क्रियात्मक शक्ति हो सकती है। मेरा इरादा इस शक्ति-द्वारा सरकारकी संगठित हिंसा और हिंसक दलकी बढ़ती हुई असंगठित हिंसा दोनोंका मुकाबला करनेका है। हाथ-पर-हाथ धरकर बैठनेसे तो ये दोनों शक्तियाँ स्वच्छन्द होकर विचरेंगी। मेरा अहिंसाकी सफलतामें निःशंक और अटल विश्वास है। ऐसी दशामें और प्रतीक्षा करना मेरे लिए पाप होगा।

"यह अहिंसा सविनय अवज्ञाके रूपमें प्रकट होगी। आरम्भमें आश्रम-निवासी ही इसमें भाग लेंगे, परन्तु बादमें इसकी मर्यादाओंको समझकर जो चाहेंगे वे सभी इसमें शामिल हो जायँगे।

"मैं जानता हूँ कि अहिंसात्मक संग्रामका प्रारम्भ करनेमें जोखिम है। लोग एक तरहसे ठीक ही कहेंगे कि यह पागलपन है। परन्तु सत्यकी विजय बहुधा बड़ी-से-बड़ी जोखिमोंके उठाये बिना नहीं हुई है। जिस राष्ट्रने जान या अनजानमें अपनेसे अधिक जन-सख्यावाले, अधिक प्राचीन और अपने समान सभ्य दूसरे राष्ट्रको शिकार बनाया, उसको ठीक रास्तेपर लानेके लिए कोई भी जोखिम बड़ी नहीं।

"मैंने 'ठीक रास्तेपर लाने' के शब्दका जान-बूझकर प्रयोग किये हैं। कारण मेरी यह महत्त्वाकांक्षा है कि मैं अहिंसा-द्वारा ब्रिटिश जातिका हृदय पलट दूँ, और उसे भारतके प्रति किये गये अपने अन्यायका अनुभव करा दूँ। मैं आपकी जातिको हानि पहुँचाना नहीं चाहता। मैं उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हूँ, जैसी अपनी जातिकी। मेरा विश्वास है कि मैंने सदा ही ऐसी सेवा की है। १९१९ तक आँखें बन्द करके उनकी सेवा की। पर जब मेरा आँखें खुलीं और मैंने असहयोगकी आवाज बुलन्द की, तब मेरा उद्देश्य उनकी सेवा ही था। जिस हथियारका उपयोग मैंने अपने प्रिय-से-प्रिय रिश्तेदारपर कामयाबीसे किया है, वही मैंने सरकारके खिलाफ भी उठाया है। अगर यह बात सच है कि मैं भारतीयोंके समान ही अंग्रेजोंको भी चाहता हूँ, तो यह ज्यादा देर तक छिपी न रहेगी। बरसों तक मेरे प्रेमकी परीक्षा लेनेके बाद मेरे कुनबेवालोंने मेरे प्रेमके दावेको कबूल किया है, वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन करेंगे। यदि मेरी आशाओंके अनुकूल जनताने मेरा साथ दिया, तो या तो पहले हो ब्रिटिश-जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अथवा-जनता ऐसे-ऐसे कष्ट सहन करेगी, जिन्हें देखकर पत्थरका दिल भी पिघले बिना नहीं रह सकता।

"सविनय अवज्ञाकी योजना उपर्युक्त बुराइयोंके मुकाबलेके लिए है। ब्रिटिश-

सम्बन्ध-विच्छेद भी हम इन्हीं बुराइयोंके कारण करना चाहते हैं। इनके दूर हो जानेपर हमारा मार्ग सुगम हो जायगा। उस समय मित्रतापूर्ण समझौतेका द्वार खुल जायगा। यदि ब्रिटेनके भारतीय व्यापारमेंसे लोभका मैल निकल जाय, तो आपको हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर लेनेमें कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। मैं आपसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि इन बुराइयोंको तुरन्त दूर करनेका मार्ग सुगम बनाइए और इस प्रकार वास्तविक परिषद्के लिए अनुकूलता पैदा कीजिए। यह परिषद् बराबरीके लोगोंकी होगी, जिनका लक्ष्य एक ही होगा। वह यह कि स्वेच्छापूर्वक मित्रताका सम्बन्ध रखकर मानव-जातिकी भलाईका उद्योग किया जाय और उभय-पक्षके लाभको ध्यानमें रखकर पारस्परिक सहायता एवं व्यापारकी शर्तें तय की जायँ। दुर्भाग्यवश इस देशमें साम्प्रदायिक झगड़े हैं अवश्य, किन्तु आपने उनपर जरूरतसे ज्यादा जोर दिया है। यद्यपि किसी भी शासन-संबंधी योजनामें इस समस्यापर विचार करना महत्त्वपूर्ण बात है, परन्तु इससे भी बड़ी-बड़ी अन्य समस्याएँ हैं, जो कौमी झगड़ोंसे परे हैं और जिनके कारण सब जातियोंको समान रूपसे हानि उठानी पड़ती है। अस्तु, यदि इन बुराइयोंको दूर करनेका उपाय आप नहीं कर सकेंगे और मेरे पत्रका आपके हृदयपर असर नहीं होगा, तो इस मासकी ११ तारीखको मैं आश्रमसे उपलब्ध साथी लेकर नमक-कानून तोड़नेके लिए चल पड़ूँगा। गरीबोंकी दृष्टिसे मैं इस कानूनको सबसे अधिक अन्यायपूर्ण समझता हूँ। स्वाधीनताका आन्दोलन मूलतः गरीब-से-गरीबकी भलाईके लिए है। इसलिए इस लड़ाईकी शुरूआत भी इसी अन्यायके विरोधसे होगी। आश्चर्य तो इस बातपर है कि हम इतने दीर्घकाल तक नमकके इस निर्दय एकाधिकारको सहन करते रहे। मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्नको विफल कर सकते हैं। उस दशामें मुझे आशा है कि मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूपमें यह काम सम्हालनेको तैयार होंगे और नमक-कानून-जैसे घृणित कानूनको, जो कभी बनना ही नहीं चाहिए था, तोड़नेके कारण जो सजाएँ दी जायँगी, उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे।

"मेरा बस चले, तो मैं आपको आवश्यक ही क्या जरा-सी कठिनाईमें भी नहीं डालना चाहूँ। यदि आपको मेरे पत्रमें कुछ सार दिखायी दे और मेरे साथ बातचीत करना चाहें और इस हेतुसे आप इस पत्रको छपनेसे रोकना पसन्द करें, तो इसके पहुँचते ही आप मुझे तार कर दीजिए, मैं खुशीसे रुक जाऊँगा। परन्तु इतनी कृपा अवश्य कीजिए कि यदि आप इस पत्रके सारको भी अंगीकार करनेको तैयार न हों, तो मुझे अपने इरादेसे रोकनेका प्रयत्न न करें।

"इस चिट्ठीका हेतु कोई धमकी देना नहीं है। यह तो सत्याग्रहीका साधारण और पवित्र कर्त्तव्यमात्र है। इसलिए मैं इसे खास तौरपर एक ऐसे युवक अंग्रेज मित्र (रेजीनाल्ड रेनाल्ड) के हाथ भेज रहा हूँ, जो भारतीय पक्षका हिमायती है, जिसका अहिंसापर पूर्ण विश्वास है और जिसे शायद विधाताने इसी कामके लिए मेरे पास भेजा है।"*

महात्मा गांधीके इस पत्रको पढ़कर एक बार लार्ड अर्विनके मानव-हृदय-के साथ ब्रिटिश-साम्राज्यका पाषाण-हृदय भी अवश्य दहल उठा होगा। पत्र यद्यपि शिष्टता, विनम्रता और सद्भावनाके साथ लिखा गया था, तथापि उसमें जिस सत्यका नग्न दर्शन कराया गया था, और जिस स्पष्टताके साथ ब्रिटेनके द्वारा भारतपर किये गये दुर्व्यवहार और दुःशासनका चित्र खींचा गया था—वह पढ़ने, देखने और सुननेमें हृदय दहलानेके लिए काफी था। उस पत्रके आईनेमें अर्विन और भारत-सरकारको अपने अत्याचारोंके दैत्यकी मूर्ति स्पष्ट झलकती दिखलायी दी होगी। यह पहला ही अवसर था जबकि हिन्दुस्तानकी जनताके एक प्रतिनिधिने दुर्विनीत अंग्रेजी सरकारको इस प्रकारका एक पत्र लिखा था। अतः इससे अर्विन और अंग्रेज सरकारके अभिमानको भी गहरी चोट पहुँची होगी। अर्विनने क्षुब्ध-हृदयसे तुरन्त गांधीजीके पत्रका उत्तर भेजा और खेद प्रकट किया कि गांधीजी ऐसा काम करनेवाले हैं, जिससे निश्चित रूप-से कानून और सार्वजनिक शान्ति भंग होगी।

---

* कॉंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ ३६४-३६८

यह उत्तर पाकर गांधीजीने प्रत्युत्तरमें लिखा, "मैंने दस्तवस्ता रोटीका सवाल किया था और मिला पत्थर। अंग्रेज जाति सिर्फ शक्तिका ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय साहबके उत्तरपर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्रके भाग्यमें तो जेलखानेकी शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सारा भारत ही एक विशाल कारागृह है। मैं इस अंग्रेजी कानूनको माननेसे इन्कार करता हूँ और इस जबरदस्तीकी शान्तिकी मनहूस एकरसताको भंग करना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझता हूँ। इस शान्तिसे राष्ट्रका गला रुँधा हुआ है। अब उसके हृदयका चीत्कार प्रकट होना ही चाहिए।"

डाण्डी-महाअभियान

गांधीजी अब सत्याग्रहके लिए पूरी तरहसे तैयार हो गये थे। निश्चित हो गया के गांधीजी १२ मार्चको साबरमती-आश्रमसे अपने ७९ साथियोंको लेकर नमक-क़ानून तोड़नेके लिए डाण्डीको कूच करेंगे। डाण्डी सूरत जिलेमें समुद्र-तटका एक गाँव है। साबरमतीसे यह गाँव दो सौ मीलकी दूरीपर पड़ता था। गांधीजीके निश्चयानुसार सब सत्याग्रहियोंको पैदल चलकर डाण्डी पहुँचना था। रोजाना १०, १२ की मील यात्रा करके ६ अप्रैल तक वहाँ पहुँच जानेका तै हुआ था। सत्याग्रहियोंको मार्गमें किसी प्रकारके विशेष आराम और विशिष्ट भोजन करनेकी इजाजत न थी। गांधीजीने मार्गके ग्रामवासियोंको सूचित कर दिया था कि सत्याग्रही-यात्रियोंको कोई बढ़िया भोजन न दें। इस प्रकार गांधीजीने शुद्ध नैतिक ढंगपर डाण्डी-महाअभियानकी तैयारियां पूरी कीं।

गांधीजी जिस समय ये तैयारियाँ कर ही रहे थे, उसी समय उनके प्रिय शिष्य वल्लभभाई पटेल अहमदाबादके गाँवोंमें जा-जाकर लोगोंको आनेवाले संकट और बलिदानके लिए प्रेरित कर रहे थे। श्रीपट्टाभिके शब्दोंमें "जब वल्लभभाई इस प्रकार गांधीजीके आगे-आगे चल रहे थे, सरकारने समझा, 'यह

तो १६०० वर्ष पहले हुआ ईसामसीहका दूत जान बैपटिस्ट है।"* वल्लभभाई-की यह सक्रियता सरकारको बुरी लगी और उसने मार्चके प्रथम सप्ताहमें रास नामक गाँवमें उन्हें गिरफ्तार कर लिया और तीन मासकी सजा दे डाली। इस घटनाने अहमदाबादमें आग लगा दी और गुजरातका बच्चा-बच्चा सरकारके खिलाफ खड़ा हो गया। गांधीजीके सामने साबरमतीके रेतीले तटपर ७५ हजार अहमदाबादके स्त्री-पुरुष एकत्र हुए और उन्होंने शपथ ली कि—"हम अहमदाबादके नागरिक संकल्प करते हैं कि जिस रास्तेसे वल्लभभाई पटेल गये हैं, उसी रास्ते हम जायँगे और ऐसा करते हुए स्वाधीनताको प्राप्त करके ही छोड़ेंगे। देशको आजाद किये बिना न हम चैन लेंगे, न सरकारको लेने देंगे। हम शपथ-पूर्वक घोषणा करते हैं कि भारतवर्षका उद्धार सत्य और अहिंसासे ही होगा।"

इस राजनैतिक उष्ण वातावरणमें १२ मार्च १९३० को अपने पूर्व निश्चया-नुसार गांधीजी ७९ साथियोंके साथ डाण्डीके महाअभियानको निकल पड़े। यह सत्याग्रहका आरम्भ था और विद्रोहियोंकी विजय-यात्रा थी। यह महाभियान एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक भव्य दृश्य था। अनायास ही यह प्राचीनकालमें घटी हुई राम एव पाण्डवोंके वन-गमनकी घटनाओंकी स्मृतिको नवीन करता था। राजेन्द्रबाबू इस अहिंसामय दिग्विजयके दृश्यका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"जिस दिन गांधीजी साबरमतीसे निकले, उस दिन आश्रमपर रात-भर बहुत भीड़ लगी रही। सबेरे हजारों आदमियोंके जय-जयकारके बीच होकर गांधीजी और उनके साथी निकले। उन लोगोंके पास अपनी-अपनी झोलीमें उनके आवश्यक सामान थे। बड़ा ही उत्साह था। देखनेसे मालूम होता था, मानो सारा अहमदाबाद और वहाँका इलाका उमड़ आया है।"†

अभियान करते समय गांधीजीने लोगोंको यह भी सूचित कर दिया था कि 'जबतक मैं शुरूआत करूँ तब तक ठहरना।' अतः सब लोग गांधीजीके डाण्डी

---

*—वही—पृष्ठ २६८। †—आत्मकथा—पृष्ठ ३२४

पहुँचनेके दिनकी आतुरताके साथ बाट देखने लगे। सब उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे कि किस दिन ६ अप्रैलका दिन आयेगा जबकि गांधीजी सत्याग्रहका आरम्भ कर उन्हें भी उस संग्राममें भाग लेनेकी आज्ञा देंगे। किन्तु इस बीच काँग्रेसी शान्त और चुप न बैठे रहे। वे चारों ओर बड़े जोरोंसे प्रचारका काम करते रहे। गांधीजी जैसे-जैसे डाण्डीकी ओर बढ़ते गये, देशका उत्साह भी बढ़ता ही गया। 'बाम्बे क्रानिकल' के शब्दोंमें "इस महान् राष्ट्रीय घटनासे पहले, उसके साथ-साथ और बादमें जो दृश्य देखनेमें आये, वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और जीवन-संचार करनेवाले थे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस महान् अवसरपर मनुष्यके हृदयोंमें देश-प्रेमकी जितनी प्रबल धारा बह रही थी, उतनी पहले कभी नहीं बही थी। यह एक महान आन्दोलनका महान् प्रारम्भ था, और निश्चय ही भारतकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके इतिहासमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा।"

इस अभूतपूर्व अहिंसक-युद्धके धर्मवीर सेनानीके अभियानको देखनेके लिए सर्वत्र मार्गमें असंख्य भीड़ लग जाया करती थी। गांधीजी इस भीड़को मुसकराते हुए और मोक्षका मार्ग दिखाते हुए खद्दर, मदिरा-निषेध और अस्पृश्यता-निवारणका उपदेश देते थे। साथ-ही-साथ उनसे सत्याग्रहमें शामिल होनेकी माँग भी करते। लेकिन सत्याग्रहियोंके लिए इतनी शर्त्त अनिवार्य थी कि वे अत्यन्त सक्रिय अहिंसासे काम लेंगे और पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए काम करता हुआ 'या तो मर मिटेगा या कारावास में बन्द रहेगा।' स्वयं भी अभियानके बीचमें गांधीजीने घोषित कर दिया था "कि स्वराज्य नहीं मिला तो या तो रास्तेमें मर जाऊँगा, या आश्रमके बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका, तो आश्रम लौटनेका भी इरादा नहीं है।"*

महात्माजीकी इस दृढ़ताको देखकर ही आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायने कहा

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ ३७१, ३७५

था—"महात्मा गांधीजीकी ऐतिहासिक कूचकी उपमा हजरत मूसा और उनके यहूदी साथियोंके देश-त्यागसे ही दी जा सकती है। जबतक यह महापुरुष मंजिले मक्सूद तक नहीं पहुँच जायगा, पीछे फिरकर नहीं देखेगा।"

इस प्रकार ब्रिटिश-राज्यको नष्ट करनेपर कटिबद्ध हो गांधीजी बढ़ते जाते थे। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया, "अंग्रेजी राज्यने भारतका नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह नाश कर दिया है। मैं इस राज्यको अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करनेका प्रण कर चुका हूँ।"

"मैंने स्वयं 'परमात्मा सम्राटकी रक्षा करें' के गीत गाये हैं और दूसरोंसे भी गवाये हैं। मुझे 'भिक्षां देहि' की राजनीतिमें विश्वास था। पर यह सब व्यर्थ गया। मैं जान गया कि इस सरकारको सीधा करनेके ये उपाय नहीं हैं। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लड़ाई अहिंसाकी लड़ाई है। हम किसीको मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासनको खत्म कर देना हमारा परम कर्त्तव्य है।"

इस प्रकार अपने परम कर्त्तव्यकी पूर्तिके लिए गांधीजीने जिस अभियानको अपनाया था, उसे २४ दिनमें पूरा कर आखिर वे उस जिलेमें आ पहुँचे, जहाँपर उनका इष्ट स्थान डाण्डी था। इस अभियानको गांधीजी मात्र राजनैतिक अभियान न मानकर एक तीर्थ-यात्रा भी समझते थे, इसलिए अपने साथियोंको हमेशा आत्म-निरीक्षणके लिए सचेत किया करते थे। इस बार अपने साथियोंको समझाते और सचेत करते हुए सूरतमें गांधीजीने कहा था—

"आज ही प्रातःकालीन प्रार्थनाके समय मैं अपने साथियोंसे कह रहा था कि जिस जिलेमें हमें सविनय अवज्ञा करनी है, उसमें हम पहुँच गये हैं। अतः हमें आत्म-शुद्धि और समर्पण बुद्धिका और अधिक प्रयत्न करना चाहिए। यह जिला अधिक संगठित है और यहाँ कार्यकर्त्ताओंमें घनिष्ठ मित्र भी अधिक हैं। इसलिए हमारी खातिर-तवाजो भी अधिक होनेकी सम्भावना है। देखना, उनके आग्रहको न मानना। हम देवता नहीं हैं, निर्बल प्राणी हैं। आसानीसे प्रलो-

भनोंके शिकार हो जाते हैं। हमसे अनेक भूलें हुई हैं। कई तो आज ही प्रकट हुईं।........स्थानीय कार्यकर्त्ताओंने हमारे लिए मोटर भरकर सूरतसे दूध मँगवाया था और अन्य अनुचित खर्च किया था। अतः मैंने तीव्र शब्दोंमें उनकी भर्त्सना की। परन्तु इससे मेरा दुःख शान्त नहीं हुआ। उलटा ज्यों-ज्यों मैं उस भूलपर विचार करता हूँ, त्यों-त्यों दुःख बढ़ता ही है।

"इन बातोंके मालूम होनेपर मुझे लगता है कि मुझे वाइसराय साहबको वह पत्र लिखनेका क्या हक था, जिसमें हमारी औसत आयसे पाँच हजार गुना वेतन लेनेकी कड़ी आलोचना की गयी थी?..........मुझे विरोधका हक किस हालतमें है? अवश्य ही उस हालतमें नहीं, जब कि मैं स्वयं जनतापर अनुचित भार डाल रहा हूँ।"

"मैं विरोध तभी कर सकता हूँ जब मेरा रहन-सहन जनताकी औसत आयसे कुछ तो साम्य रखता हो। हम यह कूच परमेश्वरके नामपर कर रहे हैं। हम अपने कार्यमें नंगे, भूखे और बेकार लोगोंकी भलाईकी दुहाई देते हैं। यदि हम देशवासियोंकी औसत आय अर्थात् ७ पैसे रोजसे पचास गुना खर्च अपनेपर करा रहे हैं, तो हमें वाइसरायके वेतनकी टीका करनेका कोई अधिकार नहीं है। मैंने कार्यकर्त्ताओंसे खर्चका हिसाब और अन्य विगत माँगी है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि हममें प्रत्येक ७ पैसेका पचास गुना खर्च अपने ऊपर कर रहा हो। और होगा भी क्या, जब वे कहीं-न-कहींसे मेरे लिए बढ़िया-से-बढ़िया सन्तरे और अंगूर लायेंगे, १ दर्जन सन्तरोंके स्थानपर १० दर्जन पहुँचायेंगे और आधा सेर दूधकी जरूरत होगी तो डेढ़ सेर ला धरेंगे? आपका जी दुखानेके भयका बहाना लेकर आपके परोसे हुए भोजनको याद हम खा लेंगे, तो भी वही परिणाम होगा।"........

"........गरीब देशमें बढ़िया भोजन करना चोरी करके खाना नहीं तो और क्या है? चोरीका माल खाकर यह लड़ाई कभी नहीं जीती जा सकती। मैंने यह कूच हैसियतसे ज्यादा खर्च करनेके लिए शुरू भी नहीं की थी।.....मुझे

आशा है, आप मेरे सन्देशकी मुख्य बातको समझते हैं; यदि वह न समझी तो प्रस्तुत प्रयत्नसे स्वराज्य पानेकी आशा छोड़ देनी चाहिए। हमें करोड़ों मूक मनुष्योंके सच्चे अमानतदार बनना चाहिए।*

सरकारकी चिन्ता

इससे स्पष्ट है कि गांधीजीकी यह लड़ाई एक नैतिक और आध्यात्मिक लड़ाई थी, जिसके प्रमुख शस्त्र थे—सत्य और अहिंसा। गांधीजीके बढ़ावके साथ-साथ उनके इस नैतिक आन्दोलनका प्रभाव और सन्देश भारतके कोने-कोने और घर-घरमें फैल गया। प्रारम्भमें सरकारने इस अभियानको डाक्टर बेसेण्टकी भाँति एक नकली लड़ाई समझकर बड़ी उपेक्षा-सी दिखलायी थी और ऐसा भाव जाहिर किया था, मानो इससे उसका कुछ बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। किन्तु अभियानके व्यापक और उत्तेजक प्रभावको देखकर एक ही सप्ताहके भीतर सरकारके होश-हवास गुम हो गये। सरकार सोचमें पड़ गयी कि किस तरह गांधीजीके इस महाप्रयाणको निष्फल बनाया जाय। इसी सोचमें कई दिन बीत गये और तबतक गांधीजी भी अपने लक्ष्यपर जा पहुँचे।

डाण्डीपर आक्रमण

५ अप्रैलको गांधीजी अपने इच्छित स्थान डाण्डी पहुँचे। भारतके लोगों-को आश्चर्य हो रहा था कि वाइसरायने गांधीजीको रस्तेमें ही क्यों न पकड़ लिया। क्यों गांधीजीको इस प्रकार बे-रोक-टोक बढ़ने दिया गया? और इसी प्रकारका आश्चर्य स्वयं गांधीजीको भी हो रहा था। वे सोच रहे थे कि क्या सरकारका हृदय-परिवर्तन हो गया है? पर यह कैसे सम्भव है जबकि सरकारने कुछ ही दिन पहिले बड़े भद्दे ढंगसे, अकारण ही लड़कपनके साथ वल्लभभाई

---

*—वही—पृष्ठ ३७६-३७७

और श्रीसेनगुप्तको पकड़कर जेलमें ठूँस दिया है। अतः गांधीजीने सोचा कि उनके साथ तटस्थता बरतनेका कारण सम्भवतया सरकारका लोकमतसे भयभीत होना ही है। असोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे उन्होंने इस प्रश्नको स्पष्ट करते हुए कहा भी था—

"मैं तो इस तटस्थताका यही अर्थ लगा लगा सकता हूँ कि बलवती होते हुए भी ब्रिटिश-सरकार संसारके लोकमतसे डरती है। लोकमत राजनैतिक आन्दोलनका दमन सहन नहीं कर सकता, फिर चाहे वह कितना ही उग्र क्यों न हो और उग्र तो सविनय अवज्ञा निःसन्देह है ही—जबतक वह सविनय अर्थात् अहिंसात्मक है।"

५ तारीखको गांधीजीने यह भी ऐलान कर दिया कि ६ अप्रैलको ६॥ बजे सुबह वे अपने साथी स्वयं-सेवकोंके साथ सविनय-अवज्ञा आरम्भ कर देंगे। यह वही दिन था, जिस दिन जालियाँवाला-हत्याकाण्ड हुआ था और गांधीजीने वह दिन जान-बूझकर इसलिए चुना था कि वह दिन "तभीसे...... हमारे लिए प्रायश्चित्त और आत्म-शुद्धिका दिन हो गया है।"

अतः ६ अप्रैलको ६॥ बजे प्रार्थनाके पश्चात् गांधीजी और उनके साथियोंने, जिनमें श्रीमती सरोजिनी देवी भी शामिल थीं, समुद्र-तटके नमकपर आक्रमण कर, नमक-क़ानूनको भंग कर डाला। सत्याग्रह इस प्रकार विधिपूर्वक प्रारम्भ हो गया और उसके साथ सविनय-अवज्ञाके युद्धकी घोषणा करते हुए गांधीजीने देशको आदेश दिया, "नमक-क़ानून भंग हो गया है। अब जो कोई सजा भुगतनेको तैयार हो, वह जहाँ चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है। मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्त्ता नमक बनावें। जहाँ उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो, वहाँ उसे काममें भी लावें और ग्राम-वासियोंको भी सिखा दें, परन्तु उन्हें यह अवश्य जता दें कि नमक बनानेमें सजा होनेकी जोखिम है, या यों कहो कि गाँववालोंको पूरी तरह समझा दिया जाय कि

नमक-करका भार किन-किनपर कितना पड़ता है, और इसके कानूनको किस प्रकार तोड़ा जाय जिससे नमक-कर उठ जाय।"

पहिलेसे ही गांधीजीकी आज्ञा पानेके लिए अधीर देश सेनापतिके बिगुल बजाते ही एकदम सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनमें कूद पड़ा। सबसे पहला प्रान्त, जो सामूहिक अवज्ञामें सबसे तेजीके साथ अग्रसर हुआ, सेनापतिका ही प्रान्त गुजरात था। इसके साथ-साथ सम्पूर्ण देशमें ही एक छोरसे दूसरे छोर तक आन्दोलनकी ज्वाला तीव्र गतिसे भड़क उठी। कराची, पूना, पटना, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास और शोलापुर आदि देशके सभी बड़े-बडे नगरोंमें हजारों और लाखोंकी संख्यामें लोगोंने नमक कानूनको भंग किया।

सरकार तबतक अपना धैर्य बिलकुल ही खो बैठी थी। जनताके विद्रोहको दबानेके लिए उसने फिर दमनका दौर शुरू किया। २३ अप्रैलको बगाल आर्डिनेन्स जारी कर दिया गया। २७ अप्रैलको वाइसरायने कुछ संशोधनके साथ १९१० के प्रेस-ऐक्टको फिरसे जीवित कर दिया। इस प्रकार भारतीयोंके साथ निरंकुशताका व्यवहार होने लगा। पुलिस और फौजकी गोलियोंसे देश-भक्त भारतीयोंकी छाती छेदी जाने लगी। किन्तु देशपर निछावर होनेवाले परवानोंको जलने और मरनेका भय ही कहाँ था? असंख्य संख्यामें लोग गिरफ्तार किये जाने लगे, १४ अप्रैलको पं० जवाहरलाल नेहरू भी पकड़ लिये गये। सरकार अपने पशुबलसे, गोली और तलवारसे गांधी द्वारा मन्त्र-मुग्ध और जागृत किये गये भारतको दबानेमें असमर्थ थी। भारतीयोंके हृदयसे भय, आतुरता और स्वार्थको निकालकर गांधीजीने उनमें साहस, धैर्य और त्यागको भर दिया था। लोग अपने स्वातंत्र्य और अधिकारके लिए मर सकते थे, मिट सकते थे; परन्तु झुकनेको तैयार न थे। इस बदली हुई अवस्थाकी ओर संकेत करते हुए गांधीजीने कहा था—

"हमें अनुभव होता हो या न होता हो, कुछ दिनसे हमपर एक प्रकारसे फौजी शासन हो रहा है। फौजी शासन आखिर है क्या? यही कि सैनिक

अफसरकी मर्जी ही कानून बन जाती है। फिलहाल वाइसराय वैसा अफसर है और जहाँ चाहे साधारण कानूनको बालाय-ताक रखकर विशेष आज्ञाएँ लाद देता है, और जनता बेचारीमें उनके विरोध करनेका दम नहीं होता। पर मैं आशा करता हूँ कि वे दिन जाते रहे जबकि अंग्रेज शासकोंके फरमानोंके आगे हम चुपचाप सिर झुका देते थे।"

गांधीजीकी यह आशा अक्षरशः देशने पूरी करके दिखलायी। लोग सर्वत्र बिना संकोच और डरके सविनय अवज्ञा-आन्दोलनमें पूरे उत्साह और निष्ठाके साथ भाग लेने लगे। इस आन्दोलनमें पुरुषोंके अतिरिक्त स्त्रियाँ भी समान उत्साहके साथ रण-क्षेत्रमें उतर आयीं। इस आन्दोलनकी यह एक विशेषता थी। किन्तु स्त्रियोंको गांधीजीने यह सलाह दी कि वे रचनात्मक कार्य—जैसे सूतके कातनेपर अधिक ध्यान और समय दें और "जबतक सरकारकी कृपा पुरुषों तक ही सीमित रहती है तबतक पुरुषोंको ही लड़ना चाहिए। जब सरकार सीमोल्लंघन करेगी तब भले ही स्त्रियाँ जी खोलकर लड़ें। कोई यह न कहे कि 'चूँकि हम जानते थे कि स्त्रियाँ कितनी भी आगे बढ़कर कानून-भंग करें, उनपर कोई हाथ न डालेगा, इसलिए पुरुषोंने स्त्रियोंकी आड़ ली। 'मैंने स्त्रियोंके लिए जो कार्यक्रम पेश किया है, उसमें उनके लिए बहुत काम है। वे जितना सामर्थ्य हो, साहस दिखावें और जोखिम उठावें।"

गांधीजी गिरफ्तार

गांधीजीके नेतृत्वमें इस प्रकार नमक-कर-भंगके आन्दोलनको तीव्रतासे बढ़ता देखकर सरकारसे उनका मुक्त रहना न सहा गया। इसी समय गांधीजीने मद्य-निषेधके लिए गाँवोंमें ताड़ीके पेड़ोंको काटनेका भी लोगोंको आदेश दिया और खुद अपने हाथोंसे उसकी शुरूआत भी कर दिखलायी। ४ मईको गांधीजीने वाइसरायको दूसरा पत्र लिखकर आगेके धावेकी सूचना भेजी। यह धावा सूरत जिलेके धरसाना गाँवके नमक-भंडार पर होनेको था। गांधीजीने अपने पत्रमें

ाष्ट लिख दिया कि सरकार यदि इस धावेको रोकना चाहती है, तो या तो वह
मक-कर उठा दे या उन्हें और उनके साथियोंको गिरफ्तार कर ले, यद्यपि इस
ापायसे सरकारको कोई सफलता नहीं प्राप्त हो सकती।

अपने इस पत्रमें गांधीजीने सरकारकी असभ्य दमन-नीतिकी कड़ी आलो-
ाना करते हुए यह भी लिखा था—"मुझे आशा थी कि सत्याग्रहियोंके साथ
रकार सभ्य तरीकेसे लड़ेगी। यदि उनके विरुद्ध साधारण कानूनके प्रयोग करके
ारकार सन्तोषकर लेती, तो मैं कह ही क्या सकता था? इसके बजाय जहाँ प्रसिद्ध
ाताओंके साथ सरकारने बहुत बड़ा जाब्ता बरता भी है, वहाँ साधारण सैनिकोंपर
ाशविक ही नहीं, निर्लज्ज प्रहार भी किये गये हैं। ये घटनाएँ इक्की-दुक्की
ातीं, तो उपेक्षा भी कर दी जाती। परन्तु मेरे पास बंगाल, बिहार, उत्कल,
ायुक्त-प्रान्त, दिल्ली और बम्बईसे जो संवाद आये हैं, उनसे गुजरातके अनुभवका
ामर्थन होता है। करांची, पेशावर और मद्रासके गोली-काण्ड भी अकारण
्वं अनावश्यक प्रतीत होते हैं। हड्डियाँ चूर-चूर करके और अण्डकोष दबा-
ाबाकर स्वयंसेवकोंसे वह नमक छीननेका प्रयत्न किया गया है जो सरकारके लिए
ोकम्मा था। हाँ, स्वयंसेवकोंके लिए अलबत्ता वह बेशकीमती था।"

आगे दमनके कुपरिणाम और कुफलपर प्रकाश डालते हुए गांधीजीने
ातलाया—

"सत्याग्रह-शास्त्रके अनुसार शासनाधिकारी जितना अधिक दमन और
ानूनका उल्लंघन करेंगे, सत्याग्रही उतने ही अधिक कष्टोंको आमन्त्रण देंगे।
ामन यदि स्वेच्छापूर्वक सहन किया जाय, तो जितना अधिक कष्ट सहन उतनी
ी अधिक सफलता होती है।

लेकिन यदि सरकार अपने कुमार्गसे हटकर भारतीयोंकी उचित माँगको
वीकार कर ले, तो गांधीजीने लिखा था—'हाँ, मैं आगेकी कार्यवाही स्थगित
ख सकता हूँ—आप नमक-कर उठा दीजिये।' किन्तु यदि ऐसा नहीं किया
ाया, तो गांधीजीने पत्रके अन्तमें ललकारते हुए घोषित कर दिया था कि वे

इच्छा न होते हुए भी—जैसा कि वे कह चुके हैं—धरसानापर धावा बोल देंगे।

सरकार गांधीजीके इस धावेकी चुनौतीसे बिलकुल घबरा उठी थी। दुर्योधनको कृष्णकी सत्य किन्तु कठोर बातें कल्याणकारी होते हुए भी अप्रिय लगी थीं और उसने शान्तिका मार्ग नापसन्द करके युद्धका ही मार्ग अपनाया था। गांधीजीकी बातें भी वाइसरायको वैसी ही लगीं और उसने भी युद्धका ही मार्ग उचित समझा। फलतः सरकारने बिना देखे-समझे एकदम ४ मईकी रातको १ बजकर १० मिनटपर कराड़ीमें गांधीजीको गिरफ्तार करके यरवदा-जेलमें बन्द कर दिया। दुर्विनीति सरकारकी इस इच्छाको गांधीजी खूब जानते थे। वे समझते थे कि सरकार नमक-कर उठानेके बजाय उनको गिरफ्तार करना ही अधिक पसन्द करेगी। अतः गिरफ्तार होनेसे पहले गांधीजीने डाण्डीमें ही अपना सन्देश लिखवा दिया था। सन्देशमें गांधजीने देशके लिए कहा था—

"यदि इस शुभारम्भको अन्त तक निभा लिया गया, तो पूर्ण-स्वराज्य मिले बिना नहीं रह सकता। फिर भारतवर्ष समस्त संसारके सम्मुख जो आदर्श उपस्थित करेगा, वह उसके योग्य ही होगा। त्यागके बिना मिला हुआ स्वराज्य टिक नहीं सकता। अतः सम्भव है, जनताको असीम बलिदान भी करना पड़े। सच्चे बलिदानमें एक ही पक्षको कष्ट झेलने पड़ते हैं, अर्थात् बिना मारे मरना पड़ता है। परमात्मा करे भारत इस आदर्शको पूरा कर दिखावे! सम्प्रति भारतका स्वाभिमान और सर्वस्व एक मुट्ठी नमकमें निहित है। मुट्ठी टूट भले ही जाय, पर खुलनी हरगिज नहीं चाहिए।······

"मेरी गिरफ्तारीके बाद जनता या मेरे साथियोंको घबराना नहीं चाहिए। इस आन्दोलनका संचालक मैं नहीं, परमात्मा है......।"

सरकारने सोचा था कि गांधीजीको गिरफ्तारकर वह आन्दोलनको नेता-विहीन करके दबा देनेमें सफल हो सकेगी। किन्तु सरकारकी यह दुरिच्छा सफल न हो सकी। गांधीजी गिरफ्तार हो गये, लेकिन उनका संदेश भारतके गगनमें व्याप्त रहकर और थलमें स्वतंत्रतापूर्वक बद्धमूल हो जानेसे जनताको उत्साह

और बल देता रहा। अतः गांधीजीके शरीरको चहारदीवारीमें बन्द करनेसे सरकार कोई फायदा न उठा सकी। इस अवसरपर सरोजिनी देवीने कितना सुन्दर कहा था—"गांधीजीके कृश शरीरको दीवारों और लोहेके सीखचोंमें बन्द करनेसे क्या होता है? यह तो बहुत छोटी-सी बात है। गांधीजी और उनका सन्देश, ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। उनका सन्देश आज राष्ट्रकी जीती-जागती धरोहर बन गया है। संसारकी यह निरंकुशतम सरकार कुछ भी कहती रहे, गांधीजीका सन्देश युग-युगान्तरमें भी संसारके विचारों एवं कार्योंको प्रभावित करता रहेगा।"*

जो आग गांधीजीके डांडी-अभियानने सुलगायी थी, वह गांधीजीकी गिरफ्तारीसे भयंकर रूपमें भड़क उठी। देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक गांधीजीकी गिरफ्तारीपर जनताने हड़तालें कर सरकारके प्रति अपना रोष प्रकट किया। बहुत-से सरकारी नौकर और कर्मचारियोंने रोष और क्षोभमें सरकारी पदोंसे इस्तीफे दे दिये। बम्बई, कलकत्ते और पूनामें बहुत ही व्यापक हड़तालें हुईं और गांधीजीकी गिरफ्तारीके प्रति रोष दिखानेके लिए विराट जुलूस निकाले गये। शोलापुरमें तो भीड़ और पुलिसमें संघर्ष तक हो गया। वहाँकी भीड़ने उत्तेजित होकर शोलापुरकी ६ पुलिस चौकियाँ जला दीं, जिसके फलस्वरूप पुलिसने गोलियाँ चलायीं, जिसमें २५ व्यक्ति मरे और लगभग २०० घायल हुए।

भारत ही नहीं, विदेशोंमें रहनेवाले भारतीयोंने भी गांधीजीकी गिरफ्तारीपर रोष और क्षोभ प्रकट किया। पनामा और सुमात्रा आदिमें रहनेवाले भारतीयोंने हड़तालें मनायीं और वाइसराय तथा कॉंग्रेसको तार भेजकर गांधीजीकी गिरफ्तारीपर खेद प्रकट किया।

कॉंग्रेसका निश्चय

गांधीजीकी गिरफ्तारीके बाद इलाहबादमें कॉंग्रेस-कार्य-समितिकी बैठक

*—वही—पृष्ठ ३८४-३८५

हुई। इस समितिने हर्ष प्रकट किया कि गांधीजीने आन्दोलन चलाकर उन्हें स्वराज्य पानेका मार्ग दिखला दिया है। अतः समितिने आदेश दिया कि सम्पूर्ण देशके नर-नारी—विद्यार्थी, वकील, व्यवसायी, मजदूर, किसान, सरकारी नौकर, अदि स्वातंत्र्य-संग्रामकी सफलताके लिए और स्वराज्यके ध्येयको पानेके लिए प्राणोंकी बाजी लगाकर विराट प्रयत्न करें।

देशने सचमुच ही गांधीजीके संदेश एवं कार्य समितिके आदेशका अक्षरशः पालन करते हुए जीवन और प्राणोंको ध्येय-सिद्धिके लिए आन्दोलनमें झोंक दिया था।

गांधीजीने धरसानापर आक्रमण करनेका ऐलान किया था; किन्तु उपाक्रमणसे पूर्व ही वे गिरफ्तार कर लिये गये थे। अतः यह काम अब उनके आन्दोलनके उत्तराधिकारी श्रीअब्बासतैयबजीने हाथमें लिया। पुलिसने तुरन्त उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया। लेकिन स्वयंसेवक-दल नमकके भण्डारपर आक्रमण करते ही रहे। पुलिसकी लाठियाँ उन्हें न रोक पायीं। पश्चात् श्रीमती सरोजनी देवीने धरसाना के नमक-आक्रमणका संचालन किया। वे गिरफ्तार कर ली गयीं; लेकिन बादमें छोड़ दी गयीं। फिर इमाम साहबके नेतृत्वमें २१ मईको २,५०० आक्रमणकारियोंने धरसानापर आक्रमण किया। पुलिसने लाठियाँ चलायीं जिसके फलस्वरूप १ मरा और २९० घायल हुए।

धरसानाकी भाँति १९ मईसे वड़ालाके नमक-भंडारपर भी आक्रमण होने लगे। तब पुलिस बन्दूक लेकर मुकाबलेको पहुँची। ४०० सत्याग्रही पकड़ लिये गये। इसके बाद २२ मई, २५ मई और १ जूनको फिर वड़ालापर सैकड़ोंकी संख्यामें सत्याग्रहियोंने नमक-भंडारपर धावा किये। पुलिस और फौजका भयंकर दमन सत्याग्रहियोंके आत्मबल, जोश और उत्साहको रोक न पाया। पुलिस और फौजके प्रहारोंको सहते हुए वे अपने कार्यमें जुटे ही रहे। जब प्राणोंकी ही बाजी लगा दी, तब डरनेका काम ही क्या था?

धन्य थे वे सत्याग्रही वीर, जो गांधीजीके संदेशको हृदयमें रखकर और प्राणों

का मोह त्यागकर पुलिस और फौजके अत्याचारोंको चुपचाप सहन करते हुए अपने सत्य-पथपर डटे ही रहे। धरसानाके आक्रमणके दृश्यका जिक्र करते हुए बम्बईकी अदालत खफ़ीफ़ाके भूतपूर्व न्यायाधीश श्रीहुसेन, श्री के० नटराजन और भारत सेवक समितिके अध्यक्ष श्रीदेवधरने अपने वक्तव्यमें कहा था—

"हमने अपनी आँखों देखा कि सत्याग्रहियोंको नमककी सीमाके बाहर भगा देनेके बाद भी यूरोपियन सवार हाथोंमें लाठियाँ लिये हुए अपने घोड़े सरपट दौड़ाते और जहाँ सत्याग्रही धावेके लिए पहुँच गये थे, वहाँसे गाँव तक लोगोंको मारते रहे। गाँवके रास्तोंपर भी खूब तेजीसे घोड़े दौड़ाकर स्त्री-पुरुष और बच्चोंको तितर-बितर किया। ग्रामवासी दौड़-दौड़कर गलियों और घरोंमें छिप गये। संयोगवश कोई न भाग सका तो उसपर लाठियाँ पड़ीं।"

'न्यू फ्रीमैन' के संवाददाता बेब मिलरने धरसानाके दमनपर प्रकाश डालते हुए लिखा था—

"मैं २२ देशोंमें १८ वर्षसे संवाददाताका काम कर रहा हूँ। इस अर्सेमें मैंने असंख्य उपद्रव, मारपीट और विद्रोह देखे हैं, किन्तु धरसानाके-से पीड़ाजनक दृश्य मेरे देखनेमें कभी नहीं आये। कभी-कभी तो इतने दुःखद हो जाते थे कि क्षण-भरके लिए आँख फेर लेनी पड़ती थी, स्वयंसेवकोंका अनुशासन अद्भुत चीज थी। मालूम होता था, लोगोंने गांधीजीके अहिंसा-धर्मको घोलकर पी लिया है।"*

इस सब दमनके होते हुए भी देश रुकनेका नाम न लेता था। नमकपर धावेके साथ विदेशी वस्त्र और मालका भयंकर रूपसे बहिष्कार भी प्रारम्भ किया गया। देशके युवा और पुरुष ही नहीं, बल्कि स्त्रियोंने भी इन आन्दोलनोंमें अभूतपूर्व वीरता और उत्साहके साथ भाग लिया। प्रयागमें हुई काँग्रेस-कार्यसमितिने स्त्रियोंको उनके वीरताके कार्योंके लिए बधाई दी। जनता द्वारा सरकार-

---

*—वही—पृष्ठ ३८९

के जुल्मोंको वीरतापूर्वक सहन करनेपर भी कार्य-समितिने हर्ष प्रकट करते हुए बधाई दी थी। और सरकारको चेताते हुए घोषित किया था—"चाहे सरकारकी ओरसे कितनी भी यातनाएँ बरसायी जायँ, भारतवासियोंने स्वतन्त्रताकी लड़ाईको आखिरी दम तक जारी रखनेका निश्चय कर लिया है।" समितिने लड़ाईको सफल बनानेकी दृष्टिसे विद्यार्थियोंको भी पूर्ण रूपसे राष्ट्रीय संग्राममें भाग लेनेका आदेश दिया था।

देशने इन सब आदेशोंका पूर्ण रूपसे पालन किया। दूसरी ओर सरकारने भी आन्दोलनको बढ़ता देखकर दमनको और जोरदार कर दिया। काँग्रेस-महासमितिको तो सरकारने गैर-कानूनी ही घोषित कर डाला। ३० जूनको पं० मोतीलालको गिरफ्तार करके उन्हें छः महीनेके लिए जेलमें ठूँस दिया।

किन्तु स्वतंत्रताके दीवानोंको कोई भी दमन रंचमात्र भी रोकनेमें समर्थ न हो सका। पेशावरका अप्रैल और जुलाई का गोली-कांड*, शोलापुरका फौजी शासन, बम्बई और मद्रासके दारुण लाठी-चार्ज, सीमाप्रान्त, पंजाब†, बिहार, बंगाल और दक्षिणके विभिन्न प्रान्तोंमें बरसायी गयी पुलिसकी लाठियोंकी मार

*—सीमाप्रान्त खान अब्दुलगफ्फारखाँके नेतृत्वमें पूरी तरहसे संग्राममें जूझ गया था। पठान वीर रमणियाँ भी बुर्का फेंककर संग्राममें कूद पड़ी थीं। इस विशाल आन्दोलनको दबानेके लिए सरकारने १५ जुलाईको वीर गढ़वाली सिपाहियोंको गोली चलानेका आदेश दिया था, किन्तु सच्चे वीर निर्बल और निहत्थोंपर कैसे गोली चलाते? चन्द्रसिंह गढ़वालीके नेतृत्वमें गढ़वालके वीर और देशभक्त सिपाहियोंने गोली चलानेसे इन्कार कर दिया और लम्बी-लम्बी सजाएँ स्वीकार कीं।

† ३१ दिसम्बर, १९३० को स्वाधीनताके वार्षिकोत्सव-जुलूसमें भाग लेनेपर सुभाष बाबूको पुलिसने बुरी तरहसे पीटा था।

एवं फौजकी गोलियोंकी बौछार देशके युवक और युवतियोंको‡ अपने मार्गसे विचलित नहीं कर सकीं।

शिरपर कफन बाँधकर संग्राममें उतरे हुए वीर और वीरांगनाओंको कौन हिला सकता था? कौन लक्ष्य-विमुख कर सकता था? हाँ, सरकार उन्हें अपनी लाठियों और तमचोंसे तोड़ जरूर सकती थी, मोड़ नहीं। किन्तु कितना और कबतक? सम्पूर्ण देशके नर-नारियोंको अपनी नृशंस गोलियोंका शिकार बनानेका सरकार हौसला न दिखा सकती थी¶। सरकार सोचमें पड़ गयी कि करे तो क्या? और देशके नर-नारी? उन्हें क्या सोच हो सकता था?—वे तो अपने प्राणोंकी बाजी लगा ही चुके थे, उनके सामने केवल एक ध्येय था तथा उसपर मर मिटनेका सकल्प, उत्साह और साहस।

---

‡—पुरुष और युवकोंके अलावा युवतियों और स्त्रियोंपर जैसे जुल्म ढाये गये, उसका अन्दाज बोरसदकी रोमांचकारी घटनासे लग सकता है। २१ जनवरी १९३१ को बोरसदमें एक जलूस निकलनेवाला था। पुलिस प्रदर्शनको रोकनेका निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियोंने जुलूसवालोंको पानी पिलानेके लिए भिन्न-भिन्न स्थानोंपर पानीके बड़े-बड़े बर्तन रख छोड़े थे। पुलिसने पहिले इन बर्तनोंको ही तोड़ा। फिर स्त्रियोंको बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियाँ गिर गयीं तो पुलिसवाले उनके सीनोंको बूटोंसे कुचलते चले गये। पुलिसके गुंडेपनका कदाचित् यह नीचतम रूप था (काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ ४०८)।

¶—देशके विभिन्न शहरोंमें कहाँ-कहाँ गोलियाँ चलीं और कितने घायल हुए तथा कितने मारे गये, इसकी तालिका सरकारकी तरफसे श्री० एस० सी० मित्रके प्रश्नका उत्तर देते हुए हेगसाहबने १४ जुलाई, १९३० को लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें पेश की थी।

गांधीजीकी इस आँधीमें सचमुच सरकार डगमगा गयी थी। वह घबरा उठी थी।

यह तालिका लेजिस्लेटिव असेम्बलीकी बहस पृष्ठ २३७, सोमवार, जुलाई १९३० जिल्द ४, अंक ६ में दी हुई है। पूरा विवरण देखने और समझनेके लिए इस तालिकाको पाठक स्वयं देख सकते हैं।

अध्याय—१५

समझौता

गांधीजीकी गिरफ्तारीसे आन्दोलनकी आग रोज-ब-रोज फैलती और उग्रतर ही होती जाती थी। तेजबहादुर सप्रू और जयकर ऐसे नरम-दली नेता तथा तटस्थ मि० स्लोकाम्ब और वेल्सफोर्ड-जैसे निष्पक्ष अंग्रेज भी किसी तरह इस अग्निको शांत देखना चाहते थे। वे चाहते थे कि किसी प्रकार देशके एक-मात्र नेता गांधीजीसे कोई सम्मानपूर्ण समझौता हो जाय और कॉंग्रेस भी उस गोलमेज-परिषद्में शामिल हो सके, जिसे ब्रिटिश-सरकार नवम्बरमें इंग्लैंडमें बुलाने जा रही थी। स्लोकाम्बने बड़े प्रयत्नसे १९ और २० मई १९३० को गांधीजीसे यरवदा जेलमें भेंट की। इस मुलाकातके पश्चात् स्लोकाम्बने 'डेली हेरल्ड' में, जिसके वे प्रतिनिधि थे, एक लेख भेजा था। इसमें उन्होंने गांधीजीकी उन शर्तोंका जिक्र किया, जिनके आधारपर गांधीजी सत्याग्रहको रोकने और कॉंग्रेसको गोलमेज-परिषद्में शामिल होनेकी राय दे सकते थे। वे शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(१) गोलमेज-परिषद्को ऐसा विधान बनानेका अधिकार भी दिया जाय, जिससे भारतवर्षको स्वाधीनताका सार मिल जाय।

(२) नमक-कर उठा दिया जाय, तथा विदेशी शराब और वस्त्रपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय।

(३) सत्याग्रह बन्द करनेके साथ-साथ राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायँ, आदि।

इन शर्तोंपर टिप्पणी करते हुए मि० स्लोकाम्बने सरकारको संबोधित करते

हुए अपने लेखमें स्पष्ट तौरपर पूछा था कि क्या वह गांधीजीसे सम्मानपूर्वक समझौता करनेको तयार हैं या नहीं ? उन्होंने जोर देकर कहा—"समझौतेकी बातचीत अब भी हो सकती है। गांधीजीसे दो बार मिलनेके बाद मुझे यकीन हो गया है कि मेल करनेसे ही मेल होगा और एक पक्षकी हिंसा दूसरेको झुकनेपर मजबूर नहीं कर सकती। गांधीजी जेलमें क्या बन्द हैं, भारतकी आत्मा बन्द है। यह स्पष्ट स्वीकार कर लेनेसे अब भी असीम हानि टाली जा सकती है।"

किन्तु दम्भी ब्रिटिश-सरकारको लगा कि वह किस प्रकार अपने दबाये हुए गुलामोंके साथ अथवा उनके प्रतिनिधि गांधीजीके साथ बराबरीके स्तरपर आकर मेल-मिलापकी नीति बर्ते और एक गुलाम तथा विद्रोहीकी माँग और शर्तोंपर चले। ऐसा पहिले कभी न हुआ था कि किसी भारतीयने अपने प्रभु अंग्रेजके सामने इस प्रकार शर्तें और माँगें पेश की हों। अतः गांधीजीकी शर्त और माँग जानकर ब्रिटेन क्रोधसे बौखला उठा। उन्हें मंजूर करनेमें उसे अपना अपमान मालूम दिया। किन्तु जमाना बदल चुका था, इसलिए गांधीजीकी शर्तोंका पुराने समयकी तरह बिलकुल उपेक्षा करना सरकारके लिए सम्भव न था।

दोनों पक्ष—काँग्रेस और सरकार, अपने-अपने इरादोंपर दृढ़ बने थे कि गोलमेज-परिषद्में भारतको स्वतंत्रताका सार (औपनिवेशिक-स्वराज्य) दिया जायगा। इस वायदे के बिना काँग्रेस उसमें शामिल होनेको तैयार न होती थी, और दूसरी ओर सरकार इस प्रकारका कोई वचन न देना चाहती थी। अतः ऐसी स्थितिमें समझौता होता तो कैसे !

फिर भी श्रीसप्रू और जयकरने सरकार और गांधीजीमें समझौता करानेका यत्न जारी ही रखा। ये दोनों सज्जन वाइसरायकी आज्ञासे २३ और २४ जुलाई, १९३० को यरवदा जेलमें गांधीजीसे मिले। गांधीजीने इनसे भी उन्हीं शर्तोंका जिक्र किया, जिनका जिक्र वे स्लोकाम्बसे कर चुके थे। गांधीजीने दोनों सज्जनोंसे नैनी जेलमें पं० मोतीलाल और पं० जवाहरलाल नेहरूसे मिलनेको भी कहा।

तदनुसार दोनों व्यक्ति वहाँ जाकर उनसे मिले, किन्तु कोई फल न निकला। अन्तमें दोनोंके प्रयत्नसे यरवदा जेलमें गांधीजी, दोनों नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डा० सैयद महमूद, श्रीजयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडूका १४, १५ अगस्तको एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलनने वे ही शर्तें पेश कीं, जो पहिले गांधीजी स्लोकाम्बसे कह चुके थे। इन शर्तोंमें अब "ब्रिटिश साम्राज्यसे भारत-वर्षके पृथक् होनेके हक और अंग्रेजोंके दावों एव उनकी प्राप्त रिआयतोंकी जाँचके लिए कमेटीकी नियुक्तिकी माँग शामिल कर दी गयी थी।"*

वाइसरायने इन शर्तोंपर कोई ध्यान न दिया। ३१ अगस्त १९३० के पत्रमें वाइसरायने गांधीजीको स्पष्ट जाहिर कर दिया कि वे प्रारम्भिक 'मुख्य बातों-पर विचार करना भी गैर-मुमकिन समझते हैं।' इस पत्रसे अब यह समझना कठिन न था कि सरकार शांति और समझौता चाहती ही नहीं है।

प्रथम गोलमेज-परिषद्

फलतः सरकार अपनी निरंकुश नीतिपर डटी ही रही। काँग्रेसकी उपेक्षा कर ब्रिटिश-सरकारने अपनी इच्छाका अनुसरण कर, १२ नवम्बर, १९३० का अपर हाउसकी शाही गैलरीमें गोलमेज-परिषद्का उद्घाटन भी कर दिया। यह परिषद् १९ जनवरीको समाप्त हुई। इस परिषद्में काँग्रेसको छोड़कर ब्रिटिश भारतकी तरफसे ५७ प्रतिनिधि और स्टेटोंकी तरफसे १६ प्रतिनिधि शामिल हुए थे। किन्तु भारतका सही और सच्चा प्रतिनिधित्व तो एकमात्र काँग्रेस ही कर सकती थी और वही जब परिषद्में शामिल न थी, तो उसमें भारतके बारेमें कोई निर्णय हो ही कैसे सकता था?

ब्रिटेनकी सरकार और भारतकी सरकार दोनों खूब समझते थे कि बिना काँग्रेसके शामिल हुए गोलमेज-परिषद् केवल एक अभिनय ही कहलायेगी।

---

* काँग्रेसका इतिहास—पृष्ठ ४०९-४१०

अतः वे चाहते थे कि कॉंग्रेस और गांधीजी किसी प्रकार उसमें भाग लें। इधर भारतमें भी आन्दोलनके कारण सरकारकी स्थिति बहुत संकटमय हो रही थी। भारत सरकार इस स्थितिसे ऊब गयी थी और अब समझौतेके लिए उत्सुक हो रही थी।

अतः सरकारने इस बार भी सप्रू और जयकरकी प्रेरणापर २५ जनवरी, १९३१ को गांधीजी, उनके १९ साथियों और कॉंग्रेस-कार्य-समितिके सदस्योंको बिना शर्त रिहा कर दिया और समितिको गैर-कानूनी घोषित करनेवाला एलान भी वापिस ले लिया, ताकि कॉंग्रेसके नेता बिना किसी प्रतिबन्धके जो सभाएँ करना चाहें, कर सकें। वाइसराय शांतिके लिए तड़प रहे थे, इसीलिए यह महत्वपूर्ण निर्णय किया गया था। वाइसरायने अपने वक्तव्यमें कहा था—"मेरी सरकार इन रिहाइयोंपर कोई शर्त नहीं लगायेगी, क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि शांतिपूर्ण स्थिति पुनः स्थापित करनेकी अधिक-से-अधिक आशा इसीमें है कि सम्बन्धित लोग बिना शर्त आजाद होकर बातचीत करें।"*

जेलसे बाहर

जिस समय गांधीजी जेलसे बाहर आये, 'गोलमेज-परिषद्' की चर्चा राजनैतिक क्षेत्रमें सबसे ऊपर थी। बहुत-से कॉंग्रेसके हितैषी उसपर गोलमेजमें शामिल होने और सरकारके साथ सहयोग करनेके लिए जोर डाल रहे थे। प्रधान मंत्रीने गोलमेज-परिषद्के खुले अधिवेशनमें भारतको स्वायत्त-शासनकी ओर ले जानेका वचन देते हुए यह आशा भी प्रकट की थी कि यदि कॉंग्रेस गोलमेजमें शामिल होना चाहेगी, तो वह खुशीसे ऐसा कर सकेगी। सरकारके ऊपर विश्वास करनेवाले कुछ नरम-दलके व्यक्तियोंने सोचा कि संभव है, सरकार जैसा कहती है, वैसा करेगी भी; इसलिए वे कॉंग्रेस और गांधीजीपर गोलमेजमें शामिल होने

---

*—वही—पृष्ठ ४१३-४१४

और प्रधान मंत्रीके वक्तव्यपर विचार करनेके लिए जोर देने लगे। अतः गांधीजी-ने जेलसे निकलते ही भारतीय जनताको निम्न संदेश दिया था :—

"जेलसे मैं अपनी कोई राय बनाकर नहीं निकला हूँ। न तो किसीके प्रति मुझे कोई शत्रुता है और न किसी बातका तास्सुब। मैं तो अध्ययन करने और सर तेजबहादुर सप्रू तथा दूसरे मित्रोंके साथ, जब वे घर लौटकर आयेंगे, हरएक दृष्टिकोणसे सारी परिस्थितिका प्रधान मन्त्रीके अध्ययन करने और वक्तव्यपर विचार करनेके लिए तैयार हूँ। लन्दनसे कुछ प्रतिनिधियोंने तार भेजकर मुझसे ऐसा करनेका आग्रह कियाहै, इसीलिए मैं यह बात कहता हूँ।"

आगे चलकर पत्र-प्रतिनिधियोंसे बातें करते हुए उन्होंने समझौतेकी शर्तो पर प्रकाश डालते हुऐं यह भी प्रकट कर दिया था कि "पिकेटिंगका अधिकार नहीं छोड़ा जा सकता, न लाखों भूखों-मरते हुए लोगों-द्वारा नमक बनानेके अधिकार को ही हम छोड़ सकते हैं।" उन्होंने समझौतेके प्रति उत्कट अभिलाषा प्रकट करते हुए यह भी कहा कि 'मैं शान्तिके लिए तरस रहा हूँ, बशर्त्ते कि इज्जतके साथ ऐसा हो सके।' अतः गांधीजीने स्पष्ट घोषित किया कि "इसलिए गोल-मेज-परिषद् रूपी पेड़का निर्णय मुझे उसके फलसे ही करना चाहिए।"

मोतीलालजीका प्रयाण

गांधीजी जब जेलसे बाहर आये, उस समय पं० मोतीलालजी इलाहाबादमें बहुत सख्त बीमार पडे हुए थे। अतः गांधीजी तथा कार्य-समितिके रिहा हुए सदस्य छूटते ही तुरन्त इलाहाबाद पहुँचे। वहींपर स्वराज्य-भवनमें ३१ जन-वरी और १ फरवरी, १९३१ को कार्य-समितिकी बैठक भी हुई जिसमें इस निश्चय पर जोर दिया गया 'कि जबतक स्पष्टरूपसे आन्दोलनको बन्द करनेकी हिदायत न निकाली जाय, तबतक आन्दोलन बराबर जारी रहेगा।'*

---

*—वही—पृष्ठ ४१२

कार्य-समितिकी बैठक खतम होनेके बाद भी गांधीजी पं० मोतीलालजीकी सख्त बीमारीके कारण इलाहाबादमें ही रुके रहे। इसी समय पं० मोतीलालजीको इलाजके लिए लखनऊ लाया गया। गांधीजी भी उनके साथ-ही-साथ लखनऊ गये। किन्तु देशके दुर्भाग्यसे हर प्रकारका प्रयत्न करनेपर भी पं० मोतीलालजीका स्वास्थ्य न सम्हला और ६ फरवरी, १९३१ को वे इस असार संसारको छोड़कर स्वर्ग सिधार गये। प० मोतीलालजीके अन्तिम शब्द थे–"हिन्दुस्तानकी किस्मतका फैसला स्वराज्य-भवनमें ही कीजिए। मेरी ही मौजूदगीमें फैसला कर लो। मेरी मातृ-भूमिके भाग्य-निर्णयके आखिरी सम्मान-पूर्ण समझौतेमें मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो स्वतंत्र भारतकी गोदमें ही मुझे मरने दो।" पं० मोतीलालजीकी यह आशा यद्यपि उनके अपने जीवनमें अपने ही हाथों पूरी न हो सकी, तथापि वे अपने यशस्वी पुत्र पं० जवाहरलालके रूपमें ऐसी निधि देशको दे गये जिनके द्वारा उन्हींकी नहीं अपितु देश-भरकी आशाएँ पूर्ण होनेको थीं। आनन्द-भवनके दानका जिक्र करते हुए श्रीपट्टाभिने बड़ी ही मार्मिकतासे लिखा है—"कॉंग्रेसको उन्होंने आनन्द-भवनकी जो भेंट दी, वह उनकी देशभक्ति और औदार्यके अनुकूल ही थी। लेकिन दरअसल इसे ही हम राष्ट्रके प्रति उनकी सबसे बड़ी भेंट नहीं कह सकते; उनकी सबसे बड़ी भेंट तो उनकी वह विरासत है, जो अपने पुत्रके रूपमें उन्होंने राष्ट्रको प्रदान की है।"

निःसन्देह त्यागमूर्ति पं० मोतीलालजी महानतम देश-भक्त और लोकोत्तर पुरुष थे। कुलसे, शिक्षासे, धनसे, मनसे और तौर-तरीके वगैरह सभी प्रकारोंसे वे एक शाही तबीअतके आदमी थे। राजनैतिक समस्याओंको दूरन्देशीके साथ समझने और सुलझानेकी उनकी योग्यता असाधारण थी। फलतः देशका राजनैतिक वातावरण जब बड़ी ही सन्दिग्ध अवस्थामें था, उस समय उनका परलोक सिधारना देशके लिए बहुत ही हानिकर हुआ।

पं० मोतीलालजीके निधनपर ७ फरवरीको इलाहाबादसे गांधीजीने यह सन्देश देशको दिया था—

"मोतीलालजीकी मृत्यु हरएक देश-भक्तके लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए। क्योंकि अपना सब कुछ न्यौछावर करके वह मरे हैं, और अन्त समय तक देशका ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीरकी मृत्युसे हमारे अन्दर भी बलिदानकी भावना आनी चाहिए। हममेंसे हरएकको चाहिए कि जिस स्वतन्त्रताके लिए वह उत्सुक थे और जो अब हमारे बहुत नजदीक आ गयी है, उसको प्राप्त करनेके लिए अपना सर्वस्व नहीं, तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।"

समझौतेके प्रयत्न

इसी बीच ६ फरवरी, १९३१ को गोलमेज-परिषद्में गये हुए भारतके प्रतिनिधि लौटकर हिन्दुस्तान आये और आते ही उन्होंने काँग्रेससे अपील की कि वह गोलमेज-परिषद्की योजनाको सफल बनानेके लिए अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की कि वातावरणको ऐसा शान्त कर दिया जायगा, जिसमें इन आवश्यक विषयोंपर भलि-भाँति विचार किया जा सके और राजनैतिक कैदियोंकी रिहाई हो सके।

गांधीजी शान्ति और सुलहकी स्थितिके लिए अपनी तरफसे जैसा कि उन्होंने अपने वक्तव्यों-द्वारा प्रकट किया था तैयार ही नहीं, बल्कि तरस रहे थे। किन्तु दूसरी ओर सरकार नेताओंकी रिहाईके बाद भी दमनको पहिलेकी भाँति ही जारी किये थी। गांधीजीने सरकारके इस व्यवहारकी और पुलिसकी ज्यादतियोंकी कड़ी आलोचना की, और साथ ही १४ फरवरीको वाइसरायको एक छोटा-सा पत्र लिखकर इन विषयोंमें उनसे बातचीत करनेकी इच्छा जाहिर की। वाइसरायने इस पत्रको स्वीकार कर १७ तारीखको गांधीजीसे मिलना स्वीकार किया। इस उत्तरको पानेपर गांधीजी तथा काँग्रेस-कार्य-समितिके सदस्य १६ तारीखको ही दिल्ली चले गये। दिल्लीमें उसी समय कार्य-समितिकी बैठक हुई और एक प्रस्ताव द्वारा गांधीजीको काँग्रेसकी ओरसे सुलह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिये गये।

तारीख १७ फरवरीको ढाई बजे दिनमें गांधीजीने वाइसरायसे मुलाकात की। लगभग साढ़े चार घंटे तक वाइसराय और गांधीजीमें बातें हुईं। यह बातचीत लगातार तीन दिन तक चलती रही।

भारतके प्रतिनिधिका इस प्रकार सरकारके प्रतिनिधिसे मिलना चर्चिल-जैसे कट्टर साम्राज्यवादी और प्रतिगामीको बहुत ही खला। चर्चिलने गांधीजीके प्रति घृणा दिखलाते हुए कहा कि 'एक समयके इनर टेम्पिलके इस वकील और आजके अर्द्ध-नग्न विद्रोही फकीरका इस प्रकार वाइसरायके महलमें सम्राट्के प्रतिनिधिके साथ बराबरीके आधारपर बात करने जानेका दृश्य बहुत ही अपमान-जनक और घृणास्पद है।'

घृणाके ये शब्द गांधीजीके रूपमें पूरे भारत ही के लिए प्रयुक्त किये गये थे। किन्तु अहंकारसे पूर्ण चर्चिलको तब यह न मालूम था कि गांधीजी भारतकी आत्मा हैं, और गांधीजी तथा भारत अविभाज्य हैं। परन्तु दूसरी ओर लार्ड अर्विन इस बातको खूब समझ चुका था कि गांधीजी और भारत एक हैं, इस-लिए उनसे भेंट करके वह वस्तुतः असंतुष्ट भारत और ब्रिटेनके बीच मेल करानेका प्रयत्न कर रहा था।

लार्ड अर्विनकी तरह गांधीजी भी ब्रिटेनके साथ सम्मानपूर्ण समझौता करने-के लिए उत्सुक थे। १७ फरवरीके बाद गांधीजी इसी प्रयोजनसे वाइसरायसे मिलने आने-जाने लगे थे। भेंटके ये दिन देश और कॉंग्रेसके लिए बड़ी ही उत्सुकता और प्रतीक्षाके दिन थे। सारा देश साँस रोककर गांधी-वाइसरायके मिलनके फलकी कुतूहलसे प्रतीक्षा कर रहा था। सब सोचते थे, इस मिलनका अन्तिम परिणाम क्या होगा? क्या गांधीजी वाइसरायसे मेल कर लेंगे? क्या लार्ड अर्विन गांधीजीकी शर्तोंको मान सकेगा? क्या गांधीजी गोलमेज-परिषद्-में शामिल होना स्वीकार कर इंग्लैंड जायँगे? इस प्रकार सारे देशमें एक जिज्ञासाका वातावरण छाया हुआ था और लोग अपने प्रश्नोंके उत्तरकी प्रतीक्षामें बेचैन हो रहे थे। कभी लोगोंको आशा होती कि समझौता हो जायगा और

कभी वे निराशाके अंधकार-ही-अंधकारको चारों ओर देखते थे। श्रीपट्टाभिके शब्दोंमें "१ मार्च, १९३१ को तो गांधी-वाइसरायके मिलनके बाद हालत एकदम निराशाजनक मालूम पड़ने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि फिरसे लड़ाई छेड़े बिना कोई चारा नहीं है। कार्य-समितिके हरएक सदस्यके मुँहसे यही एक आवाज निकल पड़ती थी कि 'समझौतेकी बातचीत बन्द कर दो।' कोई एक भी सदस्य इसका अपवाद न था। तुरन्त ही चारों तरफ यह बात फैल गयी। चारों तरफ हलचल मच गयी और हर जगह परेशानी नजर आने लगी।"*

गांधी-अर्विन समझौता

किन्तु एकाएक यह निराशा आशामें बदल गयी। वाइसरायने गांधीजीके प्रति मित्रताका भाव प्रदर्शित किया और अन्तमें १५ दिन तक मित्रतापूर्ण वाद-विवादके बाद भारतके विदेशी राज्य तथा राष्ट्रके महान् प्रतिनिधियोंके बीच ५ मार्च, १९३१ को गांधी-अर्विन पैक्टके नामसे सम्मानपूर्ण समझौता हो गया। इस समझौतेके बारेमें सर्व-साधारणकी जानकारीके लिए कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरलका एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ था, जिसमें कहा गया था कि "वाइस-राय और गांधीजीके बीच जो बातचीत हुई, उसके परिणाम-स्वरूप यह व्यवस्था की गयी है कि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन बन्द हो, और सम्राट्-सरकारकी सहमतिसे भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें भी अपनी तरफसे कुछ कार्यवाही करें। विधान-सम्बन्धी प्रश्नपर, सम्राट्-सरकारकी अनुमतिसे यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तानके वैध-शासनकी उसी योजनापर आगे विचार किया जायगा, जिसपर गोलमेज-परिषद्में पहले विचार हो चुका है। वहाँ जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अंग है। इसी प्रकार भारतीय उत्तरदायित्व और भारतके हितकी दृष्टिसे रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्प-संख्यक

*—वही—पृष्ठ ४२२

जातियोंकी स्थिति, भारतकी आर्थिक साख और जिम्मेदारियोंकी अदायगी-जैसे विषयोंके प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक अंग हैं। १९ जनवरी, १९३१ के अपने वक्तव्यमें ब्रिटेनके प्रधान मन्त्रीने जो घोषणा की है, उसके अनुसार ऐसी कार्यवाही की जायगी जिससे शासन-सुधारोंकी योजनापर आगे जो विचार हो, उसमें कौंग्रेसके प्रतिनिधि भी भाग ले सकें। यह समझौता उन्हीं बातोंके सम्बन्धमें है, जिनका सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनसे सीधा सम्बन्ध है। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन असली रूपमें बन्द कर दिया जायगा। (उसके बदलेमें) सरकार अपनी तरफसे कुछ कार्यवाही करेगी। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनको असली तौरपर बन्द करनेका मतलब है उन सब हलचलोंको बन्द कर देना, जो किसी भी तरह उसको सशक्त बनानेवाली हों—खासकर नीचे लिखी हुई बातें—

(१) किसी भी कानूनकी धाराओंका संगठित भग।

(२) लगान और अन्य करोंकी बन्दीका आन्दोलन।

(३) सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनका समर्थन करनेवाली खबरोंके परचे प्रकाशित करना।

(४) मुल्की और फौजी (सरकारी) नौकरियोंको या गाँवके अधिकारियोंको सरकारके खिलाफ अथवा नौकरी छोड़नेके लिए अमादा करना।

किन्तु "जहाँ तक विदेशी कपड़ोंके बहिष्कारका सम्बन्ध है, दो प्रश्न उठते हैं—एक तो बहिष्कारका रूप और दूसरा बहिष्कार करनेके तरीके। इस विषयमें सरकारकी नीति यह है—भारतकी माली हालतकी तरक्की करनेके लिए, आर्थिक और व्यावसायिक उन्नतिके लिए जारी किये गये आन्दोलनके ही अग-स्वरूप भारतीय कला-कौशलको प्रोत्साहन देनेमें सरकारकी सहमति है और इसके लिए किये जानेवाले प्रचार, शान्तिसे समझाने-बुझाने व विज्ञापनबाजीके उन उपायोंमें रुकावट डालनेका कोई इरादा नहीं है जो किसीकी वैयक्तिक स्वतन्त्रतामें बाधा न उपस्थित करें और जो कानून व शक्तिकी रक्षाके प्रतिकूल न हों।

लेकिन विदेशी मालका बहिष्कार (सिवा कपड़ेके जिसमें सब विदेशी कपड़े शामिल हैं) सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनके दिनोंमें सम्पूर्णतः नहीं तो भी प्रधानतया ब्रिटिश मालके विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी निश्चित रूपसे राजनैतिक उद्देश्यकी सिद्धिके लिए दबाव डालनेकी गरज से।

यह मानी हुई बात है कि इस तरहका और इस उद्देश्यसे किया जानेवाला बहिष्कार ब्रिटिश-भारत, देशी राज्य, सम्राटकी सरकार और इंग्लैण्डके विभिन्न राजनैतिक दलोंके प्रतिनिधियोंके बीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रता-पूर्ण बातचीतमें काँग्रेसके प्रतिनिधियोंकी शिरकत के, जो कि इस समझौतेका प्रयोजन है, अनुकूल न होगा। इसलिए यह बात तय पायी गयी है कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन बन्द करनेमें ब्रिटिश-मालके बहिष्कारको राजनैतिक-शस्त्रके तौरपर काममें लाना निश्चित रूपसे बन्द कर देना भी शामिल है; इसलिए-आन्दोलनके समयमें जिन्होंने ब्रिटिश-मालकी खरीद-फरोख्त बन्द कर दी थी, वे यदि अपना निश्चय बदल देना चाहें, तो अबाध-रूपसे उन्हें ऐसा करने दिया जायगा।

विदेशी मालके स्थानपर भारतीय मालका व्यवहार करने और शराब आदि नशीली चीजोंके व्यवहारको रोकनेके लिए काममें लाये जानेवाले उपायोंके संबंधमें तय हुआ है कि ऐसे उपाय काममें नहीं लाये जायँगे, जिनसे कानूनकी मर्यादाका भंग होता हो। पिकेटिंग उग्र न होगा और उनमें जबर्दस्ती, धमकी, रुकावट डालने, विरोधी प्रदर्शन करने, सर्वसाधारणके कार्यमें खलल डालने या ऐसे किसी अन्य उपायको ग्रहण नहीं किया जायगा, जो साधारण कानूनके अनुसार जुर्म हो। यदि कहीं इन उपायोंसे काम लिया गया, तो वहाँकी पिकेटिंग तुरन्त स्थगित कर दी जायगी।

गांधीजीने पुलिसके आचरणकी ओर सरकारका ध्यान आकर्षित किया है और इस सम्बन्धमें कुछ स्पष्ट अभियोग भी पेश किये हैं, जिनकी सार्वजनिक जाँच करायी जानेकी उन्होंने इच्छा प्रकट की है। लेकिन मौजूदा परिस्थितिमें सरकारको ऐसा करनेमें बड़ी कठिनाई दिखायी पड़ती है और उसको ऐसा प्रतीत होता है

कि ऐसा किया, तो उसका लाजिमी नतीजा यह होगा कि एक दूसरेपर अभियोग-प्रत्याभियोग लगाये जाने लगेंगे, जिससे पुनः शान्ति स्थापित होनेमें बाधा पड़ेगी। इन बातोंका खयाल करके, गांधीजी इस बातपर आग्रह न करनेके लिए राजी हो गये हैं।"

आगे सरकारने प्रकाशित किया कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन बन्द किये जानेपर वह आन्दोलनके सिलसिलेमें जारी किये गये तमाम आर्डिनेन्सों (विशेष कानूनों) को वापिस ले लेगी तथा जहाँ कहीं—

"किसी प्रान्तीय सरकारने वकालत करनेवालोंके खिलाफ सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनके सिलसिलेमें 'लीगल प्रैक्टिशनर्स ऐक्ट' के अनुसार मुकदमा चलाया होगा, या इसके लिए हाईकोर्टसे दरख्वास्त की होगी, तो वह सरकार सम्बन्धित अदालतमें मुकदमा लौटानेकी इजाजत देनेके लिए दरख्वास्त देगी। बशर्ते कि सम्बन्धित व्यक्तिका कथित आचरण हिंसात्मक या हिंसाको उत्तेजन देनेवाला न हो।........

"वे कैदी छोड़ दिये जायँगे, जो सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनके सिलसिलेमें ऐसे अपराधोंके लिए सजा भोग रहे होंगे, जिनमें नाम-मात्रकी हिंसाको छोड़कर और किसी प्रकारकी हिंसाके लिए उत्तेजनाका समावेश न हो।......

जो जुर्माने वसूल नहीं हुए हैं, माफ कर दिये जायँगे।...जो जमानत वसूल नहीं हुई होगी, उन्हें भी माफ कर दिया जायगा।"

किन्तु नमकका कर जिसके लिए सारा बवंडर उठा था, जैसा-का-तैसा बना रहा और सरकारने किसी प्रकारका उसमें खास परिवर्तन करना स्वीकार न किया। नमक-कर जिसपर सरकार तब इस तरहसे अड़ी रही, उसे ही अन्तमें आज १९४७ के मार्चमें पूरी तरहसे उठा देना पड़ा है। यदि सरकार यह कार्य उस समय कर दिखाती, तो उससे सरकारका गौरव और मान ही बढ़ता और भारतका ब्रिटिश सरकारपर कुछ विश्वास भी बढ़ता। किन्तु ब्रिटिश-सरकार बिना दबाव और मजबूरीके कभी कोई सदकार्य करनेको तैयार नहीं रही है। ब्रिटिश

सरकार ही नहीं, सभी नृशंश और पूँजीवादी सरकारोंका सर्वत्र यही रव्वैय्या और ढंग रहा है।

युगान्तरकारी वक्तव्य

यह समझौता पूरे बारह महीनोंके संघर्षके बाद हुआ था! संघर्षका यह काल गांधीजीके शब्दोंमें भारतके आधुनिक इतिहासका वीरतापूर्ण युग था और उसके अन्तमें हुए समझौतेने भारतके लिए पूर्ण स्वराज्यका द्वार उन्मुक्त कर दिया था! अतः इस समझौतेके बारे में ५ मार्चकी शामको जिस दिन उन्होंने वाइसरायके साथ उसपर दस्तखत किये थे, अमरीकन, अंग्रेज व भारतीय पत्रकारों और प्रेसमैनों के सामने एक युगान्तरकारी वक्तव्य दिया था! इस वक्तव्यको गांधीजीने मुँह-जबानी ही लिखाया था, जिसमें उन्हें पूरा डेढ़ घण्टा लगा। भारतीय-स्वराज्यके आन्दोलन और उसके लक्ष्य तथा साधनों पर यह वक्तव्य पूरी-पूरी तरह रोशनी डालता है। अतः वह प्रत्येक भारतीय ही नहीं मानवके लिए भी अक्षरशः स्मरणीय है—

"सबसे पहले मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि वाइसरायके अपार धीरज तथा वैसे ही अपार परिश्रम एवं अचूक शिष्टाचारके बिना यह समझौता; जैसा भी वह है, होना असम्भव था। मुझे इस बातका पता है कि मैंने उनके सामने कई बार झुंझला पड़नेके कारण, चाहे अनजानमें ही? उपरिगत किये होंगे। मैंने उनके धीरजको भी छुड़ाया होगा। लेकिन ऐसे किसी समयकी मुझे याद नहीं आती, जब कि वह झुँझलाते दिखायी दिये हों, या उन्होने धीरज छोड़ दिया हो। यह भी कह दूँ कि इस बहुत ही नाजुक बातचीतके दौरानमें उन्होंने शुरूसे आखिर तक खुलकर बातचीत की। मेरा विश्वास है कि यदि समझौता सम्भव हो सके, तो उसे करनेपर वह तुले हुए थे। मुझे यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि मैंने इस बातचीतमें डरते हुए और काँपते हुए भाग लिया। मेरे अन्दर अविश्वास भी था, लेकिन उन्होंने फौरन् ही मेरे सन्देहोंका निराकरण

करके मुझे निश्चिन्त कर दिया। मैं अपने लिए यह बात प्रतिवाद-भयसे मुक्त होकर कह सकता हूँ कि जब मैंने उनसे मिलनेके लिए पत्र लिखा, तो मैं इस बातपर तुला हुआ था कि यदि सम्मानपूर्ण समझौता हो सके, तो उस तक पहुँचने की दौड़में कहीं मैं पीछे न रह जाऊँ। इसलिए मैं परमपिता को धन्यवाद देता हूँ कि समझौता हो गया और देश कम-से-कम अभी तो उस मुसीबतका सामना करनेसे बच गया, जो बातचीत असफल होनेकी हालतमें सैकड़ों गुनी बढ़ जाती।

"इस प्रकारके समझौतेके बारेमें यह कहना कि विजयी-दल कौन-सा है। न तो सम्भव ही है और न बुद्धिमत्तापूर्ण ही।

"यदि किसीकी विजय है तो, मुझे कहना चाहिए दोनोंकी है—काँग्रेसने विजयकी होड़ कभी नहीं लगायी थी।

"बात यह है कि काँग्रेसको एक निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना है और उस उद्देश्य तक पहुँचे बिना विजयका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मैं अपने सब देशवासियों एव अपनी सब बहिनोंसे आग्रह करूँगा कि वे फूलकर कुप्पा हो जानेके बजाय—यदि समझौतेमें फूलकर कुप्पा हो जानेकी कोई ऐसी बात है—परमात्माके सामने सिर झुकावें और उससे प्रार्थना करें कि वह उन्हें इस समय उनका ध्येय उनसे जिस मार्गका अनुसरण करनेका तकाजा करता है, उसपर चलनेकी शक्ति व बुद्धि प्रदान करे। चाहे वह मार्ग कष्ट-सहनका हो अथवा वह धैर्य-पूर्वक सधि वार्ता या विचार-विनिमय करनेका हो।

"इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि कष्ट-सहनसे व्याप्त इस सग्रामके गत बारह महीनोंमें जिन लाखों लोगोंने भाग लिया है, वे विचार-विनिमय और निर्माणके इस कालमें भी वही खुशनुदी, वही एकता, वही कोशिश और वही समझदारी दिखलायेंगे जो उन्होंने इतनी अधिक मात्रामें इस युगमें, जिसे मैं भारतके आधुनिक इतिहासका वीरतापूर्ण युग कहूँगा, दिखलायी है।

"लेकिन मुझे मालूम है कि जहाँ ऐसे स्त्री-पुरुष होंगे, जो इस समझौतेके

कारण फूलकर कुप्पा हो जायँगे, वहाँ ऐसे लोग भी हैं जो बहुत निराश होंगे, और जो बहुत निराश हैं।

"वीरतासे कष्ट सहना तो उनके लिए इतना स्वाभाविक है जैसे मानो साँस लेना। वे तो मानो इसीमें सबसे ज्यादा खुश हैं, असह्य कष्टोंको भी वे सह लेंगे। लेकिन जब उनके कष्टोंका अन्त होता है, तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारा काम बन्द हो गया है और हमारा लक्ष्य आँखोंसे ओझल हो गया है। उनसे मैं केवल यही कहूँगा कि धैर्य रक्खो ; देखो, प्रार्थना करो और आशा रक्खो।

"कष्ट-सहनकी भी एक हद होती है। कष्ट-सहनमें बुद्धिमानी और मूर्खता दोनों सम्भव हैं और जब कष्ट-सहनकी हद आ जाती है तो उसे और बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं, बल्कि परले सिरेकी बेवकूफी है।

"जब आपका विरोधी ही आपके इच्छानुसार ही आपसे बातचीत करनेकी सुविधा आपके लिए पैदा कर दे, तो कष्ट सहते रहना बेवकूफी है। यदि रास्ता वास्तवमें खुल जाय, तो हरएकका यह कर्त्तव्य है कि वह उससे फायदा उठावे। मेरी यह नम्र सम्मति है कि इस समझौतेने वास्तवमें रास्ता खोल दिया है। इस प्रकारके समझौतेका अस्थायी होना तो स्वाभाविक ही है। यह जो सन्धि हुई है, वह कई बातोंके पूरा होनेपर निर्भर है। इस लिखित समझौतेका बड़ा भारी अंग तो 'समझौतेकी शर्तों' से घिर गया है। यह स्वाभाविक ही था। काँग्रेस गोलमेज-परिषद्में भाग ले सके, इसके पहले कई बातोंका पूरा हो जाना आवश्यक है। इनका उल्लेख होना अत्यन्त आवश्यक था। लेकिन काँग्रेसका ध्येय पुरानी भूलोंका सुधार कराना नहीं, यद्यपि यह भी महत्वपूर्ण है; उसका ध्येय तो पूर्ण-स्वराज्य है, जिसको अंग्रेजीमें अनुवाद करके "कम्प्लीट इण्डिपेंडेन्स" कहा जाता है। अन्य राष्ट्रोंकी भाँति भारतका यह जन्म-सिद्ध अधिकार है और भारत इससे कममें सन्तुष्ट नहीं हो सकता। समझौते भरमें इसे

वह मनोमोहक शब्द कहीं नहीं दिखायी देता। जिस धारामें यह शब्द छिपा हुआ है, वह द्वि-अर्थक है!

"संघ-शासन (फ़ेडरेशन) मृगतृष्णा भी हो सकता है, या एक ऐसे सजीव राष्ट्रका रूप धारण कर सकता है, जिसके दोनों हाथ इस प्रकार कार्य करते हैं कि उससे उसका सारा शरीर मजबूत बन जाय।

"इसी प्रकार 'उत्तरदायित्व' जो दूसरा पाया है, या तो बिलकुल छाया के समान निःसार हो, या वह बड़ा ऊँचा, विशाल तथा न झुकनेवाले बरगदके पेड़के सदृश हो सकता है। भारतके हितमें संरक्षण भी बिलकुल धोखेसे भरे हों और इसलिए ऐसे रस्सोंके समान हो सकते हैं जिनसे देश चारों ओरसे जकड़ा जा सके, या वे ऐसी चहारदीवारीके समान हो सकते हैं, जो एक छोटे व मुलायम पौधेकी रक्षा करनेके लिए उसके चारों ओर लगा दी जाती है।

"एक दल इन तीन पायोंका एक मतलब निकाल सकता है और दूसरा दल दूसरा इस धाराके अनुसार दोनों दल अपनी-अपनी दिशामें काम कर सकते हैं। और यदि कॉंग्रेसने परिषद्की कार्यवाहीमें भाग लेनेकी रजामन्दी दिखायी है, तो वह इसी कारणसे कि वह संघ-शासन, उत्तरदायित्व, संरक्षण, प्रतिबन्ध अथवा उन्हें जिन नामोंसे भी पुकारा जाता हो, उनको ऐसा रूप देना चाहती है कि उससे देशकी वास्तविक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक उन्नति हो।

"यदि परिषद्ने कॉंग्रेसकी स्थितिको ठीक-ठीक समझकर मान लिया, तो, मेरा दावा है कि इसका परिणाम 'पूर्णस्वाधीनता' होगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह मार्ग बहुत कठिन और थका देनेवाला है। मार्गमें बहुत-सी चट्टानें और बहुतसे गड्ढे हैं। लेकिन यदि कॉंग्रेसवादी इस नये कामको विश्वास व उत्साहके साथ करेंगे, तो मुझे इसके परिणामके बारेमें कोई भी सन्देह नहीं रह सकता। अतः यह उन्हींके हाथमें है कि वे इस नये अवसरका, जो उन्हें मिला है, अच्छे-से-अच्छा उपयोग करें, या वे आत्म-विश्वास व उत्साहके न होनेके कारण अवसर ही खो दें।

"मैं चाहता हूँ कि इस कार्यमें कॉंग्रेसको दूसरे दलोंकी सहायता लेनी होगी—भारतके नरेशोंकी और स्वयं अंग्रेजोंकी भी। इस अवसरपर मुझे इन भिन्न-भिन्न दलोंसे अपील करनेकी जरूरत नहीं। मुझे इस बातमें सन्देह नहीं कि अपने देशकी वास्तविक स्वतन्त्रताकी उन्हें भी उतनी ही आकांक्षा है जितनी कि कॉंग्रेस-वालोंको।

"लेकिन नरेशोंका सवाल दूसरा है। उनके संघ-शासनके विचारको मान लेना मेरे लिए निश्चित रूपसे आश्चर्यजनक है। यदि वे संघ-शासित भारतमें बराबरीके साझीदार बनना चाहते हैं, तो मैं इस बातको कह देना चाहता हूँ कि उन्हें उसी ओर बढ़ना होगा जिस ओर बढ़नेकी ब्रिटिश-भारत इतने वर्षोंसे कोशिश कर रहा है।"

"पूर्ण एकतन्त्री शासन, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, व विशुद्ध लोकसत्ता, ये दो ऐसी चीजें हैं जिनका मिश्रण अवश्य ही भिन्न भिन्न हो जायगा। इसलिए मेरी रायमें, उनके लिए आवश्यक है कि वे तने न रहें, अड़े न रहें, और अपने भावी साझीदार द्वारा या उसकी ओरसे की गयी अपीलको बेसब्रीसे न सुनें। यदि वे इस प्रकारकी अपीलको न सुनेंगे, तो वे कॉंग्रेसकी स्थितिको बहुत असह्य, खराब और वास्तवमें बहुत विषम बना देंगे। कॉंग्रेस भारतकी सारी जनताकी प्रतिनिधि है या उसका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करती है। ब्रिटिश-भारत या देशी-रियासतोंमें बसनेवालोंमें वह कोई भेदभाव नहीं करती।

"कॉंग्रेसने बड़ी बुद्धिमानीसे और बड़ी रोक-थामके साथ रियासतोंके मामलों व उसके कारोबारमें दखल देनेसे अपने-आपको रोका है। ऐसा उसने इस खातिरसे किया है कि रियासतोंकी भावनाओंको बड़ी अनावश्यक चोट न पहुँचे, और इस वजहसे भी कि जब कोई उपयुक्त अवसर आवे तो यह कैद, जो उसने अपने-आपपर लगा रखी है, रियासतोंपर अपना असर डालनेमें काम आवे। मेरा विचार है कि वह अवसर अब आ गया है। क्या मैं इस बातकी आशा करूँ

कि हमारे बड़े नरेश रियासती प्रजाकी ओरसे की गयी अपीलके सामने कानोंमें अँगुलियाँ न डालेंगे ?"

"अंग्रेजोंसे भी मैं एक ऐसी अपील करना चाहता हूँ। यदि भारतको परिषदों व विचार-विमर्शके जरियोंसे ही अपने निश्चित उद्देश्यको प्राप्त करना है, तो अंग्रेजोंकी सद्भावना व सक्रिय सहायताकी बड़ी आवश्यकता होगी। मुझे यह बात कहनी पड़ेगी कि लन्दनकी पहली परिषद्में जिन-जिन बातोंको उन्होंने मान लिया है, वह तो उसका आधा भी नहीं, जिस ध्येय तक भारत पहुँचना चाहता है। यदि वे वास्तवमें सची मदद करना चाहते हैं, तो उन्हें भारतको भी उसी स्वतन्त्रताकी मस्तीका अनुभव करा देना पड़ेगा, जिसे वे स्वयं मरते दम तक नहीं छोड़ सकते। उन्हें इस बातके लिए तैयार होना पड़ेगा कि वह भारतको गलतियाँ करनेके लिए छोड़ दें। यदि गलती करनेकी, यहाँ तक कि अधम-से-अधम कार्य तक करनेकी स्वतन्त्रता न हुई, तो ऐसी स्वतन्त्रता किस कामकी ? यदि परम-पिता परमात्माने अपने छोटे-से-छोटे जीवको गलती करनेकी स्वतन्त्रता दी है तो मेरी समझमें नहीं आता कि वे लोग कैसे मनुष्य हो सकेंगे, जो—चाहे वे कितने ही अनुभवी और योग्य क्यों न हों—दूसरी जातिके मनुष्यके इस अमूल्य अधिकारको छीननेमें खुशी महसूस करते हैं ?"

"खैर जो भी हो, काँग्रेसको परिषद्में आमंत्रित करनेसे यह तात्पर्य खूब अच्छी तरह निकल आता है कि अयोग्यताके अलावा किसी और कारण-वश उसे पूर्ण-से-पूर्ण स्वाधीनतापर जोर देनेसे नहीं रोका जा सकता। काँग्रेस भारतको एक बीमार बालकके समान नहीं मानती है, जिसके लिए देख-भाल, सेवा-शुश्रूषा व अन्य सहचरोंकी जरूरत हो।"

"अमरीकन-राजतत्र व संसारके अन्य राष्ट्रोंकी जनतासे भी मैं एक अपील करना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि इस युद्धने, यद्यपि जिसका आधार सत्य व अहिंसा है तथापि उसके विषयमें उसके उपासक होकर भी हम कभी-कभी कुछ भ्रान्त हो जाते हैं—उनके मनपर बड़ा असर डाला है और उनमें उत्सुकता पैदा

की है। उत्सुकता ही नहीं, वे इससे भी आगे बढ़े हैं। उन्होंने और खासकर अमरीकाने सहानुभूतिके द्वारा हमारी प्रत्यक्ष मदद भी की है। काँग्रेसकी ओरसे और अपनी ओरसे मैं कहता हूँ कि इस सहानुभूतिके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। मुझे आशा है कि काँग्रेस अब जिस मुश्किल काममें जुटनेवाली है, उसमें हमें उनकी यह वर्तमान सहानुभूति ही न प्राप्त रहेगी, बल्कि वह दिन-प्रति-दिन बढ़ती भी जायगी। मैं अति नम्रतासे यह कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि यदि सत्य व अहिंसाके द्वारा भारत अपने ध्येय तक पहुँच गया, तो जिस विश्व-शान्तिके लिए संसारके सब राष्ट्र तड़प रहे हैं, उसकी दिशामें बड़ा भारी काम कर दिखाया जायगा और इन राष्ट्रोंने उसे जी खोलकर जो सहायता दी है, उसका कुछ थोड़ा-सा प्रतिफल भी उन्हें प्राप्त हो जायगा।

"मेरी आखिरी अपील पुलिस व सिविलसर्विस अर्थात् सरकारी अधिकारियों-से है। समझौतेका एक ऐसा भाग है, जिसमें जाहिर किया गया है कि मैंने पुलिसकी कुछ ज्यादतियोंकी जाँचकी माँगकी थी। इस जाँचकी माँगको छोड़ देनेका कारण भी समझोतेमें दिया गया है। महकमे-पुलिस-द्वारा शासनकी जो मशीन चलती रहती है, उसका सिविलसर्विस एक अभिन्न अंग है। यदि वे वास्तवमें यह महसूस करते हैं कि भारत शीघ्र ही अपने घरका मालिक बननेवाला है और उन्हें वफादारी व ईमानदारीसे भारतके सेवकोंकी तरह काम करना है, तो उन्हें यह शोभा देता है कि वे अभीसे लोगोंको अनुभव करा दें कि सिविल-सर्विस व पुलिस उनके सेवक हैं—अवश्य ही सम्मान-योग्य व बुद्धिमान सेवक, लेकिन हर हालतमें सेवक ही हैं, न कि मालिक।

"मुझे अपने उन हजारों तो नहीं, लेकिन सैकड़ों साथी-बन्दियोंके बारेमें भी एक शब्द कहना है, जिनके लिए मेरे पास तार-पर-तार चले आ रहे हैं, लेकिन जो गत १२ महीनोंमें जेल भेजे गये, सत्याग्रही कैदियोंके छूट जानेपर भी जेलों-में पड़े रहेंगे। व्यक्तिगत रूपसे तो उनके भी, जो हिंसा करनेके दोषी हैं, जेल भेजे जानेकी प्रणालीपर मेरा विश्वास नहीं है। मैं जानता हूँ कि वे लोग जिन्होंने

राजनैतिक उद्देश्योंसे प्रेरित होकर हिंसा की है, यदि बुद्धिमानीका नहीं, तो कम-से-कम देश-प्रेम तथा आत्म-त्याग करनेका उतना ही दावा तो कर सकते हैं, जितना कि मैं। इसलिए अपनी या अपने साथी-सत्याग्रहियोंकी रिहाईके बजाय यदि न्यायपूर्वक उनकी रिहाई करा सकता, तो सचमुच ही कराता।

"मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि मैं न्याय-पूर्वक उनकी रिहाईके लिए नहीं कह सकता था। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मुझे या कार्य-समितिके सदस्योंको उनका खयाल ही नहीं है।"

"काँग्रेसने जान-बूझकर, यद्यपि अस्थायी तौरपर ही सही, सहयोगका मार्ग ग्रहण किया है। यदि काँग्रेसवादी ईमानदारीसे समझौतेकी उन शर्तोंका जो उन-पर लागू होती है पूरी-पूरी तरहसे पालन करें, तो काँग्रेसका गौरव बहुत बढ़ जायगा और सरकारपर इस बातका सिक्का बैठ जायगा कि जहाँ काँग्रेसने मेरी रायमें, अवज्ञा-आन्दोलन चलानेकी योग्यता सिद्ध कर दी है, वहाँ उसमें शान्ति बनाये रखनेकी भी क्षमता है।"

"और यदि जनता काँग्रेसको यह शक्ति और गौरव प्रदान कर दे, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह समय दूर नहीं है जबकि इन कैदियोंमेंसे, मय नजरबन्दों व मेरट-षड्यन्त्रके कैदियों तथा अन्य सब राजनैतिक कैदियोंके एक-एक छूट जायगा।"

"इस बातमें सन्देह नहीं कि भारतमें एक ऐसा छोटा किन्तु कर्मण्य दल विद्य-मान है, जो भारतकी स्वतंत्रता हिंसात्मक कार्यों-द्वारा प्राप्त करना चाहता है। मैं इस दलसे अपील करता हूँ, जैसा कि मैं पहले भी कर चुका हूँ, कि वह अपनी प्रवृत्तियोंको बन्द करे। यदि उसे अभी इसमें विश्वास न हो, तो कम-से-कम उपयोगिताकी दृष्टिसे ही उसे ऐसा करना चाहिए। मेरा अनुमान है कि वे इस बातको तो महसूस कर ही चुके होंगे कि अहिंसामें कितनी जबर्दस्त शक्ति है। वे इस बातसे नहीं मुकरेंगे कि यह चमत्कारिक सामूहिक जागृति अहिंसाके अगम्य लेकिन अचूक असरके कारण ही हुई है। मैं चाहता हूँ कि वे धीरज

धरें और कॉंग्रेसको, या वे चाहें तो मुझे, सत्य व अहिंसाकी योजनाका प्रयोग करनेका अवसर दें। दाण्डी-यात्राको तो अभी पूरा एक साल भी नहीं हुआ। तीस करोड़ व्यक्तियोंके जीवनपर असर डालनेवाले एक प्रयोगके जीवनमें एक वर्षका समय तो काल-चक्रके एक क्षणके समान है। क्यों न वे अपने अमूल्य जीवनको मातृ-भूमिकी सेवाके लिए, जिसका बुलावा शीघ्र ही सबोंको दिया जायगा, सुरक्षित रखें और कॉंग्रेसको इस बातका अवसर दें कि वह अन्य सब राजनैतिक कैदियोंकी भी रिहाई करा सकें और सम्भवतः उन लोगोंको भी फाँसीके तख्तेसे बचा सकें जिन्हें हत्याके अभियोगमें फाँसीकी सजा मिली है।"

"लेकिन मैं किसीको झूठा दिलासा नहीं देना चाहता। खुद मेरी और कॉंग्रेसकी जो आकांक्षाएँ हैं, उनका मैं सार्वजनिक तौरपर केवल उल्लेख ही कर सकता हूँ। प्रयत्न करना हमारे हाथमें है, परिणाम सदा परमात्माके हाथमें है।

"एक व्यक्तिगत बात और, मेरा खयाल है कि सम्मानप्रद समझौता करनेके प्रयत्नमें मैंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैंने लार्ड अर्विनको अपना वचन दे दिया है कि मैं समझौतेकी शर्तोंका, जहाँ तक उनका कॉंग्रेससे संबंध है, पालन करानेमें जी-जानसे जुट जाऊँगा। मैंने समझौतेका प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि पहला अवसर मिलते ही मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ, बल्कि इसलिए कि अभी जो अस्थायी है, उसे बिलकुल पक्का करनेमें कोई भी कसर न छोड़ूँ और इसे उस ध्येय तक पहुँचानेवाला पेशवा समझूँगा, जिसे प्राप्त करनेके लिए कॉंग्रेस कायम है।

"सबके अन्तमें मैं उन सब लोगोंको धन्यवाद देता हूँ, जो समझौतेको संभव बनानेमें निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं।"

पत्रकारोंसे भेंट

उपर्युक्त वक्तव्य देनेके दूसरे दिन ६ मार्च १९३१ को भारत व विदेशोंके कई पत्रकारोंने महात्मा गांधीसे भेंट की। निःसन्देह पूर्णस्वराज्यकी दिशामें

'समझौता' एक अग्रिम कदम था। इस समझौतेने स्वराजकी ओर जानेवाले रास्तेको खोल दिया था। अतः हम कह सकते हैं कि 'समझौता' गांधीजीकी प्राथमिक विजय थी जिसने स्वराज्य-आन्दोलनके सेनापतिके रूपमें उनका मान और गौरव भारतीयोंकी ही नहीं, विदेशियोंकी निगाहोंमें भी ऊँचा कर दिया था। सारा संसार इस कुशल सेनापतिके अद्‌भुत कौशल और उसकी लड़ाईके निर्वैर और प्रेमपूर्ण तरीकेको देखकर स्तब्ध रह गया था। इसीलिए समझौतेके दूसरे ही दिन देशी और विदेशी पत्रकारोंने गांधीजीको घेरकर समझने और जाननेके लिए उनसे अनेक सवाल-जवाब किये थे। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें दिये गये वक्तव्योंसे गांधीजी और उनके रूपमें कौंग्रेसके तात्कालिक भाव और विचारोंको आसानीसे समझा जा सकता है। अतः नीचे हम पत्रकारोंके प्रश्न और गांधीजीके उत्तरोंको उद्धृत करते हैं—

प्र०—'पूर्ण स्वराज्य' की आपकी सही व्याख्या क्या है?

उ०—मैं आपको इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि अंग्रेजी भाषामें ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो 'पूर्णस्वराज्य' के भावको व्यक्त कर सके। स्वराज्यका मूल अर्थ तो स्वराज्य अर्थात् स्व-शासन है। 'स्वाधीनता' से इस प्रकारका कोई मतलब नहीं निकलता। स्वराज्यका मतलब है आत्म-नियंत्रित शासन, पूर्णका मतलब है पूरा। कोई बराबरीका शब्द न मिलनेके कारण हमने अंग्रेजी में 'कम्प्लीट इण्डिपेन्डेन्स' (Complete Independence) अर्थात् 'पूर्ण स्वाधीनता' शब्दों को चुन लिया है—जिन्हें हर कोई समझता है। 'पूर्ण स्वराज्य' का यह मतलब नहीं कि किसी राष्ट्रसे, या इंग्लैंडसे ही कहिए, सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता। लेकिन यह सम्बन्ध स्वेच्छासे और दोनोंके फायदेके लिए ही हो सकता है।

प्र०—समझौतेकी दूसरी धाराको देखते हुए क्या कौंग्रेसके लिए यह युक्तिसंगत होगा कि वह पूर्ण स्वाधीनताके प्रस्तावको, जो उसने मद्रास, कलकत्ता, व लाहौरके अधिवेशनोंमें पास किया था, फिरसे दुहराये?

उ०—अवश्य ही ; क्योंकि करांची-काँग्रेसको फिर इसी प्रकारका प्रस्ताव पास करनेसे रोकनेकी और आगामी गोलमेज-परिषद् तक में उसपर जोर देनेसे रोकनेकी कोई शर्त नहीं है।—मैं आपको यह बात बताकर कोई भेद नहीं खोल रहा हूँ, किन्तु मैंने इस स्थितिको अच्छी तरह खोल दिया था और समझौतेको स्वीकृत करनेसे पहले अपनी स्थिति भी साफ कर ली थी।

प्र०—द्वितीय गोलमेज-परिषद्का भारतमें होना आप पसन्द करते हैं या इग्लैंडमें ?

उ०—परिस्थितिपर इसका दारोमदार है—मेरे अभी कोई खास विचार नहीं हैं। मोटे तौरपर मैं यह चाहूँगा कि गोलमेज-परिषद्का पूर्वार्द्ध भारतमें हो और फिर उसकी समाप्ति लन्दन में हो।

प्र०—क्या आप नियमित रूपसे परिषद्में भाग लेंगे ?

उ०—मैं आशा तो करता हूँ और शायद हो भी यही।

प्र०—क्या आप परिषद्में 'पूर्ण स्वराज्य' के लिए जोर देंगे ?

उ०—यदि हम उसके लिए जोर न दें, तब तो हमें अपने अस्तित्वसे ही इन्कार कर देना चाहिए।

प्र०—क्या आप प्रस्तुत संरक्षणों व प्रतिबन्धोंको मान लेंगे ?

उ०—नहीं, इस सम्बन्धमें तो काँग्रेस अपनी स्थिति संसारके सामने स्पष्ट कर चुकी है। काँग्रेसको किसी राजनैतिक परिषद्में भाग लेनेका निमन्त्रण देनेवालेको कम-से-कम इतना तो मालूम होनेकी आशा रखनी ही चाहिए कि काँग्रेस क्या चाहती है। काँग्रेसकी स्थितिको स्पष्ट करनेमें, जहाँ तक मुझसे सम्भव था, मैंने बहुत सावधानी की है। सम्राट्की सरकारके लिए यह मार्ग अब भी खुला हुआ है कि यदि वह चाहे तो काँग्रेसको परिषद्में भाग लेनेका निमंत्रण न दे। समझौतेमें ऐसी कोई बात नहीं है, जहाँ तक मैंने समझा है, जिसके अनुसार परिषद् में भाग लेना लाजिमी हो!

प्र०—करांची-काँग्रेसके सामने क्या-क्या विषय आयेंगे ?

उ०—यह मैं नहीं कह सकता। करांची-कौंग्रेसके पहले कार्य-समिति की जो बैठक होगी, यह उसपर निर्भर रहेगा।

प्र०—क्या यह पूछना उचित होगा कि भगतसिंह व उनके साथियोंकी फाँसीकी सजा आजन्म देश-निकालेमें परिणत कर दी जायगी?

उ०—मुझसे यह प्रश्न न करना ही ठीक होगा। इस सम्बन्धमें अखबारोंमें पर्याप्त सामग्री निकल चुकी है, जिससे पत्रकार अपने लिए जैसा ठीक समझें मतलब निकाल सकते हैं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकता।

प्र०—शनिवारको जब मामला बिगड़ गया था, तो ऐसी कौन-सी बात हुई, जिसने बातचीतका सारा रुख बदल दिया?

उ०—(मुसकराते हुए) लार्ड अर्विनकी भलमनसाहत और सम्भवतः (कुछ और मुसकराते हुए) मेरी भी भलमनसाहत (हँसी)।

प्र०—क्या आप इस समझौतेको अपने अबतकके जीवनकी सबसे बड़ी सफलता समझते हैं?

उ०—(हँसकर) मुझे यही मालूम नहीं कि मैंने जीवनमें अबतक कौन कौन-सी सफलताएँ पायी हैं और यह उनमेंसे एक है या नहीं?

प्र०—यदि आप 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त कर लें, तो क्या आप उसे अपने जीवनकी ऐसी सफलता मान सकेंगे?

उ०—मैं समझता हूँ कि यदि ऐसा हो सके, तो मैं उसे अवश्य ऐसा मानूँगा।

प्र०—क्या आप अपने जीवन-कालमें 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त करनेकी उम्मीद करते हैं?

उ०—यकीनन जरूर। (मुसकराते हुए)—पाश्चात्य विचारोंके अनुसार तो मैं अपनेको ६२ सालका युवक ही मानता हूँ।

प्र०—क्या आप भावी शासन-विधानमें संरक्षण स्वीकार करनेके लिए तैयार हो जायँगे?

उ०—हाँ, यदि वे युक्ति-संगत और विवेकपूर्ण हों। अल्पसंख्यकोंका ही प्रश्न लीजिए। मेरा खयाल है कि हम तबतक बड़े राष्ट्रोंमें नहीं गिने जा सकते, जबतक कि हम अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंको एक पवित्र धरोहरकी तरह न मानें। मैं इसे एक न्यायपूर्ण संरक्षण मानूँगा।

प्र०—सेना व आर्थिक प्रतिबन्धोंके बारेमें आपकी क्या राय है?

उ०—आर्थिक? हाँ, यदि हमारे ऊपर 'सार्वजनिक-ऋण' है, तो जितना हमारे जिम्मे पड़ेगा, उसका हमें प्रबन्ध करना पड़ेगा। इस हद तक मैं देशकी साख और उसकी बुद्धिके लिए संरक्षणको माननेके लिए बँधा हुआ हूँ। सेनाके सम्बन्धमें मेरी बुद्धि जहाँतक मुझे ले जाती है, मैं इसके अलावा और कोई संरक्षण नहीं सोच सकता कि हमें सैनिकोंके वेतनोंकी तथा उन शर्तोंकी पूर्तिकी गारण्टी करनी पड़ेगी, जिन्हें हम उन ब्रिटिश-सिपाहियोंके सम्बन्धमें जिनकी भारतको जरूरत हो, स्वीकार करें।

प्र०—क्या आप सरकारी कर्जोंके लिए मुकर जायँगे?

उ०—हमारी तरफ न्यायपूर्वक जो हिसाब निकलेगा, उसकी मैं एक-एक कौड़ी स्वीकार करूँगा। लेकिन दुःखकी बात है कि इस 'मुकरने' की बातचीत ने बहुत कुछ गड़बड़ी फैलादी है। काँग्रेसकी यह कभी मंशा नहीं रही कि सरकारी कर्जके एक रुपये से भी इन्कार करे। काँग्रेसने तो केवल यही माँग की है, और वह इसी बातपर जोर देगी, कि देशकी भावी सरकारपर जो कर्जा लादा जाय, वह न्यायपूर्ण हो। यह एक ऐसी माँग है, जो कोई भी खरीददार नयी चीज खरीदते समय करेगा। काँग्रेसने इस बातका प्रस्ताव किया है कि यदि आपसमें फैसला न हो सके, तो एक स्वतन्त्र-ट्रिब्यूनल बैठा दिया जाय।

प्र०—क्या आपकी रायमें राष्ट्र-संघ उपयुक्त ट्रिब्यूनल होगा?

उ०—अभी तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि राष्ट्र-संघ उपयुक्त ट्रिब्यूनल होगा। लेकिन सम्भव है कि राष्ट्र-संघ इस जिम्मेवारीको लेनेके लिए तैयार न हो

और फिर इंग्लैंड भी ऐसे ट्रिब्यूनलको पसन्द न करे, इसलिए इंग्लैंड व भारत दोनोंको जो ट्रिब्यूनल मान्य होगा, वह मुझे भी मान्य होगा।

प्र०—क्या आप इस प्रश्नपर गोलमेज-परिषद्में जोर देंगे ?

उ०—जब राष्ट्रीय जिम्मेवारियोंके प्रश्नपर गौर करने और उन्हें माननेका सवाल आयगा, तो इसपर जोर देना आवश्यक होगा। दूसरे शब्दोंमें आप कह सकते हैं कि इन जिम्मेवारियोंको इसी-शर्त पर स्वीकार किया जायगा कि उनकी राष्ट्र-द्वारा जाँच-पड़ताल कर ली जाय।

प्रश्न—क्या यह अस्थायी समझौता—'पार्वती-प्रवचन' (Sermon on the Mount) का अमली उदाहरण कहा जा सकता है, जैसा कि आज सुबह-के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की राय है।

उ०—इस प्रश्नका फैसला मैं नहीं कर सकता। यह आलोचकों का कार्य है।

प्र०—क्या आपकी रायमें समझौतेके फलस्वरूप विदेशी-कपड़ेका बहिष्कार ढीला कर देना चाहिए ?

उ०—नहीं, कदापि नहीं। विदेशी कपड़ेका-बहिष्कार राजनैतिक अस्त्र नहीं है। यह तो भारतके एकमात्र सहायक धन्धे चर्खेकी उन्नतिके लिए है। उसका कार्य सिर्फ विदेशी कपड़ेके भारत-आगमनसे सम्बन्ध रखता है। यदि सरकारकी बागडोर मेरे हाथमें होती, तो मैं अवश्य भारी करोंकी ऊँची-ऊँची दीवालें खड़ी करता। इस प्रकारके संरक्षण करोंका वर्तमान सरकार-द्वारा लगाया जाना भी मैं सम्भव समझता हूँ। आजकल जो कर लगे हुए हैं वे विदेशी कपड़ेकी सर्वथा रोक करनेके लिए नहीं, बल्कि केवल सरकारी आयके लिए हैं।

प्र०—पूर्ण-स्वराज्यका आपका क्या खाका है ?—

उ०—मैं तो आकाशमें उड़नेवाला आदमी हूँ। इसलिए मैं तो ऐसे कई 'मनोराज्य' किया करता हूँ। 'पूर्ण-स्वराज्य' पूर्ण-समानताका विरोधी नहीं, बल्कि आधार है। सर्व साधारणका दिमाग इस समानताको सहसा नहीं समझ सकता।

समानतासे मेरा तात्पर्य है कि सरकारी-कार्यका केन्द्र डाउनिंग-स्ट्रीट होनेके बजाय दिल्ली हो। मित्रोंका कहना है कि सम्भव है इंग्लैंड इस स्थितिके लिए राजी न हो।

ब्रिटिश लोग व्यावहारिक आदमी हैं; जिस प्रकार वे अपनी स्वतंत्रतासे प्रेम करते हैं उसी प्रकार दूसरोंको स्वतंत्रता देना एक कदम और आगे चलना है। मैं जानता हूँ कि भारतके लिए मैं जो समानता चाहता हूँ, उसके देनेका जब समय आवेगा, तो वे यही कहेंगे कि यह तो हम हमेशासे ही चाहते थे। ब्रिटिश लोगोंमें अपने-आपको भ्रममें रखनेकी जैसी खूबी है वैसी और किसी राष्ट्रमें नहीं। मेरे विचारसे निश्चय ही समानताका तात्पर्य है सम्बन्ध विच्छेद करनेके अधिकारका भी होना।

प्र०—क्या आप अंग्रेजोंको और जातियोंके मुकाबलेमें शासकके रूप में अधिक पसन्द करते है?

उ०—मुझे किसीको भी पसन्द नहीं करना है। अपने अलावा मैं और किसीसे शासित होना नहीं चाहता।

प्र०—क्या, आप ब्रिटिश झण्डेके नीचे 'पूर्ण-स्वराज्य' का होना पसन्द करेंगे?

उ०—नहीं, इस झण्डेके नीचे नहीं।—हाँ, यदि सम्भव हो, तो दोनोंके एक आम झण्डेके नीचे, और आवश्यक हो, तो एक पृथक राष्ट्रीय झण्डेके नीचे।

प्र०—परिषद्में जानेसे पूर्व क्या आप हिन्दू-मुस्लिम-समस्याको सुलझा लेनेकी आशा करते हैं?

उ०—यह मेरी आकांक्षा तो है, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि यह कहाँ तक पूरी हो सकेगी। फिलहाल तो मेरा यह विचार है कि इस प्रश्नको हल किये बिना हमारा परिषद्में जाना व्यर्थ है। परिषद्में जाकर एकता होना मेरी राय में मुश्किल है।

प्र०—क्या हिन्दू-मुस्लिम-एकता स्थापित करनेमें बरसों लगेंगे?

उ०—नहीं, मेरा खयाल ऐसा नहीं है। हिन्दू व मुसलमान जनतामें कोई नाइत्तिफाकी नहीं है। नाइत्तिफाकी केवल ऊपरी है और इसका अधिक महत्त्व इसलिए है कि सतहपर जो आदमी हैं, वे वही हैं जो भारतके राजनैतिक दिमागके प्रतिनिधि हैं।

प्र०—क्या आप इस बातकी सम्भावना देखते हैं कि जब 'पूर्ण स्वराज्य' मिल जायगा, तो राष्ट्रीय सैना हटा दी जायगी?

उ०—गगन-विहारी आदमीका उत्तर है तो अवश्य, लेकिन मेरा विचार है कि मैं अपने जीवन-कालमें तो ऐसा न देख सकूँगा। बिलकुल सेना न रखनेकी स्थिति तक पहुँचनेके लिए भारतीय राष्ट्रको कई युगों तक ठहरना होगा। सम्भव है कि श्रद्धाकी कमीके कारण ही मेरी यह शंकाशीलता हो। लेकिन ऐसी सम्भावना असम्भव नहीं। वर्तमान सामूहिक जागृतिकी तथा अहिंसापर लोगोंके डटकर कायम रहनेकी—अपवादोंको छोड़ दीजिये—किसे आशा थी? इसी बातसे मुझे कुछ आशा होती है कि निकट भविष्यमें भारतीय नेता हिम्मतके साथ कह सकेंगे कि अब हमें किसी सेनाकी जरूरत नहीं। मुल्की कामोंके लिए पुलिस पर्याप्त समझी जानी चाहिए।

प्र०—क्या निकट भविष्यमें बोलशेविक आक्रमण होनेकी आशंका आप नहीं करते?

उ०—नहीं, मुझे ऐसा कोई डर नहीं है।

प्र०—क्या भारतमें बोलशेविक-प्रचारके फैलनेका आपको भय नहीं है?

उ०—मैं नहीं समझता कि भारतीय इस प्रकार बहकानेमें आ सकते हैं।

प्र०—आपको बोलशेविज्ममें क्या अच्छाई दिखती है?

उ०—(हँसकर) वास्तवमें मैंने बोलशेविज्मका इतना अध्ययन ही नहीं किया। यदि उसमें कुछ अच्छाई है, तो भारतको उसे लेनेमें और अपनानेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।

प्र०—क्या आप भावी सरकारके प्रधान मन्त्री बनना स्वीकार करेंगे?

उ०—नहीं। यह पद तो नौजवानों और मजबूत आदमियोंके लिए है।

प्र०—लेकिन यदि जनता आपको चाहे और अड़ जाय तो ?

उ०—तो मैं आप-जैसे पत्रकारोंकी शरण ढूढूंगा (हँसी)।

प्र०—"यदि पूर्ण-स्वराज्य स्थापित हो गया, तो क्या आप सारी मशीनरी उड़ा देंगे ? (एक अमरीकन पत्रकार)

उ०—नहीं; बिलकुल नहीं। उड़ा देनेके बजाय मैं तो अमरीकाको शायद और भी अधिक मशीनरीका आर्डर दूँगा (हँसी) और कौन कह सकता है, मैं ब्रिटिश मशीनरीको ही तरजीह दूँ ? (और अधिक हँसी)!

प्र०—स्वराज्य मिलनेके पूर्व क्या आप आश्रम लौटेंगे ?

उ०—मेरा विचार केवल आश्रम देखनेका है। जब तक पूर्ण-स्वराज्यका मेरा व्रत पूरा न हो जायगा, तब तक मैं आश्रममें नहीं रहूँगा।

प्र०—सेना-सम्बन्धी प्रश्नके आपके उत्तर से क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आप इस बातकी सम्भावना नहीं देखते कि अन्तराष्ट्रीय पेची-दगियोंको सुलझानेमें अहिंसा उपयोगी अस्त्र हो सकता है ?

उ०—मेरा विचार है कि अहिंसा एक अस्त्र होगा। मान लीजिए कि संसारके अन्य राष्ट्रोंकी भाँति भारतमें भी सेना है, तो सबसे पहले विचारोंमें परिवर्तन होगा। कार्य तो सदा धीरे धीरे होता है। ज्यों-ज्यों समय जायगा, राष्ट्र विचार-विमर्ष तथा पंचायती फैसलोंपर अधिकाधिक विश्वास करेंगे और शनैः-शनैः सेनाओंपर कम व्यय करेंगे, सम्भव है कि सेनाएँ केवल दर्शन-मात्र की चीज रह जायँ, जिस प्रकार खिलौने पुरानी किसी चीज के अवशेष होते हैं, न कि राष्ट्रकी रक्षाके साधन।"

अध्याय—१६

शांतिके पथपर

भारतके अर्द्ध-नग्न फकीरने आखिर दुनियाकी महानतम् राजनैतिक शक्तिको जनबलके सामने झुकाकर उसके प्रतिनिधि वाइसरायको समझौता करनेके लिए विवश करके ही छोड़ा। यह पहला अवसर था जब कि शक्तिशाली ब्रिटिश राजको एक निहत्थे राष्ट्रके प्रतिनिधिके साथ बराबरीके साथ सौदा और समझौता करना पड़ा था। गांधीजीके सत्याग्रह-आन्दोलनके प्रारम्भ होनेपर संसार और खुद ब्रिटिशशाहीको वह एक खिलवाड़ मालूम हुआ था! किन्तु गांधीजीके अहिंसक; पर प्रचंड आन्दोलनकी आँधीने कुछ ही समयके भीतर जब ब्रिटिश नौकरशाहीके खम्भोंको हिलाकर झकझोर डाला, तो अंग्रेजोंकी मुचकुन्द-निद्रा अँगड़ाई लेकर टूटने लगी। तब उन्हें मालूम हुआ कि जिस भारतीय राष्ट्रको वे निर्बल और निष्प्राण एवं गतिविहीन समझे हुए थे, उसमें कितनी शक्ति, सजीवता और जागरूकता भरी हुई है! उन्हें यह भी मालूम हो गया कि जिस भारतीय जनताको वे दुर्बल और असहाय समझे हुए थे, उसमें कितना असीम बल और आत्मनिर्भरता सन्निहित है। और उन्हें यह जाननेमें भी देर न लगी कि भारतीय जनताकी दबी हुई इन शक्तियोंको उभाड़कर जिसने सजीव और सक्रिय बनाया, वह प्रेरक शक्ति क्षीणकाय अर्द्ध-नग्न फकीर महात्मा गांधी ही हैं। यही कारण था कि संघर्षके दावानलसे भयातुर होकर अंग्रेज वाइसरायने १२ महीनोंके भीतर ही महात्मा गांधीसे समझौता कर लिया।

इस समझौतेसे भारतीयोंको भी अपनी ताकतका पता लग गया। जो भारतीय जनता अब तक अपनेको अंग्रेजोंके सामने निस्तेज और निर्वीर्य

समझती थी, वह अपनेको अब सबल और समर्थ प्रतीत करने लगी! निःसन्देह वृद्ध जामवन्त गांधीजीने भारतीय राष्ट्रको अपनी अन्तर्निहित शक्ति और पौरुषके प्रति जागरूक कर दिया था। श्रीत्रिपाठीके शब्दोंमें, उन्होंने एक निहत्थे, दलित, मूर्च्छित और निरुपाय राष्ट्रको अपने नये प्रयोग और अपनी नयी विचार-धारासे सजीव, जाग्रत्, कृतसकल्प, आदर्शानुप्राणित तथा पथोपलब्ध महान् राष्ट्रके रूपमें निर्मित कर डाला। उन्होंने वह कर दिखाया जिसे जगत् असंभव समझता था।*

शांतिके पथपर

समझौता हो जानेसे काँग्रेसने गांधीजीके अनुसार हथियार रख दिये थे और असहयोगके बदले सहयोग तथा आन्दोलनके बजाय शांतिका मार्ग अपनानेके लिए तत्पर हो गयी थी! गांधीजीने खुले और स्पष्ट शब्दोंमें अपने वक्तव्यमें घोषित भी कर दिया था कि काँग्रेसने जान-बूझकर, यद्यपि अस्थायी तौरपर ही सही, सहयोगका मार्ग ग्रहण किया है।" स्वेच्छासे ग्रहण किये इस मार्गका अनुसरण करनेके लिए गांधाजीने काँग्रेसको भी पूरी तरहसे अनुप्रेरित किया था। उनका विश्वास था कि "यदि काँग्रेसी ईमानदारीसे समझौतेकी उन शर्तोंका, जो उनपर लागू होती हैं, पूरा-पूरा पालन करें, तो काँग्रेसका गौरव बहुत बढ़ जायगा और सरकारपर इस बातका सिक्का बैठ जायगा कि जहाँ काँग्रेसने मेरी रायमें, अवज्ञा-आन्दोलन चलानेकी योग्यता सिद्ध कर दी है, वहाँ उसमें शांति बनाये रखनेकी भी क्षमता है।" गांधीजीको अपने इस कर्त्तव्यके सामने यह भी चिन्ता न हुई कि दूसरे पक्षका याने सरकारका समझौतेके प्रति कैसा रुख होगा। कर्त्तव्यनिष्ठ अपने कर्त्तव्यकी ही चिन्ता अधिक रखते हैं और दूसरोंकी अकर्त्तव्यशीलतासे प्रभावित नहीं हुआ करते। इसीलिए आगे चलकर

---

* बापू और भारत—पृष्ठ २६८

सरकार द्वारा समझौतेकी शर्तोंके भग किये जानेपर भी गांधीजी अपने इस कर्त्तव्य और शांतिके मार्गसे न तो विचलित हुए और न हटे ही।

असन्तुष्ट दल

गांधीजीकी अनुवर्तिनी कौंग्रेसने भी उनके इस शांति-पथका अनुसरण किया, लेकिन उसका वाम-पक्ष शांति और समझौतेकी इस नीतिसे सन्तुष्ट न था। उन्होंने उग्रतासे समझौतेका विरोध करनेका हर प्रकारसे प्रयत्न किया। यद्यपि अल्पमतमें होने और जनताका सहयोग न रहनेसे उनकी आवाज़ अरण्य-रुदनकी भाँति निष्फल गयी। वाम-पक्षियोंने समझौतेके तुरन्त बाद उसके विरोधमें दिल्लीमें लाल पर्चे बँटवाये, जिसमें यह कहा गया कि समझौतेके अनुसार जो शांति स्थापित की गयी है वह कोई शांति नहीं; क्योंकि मार्शल लॉ और हिंसात्मक जुर्मोंमें फाँसे गये राजनैतिक बन्दी अभी जेलोंमें ही सड़ रहे हैं। अतः वाम-पक्षी चाहते थे कि गांधी-अरविन समझौता तोड़ दिया जाय, और लड़ाईको जारी रखा जाय। लेकिन गांधीजी इस बातको जानते थे कि १२ महीनोंके संघर्षके बाद देश इस स्थितिमें नहीं था कि वह अविरल रूपसे बिना किसी विरामके संघर्षमें पिला रहे। इसीलिए समझौतेके होनेपर उन्होंने कहा था—"मैं परमपिताको धन्यवाद देता हूँ कि समझौता हो गया और देश कम-से-कम अभी तो उस मुसीबतका सामना करनेसे बच गया जो बातचीत असफल होनेकी हालतमें सैकड़ोंगुनी बढ़ जाती।" यही कारण था जिसने गांधीजीको हर प्रकारसे शांति बनाये रखनेके लिए कटिबद्ध कर दिया था। अतः ७ मार्चको दिल्लीकी आमसभामें उन्होंने वामपक्षियोंके विरोधका उत्तर देते हुए स्पष्ट घोषित किया कि "कराँची-कौंग्रेससे गांधी-अर्विन समझौतेको स्वीकार करनेको कहूँगा, और यदि मुल्कने उसे स्वीकार न किया, तो वे वर्किंग कमिटीपर अविश्वासका प्रस्ताव ला सकते हैं और उसकी जगह दूसरी कार्य-समिति चुनकर कौंग्रेसका कार्य चला सकते हैं...।" इस प्रकट धमकीके साथ-साथ गांधीजीने

वाम-पक्षियोंको यह विश्वास भी दिलाया कि यदि जनता और कॉंग्रेसवादियोंने समझौते की शर्त्तोंको पूरी तरहसे पालन कर कॉंग्रेसको शक्तिशाली बना दिया, तो "वह समय दूर नहीं है जब कि इन कैदियों (जिनके लिए वाम-पक्षी चिन्तित और उतावले हो रहे थे) में से, मय नजरबन्दों, मेरठ-षड्यन्त्रके कैदियों तथा समस्त अन्य राजबन्दियोंके, एक-एक छूट जायगा।"

वस्तुतः वाम-पक्ष नौजवानोंका एक दल था, जिसमें तेजी, छटपटाहट और उतावलापन होना स्वाभाविक-सी बात थी। अनुभवी और राजनीतिके भीष्म-पितामह गांधीजी यद्यपि उनके इन गुणों और उबलते देश-प्रेमके प्रति सहानुभूति रखते थे, लेकिन राष्ट्र निर्माणके लिए हर समय इस उग्रता और उतावलेपनसे कार्य करना अहितकर और अकल्याणप्रद भी समझते थे। निःसन्देह किसी ध्येय तक पहुँचनेके लिए हड़बड़ी और दुश्चिन्तासे पूर्ण अशांत मानसिक और शारीरिक चेष्टाएँ हमें लक्ष्य तक पहुँचानेके बजाय अपनेमें ही उलझा डालती हैं और जल्दीकी उत्सुकतामें हम अपने आगेके खन्दक और खाइयों तकको नहीं देख पाते हैं जिससे अधैर्यवश कभी-कभी हम उनमें गिरकर दौड़नेवाली टाँगोंको तोड़ तक डालते हैं। अतः दौड़ो नहीं, सम्भलकर चलो, अशांत नहीं, शांत रहो और धैर्यपूर्वक आगे बढ़ते चलो, यही गांधीजीकी नवयुवक वाम-पक्षियोंके लिए नेक सलाह थी। उन्होंने अपने वक्तव्यमें ऐसे नवयुवक और नवयुवतियोंको, जो समझौतेसे निराश और दुःखी थे, सम्बोधित कर कहा था—"मुझे मालूम है, जहाँ ऐसे स्त्री-पुरुष होंगे जो समझौतेके कारण फूलकर कुप्पा हो जायँगे, वहाँ ऐसे लोग भी हैं जो बहुत...निराश हैं।...वीरतासे कष्ट सहना तो उनके लिए इतना स्वाभाविक है जैसे मानों साँस लेना। वे तो मानों इसीमें सबसे ज्यादा खुश हैं, असह्य कष्टोंको भी वे सह लेंगे। लेकिन जब उनके कष्टोंका अन्त होता है तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारा काम बन्द हो गया है और हमारा लक्ष्य आँखोंसे ओझल हो गया। उनसे मैं केवल यही कहूँगा कि धैर्य रखो, देखो, प्रार्थना करो, और आशा रखो। कष्ट सहनकी भी एक हद होती है। कष्ट

सहनमें बुद्धिमानी और मूर्खता दोनों सम्भव है और जब कष्ट-सहनकी आखिरी हद आ जाती है तो उसे और बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं, बल्कि परले सिरेकी बेवकूफी है।" किन्तु उतावला युवक अपनी बेवकूफीमें ही अधिक सुखका अनुभव करता है और गंभीर विवेचनासे किसी हद तक वैर ही रखता है। फलतः गांधीजीके इन वक्तव्यों और उपदेशोंके बावजूद वाम-पक्षी युवक दलमें तात्कालिक असंतोष बना ही रहा।

अहमदाबाद में

लेकिन इस असंतोषके बावजूद गांधीजी अपने शांतिके प्रयत्नोंपर कार्य करते चले गये। दिल्लीमें पुनः वाइसरायसे भेंट करनेके बाद गांधीजी अहमदाबाद आये। १२ महीने पूर्व ऐतिहासिक डंडी-यात्राके बाद महात्मागांधी इस समय प्रथमबार विजयी होकर वहाँ आये थे, और इस खुशीमें उल्लाससे पूर्ण सम्पूर्ण नगरके नर-नारियोंने मिलकर उनका शाही शानसे स्वागत किया। उनके स्वागत में नदीके पवित्र तटपर नगर वासियोंकी तरफसे एक सभा भी बुलायी गयी जिसमें कड़कती धूप और जलती हुई बालूके होते हुए भी डेढ़ लाख स्त्री-पुरुषों के जमघटने भाग लिया और अपनी परेशानियोंको भुलाकर घंटों गांधीजीके आगमनकी शांतिपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। गांधीजीके पहुँचने पर दर्शनको उत्सुक भीड़का संयम बालूकी भीतके समान बह चला और ऐसी धका-पेल मच उठी कि अनेक व्यक्ति बढ़ती हुई उन्मत्त भीड़के पैरों तले पड़कर कुचल गये। स्वयं गांधीजीको भी इस अपार भीड़के कारण मंच तक पहुँचनेमें काफी कठिनाई उठानी पड़ी।

नागरिकोंकी तरफसे गांधीजी के सम्मानमें जो भाषण पढ़ा गया उसमें उनके कुशल नेतृत्वमें हुए सत्याग्रह-संग्रामका उल्लेख और अहिंसाकी विजय तथा जनताके आत्मत्यागकी प्रशंसाकी गयी थी! भाषणके अंतमें ईश्वरसे गांधी-

जीके दीर्घायुके लिए प्रार्थनाकी गयी थी जिससे वे मुल्कको अपने अंतिम लक्ष तक पहुँचा सकें ।

इस सम्मानका उत्तर देते हुए गांधीजीने समझौतेपर प्रकाश डाला तथा उसके औचित्यको सिद्ध करते हुए जनतासे अनुरोध किया कि वे मन, वचन और कर्मसे अपनेपर लागू होनेवाली उसकी प्रत्येक शर्तोंका पूरी तरहसे पालन करें । उन्होंने कहा—

'जो समझौता हुआ है, वह इतना सुगम कि एक बच्चा भी उसे समझ सकता है बल्कि एक बालकको भी उसे समझनेका प्रयत्न करना चाहिए । वक्ता और कार्य समितिकी निगाहोंमें समझौतेमें जहाँ तक पहुँचा जा सकता था, पहुँचा गया है । उससे स्वराज्य तो नहीं मिल पाया है, लेकिन स्वराज्यके लिए दूसरा दरवाजा खुल गया है ! वे स्वराज्यको असहयोगके वांछित अस्त्रसे जीतना चाहते हैं । इस बीचमें सत्याग्रहियोंके रूपमें उन्हें संधि-वार्ता और समझौतेके जरिये द्वार खोलने चाहिएँ और यदि दरवाजे खुल सकें, तो उसमें प्रवेश करना चाहिये । उन्हें समझौतेकी शर्तोंका पालन करना चाहिये । अगर वे अपनी शक्ति को पूर्णरूपसे बढ़ाना चाहते हैं, तो उन्हें साम्प्रदायिक एकताके लिए प्रयत्न करना चाहिए, शराब पीनेके दुर्गुणको मिटाना चाहिए, विदेशी वस्त्रका बहिष्कार करना और खद्दरका उत्पादन बढ़ाना- चाहिए । तभी वे पूर्ण स्वराज्यको प्राप्त कर सकते हैं ।'*

पूर्ण स्वराज्यके इन साधनोंमें सबसे दुष्कर साम्प्रदायिक एकताकी प्राप्ति थी । यह समस्या हल होनेके बजाय दिन-ब-दिन उलझती जा रही थी और राष्ट्रीय आन्दोलनके विकासके पथमें अड़चनें खड़ी कर रही थी । अतः राष्ट्रके निर्बाध विकासके लिए जरूरी था कि देशमें साम्प्रदायिक ऐक्य हो । गांधीजी इसीलिए इस समस्या के प्रति प्रारम्भसे ही चिन्तातुर थे और इसी समस्याको हल करनेमें

* Mahatma Gandhi, the Man And his Mission. p. 193

उन्होंने अन्ततोगत्वा अपने प्राण भी विसर्जित किये। क्योंकि आगे चलकर हिन्दू-सिख और मुस्लिम ऐक्यके प्रचार करनेके कारण एक पागल साम्प्रदायवादी हिन्दूने ३० जनवरी १९४८ को उन्हें अपनी अधमता की गोलियोंका निशाना बनाया। गांधीजी हमेशासे इस बातपर जोर देते आये थे कि बहुसंख्यक हिन्दुओंको चाहिए कि अपने सक्रिय उदार प्रयत्नोंसे अल्पसंख्यक मुसलमानोंके दिलोंमें घर कर लें। सन् १९२९ में उन्होंने कहा था कि यदि दोनों सम्प्रदायोंमेंसे एक भी बहादुरीसे यह कह दे कि "लो जो कुछ तुम्हें चाहिए और हम जो बचेगा उसीमें संतुष्ट रहेंगे" तो सारी साम्प्रदायिक समस्याका ही अन्त हो जायगा। लेकिन इस घोषणाका उत्तरदायित्व गांधीजीने हिन्दुओं पर रखा क्योंकि उनका कहना था कि मुसलमानोंसे संख्यामें वे बहुत अधिक हैं। इसी प्रकारकी राय गांधीजीने इस समय समझौता होनेपर हिन्दुओंको दी थी। उन्होंने कहा कि हिन्दुओंको चाहिए कि जो कुछ भी मुसलमान चाहें उन्हें दे देना चाहिए। गांधीजीने हिन्दुओंको पिछले सत्याग्रहका स्मरण दिलाते हुए बतलाया था कि १२ महीनोंके असहयोग आन्दोलनके बावजूद कोई भी ताकत उनकी हस्ती और सत्ताको नहीं मिटा सकी है। इसलिए उन्होंने कहा था कि यदि मुसलमान और दूसरे अल्प-संख्यक-वर्ग व्यवस्थापिका सभामें सारी सीटें भी लेलें तो भी हिन्दुओंका कोई नुक-सान नहीं हो सकता। उन्होंने कहा—"हमें तो भारतका विनम्र सेवक बनना चाहिए और किसी पदका लोभ नहीं करना चाहिए। अपितु राष्ट्रीय सेवाके क्षेत्रमें जितनी चाहें उतनी प्रतियोगिता हम दिखा सकते हैं। अगर हिन्दू इस सिद्धान्तको नहीं मान सकते तो उन्हें मुझसे भी सरोकार न रखना चाहिए, पर-यदि—वे साम्प्रदायिक ऐक्यको स्थापित करना चाहें तो उन्हें घोषित करना चाहिए कि वे कुछ नहीं चाहते। अगर वे ऐसा कर सके तो वे हिन्दुस्तानको बचा लेंगे और पूर्ण स्वराज्य स्थापित कर सकेंगे।" गांधीजीने १२ मार्च के यंग-इंडियामें पूरी चेतावनी देते हुए कहा था कि बिना हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके रांउड टेबिल कान्फ्रेंसमें शामिल होना भी निरर्थक होगा। किन्तु भारत का

दुर्भाग्य था जो हिंसक मुस्लिम लीग और महासभाके द्वारा समय समय पर ऐसी स्थितियाँ पैदा करदी गयीं कि अन्ततोगत्वा भारत अपनेको उस खतरेसे न बचा सका जिसके विषयमें गांधीजी प्रारम्भसे ही हमें आगाह करते आ रहे थे और जिसके परिणाम स्वरूप ही आज भारत विखंडित है। आज सम्प्रदायिक विषके परिणामस्वरूप जब हम पूरे पाकिस्तानको गैरमुसलिमके खूनसे रँगा देखते हैं तथा उसका प्रतिशोध पूर्वी पंजाब और दिल्लीमें देखते हैं, तो हमें कलकत्तेका मुसलिम लीगी डाइरेक्ट ऐक्शन, विहारका प्रतिशोध-उन्माद, नोआखालीका लीगी कसाईखाना, आदि अपने आप याद हो आते हैं। अतः देशके प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान और सिखको अब समझमें आ रहा है कि गांधीजी क्यों जीवनपर्यन्त इस साम्प्रदायिक ऐक्य पर जोर देते रहे, तथा अन्तमें इसकी वेदी पर हा बलिदान हो गये। शर्म तो यही है कि इतना होने पर भी साम्प्रदायिकताकी समस्या अभी भी अपने पूरे विषैले रूपमें व्याप्त है यद्यपि उसका उग्र रूप फिलहाल ऊपरी सतह पर कम दिखायी पड़ता है। कह नहीं सकते कि यह विष पुनः कब उग्रतासे फैल जायगा। अतः अगर अब भी हिन्द और पाकिस्तानके नेता एवं साम्प्रदायवादी नहीं चेते तो आगे जो दुर्दिन देखने पड़ेंगे, उसका अनुमान भी अभी नहीं किया जा सकता।

दौरे पर

अहमदाबादके बाद गांधीजीने गुजरातके गाँवों और विशेषकर बारदोली तथा उन ताल्लुकों का दौरा शुरू किया, जिन्होंने कर-बन्दी आन्दोलन में बहुत भाग लिया था। वे चाहते थे कि इस असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेवाले दुःखियों से खुद मिलकर वे उन्हें सांत्वना प्रदान करें! अतः वे भ्रमण करते हुए सर्वत्र ग्रामीण जनतासे मिले, और बुद्धके शान्त स्मित द्वारा उनके संतप्त दिलों को सांत्वना दी! उन्होंने लोगोंको 'समझौते'की शर्तोंका ज्ञान कराया और उन्हें उसपर चलनेके लिए प्रेरित किया। इस बातपर खासकर जोर दिया कि असह-

योगात्मक कार्योंसे हटकर अब समझौतेके अनुसार उन्हें शांतिका मार्ग ग्रहण करके निर्माणात्मक कार्योंमें जुट जाना चाहिए। उनका कहना था कि "एक किसानकी भाँति, खेत जोतनेके बाद, जैसे वह अपना पूरा ध्यान फसलके उगने पर केन्द्रित कर देता है, इसी प्रकार कॉंग्रेसके कार्यकर्ताओंको असहयोगके रूपमें एक साल के विध्वंसात्मक कार्योंके बाद, गंभीरता-पूर्वक कॉंग्रेसके निर्माणात्मक कार्योंमें लग जाना चाहिए।*"

एक ही ध्येय

इस समय निःसन्देह गांधीजीके सामने एक ही ध्येय और लक्ष्य था—समझौते की शर्तोंको पूरा करके निर्माण और शांतिके कार्योंमें देशको लगाना। अतः वे जहाँ भी जाते 'समझौते' को पूरा करनेकी ही चर्चा किया करते थे। अपने पत्र 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में भी वे लेख बहुधा इसी विषयको लेकर लिखते थे। उनका विश्वास था कि समझौते की शर्तोंको पूरा कर दनेसे कॉंग्रेस की शक्ति अजेय हो जायगी और राष्ट्रके गौरवको पुनःस्थापित करना उसके लिए बहुत सुगम हो जायगा। इससे यह भी सिद्ध हो जायगा कि भारत-वासी विध्वंसात्मक कार्योंके अलावा निर्माणात्मक कार्योंमें भी समान रूपसे कुशल और योग्य हैं और उनमें विनाश की ही नहीं, सृजन की भी क्षमता है। स्पष्ट है कि गांधीजीका दृष्टिकोण विनाशकारी-क्रांति की अपेक्षा परिवर्तनकारी-क्रांति रहा है। वे अहिंसाके आधारपर ही 'स्वराज्य' का निर्माण चाहते थे इसलिए स्पष्ट था कि वे विनाश की जगह परिवर्तनके पोषक थे। वे नृशंस अँग्रेज और उनके नीचे काम करनेवाले अफसरों तथा देशके नृशंस राजाओं और जमींदारों, आदि का अस्तित्व राष्ट्रके लिए घातक समझते थे, किन्तु हिंसात्मक तरीकोंसे उन्हें नष्ट करनेके बजाय वे उनके 'हृदय-परिवर्तन' में विश्वास करते थे। बैरको बैरसे,

---

* ३—वही पृष्ठ १९४

हिंसाको हिंसासे और घृणाको घृणासे कभी नहीं दबाया जा सकता, इसलिए वे इन्हें जीतनेके लिए प्रेम, अहिंसा और मैत्री के अचूक अस्त्रोंका प्रयोग चाहते रहे। अतः देशको इस मार्गपर ले जानेके लिए जरूरी था कि वे उसे 'सहयोग' पर चलनेका भी अभ्यास कराते। ये ही सब कारण थे जिनसे गांधीजी इस समय राष्ट्रसे समझौतेको पूरा करानेके लिए कटिबद्ध थे।

१२ मार्चके 'यंग-इंडिया' में समझौतेको 'कैसे पूरा किया जाय' लेखमें गांधीजीने राष्ट्रको निम्न प्रकारकी सलाह दी थी—"यद्यपि अहिंसाको हम सर्व-सुन्दर नीति स्वीकार कर चुके हों, हमें मालूम होना चाहिए कि, जबतक समझौता स्थित है, हमारे लिए उससे संबंधित शर्तों और कानूनोंको मानकर चलना अपरिहार्य है। मैं कह सकता हूँ कि कभी-कभी ऐसी आज्ञाओंका पालन करना हमें कठिन प्रतीत होगा, जो नियमके प्रतिकूल होंगी। हमारा अधिकारी वर्गमें सहसा 'हृदय-परिवर्तन' की आशा रखना व्यर्थ है। इसलिए, अगर हम अपनी शक्ति और असहयोग आन्दोलनको पुनः सचालिन करनेकी क्षमतामें विश्वास रखते हों ; जब कि वह हमारे लिए आवश्यक हो जाय, तो हमें खेद-जनक आज्ञाओं का पालन करनेमें भी कठिनाई न होनी चाहिए।"

दिल्ली में

गुजरात और बम्बई का भ्रमण करनेके बाद महात्मा गांधीजी पुनः दिल्ली लौटकर लार्ड अरविनसे मिले और समझौतेके आधारपर उनसे राजनैतिक बन्दियों को छोड़नेकी माँग की, जो कि पूरी भी हुई थी।

लार्ड अरविन गांधीजीकी सत्यता, अहिंसा और बचन निष्ठासे बहुत प्रभावित था। जयपुर महाराजके यहाँ प्रीति भोजके अवसरपर उसने गांधीजीके प्रति अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा था: "गांधीजीके साथ बातें करनेसे मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि मैं उनके बचनोंका भरोसा कर सकता हूँ, और मुझे पूरा यकीन है कि वे अपनी शक्ति-भर समझौतेकी शर्तोंका पूर्ण पालन करायेंगे।'

वाइसरायके इस विश्वासको गांधीजीने अक्षरशः पूरा करके दिखला भी
देया था। अतः १८ अप्रैल १९३१ को वाइसराय यह विश्वास लेकर इंगलैंड
ो रवाना हुआ कि समझौता फलीभूत हुआ है और गांधीजीके सद्प्रयत्नोंसे
ंगलैंड और भारतके बीच सहयोग और सद्भावना स्थापित हो जावेगी। २०
ार्चको दिल्लीमें राजाओंकी एक दावतमें भाषण करते हुए वाइसरायने अपने
स विश्वासको प्रकट भी कर दिया था।

गांधीजीकी सत्यता, निष्ठा और देशभक्तिकी उन्मुक्त कंठसे प्रशंसा करते
ए लार्ड अर्विनने कहा था कि महात्मा गांधी अपनी तरफसे समझौतेको पूरा
राने और शांतिमय वातावरणको स्थापित करनेके लिए पूर्ण रूपसे प्रयत्नशील
। और मैं भी स्वयं, लार्ड अर्विनने घोषित किया, वह सब करनेकी आशा
रता हूँ, जिससे भारत और इंगलैंडके बीच एक शांतिदायी समझौता हो सके!

—— ——

अध्याय—१७

खूनी वातावरण

महात्मा गांधीजी शांति स्थापनाके लिए कमर कसकर कार्य कर रहे थे, लेकिन असहयोग आन्दोलनकी भाँति इसमें भी उन्हें कम दिक्कतों का सामना नहीं करना पड़ रहा था। शांतिकी शुभ्र-ध्वजा हाथमें लेकर जब वे राष्ट्रके उत्तेजित मनोभावोंको आर्द्र करके सहयोगके कूलोंमें प्रवाहित करनेका प्रयत्न कर रहे थे, तो दूसरी ओर सरकारकी उत्तेजक नीति राष्ट्रके शीतल होते हुए वातावरणको प्रज्वलित करनेका प्रयत्न कर रही थी। फलतः प्रारम्भसे ही समझौतेसे असंतुष्ट वाम-पक्ष, सरकारके उत्तेजक कार्योंसे प्रदीप्त होकर गांधीजीके शांति-पथका धूम्र केतु होना चाहता था। लेकिन देशका यह सौभाग्य था कि यह धूम्र-केतु गांधीजी की शीतलतासे खुद शीतल होकर किसी प्रकारसे उत्पात करनेसे रुक गया था।

इस धूम्र-केतु और अशांतिको भगतसिंहके खूनसे रञ्जित वातावरणने पैदा कर दिया था। सरदार भगतसिंह और उनके साथी राजगुरू व सुखदेवको, सौण्डर्सकी हत्याके कारण लाहौर-षड्यन्त्र केसमें फाँसीकी सजा दी गयी थी। इस सजासे देशमें बहुत असंतोष फैल रहा था। गांधीजीसे जब समझौतेकी बातचीत हो रही थी, उसी समयकी यह बात है। अतः गांधीजीने तब वाइसरायसे अनेक बार इस सजाको बदल देनेके लिए सिफारिशें कीं, पर सरकार हमेशा इस बातको टालती गयी। पंजाब-सरकार भगतसिंह आदिको फाँसी देने पर तुली हुई थी, और वाइसराय वहाँकी सरकारकी इच्छाके विपरीत कार्य करनेमें असमर्थ थे। परिणामतः पंजाब सरकारकी खूनी प्रतिहिंसाने २३-२४ मार्चकी रातको भगतसिंह और उनके साथियोंको फाँसीके तख्तेपर झुलाकर ही चैन लिया। सरकारकी इस खूनी नीतिने देशके सारे वातावरणको उत्तेजना और शहीदोंके खूँनके पवित्र रंगसे

रंग दिया था। जनमतके विरोधमें इस खूनी नीतिको बरतकर सरकारने राष्ट्रके दिलको गहरी ठेस पहुँचायी थी। गांधी-अर्विन समझौता हो जाने पर देशको ऐसी आशा न थी कि सरकार प्रतिहिंसासे ही काम लेगी और शांतिके मार्गमें खुद ही रोड़ा उपस्थित करेगी। निःसंदेह सरकारकी इस प्रतिहिंसाने सहयोग और मेलकी भावनाओंको कुण्ठित कर डाला था। सरकारकी नेकनीयतीके प्रति शंकाएँ पैदा कर दी थीं। सच था कि समझौतेकी शर्तोंमें इन शहीदोंकी रिहाई शामिल न थी तथापि ऐसे मौके पर जब कि देश पिछले आन्दोलनके कारण अभी तक अँग्रेजोंके प्रति रोष और अविश्वाससे भरा हुआ था, उनको फाँसीपर चढ़ाना एक बहुत ही गलत कार्य था, जिससे अशांति और असहयोगकी भावनाओंका प्रदीप्त होना स्वाभाविक था। गांधीजी इस बातको देखकर बहुत क्षुब्ध थे। वे शांति चाह रहे थे, लेकिन सरकारकी कुचेष्टाएँ उनके मार्गमें विघ्न पैदा करनेमें लगी थीं। फिर भी गांधीजीको विश्वास था कि गांधी-अर्विन समझौते में अपने कुछ ऐसे गुण मौजूद हैं जिसके आधारपर वह टिका रह सकता है। इसीलिए नौजवानोंके फाँसीपर लटकाये जानेके बावजूद आवेग और आवेशमें न बहकर वे देशको 'समझौते' के मार्गसे न हटनेके लिए कटिबद्ध थे। इस दुःख और आवेशके अवसरपर उन्होंने राष्ट्रको उसके कर्त्तव्यका ध्यान दिलाते हुए यह सान्त्वनाके शब्द कहे थे—"भगतसिंह तथा उनके दो साथियोंको फाँसी पर लटका देनेसे उन्हें शहीदीका ताज मिल गया है। आज सारा देश इन फाँसियों का समाचार पाकर दुःखी होगा और उन्हें इससे व्यक्तिगत हानि अनुभव होगी। मैं भी देशके इस दुःखमें देशवासियोंका साथ देते हुए अपने देशके नवयुवकोंको सावधान कर देना चाहता हूँ कि हमें उनके त्याग, उनके उद्योग और उनकी हिम्मतकी तो निश्चय ही नकल करनी चाहिए। पर उनके मार्गका अनुकरण न करें। देशका उद्धार खून-खराबीसे कभी नहीं होगा। सरकारने इस कार्यसे यह सिद्ध कर दिया है कि उसके सामने देशके करोड़ों आदमियोंकी आवाजका कोई मूल्य नहीं है। उसने इससे अपने पशुबलका ही परिचय दिया है।"

लेकिन साथही, गांधीजीने देश और कॉंग्रेसको अपने कर्तव्यके प्रति जागरूक करते हुए आगे कहा—"देशका कर्त्तव्य निश्चत और साफ है। कॉंग्रेसको अपने पथसे न भटकना चाहिए। हमें उत्तेजित होकर कोई गलती न कर बैठना चाहिए। मेरी रायमें सरकारने भगतसिंह आदिको फाँसी देकर जो गलती अपने हकमें की है, उससे हमें स्वाधीनता प्राप्त करनेकी और भी अधिक शक्ति आ गयी है। इस अवसरसे भी हमें लाभ ही उठाना चाहिए।"*

करांचीमें

दुर्भाग्यसे इस खूनी वातावरण में २५ मार्चसे कराँचीमें कॉंग्रेसका अधिवेशन भी शुरू होनेको था। अतः २३ तारीखको महात्मा गांधी जब दिल्लीसे पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीराजगोपालाचारी, डा० अन्सारी आदिके साथ कराँचीके लिए विदा हो रहे थे, उन्हें स्टेशनपर ही भगतसिंह आदि की फाँसी लगनेका समाचार मिल गया था। इस खबरने सभी नेताओंके हृदयको शोक और संतापसे भर दिया था। उपरोक्त-उद्‌गार महात्माजीने वहीं स्टेशनपर एक प्रेस प्रतिनिधिको वक्तव्य देते हुए प्रकट किये थे। यह दुःख मुल्क और उसके नेताओंको असह्य मालूम दिया। महामना मालवीयजीने कहा था—"मेरा दुःख इतना अधिक है कि मैं उसे प्रकट नहीं कर सकता।" पं० जवाहरलालको देशकी इस परवशता पर, कि वह करोड़ों कण्ठोंसे चिल्लाने और पुकारनेपर भी अपने प्यारे युवकोंको नहीं बचा सका, बहुत ही क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा था "हम सबके सब इतने असहाय हो गये हैं कि हम अपने प्यारोंको भी न बचा सके। उफ! आज सारा भारत देश अपने प्यारे युवकोंको भी फाँसियोंपरसे नहीं बचा पाया।"†

---

* कराँचीकी कॉंग्रेस, सम्पादित, जीतमणि लूणिया प्र० हिन्दी साहित्य मन्दिर अजमेर, पृष्ठ—२७-२८

† वही-पृष्ठ २८

काले फूलोंसे स्वागत

किन्तु इस दुःख और आवेगके बीच गांधीजी कृष्णकी तरह कर्त्तव्य रू
कुरुक्षेत्रमें अकम्पित और अडिग होकर दृढ़ खड़े थे। वे देख रहे थे कि देश
नौजवान इस आवेगके झोंकेको सह न सकनेसे उद्वेलित हो रहे हैं, और य
इस स्थितिसे उन्हें उबारा न गया तो वे प्रतिहिंसाके उन्मादमें देशको भी फँ
देंगे। स्थिति-प्रज्ञ गांधी राष्ट्रको इस प्रतिहिंसामें डूबनेसे बचानेके लिए हर तरह
सन्नद्ध थे। उन्होंने शिवकी भांति इस 'प्रतिहिंसा' के गरलको अपने कंण्ठमें सु
देने का निश्चय कर लिया था।

अतः नेताओंके सहित २५ ता० को सबेरे जब करॉचीके पास १३ मी
दूर मालिर स्टेशन पर महात्मा गांधी जी उतरे, और वाम-पक्षी लाल कुरते वा
कुछ युवकोंने जिनके हाथमें काले झंडे थे, उनका और उनके साथियोंका विरो
कर 'नेताओ लौट-जाओ' और 'समझौतेका नाश हो' आदिके नारे लगाये
वे शांत मनसे सब कुछ सुनते व सहते रहे। इन युवकोंमेंसे एक ने महात्म
जीका अपमान करनेकी नीयतसे काले फूल भी भेंट किये। परन्तु बुद्धको श
प्रतिमामें मुस्काते हुए गांधीजी ने सहज भावसे सभी प्रदर्शनकारियोंका मुक्त हृद
से स्वागत किया और बड़े अदबसे उनके हाथोंसे काले फूल ले लिये। परिणा
यह हुआ कि बुद्धके मूल पाँच शिष्योंकी भाँति जो प्रारम्भमें महात्माजी पर कुपि
होकर उनपर हमला करनेके लिए आये थे, उनके 'रक्षक' दलमें बदल गये।
निःसन्देह ये लाल कुरतेके युवक इतने उत्तेजित होकर आये थे कि यदि वे गांधी
के शातल प्रभावसे आर्द्र न हो जाते तो उन्हें मार भी सकते थे। लेकिन एकमा
ईश्वर पर भरोसा रखने वाले गांधीजीको तो विश्वास था कि वे इश्वर की प्रेरण
से ही देश और जगतके हितके लिए कार्य कर रहे हैं, इसलिए जबतक ईश्व
उनसे यह काम लेना चाहेगा कोई भी शक्ति उन्हें दुनियासे नहीं हटा सकती

---

* कॉंग्रेस का—इतिहास, पट्टाभि, पृष्ठ-४४४

अमर गांधीवाद

गांधीजी समझते थे कि क्रोध-जनित प्रतिहिंसा एक क्षणिक उन्माद है, और उससे देशका कोई हित नहीं हो सकता। देशका हित तो निर्मल और त्यागमय सेवाके जरिये ही किया जा सकता है। स्वराष्ट्र-निर्माण और स्वराज्य-लाभके लिए हमें सब कुछ सहकर भी सेवा और भक्ति-भावसे ही आगे बढ़ता रहना चाहिए। हिंसात्मक उत्तेजना और शस्त्रोंके स्पर्शसे दूर रहकर हमें प्रेम और सत्यके बलिदान-पथसे ही अग्रसर होना चाहिए। ये ही भाव थे, जिन्हें गांधीजी उत्तेजित नवयुवकोंके हृदयोंमें भी भर देना चाहते थे। अतः करांची-कॉंग्रेसके अपने भाषणमें गांधीजीने सर्वप्रथम भारतीय आन्दोलनके अहिंसात्मक और आध्यात्मिक पक्षपर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा—"यदि हम···आपसी दिलोंके वैरभावको तथा आपसके संदेहके परदेको उठाकर ईश्वरसे साक्षात्कार कर लें तो हमारी सब कठिनाइयाँ हल हो जायँ। हमारी लड़ाई धर्मकी लड़ाई है, प्रेमकी लड़ाई है, सचाईकी लड़ाई है,अतएव ईश्वर हमारे साथ है। यदि हम शांतिपूर्वक इसी तरह आगे बढ़ गये तो जो कुछ हम चाहते हैं, ईश्वर हमारी उस इच्छाको जरूर पूरी करेगा।"

फिर नौजवानोंका जिक्र करते हुए गांधीजीने आगे कहा—"जब मैं मालिर स्टेशनपर उतरा तो नौजवानोंने मुझसे कहा कि या तो भगतसिंहको हमें बताइये, या वापिस चले जाइए। युवकोंकी इस बातपर मुझे रोष नहीं आया है। मेरे जीवनमें तो ऐसी अनेक घटनाएँ घटी हैं। जो मनुष्य सेवा करना चाहता है, उसका कर्त्तव्य है कि जिनकी वह सेवा करता है उनके विरोधसे या क्रोधसे अपने-आपको प्रभावित न होने दे। जब मैंने उनके क्रोधित चेहरे देखे तो मैंने सोचा कि यदि ये लोग भी मेरे ऊपर क्रोध न करेंगे तो कौन करेगा। वे सब मेरे पुत्रके समान हैं। यदि वे मुझे मारें तो भी कोई हर्जकी बात नहीं है। मुझे मारना तो बहुत आसान है। मेरे पास न तो कोई खुफिया पुलिस है और न शरीर-रक्षक ही हैं—जो मेरी हिफाजत रखें। मेरा तो ईश्वर ही रक्षक है।

लेकिन मैंने इन नौजवानोंमें कोई ऐसा भाव नहीं पाया। उन्होंने तो सिर्फ यही कहा—"गांधी चले जाओ", "गांधी चले जाओ।" ऐसा कहने का उन्हें हक था। उनकी समझमें मैंने भगतसिंह आदिको फाँसीसे बचानेकी पूरी कोशिश नहीं की।" पर गांधीजीने उन्हें विश्वास दिलाया कि २२ ता० की रातको जब उन्हें मालूम हुआ कि भगतसिंह आदिको फाँसी दी जानेवाली है तो उन्होंने अन्तिम बार फिर लाट साहबको उसी रात एक बजे पत्र लिखा था, किन्तु "यह सब निष्फल गया।"

अपने प्रयत्नोंकी इस निष्फलतापर लाचारी प्रकट करनेके बाद भी सन्देहमें पड़े नवयुवकों और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यका उल्लेख करते हुए गांधीजीने अपना शान्त भाषण जारी रखते हुए आगे कहा—"यदि वे कहें कि मैं देशको नुकसान पहुँचा रहा हूँ, तो उन्हें ऐसा कहने का अधिकार है। किन्तु यदि वे इससे खराब बात मेरे लिए कहें तो भी मेरा धर्म तो यही है कि मैं उन्हें प्रेम और मुहब्बतके मार्गकी ओर प्रेरित करूँ। उनको इस ओर लानेके लिए मेरे पास किसी भी प्रकारके शस्त्र नहीं हैं। मेरे पास तो केवल प्रेमका प्याला है। जो उसका आनन्द लेना चाहते हैं, वे उस मार्गपर चल सकते हैं। जो उस मार्गको पसन्द नहीं करते, उनके विरोधको मैं सहन करता हूँ।"

अंतमें बिगड़े और बिखड़े हुए नौजवानोंको संदेश देते हुए गांधीजीने उनसे यह याचना की—"मैं केवल आप लोगोंकी सेवा करने योग्य हूँ। कृपा करके आगे आओ और मेरी सेवाओंका उपयोग करो। मैं किसीकी मृत्युपर प्रसन्न नहीं हूँ। मैं तो एक चोर और डाकूको भी जेलमें नहीं डालूँगा। यदि मैं भगतसिंह और उनके साथियोंको उनके मार्गसे विमुख कर सका होता, तो मैंने उनसे कह दिया होता कि उनके कार्य कितने निरर्थक हैं। भारत तो विनम्र लोगोंका देश है।

मैंने चालीस वर्षसे भी अधिक काल तक अहिंसाका अनुसरण किया है और मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि हिंसात्मक उपायोंसे भारतको मुक्ति नहीं मिल

सकती। आप देखें तो सही कि छोटे-छोटे बच्चोंने कैसे-कैसे काम किये हैं, उन स्त्रियोंने क्या किया है, जिन्हें इस देशमें अबला कहकर पुकारा जाता है। मान लो अगर आपने उनमें से बीस-तीसके हाथमें पिस्तौलें दी होतीं, तो क्या होता ? किन्तु क्या आप यह समझते हो कि उससे उनमें वे शक्तियाँ जाग्रत हो जातीं, जो इस समय जाग्रत हुई हैं।"

अतः गांधीजीने उच्च स्वरसे युवकोंको क्रोध त्याग करके धैर्य और शांतिका मार्ग ग्रहण करनेकी सलाह देते हुए कहा—"इसलिए मैं युवकोंसे धैर्य रखनेके लिए कहता हूँ। यदि वे अपने क्रोधका प्रदर्शन करेंगे तो देशकी प्रगतिको रोकेंगे।" निःसन्देह तब गांधीजी युवकोंको अहिंसात्मक युद्धके आधारभूत सिद्धान्तोंको हृदयंगम करानेके लिए आतुर हो रहे थे। वे चाहते थे कि युवक-समुदाय हिंसात्मक लड़ाईके दुर्गुणों—वैर, क्रोध और हिंसा का त्यागकर, अहिंसाके प्रेम और मैत्रीके मार्गको अपनाकर चलें। देशका हित वे इसी मार्गसे समझते थे। शत्रुको शस्त्रबलसे पराजित करनेमें भी गांधीजीको प्रसन्नता का अनुभव नहीं होता था, क्योंकि उससे केवल बाह्य विजय ही मिल सकती थी। लेकिन अगर हम शत्रुके हृदयपर अपने प्रेम और सचाईसे अधिकार कर लें तो हम रा यह अधिकार चिरस्थायी होकर भी रह सकता है, क्योंकि ऐसी 'विजय' दोनों पक्षोंको सुख देनेवाली होती है। ऐसी विजयमें जीत और हारका प्रश्न नहीं रहता, उसमें तो हमें आदान-प्रदानका ही सुख प्रतीत होता है। इसीलिए गांधीजी चाहते थे कि इन्हीं भावोंको लेकर हमारे उत्तप्त नौजवान स्वराज्यके अहिंसात्मक सग्राममें प्रवृत्त हों। अतः नवयुवकोंके सामने अपना उदाहरण पेश करते हुए उन्होंने कहा—"जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो अंग्रेजोंको भी शत्रु नहीं, अपना भाई समझता हूँ ; किन्तु नौजवान शत्रु समझते हैं। यदि वे क्रोध करेंगे, तो निश्चय ही अपने शत्रुओंके हाथ में फँस जायँगे। आप चाहे जितना क्रोध कीजिये, भगतसिंह वापस नहीं आ सकता। इसके विपरीत हमें अन्य भाइयोंसे भी हाथ धोना पड़ेगा। मैं नौजवानोंसे कहूंगा

कि सरकारने आपको क्रोधके लिए कारण दिया है तो भी परमात्माके नामपर, और यदि आपको यह पसन्द न हो, तो अपने प्यारे देशके नामपर, आप अपनी भावनाओंपर नियन्त्रण रखिये और हमारे मार्गसे स्वराज्य प्राप्त करनेमें अपनी शक्तियोंका उपयोग कीजिए। यदि आप ऐसा न करना चाहें तो कृपा-कर चुपचाप बैठ जाइए। मुझे अपने जीवनके शेष भागमें अपना काम कर लेने दीजिए।"

लेकिन इसीके साथ गांधीजीने न माननेवाले अविश्वासी और संशयी युवकोंको यह स्पष्ट चेतावनी भी दी थी कि वे ऐसा न सोचें कि वे 'गांधीवाद' को संसारसे मिटा डालेंगे। "विश्वास रखिये" गांधीजीने युवकों और उनके रूपमें अहिंसाके अविश्वासी जगत्‌को चेताते हुए कहा, "यदि आप मुझे और मेरे सब अनुयायियोंको मार डालें, तो भी गांधीवादका नाश नहीं हो सकता।" क्योंकि गांधीवाद नश्वर झूटसे परे परम सत्य है और इसलिए गांधीजीने सिंह-घोषणा की थी "कि आप सत्यका नाश नहीं कर सकते और सत्य ही गांधीवाद-का आधार है। गांधीवादका अर्थ है भारतके लिए स्वराज्य।"

इतना समझानेके बाद भी अगर युवक अपने हिंसक मार्ग से न हटे और उन्होंने 'गांधीवाद'को मिटाना ही चाहा, तो उसका परिणाम, गांधीजीने बतलाया, यही होगा कि वे "भारतीय स्वराज्य और उन सब मूल शक्तियोंका नाश कर देंगे जो जन-साधारणमें पैदा हो चुकी हैं और जिनको देखकर इस देशमें आनेवाला हरएक बाहरी व्यक्ति आश्चर्यचकित रह जाता है।" अतः गांधीजी-ने युवकोंसे कौंग्रेसके पथमें रोड़ा न बननेकी याचना करते हुए उन्हें समझाया कि "यदि युवक कौंग्रेसके अधिवेशनके कार्यको असम्भव बनानेका प्रयत्न करेंगे, तो इससे भगतसिंह वापस नहीं आ जावेगा। हाँ, वे देशकी उन्नतिको अवश्य रोक देंगे।"

यह सब समझाने-बुझानेके अनन्तर अन्तमें गांधीजीने अपनी हृदयगत भावनाओंको प्रकट करते हुए यह विश्वास दिलाया था कि "मैं स्वराज्य अथवा

रामराज्य चाहता हूँ। मैं शान्ति और प्रेमका राज्य स्थापित करनेका इच्छुक हूँ। यह राज्य केवल अहिंसासे ही स्थापित हो सकता है। वही मेरा एकमात्र स्वप्न है। मैं इसीके लिए जीता, खाता, चलता, फिरता तथा बोलता हूँ। परन्तु जिस दिन मेरी अन्तरात्मा मुझसे कह देगी कि देशको अब मेरी आवश्यकता नहीं है, जिस दिन मुझे विश्वास हो जायगा कि लोगोंने मेरी पुकारका उत्तर देनेसे इनकार कर दिया है, मैं उसी दिन भूखा रहकर अपने जीवनका अन्त कर लूँगा।"

निःसन्देह गांधीजीके सामने केवल एक ही उद्देश्य और लक्ष्य था—रामराज्यकी स्थापना। और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जब वे अपने जीवन और प्राणोंको समर्पित कर चुके थे, तब उन्हें कोई भी विरोध, चाहे वह कितना ही प्रबल क्यों न हो, रोक नहीं सकता था। उन्हें अपने साध्य और साधनपर दृढ़ विश्वास था जिसे युवकोंका क्रोध न गला सकता था न और मिटा सकता था। उन्हें युवकोंके व्यवहारपर रोष भी नहीं था, और न कोई हीला ही, उन्हें उनकी उतावली बुद्धि और असंयत जोशपर तरस जरूर था। वे नहीं चाहते थे कि युवक बौखलाहटमें आकर और आवेगके वशीभूत होकर देशकी प्रगतिमें किसी भी प्रकारसे अवरोध पैदा करें। इसीलिए उन्होंने युवकोंसे प्यारके साथ इतना ही चाहा कि यदि वे अपनी उग्र भावनाओंपर नियंत्रण रखनेमें असमर्थ हों और अपनी शक्तिको निर्माणके कार्यमें न लगा सकते हों, तो कृपाकर चुपचाप बैठ जायँ और उन्हें अपने जीवनके शेष दिनोंको शान्तिके साथ देशके निर्माणमें लगाने दें।

मगर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि गांधीजीका युवकोंपरसे विश्वास ही उठ गया था। ता० २६ मार्चको पत्रकारोंसे बातचीत करते हुए गांधीजीने विश्वासके साथ कहा था कि 'मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि समय आनेपर इन युवकोंको अपनी भूल मालूम हो जायगी, क्योंकि और देशोंमें चाहे जो हो, पर भारतके लिए हिंसा कभी अनुकूल हो ही नहीं सकती।" अतः उन्होंने भगतसिंह आदि युवकोंके साहस और त्यागपर गर्व प्रकट करते हुए यह इच्छा

प्रकट की कि यद्यपि "भगतसिंह आदिके साहस और आत्मत्यागके सामने सबके सिर झुक जाते हैं। पर मैं इनसे भी बडे साहस और त्यागकी आशा युवकोंसे रखता हूँ। वह साहस सौम्यता और अहिंसासे भरा होगा। उस साहसके बलपर लोग दूसरोंको चोट पहुँचाये या मनमें भी हिंसा भाव लाये बिना ही हँसते-हँसते फाँसीपर झूल जायँगे।"

इस विश्वासके ही बलपर गांधीजीने काँग्रेसके खुले अधिवेशनसे पूर्व नवयुवकों और नौजवान भारत सभाके सभापतिसे बातचीत की और उन्हें स्वराज्य-प्राप्तिके लिए काँग्रेसके साथ मिलकर चलनेको राजी कर लिया। इस प्रकार गांधीजीके शीतल प्रभावने यदि गर्म दलके उफानको शान्त न कर दिया होता, तो इसमें सन्देह न था कि कराँचीका काँग्रेस अधिवेशन शान्ति पूर्वक सम्पन्न न हो पाता और गांधी-अर्विन-समझौतेके मंजूर करानेमें काँग्रेसको बहुत ही कठिनाईका सामना करना पड़ता। उग्रवादी नौजवानोंके अलावा काँग्रेसके गरम-दलमें अभी भी कुछ ऐसे व्यक्ति मौजूद थे जा गांधी अर्विन समझौतेके पक्षमें न थे। विषय-समितिके सदस्य श्रीजमानादास मेहताने तो यहाँ तक कह डाला कि "यह सन्धि करके हार मान ली गयी है।" लेकिन २२ मार्चको जब महात्माजीने स्वयं गांधी-अर्विन समझौतेको उपस्थित करते हुए उसपर आलोचना-प्रत्यालोचनाके साथ भाषण किया तो विरोधकी रही-सही आशंका भी जाती रही, और दो-तीन विरोधियोंको छोड़कर, महात्माजीका प्रस्ताव बहुमतके साथ स्वीकृत हो गया।

इस प्रस्तावके संबंधमें महात्माजीने जो प्रभावशाली भाषण किया था, वह इस प्रकार था:—"समितिको अधिकार है कि वह इस समझौतेको मंजूर करे या रद्द कर दे। पर ऐसा करनेसे पहले उसे उसका अर्थ भली भाँति समझ लेना चाहिए। अच्छी तरह समझ लेने और उसकी शर्तोंका पूरी तरह पालन करनेसे काँग्रेसका बल बढ़ेगा। यह समझौता करनेमें न कोई भूल की है और न अपनी प्रतिष्ठा ही घटायी है।"

फिर अपने उपस्थित प्रस्तावका अर्थ समझाते हुए महात्माजीने आगे कहा—

"कॉंग्रेसने इसमें यह बात स्पष्ट कर दी है कि उसका पूर्ण स्वराज्यका लक्ष्य अब भी वैसा ही बना है। लोग पूछ सकते हैं, तुम पूर्ण स्वराज्यके साथ 'अपनी मरजीकी समझदारी' का मेल किस तरह बैठाते हो, जिसकी बात भी प्रस्तावमें कही गयी है? एक समय था जब मैं उपनिवेशपद वा औपनिवेशिक स्वराज्य शब्दको बहुत पसंद करता था। आज मुझे उपनिवेशपदका अर्थ ऐसे साम्राज्यसे सम्बन्ध रखना मालूम होता है जिसमें भारतके लिए भाषा, जाति, वर्ण (रंग)—किसी भी बातकी समानता नहीं। पर अपनी मरजीकी समझदारीका अर्थ यह होता है कि दोमेंसे कोई भी फरीक चाहे जब उस संबंधको तोड़ सकता है। अर्थात् इंग्लैंड और भारतमें आज जो मालिक और नौकरका संबंध है, उसकी जगह दोनोंकी हैसियत मित्रकी हो जायगी। चाहे जब सम्बन्ध तोड़ देनेके इस अधिकारसे ही पूर्ण स्वाधीनताके पदका अर्थ निकलता है।"

महात्माजीने अपने भाषणमें यह भी प्रकट किया कि "इस प्रस्तावने इस बातकी भी गुंजाइश रख दी है कि वैसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो कॉंग्रेस गोलमेजमें शरीक होनेका न्यौता नामंजूर कर सकती है। मान लीजिए कि सरकार समझौतेकी शर्तोंका पूरी तरह पालन न करे या वस्तुतः उसको तोड़ ही दे, तो कॉंग्रेसके लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायगी। साम्प्रदायिक झगड़े तय न हो सके तो भी कॉंग्रेसका गोलमेजमें जाना बेकार होगा। अगर समझौतेकी बातचीतका दरवाजा खुला रहे, तो कॉंग्रेस अपने प्रतिनिधियोंको आदेश देती है कि वे पूर्ण-स्वराज्यके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए, खासकर अपनी सेना, परराष्ट्र संबंध, कर-नीति, अर्थ-प्रबन्ध और सरकारी करोंके बारेमें पञ्चायती कमीशनसे जाँच करानेका अधिकार राष्ट्रको दिलानेके लिए उद्योग करें।

प्रस्ताव कॉंग्रेस-प्रतिनिधियोंको इस बातकी इजाजत देता है कि इन उद्देश्यों-को दृष्टिके सामने रखते हुए जिन तात्कालिक व्यवस्थाओं और संरक्षणोंसे भारतका अधिक-से-अधिक हित समझें उन्हें स्वीकार कर लें। सम्भव है कि ये प्रतिनिधि जिन संरक्षणोंको मानलें उन्हें कुछ कॉंग्रेसवादी भारतका अधिकतम हित करने-

वाला न मानें। पर यह जोखिम हमें उठानी ही पड़ेगी। प्रतिनिधि पूर्ण स्वराज्यके आदर्शसे कितना दूर हट जायँगे, यह भी एक जोखिम है जिसे लेना ही होगा। आप मजबूत दिलके प्रतिनिधियोंको इस कामके लिए चुनें तो यह जोखिम बहुत कुछ कम हो जायगी।"

इतना कहनेके उपरांत गांधीजीने प्रस्तावपर भेजे हुए संशोधनोंपर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—"एक संशोधनमें कहा गया है कि गोलमेज-सम्मेलनके निश्चय काँग्रेसके विशेष अधिवेशनमें स्वीकार कराये जायँ। इस संशोधनका अर्थ यह निकलता है कि काँग्रेसको अपने प्रतिनिधियोंपर विश्वास नहीं है। आप या तो अपने प्रतिनिधियोंपर पूरा विश्वास रखिये या फिर प्रतिनिधि मंडल बनाइये ही नहीं। याद रखिये कि आपके प्रतिनिधियोंको गोलमेज-सम्मेलनमें भारतके भावी शासन-विधानके संबंधमें केवल ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधियोंके साथ बहस न करनी होगी। अन्य ब्रिटिश दलोंके प्रतिनिधि भी वहाँ होंगे। फिर उन्हें देशके दूसरे दलोंके प्रतिनिधियोंके साथ मिलकर काम करना होगा। यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो हमारे प्रतिनिधियोंकी हैसियत विपक्षीसे मोल-भाव और पक्के निश्चय करनेके लिए पूर्ण अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधिकी न रह जायगी। फिर काँग्रेस तो जनताकी संस्था है। अगर प्रतिनिधि अपने अधिकारकी सीमाके बाहर चले जायँ तो वह उनके कार्योंको सदा ही अस्वीकार कर सकती है। अतः मेरा अनुरोध है कि निश्चयोंको विशेष काँग्रेससे मंजूर करनेकी शर्त लगाकर प्रतिनिधियोंका अधिकार सीमित न कर दिया जाय।"

महात्माजीके शांत और गंभीर भाषणके बाद नौजवानोंके सिंह-नेता श्री-सुभाषचन्द्र बोसने हर्ष-ध्वनिके बीच यह घोषित किया कि गरम-दल इस प्रस्तावको लेकर काँग्रेसके ऐक्यको नहीं तोड़ना चाहता। इस संबंधमें तब उन्होंने अपना एक लिखित वक्तव्य पढ़कर सुनाया जो इस प्रकार था—

काँग्रेसके गरमदलकी ओरसे मैं एक वक्तव्य उपस्थित करना चाहता हूँ जिसमें

वर्तमान अस्थायी समझौतेकी शर्तोंके सम्बन्धमें हमारी वृत्ति निश्चित रूपसे मालूम हो जाय।

हम लोग समझौतेकी शर्तोंको असंतोषप्रद और निराशाजनक समझते हैं। पर कुछ खास कारणोंसे, जिन्हें मैं अभी बता देता हूँ, हम यह समझ रहे हैं कि इस मौकेपर इस बातको लेकर कौंग्रेसमें दो दल करा देनेमें देशकी भलाई नहीं है। जनताके प्रबल विरोधकी उपेक्षा करके, ठीक कौंग्रेसके समय सरदार भगतसिंह और उनके साथी राजगुरु और सुखदेवको फाँसीपर चढ़ा देना सरकारके मिजाज और रुखका सच्चा पता दे रहा है। और हम समझ रहे हैं कि इसी समय हमने कौंग्रेसमें फूट डलवा दी तो दुश्मनोंने हमारे लिए बड़ी चालकीसे जो जाल बिछा रखा है, उसमें हम फँस जायँगे।

जो सरकार देश-भरमें मौंग किये जानेपर भी दो-चार प्राण-दण्डितोंकी सजा घटानेको तैयार नहीं हो सकती, हमारी रायमें वह राजी-खुशीसे अपने अधिकार न छोड़ेगी और भारतकी बागडोर आसानीसे लोक-प्रतिनिधियोंके हाथमें न सौंप देगी। अतः हमें निश्चय है कि कौंग्रेसको फिर लड़ाई शुरू करनी होगी और जल्दी ही। ऐसी अवस्थामें हमारे लिए यही उचित है कि अपने पक्षमें फूट पड़ने से रोकें, और आनेवाली लड़ाईके लिए तैयारी करें। और सब समयकी अपेक्षा इस समय हमारे लिए यह अधिक आवश्यक है कि एक होकर नौकरशाहीसे मोर्चा लें और उसे तथा दुनियाको दिखा दें कि महात्मा गांधीके नेतृत्व तथा पूर्णस्वराज्यकी मौंगके विषयमें सम्पूर्ण कौंग्रेसदल एक मत है।"

सुभाषबाबूके इस वक्तव्यके बाद रहे-सहे संशोधन भी लौटा लिये गये। यद्यपि कुछ एक लोगोंने क्षीण आवाजमें अब भी समझौतेका विरोध किया, किन्तु निर्जनकी आवाजकी भाँति किसीने ही उसपर ध्यान दिया। फलतः मत लिये जानेपर गांधीजीके समझौतेका प्रस्ताव अत्यधिक मतसे स्वीकृत हो गया। इस स्वीकृति के साथ कौंग्रेसने ३० ता० की बैठकमें भारत सरकार और कौंग्रेस-कार्यसमितिके बीच हुई अस्थायी सन्धिको मंजूर करते हुए यह प्रस्ताव किया कि "कौंग्रेस उसका

समर्थन करती है और यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि कॉंग्रेसका पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेका उद्देश्य ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यदि ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधियोंके किसी सम्मेलनमें कॉंग्रेसके प्रतिनिधियोंके जानेके मार्गमें दूसरे प्रकारकी रुकावटें न रह जायँ (और वे प्रतिनिधि उस सम्मेलनमें शरीक हों), तो कॉंग्रेसके प्रतिनिधि अपने उसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रयत्न करेंगे—खासकर इसलिए कि अपने देशको सेना, परराष्ट्र राष्ट्रीय आय-व्यय तथा—आर्थिक नीतिके संबंधमें अधिकार प्राप्त हो जायँ, भारतवर्षको ब्रिटिश सरकारने जो लेन देन किये हैं उनकी जाँच होकर इस बातका निपटारा हो जाय कि भारत और इंग्लैंड इन दोनोंमें से कोई भी जब चाहे तब एक दूसरेसे अलग हो जायँ। कॉंग्रेसके प्रतिनिधियोंको इस बातकी स्वतंत्रता रहेगी कि इसमें ऐसी घटा-बढ़ी करें जो भारतवर्षके हितके लिए प्रत्यक्षरूपसे आवश्यक सिद्ध हो। महात्मा गांधीको समेत स्वरसे कॉंग्रेस गोलमेज-सम्मेलनके लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त करती है और उनके अतिरिक्त जिन्हें कॉंग्रेस-कार्य समिति नियुक्त करेगी वे भी महात्माजीके नेतृत्वमें सम्मेलनमें कॉंग्रेसका प्रतिनिधित्व करेंगे।"

यह प्रस्ताव पं० जवाहरलाल द्वारा उपस्थित किया गया था। इस प्रस्तावके समर्थनमें भाषण करते हुए उन्होंने इस बातको बतलाने की चेष्टा की कि महात्मा गांधीके कहेपर चलनेसे देशका भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। उन्होंने कहा—"कोई विदेशी खुशीसे अधिकार नहीं दिया करता। दस वर्षसे हम महात्माजी द्वारा प्रदर्शित मार्गपर चल रहे हैं। हमने इसपर चलकर यदि सब कुछ नहीं तो कुछ-न-कुछ अवश्य प्राप्त कर लिया है।"

जवाहरलालजी के बाद उपस्थित प्रस्तावपर बहस हुई। श्रीजमनादास मेहता, श्री मेहरअली, श्री सर देसाई आदिने प्रस्ताव का फिर विरोध किया। किन्तु डा० अनसारी, श्री सत्यमूर्ति और 'सरहदके गांधी' अब्दुल गफारखां आदिने प्रस्तावका जोरदार समर्थन किया। सरहदी गांधीने कहा—"अफगान महात्मा गांधी और उनके आन्दोलनमें पूरा विश्वास रखते हैं और वे स्वराज्य

होने तक बराबर साथ देंगे। महात्माजीने भारतमें आश्चर्यजनक जागृति उत्पन्न कर दी है। उनकी आज्ञाका पूर्ण रूपसे पालन होना चाहिए।" उन्होंने महात्मा गांधीके बिगत सफल सत्याग्रहके आन्दोलनका उल्लेख करते हुए घोषित किया कि "गत वर्षकी लड़ाईसे किसानोंकी दासताकी मनोवृत्तिका अन्त हो गया है। वे गुलामीसे ऊब गये हैं और वे जानते हैं कि आजादीकी कीमत नौजवानोंका खून है। उन्होंने यह स्वतंत्रता महात्मा गांधीके बताये मार्गसे प्राप्त करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है।"

इन वक्तृताओंसे स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा गांधी अपने सत्याग्रह-आन्दोलनमें कहाँ तक सफलता प्राप्त कर गये थे और मुल्ककी जनता एवं उसके प्रतिनिधियोंका उनपर कितना अटूट विश्वास पैदा हो गया था। यह विश्वास दिन-पर-दिन बढ़ता ही चला गया और महात्माजीके रूपमें देशको अपनी ही आत्माका साक्षात्कार होने लगा। फलतः कांग्रेस, राष्ट्र और गांधी, एक ही मूर्तिके तीन रूप माने जाने लगे। निःसन्देह गांधीमें मुल्क और जनताकी आत्मा समा गयी थी और वे भारतकी भावनाओं, आकांक्षाओं एवं चेष्टाओंके 'मूर्त' बन गये थे। महात्मा गांधीकी इस प्रच्छन्नता और व्यापकताका कारण वस्तुतः उनके हृदयकी विशालता और आत्माकी महानता रही है जो उनके जीवनके प्रत्येक कार्योंसे अभिलक्षित है।

उपस्थित प्रस्तावपर विरोधियोंको उत्तर देते हुए गांधीजीने उनके प्रति अपने मनोगत भावोंको प्रकट करते हुए उत्तर दिया कि "जो युवक दिल्लीके समझौतेसे निराश हुए हैं, उनके लिए मुझे बड़ा प्रेम है। उन्हें क्रुद्ध होनेका अधिकार है, लेकिन सत्याग्रही होनेकी हैसियतसे मेरा कर्त्तव्य स्पष्ट है। मेरा सत्य धर्म शत्रुको प्रेमसे जीतनेकी शिक्षा देता है। जब मित्रता प्रकट की गयी तब मैं उसे अस्वीकार नहीं कर सकता।" गांधीजीने विरोधियोंको समझाते हुए आगे कहा कि "समझौतेमें कोई ऐसी बात नहीं है जिसके लिए मुझे या कॉंग्रेस-कार्य-समितिके सदस्योंको लज्जित होना चाहिए। समझौता करना ही पड़ता।

मेरा विश्वास है कि वह मनुष्य, जो समझौतेकी बात कभी सोच ही नहीं सकता, गलती पर है।"

अंतमें गांधीजीने कॉंग्रेसको भी प्रकट शब्दोंमें यह जतला दिया कि यदि कॉंग्रेसके प्रतिनिधि यहाँ या इंगलैंडमें गोलमेज-कॉन्फ्रेन्समें शामिल हुए, तो "मैं ,कोई वादा नहीं करता कि भारतको स्वाधीनता दिला दूँगा। पूर्ण स्वाधीनता तभी मिल सकती है जब कॉंग्रेस अपनी पूरी शक्तिका प्रदर्शन कर सकेगी, उससे एक मिनट पहले नहीं। मैं सचाईके साथ अपने तथा प्रतिनिधियोंकी तरफसे यही बचन दे सकता हूँ कि हम कॉंग्रेसके प्रति किसी तरहसे भी अभक्त न होंगे, और भारतकी दासताको बढ़ने न देंगे।"*

गांधीजीके इन निर्मल और प्रभावोपादक शब्दोंने कॉंग्रेसके बहुमतको अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया और विरोधियोंको चुप हो जाना पड़ा। फलतः समझौते-का प्रस्ताव 'वन्देमातरम्' और 'गांधीजीकी जय' के साथ बहुत अधिक मतसे स्वीकृत कर लिया गया। इस सफलताने प्रकट कर दिया कि महात्मा गांधी निःसन्देह राष्ट्रके एकमात्र प्रतिनिधि और अगुआ हैं और कॉंग्रेसकी भलाई व देशका हित उन्हींके पदानुक्रमणसे होगा।

जनताके मौलिक अधिकार

गांधी देशके एकमात्र सच्चे और सही जन-प्रतिनिधि हैं, यह उनके उस प्रस्तावसे बिलकुल ही स्पष्ट हो जाता है जो 'स्वराजमें जनताका अधिकार' नाम-से उन्होंने इसी करॉंची कॉंग्रेसमें तीसरे दिन ३१ मार्चको उपस्थित किया था। उनका यह प्रस्ताव इस प्रकारसे था—"कॉंग्रेसकी राय है कि साधारण जनताका चूसा जाना बन्द करानेके लिए राजनीतिक स्वतन्त्रतामें करोड़ों भूखे मरते लोगोंके

* करॉंचीकी कॉंग्रेस—पृष्ठ १२०-१२१, और Mahatma Gandhi, The Man and his Mission—P. 200

लिए सच्ची आर्थिक स्वतन्त्रताका समावेश अवश्य होना चाहिए। अतः जिसमें साधारण जनता यह समझ सके कि कौंग्रेसके स्वराज्यका अर्थ उसके लिए क्या है, इसलिए यह आवश्यक है कि कौंग्रेस अपनी स्थिति इस प्रकारसे प्रकट कर दे जिसे वह आसानीसे समझ सकें।

इसके लिए गांधीजीने तब जनताके मौलिक-अधिकारके नामसे ११ बातें पेश कीं जिनमें जवाहरलालजीके कहनेपर कुछ बातें और भी जोड़ दी गयीं।*
अपने इस प्रस्तावके पक्षमें बोलते हुए गांधाजीने स्वराज्यके सच्चे अर्थपर प्रकाश डालते हुए कहा—

"स्वराज्यका अर्थ यह है कि सबको समान सुविधाएँ और समान अधिकार मिलें और सबके साथ एक-सा बर्ताव हो। हमारे स्वराज्यकी ऐसे शब्दोंमें परिभाषा की जानी चाहिए, जिससे पता चल सके कि मजदूरों, किसानों, राजाओं और दूसरे लोगोंके लिए उसका क्या अर्थ है। हम उसे स्वराज्य कहें, रामराज्य कहें, धर्मराज कहें अथवा खादी-राज्य कहें, किन्तु हमें इस बातका पता होना चाहिए कि यह चलाया किस प्रकार जायगा। वह केवल सरकारके कर्मचारियों—और शासकोंपर ही नहीं छोड़ा जा सकता। हमें इस बातपर जोर देना चाहिए।"

फिर, हिन्दू-मुसलिम एकता पर जोर देते हुए गांधीजीने कहा—"हमारा पहला ध्यान हिन्दू-मुसलिम समस्याको हल करनेकी ओर जाना चाहिए। हिन्दुओंकी संख्या अधिक है और मुसलमान जो अल्पसंख्यामें हैं, अपने अधिकारोंके संबंधमें बहुत शंकाशील हैं, इसलिए हमें उनके डरको दूर भगाना चाहिये।"

इसके बाद गांधीजीने स्त्रियोंका जिक्र किया, "दूसरी बात स्त्रियोंके अधिकारके संबंधमें है। जो अधिकार पुरुषोंको प्राप्त हैं, वे ही स्त्रियोंको भी मिलने चाहिए। हिन्दू-कानूनमें इस संबंधमें विषमता है। उसे बदल देना चाहिए। हमें स्त्रियों-

---

* कौंग्रेसका इतिहास—पृष्ठ-४४८-४५१

के साथ समान व्यवहार करना चाहिए और उन्हें समान सुविधाएँ देनी चाहिएँ। अभी एक पुरुष ही वायसराय हो सकता है, किन्तु हम स्त्रियोंको भी वायसराय बनने देंगे।

जातिगत भेदभाव भी मिटा दिये जायँगे। सार्वजनिक स्थानों, मन्दिरों आदिका सब स्वच्छन्दता-पूर्वक व्यवहार कर सकेंगे। नौकरियोंके देनेमें कोई पक्षपात न किया जायगा। केवल योग्यताका ही लिहाज रखा जायगा।"

फिर मजदूरोंके बारेमें बोलते हुए गांधीजीने विश्वासपूर्ण शब्दोंमें कहा—"आपको मैं बता देना चाहता हूँ कि कम-से-कम उन्हें इतनी मजदूरी मिलेगी जिसमें वे मनुष्यकी भाँति जीवन बिता सकें। हम उनके साथ ज्यादती नहीं होने देंगे। काम करने, रहने आदिके संबंधमें हम उन्हें हर प्रकारकी सुविधाएँ देंगे।"

गांधीजीके इस प्रस्तावने प्रकट कर दिया कि वे यद्यपि राष्ट्रके स्वराज्यकी नींव आध्यात्मिकता और नैतिकताके स्तरपर खड़ा करना चाहते हैं, तथापि इससे उनका अभिप्राय यह नहीं कि वे कोई धार्मिक उन्मादसे पूर्ण साम्प्रदायिक राज स्थापित करानेकी कामना रखते हों। बल्कि वे समाजवादके समान अधिकार और समान आर्थिक बँटवारेके आधारपर ही सत्य और अहिंसापर अवलंबित अपनी कल्पनाके राम-राज्यकी स्थापना करना चाहते हैं। उनके इस समाजवादी आदर्शको देखते हुए यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि गांधीवाद अहिंसक मार्क्सवाद ही है, जिसमें वर्ग संघर्षको हृदय-परिवर्तन और शुष्क भौतिकताको आध्यात्मिकताके रससे पूरित कर दिया गया है।

कहना न होगा कि समझौतेके प्रस्तावकी भाँति सम्पूर्ण जन-हिताय वाला गांधीजीका उपर्युक्त प्रस्ताव भी बहुमतसे स्वीकार कर लिया गया। इन प्रस्तावोंकी सफलता गांधीजीकी ही सफलता थी। किन्तु इन सफलताओंने पट्टाभिके शब्दोंमें गांधीजी व कॉंग्रेसके भारी बोझोंको और भी अधिक बोझीला बना दिया।*

* —वही—पृष्ठ ४५९

लेकिन राष्ट्र और विश्वके लिए अपनेको अर्पित करनेवाले गांधीको उत्तर-दायित्वका कोई भी बोझ दबा न सकता था। राष्ट्र और विश्वके कल्याणके लिए वे पहाड़-सी कठिनाइयोंको भी सहज उठा सकते थे।

मुस्लिम लीगके साथ

निःसन्देह गांधीजी अपने उत्तरदायित्व और बोझोंसे न कभी थके, न ऊबे। न जाने उनका दुर्बल कायामें कौन-सी शक्ति थी जो उन्हें कभी थकने ही न देती थी। मानव-इतिहासमें शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हुआ हो, जिसके डग मरते दम तक भी शिथिल न पड़े हों और स्फूर्ति एव तेज अलसाया न हो। उनकी तेजस्विता बेजोड़ और असाधारण थी। करांचीकी कौंग्रेस अभी-अभी समाप्त हुई थी और दिल्लीमें अखिल भारतीय मुस्लिम कॉन्फ्रेन्स अधिवेशन चल रहा था। अतः गांधीजी करांचीके कार्य-भारसे काफी थके होनेपर भी हिन्दू मुस्लिम एकताका प्रयत्न करनेके लिए तुरन्त दिल्ली चले आये। उन्होंने यहाँ लीगके नेताओं से मिलकर आपसी समझौतेके लिए प्रयत्न चलाया, लेकिन लीगकी अड़ंगा नीति ने उन्हें सफल न होने दिया। लीग समझौतेका साम्प्रदायिक आधार चाहती थी और गांधी इसके विपरीत राष्ट्रीयताके पक्षमे थे। फलतः साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयतामें गांधी सन्धि न करा सके। इन दोमे मेल हो ही कैसे सकता था?

फेडरेसन ऑफ़ चेम्बर्सका उद्घाटन

७ अप्रैलको गांधीजीने दिल्लीमें फेडरेशन ऑफ़ इण्डियन चेम्बर्सका उद्घाटन किया। यूरोपियनोंकी इस संस्थामें अपने विचार प्रकट करते हुए गांधीजीने आश्वासन दिया था कि स्वराज्यका अर्थ न्यायका शासन है, इसलिए अंग्रेजोंके अधिकारोंकी पूरी तरहसे रक्षा की जायगी। लेकिन गांधीजीने यह भी उनपर प्रकट कर दिया था कि भारत अपनी संस्कृतिको बनाये रखना चाहता है, इसलिए अगर अंग्रेज और दूसरे विदेशी भारतीय संस्कृतिके प्रति सम्मानसे

काम लेंगे और हिन्दके सच्चे भक्त और सेवक बनकर रहेंगे, तो उनका मुल्कमें पूरा आदर रहेगा।

अहमदाबादमें

दिल्लीके बाद गांधीजी सिख लीगमें शामिल होनेके लिए अमृतसर गये और वहाँसे फिर तुरन्त गुजरात विद्यापीठके समावर्तक संस्कारमें भाग लेनेके लिए अहमदाबाद चले आये। यहाँपर अध्यक्षपदसे भाषण करते हुए गांधीजीने विद्यापीठके स्नातकोंको मुल्ककी वर्तमान स्थितिका परिचय कराते हुए उन्हें अपने कर्त्तव्योंके प्रति जागरूक होनेका संदेश किया। महात्माजीने कहा—

"आप अनुभव करते हैं कि देशका वातावरण आज खूनी हो रहा है। मैं उन कारणोंमें नहीं जाना चाहता कि वह बल क्यों नहीं पकड़ सक रहा है, लेकिन मैं स्नातकोंको स्मरण करा देना चाहता हूँ कि उन्हें सत्य और अहिंसाकी प्रतिमूर्ति होना चाहिए। अगर सही रूपसे वे सत्य और अहिंसाकी भावनाको हृदयंगम् कर सके, तभी वे हिंसाके धूमिल वातावरणको साफ कर हटा सकेंगे।"

एकमात्र प्रतिनिधि

गांधीजी इस प्रकार हर तरह से खूनी वातावरणको साफ करके देशमें शांति स्थापित करनेके प्रयत्नमें लगे रहे। क्योंकि समझौतेको कार्यान्वित करने और स्वराज्य हासिल करनेके लिए सत्य और अहिंसाका वातावरण वे आवश्यक उपादानोंमें समझते थे।

इसी समय १० जून १९३१ को कार्य-समितिकी बैठक हुई और उसने बिना किसी उज्रके सर्वसम्मतिसे गांधीजीको गोलमेज-परिषद्के लिए भारतका एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त किया। गांधीजीका इस प्रकार एकमात्र प्रतिनिधि चुना जाना इस बातका स्पष्ट प्रमाण था कि सारा राष्ट्र गांधीजीको एकात्मभावसे मानता और चाहता है। गांधीमें राष्ट्रने कहना चाहिए अपनेको समा दिया था अथवा गांधी

राष्ट्रमें समा गये थे—एकाकार हो गये थे, इसलिए राष्ट्र, कॉंग्रेस और गांधीमें कोई आत्मिक पृथकत्व न रह गया था।

राजनैतिक दृष्टिसे कई व्यक्तियोंके बजाय अकेले गांधीजीका प्रतिनिधि होना कॉंग्रेस और मुल्कके नेतृत्वकी एकताका परिचायक था। इससे देशको निःसन्देह शक्ति और बल ही मिला। राजनैतिक बलके साथ इसने राष्ट्र व कॉंग्रेसके नैतिक स्तरको भी ऊँचा उठाया। कॉंग्रेसके लिए निःसन्देह यह एक महान लाभ था। श्री पट्टाभिके शब्दोंमें—"कॉंग्रेसका नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होना ही, जिनका-निजका कोई स्वार्थ न हो और जिसे मनुष्य-जातिकी प्रसन्नता, उनके सद्भाव व उसकी शान्तिके अलावा और कोई भौतिक इच्छा न हो, नैतिक क्षेत्र में स्वयं एक ऐसा लाभ था जिसका मूल्य आँकना कठिन है। इस तरह भारतका एक अर्द्ध-नग्न फकीर न केवल वाइसराय-भवन (दिल्ली) ठेठ सेंट जेम्स पैलेस-भवनमें भी बराबरीके नाते सन्धि-चर्चा करने बैठा था। ब्रिटेनकी प्रतिष्ठाको इससे क्या कम धक्का पहुँचा होगा?"

परन्तु भारतका मान बहुत ऊँचा हो गया, यह तो कम-से-कम निर्विवाद है।

अध्याय — १८

समझौतेके मार्गमें बाधाएँ

गांधीजीके कठिन प्रयत्नसे समझौतेका प्रस्ताव पास हो जानेसे कौंग्रेसने शान्तिके मार्गको ग्रहण कर अपने हथियार नीचे रख दिये थे। अपने प्रिय नेता गांधीजीके निर्देशपर मुल्क भी संघर्षसे हटकर मेलके प्रयत्नोंमें जुट गया था। गांधीजी स्वयं हर प्रकारसे समझौतेकी शर्तोंके अनुसार मेल और शान्तिको कायम करनेमें प्रयत्नशील थे।

किन्तु गांधी, कॉंग्रेस और उनके अनुयायियोंके सारे प्रयत्नोंके बावजूद मुल्कमें शान्ति नजर नहीं आ रही थी। कौंग्रेसने मेल की नीति अपना ली थी, किन्तु मेल भी कहीं नजर न आ रहा था। गांधीजीने अर्विनको अपना सहयोग-पूर्ण हाथ बढ़ा दिया था, किन्तु दोस्तीमें बँधे हुए ये हाथ अब अलग-अलग दीख रहे थे। स्पष्ट दीख रहा था कि गांधीजी सहयोगके लिए अपने हाथको फैलाये ही हुए हैं; लेकिन दूसरी तरफ सरकारने अपनी मुट्ठियाँ बन्द-सी कर ली हैं।

जमाना बदला—अर्विन गये, लार्ड विलिंगडन आये

ऐसा क्यों? १७ अप्रैल १९३१ को लार्ड अर्विनकी जगह लार्ड विलिंगडन भारतके वाइसरायके पदपर आसीन हुए। १८ अप्रैलको लार्ड अर्विन यहाँसे इंग्लैंडको विदा हुए और महात्मा गांधीने बम्बईमें उन्हें विदाई दी। विदा होते हुए वाइसरायने गांधीजीसे जाते-जाते गोलमेज-परिषद्में अवश्य शामिल होनेका आग्रह किया। गांधीजीको यह आग्रह स्वीकार करनेमें कोई दिक्कत न थी, यदि परिस्थितियोंने कोई प्रतिकूल रुख धारण न कर लिया। निःसन्देह

गांधीजी तो मेलके लिए तैयार ही थे—लेकिन परिस्थितियाँ ही बाधक हो रही थीं। लार्ड अर्विनके लौटते ही देशकी स्थिति जैसे समझौतेके पूर्व थी उसी दशा को पहुँच गयी। इस हालतके कारण थे यहाँके सिविलिन आफिसर, जो निरंकुश होकर शासन करनेके आदी थे। यह हाकिम-वर्ग गांधी-अर्विन समझौतेसे क्षुब्ध था और उसे अपनी प्रतिष्ठाके विपरीत मानता था। इसलिए जब अर्विन बिदा हुए और उसकी जगह हुकूमत पसन्द लार्ड विलिंगडन वाइसराय होकर आये, तो मौका पाकर ब्रिटिश नौकरशाही और सिविलियनोंने समझौतेकी शर्तोंके विरुद्ध आचरण शुरू कर दिया। नये वाइसराय स्वयं ही गांधी-अर्विन समझौते-प्रति जब उदासीन थे, तो नौकरशाहीको ही क्या डर और भय भी हो सकता था। श्रीपट्टाभि लिखते हैं—"नये वाइसराय पुराना दास्तियों और वायदोंसे नावाकिफ थे। लार्ड अर्विनने यदि शोलापुरके कैदियोंको छोड़नेकी प्रतिज्ञा कर ली थी, तो क्या? यदि उन्होंने नजरबन्दोंके मामलेपर एक-एक करके गौर करनेका वायदा कर लिया था, तो क्या? यदि वाइसरायने गुजरातके उन दो डिप्टी-कलक्टरोंकी पेंशन व प्राविडेण्ट-फण्ड, जिन्होंने गुजरातमें इस्तीफा दे दिया था, वापिस जारी करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी, तो उसमें क्या? यदि लार्ड अर्विनने बारडोलीकी बेची गयी जायदादको वापिस करनेके लिए प्रान्तीय सरकारको लिखनेका वचन दिया था, तो उससे नयी सरकारको क्या? यदि लार्ड अर्विनने यह वायदा कर लिया था कि मेरठ-षड्यंत्रके अभियुक्तोंकी सजामें वह समय भी शामिल कर लिया जायगा, जो मुकदमेके दौरानमें वे भुगत रहे हैं, तो उससे क्या?*"

विलिंगडनका परिवर्तित रुख

निःसन्देह विलिंगडनके वाइसराय होते ही मुल्कका वातावरण ही बदल उठा। अर्विनने जिस शांतिके स्थापनमें गहरी कठिनाई उठायी थी उसे विलिं-

* काँग्रेसका इतिहास, डा० पट्टाभि—पृ० ४५४

गडनने कुचलनेमें कसर न छोड़ी। नये वाइसरायने समझौतेको ब्रिटेनकी शान-के खिलाफ समझा और हुकूमतकी निरंकुश ताकतसे काम लेनेका यत्न करने लगा। अर्विनके समझौतेसे ब्रिटेनका जो जुआ हल्का पड़ गया था, उसे विलिंगडन भारतीयोंके कन्धोंपर पुनः मजबूतीसे बैठा देना चाहता था। उसकी इस मनोवृत्तिने अर्विनके सहयोग और शांतिके उन सारे प्रयत्नोंपर पानी फेर दिया जिसके लिए भूतपूर्व वाइसरायने पाँच साल तक अथक प्रयत्न किया था। कदाचित् विलिंगडन यह सोचता रहा कि भारतके अर्द्ध-नग्न फकीरसे समझौता करनेमें अर्विनने अपनी खुदकी कमजोरी प्रकट की है। परन्तु ताकतके उस पुजारी को यह न मालूम हो सका कि १६ वीं सदीके भारतकी कायापलट हो चुकी है, और गांधीका नवीन-भारत शक्ति और स्फूर्ति तथा आत्म-गौरवसे परिपूर्ण होकर अपने अधिकार और स्वातंत्र्यके लिए जीने-मरने को कटिबद्ध है। इसलिए अर्विनने भारतसे समझौता करनेमें न अपनी कमजोरी प्रकट की थी, न विशेष कृपासे ही काम लिया था, वरन् नूतन भारतकी ताकतसे घबड़ाकर ही उसे ब्रिटिशशाहीकी सुरक्षाके लिए झुकनेको तैयार होना पड़ा था।

पर ब्रिटिश बन्दूकों और तोपोंपर भरोसा करनेवाले विलिंगडनका ध्यान इस ओर बहुत कम गया। हुकूमतके नशेमें उसने बम्बईमें पहुँचनेपर गांधीजीसे भेंट करनेमें भी अपनी अप्रतिष्ठा समझी। किन्तु यह उसकी भूल थी। गांधीजीके प्रति उदासीनता दिखाकर वह उनकी शक्ति को टाल न सकता था। वह खुद गांधीकी शक्ति को पहचानता था, इसीलिए वाइसराय होनेके २० वर्ष पूर्व जब वह बम्बईमें गवर्नरके पदपर था और गांधीजी दक्षिण अफ्रीकासे लौटकर वहाँ आये थे तो विलिंगडनने ही गांधीजी को कहा था कि तुम्हारे लिए गवर्नमेन्ट-हाउसके दरवाजे हमेशा उन्मुक्त रहेंगे। लेकिन आश्चर्य है कि उसने वाइसराय होने पर ऐसा क्यों किया? क्या 'ह्वाइटहॉल' का उसे इस तरहके निर्देश रहे, या उसमें भारतके नव-जागरणको पहिचाननेकी शक्ति न थी और न दूर तक देखने ही की क्षमता, जो एक कुशल राजनीतिज्ञके आवश्यक गुण हैं।

समझौतेकी शर्तोंका उल्लंघन

इस सबका परिणाम जैसा कि होना था वही हुआ। विलिंगडन और अंग्रेज़ सिविलियनोंके दुष्प्रयत्नोंसे पुनः संघर्षको उभाड़नेकी चेष्टाएँ होने लगीं। उनकी नीति गांधी-अर्विन समझौतेके शान्ति-पथका धूम्र-केतु बन चली। हिन्दुस्तान-भरसे गांधीजी और कॉंग्रेसके पास रोज-ब-रोज यह शिकायतें आने लगीं कि सरकारकी तरफसे समझौतेकी शर्तोंका पालन नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी जहाँ-तहाँ शर्तोंका खुल्लमखुल्ला उल्लंघन करने लगे थे। शर्तोंके खिलाफ कहीं सरकार लोगोंपर दफा १०७ ताज़ीरात हिन्दमें मुकदमा चला रही थी (मुलतानपुरमें); कहीं राष्ट्रीय झंडा फहरानेपर लोगोंको हवालातमें डाल रही थी (भवन शाहपुरमें) और कहीं पुलिस कर्मचारी सार्वजनिक सभाको जबरदस्ती भंग करनेमें लगे थे (मथुरा में)। इसी तरह शर्तोंके अनुसार सरकार शराबकी दूकानोंपर शांतिमय पिकेटिंग करनेमें भी अड़चनें डाल रही थी और जिन राजनैतिक बंदियोंको छोड़नेका वादा किया गया था, उन्हें छोड़नेका नाम न लेती थी। यू० पी०, बम्बई, बंगाल, मद्रास आदि अनेक प्रान्तोंमें इसी तरह सरकार शर्तोंके खिलाफ ज्यादती करती जा रही थी जिससे गांधीजीके दिलमें भी यह सन्देह पैदा हो गया कि क्या सरकार समझौतेको खतम करनेपर हा तुली है ? इतनेपर भी गांधीजी शान्तिकी आशासे विरत न हुए। उन्होंने कॉंग्रेसको भी चेतावनी दी कि वे सरकारके इन आक्रणात्मक व्यवहारोंसे अपनेको असहाय न प्रतीत करें, वरन् धीरजके साथ रक्षणात्मक नीतिसे काम लें, उत्तेजनामें आकर खुद झगड़ा न मोल लें, पर राष्ट्रीय-आत्मसम्मान पर कोई आघात भी न लगने दें। उनका कहना था कि "हम कोई नयी स्थिति अपने-आप पैदा नहीं करते, लेकिन हमें अपनी रक्षा तो करनी ही चाहिये*।"

---

* वही—पृष्ठ ४५६

सरकारसे पत्र-व्यवहार

किन्तु कौंग्रेस और गांधीजीकी इस सद्भावना-पूर्ण नीतिका सरकारके ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। वे अपने अन्याय-पथपर बढ़ते ही चले गये। बारडोलीमें तो समझौतेको बिलकुल ही तोड़ दिया गया। बारडोलीके किसानों को २२ लाख मालगुजारी देनी थी, जिसमेंसे २१ लाख रुपये वे दे चुके थे और १ लाख बचा हुआ था। इस बकायाको वसूल करनेमें सरकारने किसानोंपर जिस जोर और जबरदस्तीसे काम लिया, वह अस्थायी सन्धिकी शर्तोंके बिलकुल खिलाफ था। अतः सरकारकी इन ज्यादतियोंसे बाध्य होकर आखिर गांधीजीने बम्बई-सरकारको सारी शिकायतें लिख भेजीं, किन्तु उसका कोई फल न निकला। बम्बई-सरकारने ज्यादतियोंके किये जानेकी शिकायतोंको गलत और झूठा बतलाया। गांधीजीने तब अपनी शिकायतें भारत-सरकारको पहुँचायीं, किन्तु इसका भी कोई फल न हुआ। शिमलाके अधिकारियोंने बम्बई-सरकारका ही समर्थन किया। सरकारके इस रुखने गांधीजीके विश्वासको कँपा दिया और वे समझौतेके बारेमें संदिग्ध हो उठे। अपनी इन शंकाओंको दूर करनेके लिए गांधीजीने १४ जून १९३१ को भारत-सरकारके होम सेक्रेटरी इमर्सनको ऊबकर जोरसदसे पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने पंच नियुक्त करनेकी माँग करते हुए कहा था—

"प्रान्तीय सरकारोंके समझौतेके पालन करने या न करनेमें आप शायद हस्तक्षेप करनेमें समर्थ न होंगे। यह भी सम्भव है कि आप जितना मैं चाहता हूँ, उतना हस्तक्षेप न करें। इसलिए शायद इसका समय आ गया गया है कि समझौतेके स्पष्टीकरणसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंको तथा उन सब प्रश्नोंको, कि आया समझौतेकी शर्तोंका पालन हो रहा है या नहीं, तय करनेके लिए एक स्थायी निर्णायक मंडल स्थापित किया जाय।"

इस पत्रके बाद २२ जूनको गांधीजीने होम सेक्रेटरीको एक औरपत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा था कि कांग्रेस समझौतेका पूर्ण पालन कर रही है; लेकिन प्रान्तीय सरकारें समझौतेकी शर्तोंके विपरीत आचरण कर रही हैं, इसलिए भारत-

सरकारको चाहिए कि वह 'प्रान्तीय-सरकारों'को किसी भी पक्षके आरोपोंको सर-सरी जाँच करनेके लिए जाँच-समिति—जिसमें प्रान्तीय सरकारका एक प्रतिनिधि और एक काँग्रेसका प्रतिनिधि हो—नियुक्त करनेकी सलाह दे और यदि कहीं यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंगका नियम तोड़ा गया है, तो वहाँ पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दी जाय तथा सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयंसेवक पकड़ लिये गये हैं, तो मुकदमा उसी समय वापिस ले लिया जाय' आदि।

सरकारका दम्भ

गांधीजीकी इन माँगोंसे उद्धत ब्रिटिश-सरकारको बुरा मालूम दिया। अभी तक उनके दिल और दिमागसे मालिक और गुलामका भाव हटा न था। कृपाके रूपमें वे भारतवालोंको कुछ देनेको तैयार हो सकते थे, लेकिन भारतकी तरफसे समानताके आधार पर—अधिकारकी माँग किया जाना उन्हें अपने गौरवके विपरीत लगता था। उन्हें यह सह्य न था कि एक जाति जिसपर वे शासन करते हैं, उनसे निष्पक्ष जाँचकी माँग करे। अपने खयालमें वे पूरे निष्पक्ष थे, फिर उनकी सरकार पर पक्षपातका आरोप कैसे लगाया जा सकता था? ये ही कारण थे कि गांधीजीके उक्त पत्रों तथा उसी संबंधमें लिखे गये बादके २१. जुलाईके पत्रके उत्तरमें टालमटोलसे काम लिया गया और निष्पक्ष ट्रिब्यूनल बनानेसे साफ इनकार कर दिया गया। पंच और जाँच-समितिका सरकारने यह कहकर अना-वश्यक बताया कि 'भारत सरकार अपनी प्रेरणा और जिम्मेदारी पर उन संदिग्ध मामलोंको जो उसके पास पहुँचाये जावेंगे, प्रान्तीय सरकारोंके ध्यानमें लाना जारी रखेगी, और यदि जरूरी हुआ तो वस्तुस्थितिके सम्बन्धमें अपनी दिलजमई भी कर लेगी।' इस प्रकार सरकारकी तरफसे होम सेक्रेटरी इमर्सन गांधीजीको यह माननेके लिए जोर देता रहा कि वे पंच बनानेके झंझटमें न पड़ें और भारत सरकारकी निष्पक्षतापर विश्वास रखें।

किन्तु सरकारका यह दम्भ मात्र था। वस्तुतः निष्पक्ष जाँचके सामने आने की सरकारकी हिम्मत न थी। गांधीजी और काँग्रेसकी शिकायतें दिनके उजालेकी तरह साफ थीं, जिन्हें सरकार अपनी शक्तिकी छाँहसे ढँककर रखना चाहती थी। इस समय युक्त-प्रान्तके किसानोंपर जोरोंसे दमन और अत्याचार चल रहा था। यहाँके कितने ही किसानोंको अपने घर-बार तकसे निर्वासित कर दिया गया था। सर माल्कम हेली तब युक्त-प्रान्तके गवर्नर थे। गांधीजीने किसानोंकी इस दुर्दशाके बारेमें उसे तार भेजा, लेकिन उसका जो उत्तर आया वह भी निराशाजनक था। इस हालतको देखकर और सभी प्रान्तोंकी हृदय-विदारक परिस्थितियोंसे चिन्तित और विवश होकर अन्तमें ११ अगस्त १९३१ को गांधीजीने वाइसरायको सरकारी नीतिकी कटु लेकिन सत्य आलोचना करते हुए एक तार भेजा जिसमें उन्होंने खुले शब्दों में लिखा था कि "...इसका साफ अभिप्राय यह है—कि जिन मामलों में सरकार और शिकायत करनेवाले दो दल हों, उनमें भी सरकार ही अभियोग लगाये और वही फैसला करे। काँग्रेस के लिए यह स्वीकार करना असम्भव है। बम्बई सरकारके पत्र सर मालकम हेली के तार और युक्त-प्रान्त, सीमा-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तोंमें होनेवाले अत्याचारोंकी रिपोर्टपर जब मैं ध्यान देता हूँ तो मुझे यही प्रतीत होता है कि मैं लन्दनके लिए रवाना न होऊँ।" इस तारका भी वाइसराय लार्ड विलिंगडनके ऊपर, जो यहाँ-पर हुकूमत करना ही अपना लक्ष्य समझता था, कोई असर न पड़ा। उसने १३ अगस्तको गांधीजीको तार दिया कि उनके वे कारण उचित नहीं हैं जिनके आधारपर कांग्रेस गोलमेज-परिषद्में शामिल होना ठीक नहीं समझती। दूसरी ओर अपने पक्ष को सही बतलाते हुए वाइसरायने यह प्रकट किया कि "मैं ऐसा सोचे बिना नहीं रह सकता कि सरकार की नीति तथा उसके आधार-भूत बातोंको गलत समझनेका कारण ही यह अन्देशा पैदा हुआ है।" इस प्रकार सारा दोष गांधी और काँग्रेसके सरपर रखकर अन्तमें वाइसरायने गांधीजीके निश्चयके बारे में अपनी असमर्थता बतलाते हुए यह भी सूचित कर दिया कि

"यदि आपका निश्चय अन्तिम है, तो मैं फौरन् ही प्रधान मंत्रीको आपके लन्दन न जानेकी सूचना दे दूँगा।" विलिंगडन और निरंकुश सिविलियन अफसर यही चाहते थे। समझौताको वे अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझते थे, और उसके टूटनेमें उन्हें खुशी ही थी। अधिकारियोंकी इस मनोवृत्तिसे गांधी भी भली प्रकार परिचित थे।

गांधीजीका निजी रुख

निःसन्देह गांधीजी अपनी तरफसे कान्फ्रेन्समें शामिल होनेके लिए हर प्रकारसे तैयार थे, यदि सरकार उचित रीतिसे समझौतेकी शर्तोंका पालन करती जाती। वे उस स्थितिको अलबत्ता सहन नहीं कर सकते थे जो राष्ट्र और कॉंग्रेस-के लिए अमान्य और असम्मानप्रद हो। और इस समय मुल्कमें ऐसी ही असंतोषपूर्ण और अमान्य स्थिति पैदा हो गयी थी। अतः गांधीजीने लाचार होकर वाइसरायके १३ अगस्तके तारके उत्तरमें उसी दिन यह सूचित कर दिया कि—"मैं केवल यही कह सकता हूँ कि—मैंने लन्दन जानेका हर प्रकारसे प्रयत्न किया, पर असफल रहा। कृपया आप प्रधान मंत्री को इसकी सूचना दे दें।"

मामला बिगड़ा

इस पत्र-व्यवहारसे स्पष्ट हो गया कि सरकार अब गांधी अर्विन समझौतेसे हटनेपर तुल गयी है। गांधीजीने इस बारेमें वाइसरायसे स्पष्टीकरण भी माँगा था, लेकिन उसने उत्तरमें कहा तो यही था कि "समझौते-संबन्धी हरेक मामलेमें मैं खुद दिलचस्पी रखता हूँ"; लेकिन व्यवहारमें जैसी दिलचस्पी वे ले रहे थे उसने गांधीजीको उबा दिया था। लेकिन यह सब होते हुए भी गांधीजी और कॉंग्रेस अस्थायी समझौतेपर अभी भी कायम थे; यद्यपि गांधी और कॉंग्रेस दोनोंने, तत्कालीन स्थितिमें गोलमेज-परिषद्में शामिल होनेसे इनकार कर दिया

था। जिस दिन १३ अगस्तको गांधीजीने वाइसरायको इसकी सूचना दी थी, उसी दिन कॉंग्रेस कार्य-समितिने भी यह प्रस्ताव पास किया था—

"कॉंग्रेस कार्य-समितिने १३ अगस्तको गोलमेज-परिषद्में कॉंग्रेसके भाग न लेनेके बारेमें प्रस्ताव पास किया था। उसे अपनी नजरमें रखते हुए यह समिति स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस प्रस्तावको समझौतेका समाप्ति-कारक न समझा जाय।"

कॉंग्रेस और गांधीजीकी गोलमेज परिषद्में शामिल होनेकी इस अस्वीकृतिसे देशका वातावरण पुनः निराशाजनक हो चला। डा० सप्रू, श्रीजयकर और रंगास्वामी अयगरने आखिरी बार तक गांधीजीको तैयार करनेकी चेष्टा की, लेकिन सफल न हो सके। अन्तमें ये लोग तो १५ अगस्त को बम्बईसे लन्दनके लिए रवाना हो गये और दूसरी ओर कॉंग्रेस समझौते के भंग होनेके परिणामोंका मुकाबला करनेको तैयारीमें संलग्न हो चली।

समझौतेके भंग होनेके कारण

जैसा कि ऊपरके वृत्तान्तसे स्पष्ट है, गांधीजीने गोलमेज-परिषद्में जानेसे इसलिए इनकार न किया था कि वे बिला कारण समझौतेको भंग करना चाहते थे। वे तो शांति और समझौतेके लिए हर वक्त तैयार थे। उनका इतना ही कहना था कि 'ज्योंही रास्ता साफ हुआ—यदि प्रान्तीय सरकारें समझौते की शर्तों की पूर्ति करती रहें, मैं लन्दनकी ओर दौड़ पड़ूँगा।" परन्तु असली रुकावट तो इस मार्गमें सरकारके अधिकारी स्वयं थे, इसलिए गांधीजीने खुले शब्दोंमें यह घोषित किया कि—"यहाँके बड़े सिविलियन नहीं चाहते कि मैं परिषद्में जा सकूँ। और यदि वे चाहते भी हैं, तो ऐसी परिस्थितियोंमें, जिन्हें कॉंग्रेस जैसी कोई राष्ट्रीय संस्था बरदाश्त नहीं कर सकती।"

निःसन्देह ये सिविलियन शांतिके पथमें अंगारे थे। ये लोग इस समय यह अफ़वाह फैलानेपर लगे हुए थे कि गांधीजी एक मुकाबलेकी सरकार (Parall-

el Government) स्थापित करना चाहते हैं, इसलिए कॉंग्रेस-जैसी विध्वंसक संस्था गवारा नहीं की जा सकती। इसी बीच पूनाके फर्ग्यूसन कालेजमें बम्बईके गवर्नर सर ई० हॉटसन पर एक विद्यार्थी द्वारा गोली चलानेकी घटना भी हो पड़ी। भाग्यवश गोली चूक गयी और गांधीजीने इस दुर्घटनापर दुःख प्रकट करते हुए गवर्नरको बचनेपर बधाई दी। कॉंग्रेसने भी इस हिंसात्मक काण्डकी भर्त्सना करते हुए निन्दाका प्रस्ताव पास किया। परन्तु इसके बावजूद सिविलियनोंने इस घटनाका उपयोग कॉंग्रेसको विध्वंसात्मक संस्था बतलानेमें किया। किन्तु गांधीजी समझौतेके टूटनेके असली कारणोंसे बेखबर न थे। वे जानते थे कि सरकार अपने रोब और प्रभुत्वके गौरवको कायम रखनेके लिए ही निष्पक्ष जाँच के खिलाफ है। सिविलियन अपनी निरंकुशता कायम रखनेके लिए समझौतेको टूटा देखना चाहते हैं। सरकार कॉंग्रेसके द्वारा मुसलमानोंकी तरफसे डा० अंसारीको गोलमेज परिषद्का प्रतिनिधि माननेको तैयार नहीं है, क्योंकि सरकार मुसलमानोंको स्वराज्य-विरोधी बतलाकर उन्हें कॉंग्रेससे अलग कर कॉंग्रेसको अशक्त बना देना चाहती थी। तब भला इन परिस्थितियोंमें देश और कॉंग्रेसके स्वत्व तथा मान की रक्षाके लिए गांधीजीके सामने लन्दन जानेसे इनकार करनेके सिवा और रास्ता ही क्या रह गया था।

शांतिके लिए नया प्रयत्न

परन्तु गांधीजी अभी भी शांतिके लिए उत्सुक थे। वे नहीं चाहते थे कि समझौता बिलकुल असफल और बेकार सिद्ध हो। उन्हें यह सोचकर भी दुःख था कि समझौताके टूटनेसे लार्ड अर्विनको बड़ा क्षोभ होगा। अतः उन्होंने 'न्यूज क्रॉनिकल' को संदेश देते हुए कहा था कि जैसे ही उनके लिए रास्ता साफ हुआ, वे लन्दनके लिए दौड़ पड़ेंगे। * अपनी ओरसे भी गांधीजीने समझौतेके मार्गके कंटकों को साफ करनेमें कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ा। बम्बईसे

३—The Man and his Mission P. 213

उन्होंने १४ अगस्तको वाइसरायको कॉंग्रेस व अपनी तरफसे सफाई देते हुए एक निजी पत्र लिखा कि अपने नेतृत्वमें मुकाबलेकी सरकार खड़ी करनेका मेरा इरादा कभी नहीं रहा और न मैंने कभी निर्णायक-मण्डलपर जिद की ; हाँ, उसके इस अधिकारका दावा मैंने अवश्य किया है, मैं तो केवल न्याय चाहता हूँ । गांधीजीने अपने पत्रमें वाइसरायसे यह भी पूछा था कि "क्या आप अब दिल्ली-समझौतेको खतम समझते हैं या गोलमेज-परिषद्में कॉंग्रेसके भाग न लेनेपर उसे कायम मानते हैं !" और अपनी ओरसे गांधीजीने कार्य-समितिके प्रस्तावका हवाला देते हुए स्पष्ट शब्दोंमें यह बतलाया कि 'कार्य-समिति इस समय सरकारको परेशान नहीं करना चाहती और वह सचाईसे दिल्ली-समझौते का पालन करना चाहती है । लेकिन यह सब प्रान्तीय सरकारोंकी परस्पर सम्बध रखने की मनोवृत्तिपर निर्भर है ।"

वाइसराय का दोषारोपण

इस पत्रका उत्तर देते हुए वाइसरायने समझौतेके टूटने का सारा दोष कॉंग्रेस और गांधीजी पर ही रखा । पत्रके उत्तरमें वाइसरायने गत पाँच मासकी कॉंग्रेसकी कार्रवाइयोंका निर्देश करते हुए लिखा था कि—'वे दिल्ली समझौतेके भाव और अर्थोंके प्रतिकूल थीं और शांति स्थापनके लिए, विशेषतः युक्त-प्रान्त व सीमाप्रान्तमें बाधक थीं ।' इसके साथ ही वाइसरायने यह भी आरोप लगाया था कि गोलमेज-परिषद्में कॉंग्रेसका सम्मिलित न होना समझौतेके प्रधान उद्देश्य को असफल करना है ; लेकिन सरकार विशेष उपायों को तबतक काम में न लायगी जबतक कि वह ऐसा करनेका बाध्य न हो जाय ।'* गांधीजी इस असंतोष जनक उत्तरको पाकर भी निराश न हुए । उन्हें वाइसरायके उत्तरमें इस बातकी स्पष्ट झलक दिखायी दी कि भारत सरकार हृदयसे समझौतेका पालन करना

४—कॉंग्रेस का इतिहास—पृष्ठ ४७३

चाहती है। अतः इस आशासे प्रेरित होकर विवादास्पद मामलोंके बारेमें गांधीजीने वाइसरायसे बात-चीत करनेके लिए तार द्वारा मुलाकातकी अनुमति माँगी। सरकार यह खूब समझती थी कि बिना कॉंग्रेसके शामिल हुए गोलमेज परिषद् एक निरर्थक अभिनय साबित होगा, इसलिए मन-ही मन वह कॉंग्रेससे पुनः समझौता करनेके लिए उत्सुक थी। यही कारण था कि इस बार वाइसरायने गांधीजीको मिलनेकी तुरन्त अनुमति दे दी।

वाइसरायसे भेंट और नया समझौता

इस अनुमतिको पाकर गांधीजी, श्री वल्लभभाई पटेल, जवाहरलालजी और सर प्रभाशंकर पट्टनी (जो १५ अगस्त को भी सप्रू आदिके साथ 'मुलतान' जहाजसे लन्दन जानेके लिए तैयार थे; लेकिन समझौता टूट जानेसे रुक गये थे) के साथ २५ अगस्तको शिमला पहुँनकर वाइसरायसे मिले। होम सेक्रेटरी श्री इमर्सनके साथ गांधीजीकी जो बातें हुईं, वे काफी संतोषप्रद थीं। वाइसरायने कार्यकारिणीकी बैठक बुलायी। दो घण्टे तक यह बैठक चली। इमर्सनने गांधी-जीसे हुई बातोंको कार्यकारिणीके सामने पेश किया। आखिर बहुत वाद विवाद के बाद मामला सुलझ गया और समझौता टूटनेसे बच गया।

२७ अगस्तको भारत सरकारने एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें गांधी और विलिंगडनमें हुए नये समझौतेको प्रकाशित कर दिया गया। सर-कारी विज्ञप्तिमें कहा गया था—"वाइसराय महोदय और गांधीजीकी बातचीत के परिणामस्वरूप गोलमेज-परिषद्में गांधीजी कॉंग्रेसका प्रतिनिधित्व करेंगे।" इसके साथ समझौतेमें यह भी घोषित किया गया कि "५ मार्च १९३१ का समझौता चालू है। यदि यह साबित हो गया कि कुछ मामलोंमें उसका उल्ल घन किया गया है, तो भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें उन मामलोंमें समझौते की खास धाराओंका पालन करायेंगी और यदि उस सम्बन्धमें उनके सामने कोई बात रखी जायगी तो उसपर भी अच्छी तरह विचार करेंगी। समझौतेके

अनुसार कॉंग्रेस भी अपनी जिम्मेवारियोंको पूरा करेगी।" सरकारने समझौते-का अन्य शर्तोंमें बारडोलीके किसानों पर ज्यादतीके आरोपोंकी जाँच करनेकी माँगको भी स्वीकार कर लिया था।

सफलता और लन्दनके लिए रवाना

यह समझौता निःसन्देह गांधीजी और कॉंग्रेसकी एक और सफलता थी। गांधीजी जैसा चाहते थे, वह स्वीकार कर लिया गया था। उनके लन्दन जानेके मार्गमें जो बाधायें पैदा हो गयी थीं, इस समझौतेने उन्हें साफ कर दिया। अतः गांधीजी तुरन्त २७ ता० को शिमलासे स्पेशल ट्रेन द्वारा उस गाड़ीको पकड़नेके लिए रवाना हुए, जो उन्हें २९ अगस्तको रवाना होनेवाले जहाज पर सवार करा सके।

गांधीजी ठीक समय पर बम्बई आ पहुँचे और कॉंग्रेसके वयोवृद्ध नेता पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू, और सर प्रभाशंकर पट्टानि (ये तीनों गोलमेज-परिषद्के लिए प्रतिनिधि चुने गये थे) के साथ राजपूताना जहाज पर सवार होकर लन्दनके लिए चल पड़े। इन प्रतिनिधियोंके अलावा श्री महादेव देसाई, देवदास गांधी, प्यारेलाल और श्रीमती मीरा बहन भी गांधीजीके साथ थे।

गांधीजी चले तो जा रहे थे, लेकिन उनके हृदयमें लन्दनसे कुछ पानेकी उम्मीद शायद ही थी। इसमें सन्देह नहीं कि वे पूर्ण आशावादी रहे हैं; लेकिन इस समय उनकी आशा उन्हें ले चलनेवाले राजपूताना जहाजकी भाँति डग-मगा रही थी। फिर भी ईश्वर पर भरोसा रखकर वे चले जा रहे थे, यही आशा लेकर कि ईश्वरकी इच्छा होगी तो वह उनसे मानवताकी सेवाके लिए जो कार्य लेना चाहेगा, लेगा।

और भारतकी सेवा गांधीजीकी निगाहोंमें मानवताकी सेवासे कोई भिन्न वस्तु न थी।

———

अध्याय—१९

लोक-दूत

कॉंग्रेसने ही नहीं सारे मुल्कने गांधीजीको गोलमेज परिषद्के लए अपना एकमात्र प्रतिनिधि चुना था। इसीलिए जब गांधीजी बम्बईसे लन्दनके लिए राजपूताना जहाज पर सवार हुए तो जनताने उन्हें जिस शानके साथ और शाही ढंग पर बिदाई दी थी, वैसी कभी किसी सम्राटोंके सम्राट्को भी क्या मिली होगी।

गांधीजी का स्वागत

सम्राट और राजाओंका आदर तो अपने ही मुल्कमें हुआ करता है, किन्तु गांधीजीका जहाँ वे पहुँचे, सर्वत्र उसी राजकीय गौरवके साथ स्वागत किया गया। दुनियाने उनका स्वागत कर उन्हें विश्व-नेता और मानव मात्रका हितैषी स्वीकार कर लिया था। गांधीजी निःसन्देह अब एक अन्तरराष्ट्रीय नेता बन चुके थे। उनका कार्यक्षेत्र हिन्दुस्तान अवश्य था, पर उनके सत्य, अहिंसा और मानव-प्रेमके सिद्धान्त जगत-भरके लिए कल्याण प्रदान करनेवाले थे। स्वयं गांधीजीको भी यह आशा थी कि अगर ये विमल सिद्धान्त भारतमें जम सके तो उनसे जो विशाल विश्व-बन्धुत्वका वृक्ष खड़ा होगा, उसकी शीतल छाँह हिंसासे तप्त विश्वभरके मानवोंको शीतलता प्रदान कर सकेगी। इसी कारण महात्मा गांधी भारतकी सेवाको विश्व और मानवकी सेवा ही समझा करते थे।

अदन और मिश्र में

इसलिए हमें आश्चर्यय नहीं करना चाहिए कि गांधीजीको सारा जगत क्यों

उसी तरहसे अपना और प्यारा मानता रहा है जैसे भारतवाले और क्यों विश्वकी जनता भारतीय-जनताकी भाँति उनका आदर तथा सत्कार करती रही है ? महात्मा गांधी सबके लिए एक थे और इसीलिए वे किसी एकके नहीं, सबके थे। अतः जब गांधीजी अदनमें पहुँचे तो अरबों और भारतीयोंने साथ मिलकर उनके सम्मानमें राष्ट्रीय झंडा फहराया और अभिनन्द पत्र भेंट किया।

पोर्ट सईदमें पहुँचनेपर मिश्रकी जनताने भी उनका स्वागत किया। मिश्रकी जनताकी तरफसे वफ्द-दलके प्रधान मुस्तफा नहस पासाने जो संदेश महात्माजी को भेजा था, वह बहुत ही हृदयस्पर्शी और उल्लासपूर्ण था। यह भाव और रसमय संदेश इस प्रकार से था—

"महान् नेता महात्मा गांधीकी सेवामें राजपूताना जहाज अपनी स्वतंत्रता और स्वाधीनताके लिए लड़ते हुए मिश्रके नामपर मैं उसी स्वाधीनताके लिए लड़नेवाले भारतके सर्वप्रधान नेताका स्वागत करता हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त हो और आप प्रसन्नतापूर्वक लौटें। मैं ईश्वरसे भी प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको वैसी ही कामयाबी दे, जैसा महान् आपका निश्चय है। मैं आशा करता हूँ कि आप जब वहाँसे लौटकर स्वदेश जाने लगेंगे, तब मुझे आपसे मिलनेकी खुशी हासिल होगी। मुझे यकीन है कि आपके सफरका जो कुछ भी नतीजा हो, लौटती बार आप फरोहोंकी भूमि (मिस्र देश) पर कृपा करके हमारे यहाँ पधारेंगे और वफ्द-पार्टी तथा मिस्र राष्ट्र को ऐसा अवसर देंगे जिसमें वह आपकी देश-सेवाके श्रेष्ठकार्योंके लिए तथा अपने सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए आपने जो त्याग किया है उसके प्रति अपना आदर-भाव प्रकट कर सकें। ईश्वर आपको चिरायु करे और आपके प्रयत्नोंमें आपको व्यापक तथा स्थायी विजय दे। हमारे दलके प्रतिनिधि स्वेज तथा सईद बन्दर दोनों ही स्थानोंपर आपके पास पहुँचकर हमारी ओरसे आपका स्वागत करने व शुभकामनाएँ प्रकट करनेका सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

(ह०) मुस्तफा नहसपाशा
वफ्द-दल का प्रधान ।''*

किन्तु मिस्र देशसे इस संदेशको लेकर जो मिस्री शिष्ट-मंडल पोर्ट सईदमें आया था, उसे ब्रिटिश सरकारने गांधीजीसे न मिलने दिया। बहुत मुश्किलसे नहसपाशाका एक प्रतिनिधि तब कैरोमें गांधीजीसे मिला !

गांधीजी जब मार्सेलीजमें पहुँचे तो फ्रांसीसी विद्यार्थियों और जनता ने भी उनका शाही स्वागत किया। ता० १२, सितम्बरको इंगलैंड पहुँचनेपर वहाँकी जनता और अनेक सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक संस्थाके लोगोंने गांधीका ऐसा विराट स्वागत किया जैसा कि वे अपने प्रियसे प्रिय नेता का कर सकते थे।

गरीबोंके बीचमें

लन्दनकी कई बड़ी-बड़ी संस्थाओं और स्वयं ब्रिटिश सरकारने गांधीजीको ठहरनेके लिए निमन्त्रण दिये। किन्तु गरीबोंके साथी और दुःखियोंके प्यारे गांधीने बड़े आदमियों और सरकारके शानदार आतिथ्यकी अपेक्षा लन्दनके ईस्ट-एण्डवाले सार्वजनिक गृहों और गरीबोंके साधारण घरोंके बीच मिस म्यूरियल लिस्टरके यहाँ किंग्सले हालमें ठहरना अधिक पसन्द किया। निःसन्देह गांधीजी जितने बडे थे, उतने ही छोटे भी। छोटे और गरीबोंकी तरह रहना और उनमें बैठना-उठना उन्हें सबसे प्रिय था। अपने पतित-पावन रामकी तरह वे पतित और समाजकी आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक बुराइयोंसे नीचे दबे हुए लोगोंको ऊपर उठानेके लिए ही मानों पैदा हुए थे। अतः दरिद्रोंके इस साथीने दरिद्रोंके बीचमें ही लन्दन पहुँचकर अपना आसन जमाया। थोड़े ही समयमें गांधीके इस रूपसे ईस्ट-एण्डके गरीब मजदूर और किसानों के बालक भी परिचित हो गये। बालक भूल गये कि गाँधी हिन्दुस्तानका एक महान नेता है जिसकी भृकुटियोंसे भारतकी अँग्रेजी-सरकार भी हिल उठती है। उन्हें इन

* काँग्रेस का इतिहास, भा० १ पृष्ठ—४७७

बातोंसे प्रयोजन ही क्या था ? वे तो चप्पल पहिने, लँगोटी लगाये, बिना कमीज वाले और सिर्फ चादर ओढ़े हुए गाँधीको अपनेमेंसे ही एक समझकर उन्हें चचा गांधी कहकर पुकारते और प्रतिदिन प्रातःकाल उनको आकर घेर लेते थे— उनसे खेलने लगते थे। शामको भी उनकी प्रार्थनामें मजदूर और बच्चे उनके पास आकर घिर जाया करते थे। निःसन्देह गांधीके मानव हृदयने ईस्ट-एण्ड-वालोंको जबतक वे वहाँ रहे, लुभा करके रखा।

गांधीजीका लक्ष्य मनुष्य मात्रके दैन्यको चेतनता और दीनताको हर्ष प्रदान करना रहा है। उनकी दृष्टिमें गरीबी पाप नहीं समाजका अभिशाप है। इसलिए दूसरे के लादे हुए अभिशापको वहन करनेमें लादनेवालेको लज्जा होनी चाहिए न कि वहन करनेवाले को। उनका अर्द्ध-नग्न रूप इसीका प्रतीक था। अमीरी को और शोषकोंको एक चुनौती थी और गरीबोंका मान देनेवाला था। यही कारण था कि जब सम्राटसे उन्हें बकिंघम पैलेसमें आनेका निमंत्रण मिला तो अवसरके अनुसार दरबारकी पोशाकके बजाय वे अपनी मामूली पोशाक पहिनकर 'अर्द्ध-नग्न' अवस्थामें ही भेंट करने गये। चर्चिल और उसके जैसे हुकूमत पसन्द अँग्रेजोंका दिल यह देखकर अवश्य बैठ गया होगा कि वह 'अर्द्ध-नग्न' फकीर जो वाइसरायके घरकी सीढ़ियाँ चढ़ता था, बादशाहके महलमें भी जा पहुँचा है। गांधीजीके इन कृत्योंसे इंगलैंडमें जब एक तरफ गांधी-ही-गांधीकी धूम मच रही थी, तब दूसरी ओर द्वितीय गोलमेज परिषद्की तैयारियाँ भी हो रही थीं।

गोलमेज परिषद् में

गोलमेज परिषद् वस्तुतः धोखा था। ब्रिटिश सरकारने गोलमेज परिषद् इसलिए न बुलायी थी कि वह सचमुच भारतकी स्वतंत्रताका मसला तय करेगी! उसका अभिप्राय तो केवल समयको बिताना था और काँग्रेसको दबानेके लिए तैयारी करनेका समय लाभ करना था। यही कारण था कि गोलमेज परिषद्में

गांधीजीकी स्वराज्यकी माँगपर कोई ध्यान न दिया गया और इधर-उधरकी अर्नगल और अनावश्यक चीजोंपर समयका अपव्यय किया गया।

लेकिन गांधीजी जिस ध्येयको लेकर गये थे, उसपर डटे और अड़े रहे। राष्ट्र और कॉंग्रेसने जिस विश्वास और शानसे उनको अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था—गांधीजीने उस कर्त्तव्यको उसी गौरव और शानके साथ पूरा किया। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि गोलमेज परिषद्में गांधीजी ही एकमात्र आकर्षणके केन्द्र थे।

कॉंग्रेस का स्वरूप और उद्देश्य

१४ सितंम्बर, १९३१ से लार्ड संके (Lord Sankey) के सभापतित्वमें गोलमेज परिषद्की फेडरल स्ट्रक्चर कमिटीकी बैठक शुरू हुई। इस कमिटीकी बैठकोंमें गांधीजीने भी भाग लिया। दूसरे दिनकी बैठकमें भारतीय प्रतिनिधिके नाते गांधीजीको कॉंग्रेसके ध्येय और उद्देश्यको पेश करनेका अवसर दिया गया। गांधीजीने अपने स्वाभाविक सारल्यके साथ कहना शुरू किया—"मैं तो भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेसकी तरफसे एक विनम्र प्रतिनिधि हूँ," और "सहयोगकी भावना लेकर समझौते का प्रयत्न करने के लिये ही लन्दन आया हूँ।"

सरल शब्दोंमे अपना और अपने लन्दन आनेका परिचय देनेके पश्चात् गांधीजी ने कांग्रेसकी वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा "पहले आपको कॉंग्रेस और उसके उद्देश्योंके बारे स्मरण करा देना अच्छा होगा, क्योंकि तब ही आप मेरे साथ सहानुभूति कर सकेंगे। कांग्रेस…हमारे भारतकी सबसे पुरानी राजनैतिक संस्था है। लगभग ५० सालसे वह कार्य कर रही है…वह सही अर्थमें—राष्ट्रीय है। वह किसी विशेष जाति, वर्ग या स्वार्थका प्रतिनिधित्व नहीं करती। वह सब प्रकार के भारतीय स्वार्थों और वर्गोंके प्रतिनिधित्वका दावा रखती है। मुझे यह कहनेमें बहुत हर्ष है कि उसका जन्म प्रथम एक अंग्रेजके मस्तिष्कमें हुआ था। ऐलन ऑक्टेवियन ह्यूमको हम कांग्रेसका पिता

मानते हैं। फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी जैसे महान् पारसियोंने उसका पालन-पोषण किया…। प्रारम्भसे ही कांग्रेसमें मुसलमान, ईसाई, और ऐंग्लो-इंडियन्स रहे हैं……मुसलमान और पारसी भी कांग्रेसके प्रधान रहे हैं।' अपने इन कथनोंकी सच्चाईमें गांधीजीने उन महान् ईसाई, पारसी और मुसलमानोंके नाम भी अपने भाषणमें दिये जो कांग्रेसके प्रधान और उच्चाधिकारी तथा समर्थक रहे थे। इस प्रकार गांधीजीने यह सिद्ध किया कि काँग्रेस धर्म और जातिके आधारपर नहीं वरन् विशुद्ध राष्ट्रीय आधार पर स्थित है। गांधीजीने यह भी सिद्ध किया कि वर्ग और जाति भेदोंके अलावा काँग्रेसमें यौन-भेद अथवा स्त्री वा पुरुषका भेद भी नहीं रखा जाता और सबको हमने समान अधिकार दे रखा है। उन्होंने बतलाया कि श्रीमती बेसेन्ट और सरोजनी नायडू भी कांग्रेसकी प्रेसीडेन्ट रही हैं।

"काँग्रेसने," गांधीजीने कहा, प्रारम्भसे ही तथाकथित' अछूतों' का पक्ष भी लिया है।……सन् १९२० से काँग्रेसने इस प्रश्न पर बहुत अधिक जोर देना शुरू किया और 'अछूतों' के प्रश्न को राजनैतिक मंचपर लाकर उसे राजनैतिक प्रोग्रामका एक विशिष्ट अंग बना दिया। हिन्दू-मुस्लिम एकताकी भाँति……कांग्रेसने अस्पृश्यता निवारणको पूर्ण आजादीके लिये एक आवश्यक शर्त स्वीकार की…

"कांग्रेसने" राजाओंकी ओर अभिमुख होकर गांधीजीने कहा, "प्रारम्भसे ही राजाओंका पक्ष भी लिया है……कांग्रेसने राजाओंके घरेलू और आन्तरिक मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं किया…!"

"और सर्वोपरि काँग्रेस मूल रूपसे, भारतके सात लाख गावोंकी गूँगी और अर्द्ध-भुखी करोड़ों जनताका प्रतिनिध्वत करती है……। अतः काँग्रेसकी रायमें सब वर्गोंका स्वार्थ उनके बाद ही स्थान पा सकता है; लेकिन यदि किसानोंके और दूसरे वर्गोंके स्वार्थमें संघर्ष खड़ा हो उठे तो गांधीजीने कहा कि "काँग्रेसकी तरफसे यह कहनेमें मुझे कतई संकोच नहीं है कि कांग्रेस इन गूँगे करोड़ोंके

स्वार्थके लिये प्रत्येक स्वार्थको निछावर कर देगी। इसीलिये काँग्रेस प्रमुखतः एक किसान-संस्था है, और उस दिशामें उत्तरोत्तर वह बढ़ती जा रही है।"

काँग्रेसकी माँग

काँग्रेसके राष्ट्रीय स्वरूप और उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालनेके उपरान्त गांधीजीने काँग्रेसकी माँगको ब्रिटिश-शासकोंके सामने उपस्थित किया। अपनी माँगको उपस्थित करनेमें गांधीजीने राजनीतिज्ञोंकी भाँति किसी वाग्जालमें फँसे बिना स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषित किया कि "पूर्ण स्वतंत्रता" उपलब्ध करना हमारा ध्येय है, और यद्यपि राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) में हम ब्रिटेनके साथ भागीदार होनेके लिये तैयार हैं, किन्तु यह भागीदारी दो समान राष्ट्रोंके बीचकी सी होगी और इच्छानुसार प्रत्येक हिस्सेदारको विलग होनेका अधिकार रहेगा। गांधीजीने अपने इस आशयको स्पष्ट करते हुए आगे कहा—"एक समय था जब कि मैं ब्रिटिश प्रजाजन होनेमें गौरव मानता था, लेकिन आज प्रजाजन कहलानेके बजाय 'बागी' कहलाना पसन्द करूँगा। आज भी मैं नागरिकताके लिये इच्छा रखता हूँ, साम्राज्यकी नहीं, भागीदारीकी...लेकिन ऐसी भागीदारी नहीं जो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे पर थोपी गयी हो। इसीलिये इच्छानुसार भागीदारीसे विलग होनेका हम अधिकार चाहते हैं।"*

गांधीजीने दुनियाके राष्ट्रों और प्रमुखतः ब्रिटेनको साथ ही यह आश्वासन दिया कि हम अपनी स्वतत्रताके साथ दुनियाके छोटे व बड़े सभी राष्ट्रोंकी स्वतत्रता चाहते हैं। उन्होंने इस बातको ब्रिटेनको समझानेका भी पूरा प्रयत्न किया कि स्वतंत्र भारत ब्रिटेनका बहुत बड़ा सहायक हो सकता है और उसे एक सालके बजटको ही नहीं, कई सालोंके बजटको ठीक करनेमें मदद पहुँचा सकता है। परन्तु यह तभी संभव है जब कि गांधीजीने कहा, "इंगलैंड भारतको तलवारकी

---

*—The man and his Mission. pp.222-223

नोकसे नहीं (जिसके लिये वह काफी समर्थ है) बल्कि प्रेम रूपी रेशमकी डोरीसे बाँधा हुआ रखे।"

प्रेम नहीं पैसा

किन्तु गांधीजीको अपना इगलैंड आना अवश्य निरर्थक प्रतीत हुआ होगा! कांग्रेसके प्रतिनिधिके रूपमें वे इंगलैंडसे स्वतन्त्रताके बारे में एक सम्मान-प्रद समझौता करनेके लिए आये थे; लेकिन यहाँ आकर उन्हें स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज काँग्रेसकी स्वतन्त्रताकी माँगके प्रति कितने उदासीन और अनमने हैं और अनेक प्रकारके प्रश्नों या समस्याओंमें उसे उलझा देना चाहते हैं। गांधीजीने तो अपनी तरफसे काँग्रेसका मामला स्पष्ट रूपसे रख दिया था; किंतु ब्रिटिश सरकार उसे समझनेको प्रस्तुत ही न थी। अतः कांग्रेसकी माँग और स्पष्ट ध्येयपर ध्यान देनेके बजाय—फेडरल स्ट्रकचर कमेटी अनेकानेक समस्याओंमें जा उलझी। राजाओं, अल्पसंख्यकों, सेना और वैदेशिक नीति, संरक्षण और व्यापारिक समस्याओंपर खूब वाद-विवाद हुआ और स्वतन्त्रताके प्रश्नको पीछे ढकेल दिया गया।

सिक्ख और मुसलमानोंने साम्प्रदायिक समस्याके हलपर खूब हो-हल्ला मचाया। राजाओंने अपने और ब्रिटिश-सरकारके बीचमें हुई संधियोंकी दुहाइयाँ दीं और इसी प्रकार अछूतों तथा दूसरे अल्पसंख्यकोंकी तरफसे भी कोलाहल मचाया गया। फलत; गोलमेज परिषद् टूटती नजर आने लगी और वास्तविकतासे दूर जा छिटकी।

निःसन्देह ब्रिटेनका बल पाकर अल्पसंख्यकोंमें विशेषकर अराष्ट्रीय मुसलमान अल्पसंख्यकोंकी माँगके लिये बहुत बेचैन और बेकरार थे। उन्होंने अपनी तरफसे अपने तथा सिक्ख, ईसाई और अछूतों आदि अल्पसंख्यकोंके लिए प्रधान मंत्री मैकडोनल्डके पास पृथक्-प्रतिनिधित्वकी माँग पेश की। इन प्रश्नों-की विचित्रतासे गांधीजी ऊब उठे और अल्पसंख्यक-कमिटीमें भाषण देते हुए

उन्होंने स्पष्ट रूपसे ब्रिटेनपर यह आरोप लगाया कि विभिन्न जातियोंको अपने पूरे बलके साथ अपनी-अपनी मॉंगपर जोर देनेके लिए उत्साहित किया गया है ; जिसका स्पष्ट अर्थ है कि ब्रिटेन भारतको स्वतंत्रता देनेमें अनावश्यक रोड़े अटकाना चाहता है। भला ब्रिटेनको स्वतन्त्रता देनेमें क्यों उत्साह होता ? गांधीके समता और प्रेमके भाव उन्हें अपने आर्थिक—पैसेके स्वार्थके सामने निरर्थक मालूम दिये। यही कारण था कि भारतके शासन-विधान और कॉंग्रेसकी मॉंगपर ध्यान देनेके बजाय गोलमेज-परिषद् गोल-मोल बातोंमें फँसती चली गई। अतः गांधीजीने अतमें चिढ़कर पूछा कि क्या प्रतिनिधियोंको ६००० मीलसे केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करनेके लिए ही बुलाया गया है ? उन्होंने सर ह्यूबर्टकारकी अल्पसंख्यक जातियोंकी योजना पर अपना मत प्रकट करते हुए साफ कह दिया कि यह योजना स्वराजप्राप्तिके लिए नहीं, लेकिन नौकरशाहीकी रक्षाके लिये ही बनायी गयी है। और इसलिए दृढ़ताके साथ प्रतिज्ञापूर्ण शब्दोंमें गांधीजी ने घोषित किया—"कॉंग्रेस इससे बिलकुल अलग रहेगी। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजनापर, जिससे कि खुली हवामें पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासनका वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करनेकी अपेक्षा कॉंग्रेस चाहे कितने वर्ष जंगलमें भटकना स्वीकार कर लेगी।"

अल्पसंख्यकोंके बारेमें अपना भाषण समाप्त करते हुए गांधीजीने वीर-घोष किया कि सिख भले ही सदैवके लिए सिख रह सकते हैं, और मुसलमान व ईसाई हमेशाके लिए मुसलमान व ईसाई रह सकते हैं, लेकिन अछूतोंको हमेशा अछूत रखनेका प्रयत्न वे कभी न होने देंगे। उन्होंने कहा—"अछूतोंकी तरफसे पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यताका कलङ्क निरंतर रहेगा।....अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतोंके राजनैतिक अधिकारोंकी बात करते हैं वे भारतको नहीं जानते, और हिन्दू-समाजका निर्माण किस प्रकार हुआ है, यह भी नहीं जानते।" अतः

प्रतिज्ञानिष्ठ होकर गांधीजीने ललकारकर कहा कि इसपर भी यदि अछूतोंको अलग करनेका प्रयत्न किया गया तो "अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी मैं इसका विरोध करूँगा।" लेकिन इस सिलसिलेमें गांधीजीने ब्रिटेनके प्रधानमंत्री के इस प्रस्तावपर कि अल्पसंख्यकोंके बारेमें उनका निर्णय स्वीकार किया जाय कोई विशेष आपत्ति न की यदि उनका निर्णय केवल मुसलमानों और सिक्खों तक सीमित हो। किन्तु अराष्ट्रीय मुसलमानोंने घोषित किया कि वे ऐसे किसी फैसलेको स्वीकार न करेंगे, जिसमें सब अल्पसंख्यक शामिल न हों। फलतः मामला सुलझने न पाया।

इंगलैंडको सच पूछा जाय तो भारतके मामलेमें कोई विशेष दिलचस्पी न थी। उनके यहाँ इस समय चुनाव चल रहे थे, और ब्रिटेनके मंत्रीमंडल तथा जनताका ध्यान उधर ही अधिक था। अपने घरको छोड़कर हिन्दुस्तानकी उन्हें चिन्ता ही क्या थी? चुनावमें राष्ट्रवादी टोरी जीतते जा रहे थे और मैकडोनल्ड का लेबर मंत्रीमंडल बदलने जा रहा था। अतः अपनी ही चिन्तामें ग्रस्त ब्रिटेन का मंत्रीमण्डल गोलमेज परिषद्से ऊब उठा था और उसकी समाप्तिके लिए उतावला हो रहा था। इसी कारण १८ नवम्बर १९३१ को ब्रिटेनके प्रधानमंत्री की तरफसे अल्पसंख्यक कमिटीमें यह घोषणा कर दी गयी कि वाद-विवादके बाद कमिटी विसर्जित कर दी जाय और आगामी सप्ताह खुली बैठक हो।

इस घोषणासे स्पष्ट होगया कि सरकार हिन्दुस्तानके बारेमें कितनी अनिच्छासे कार्य कर रही है। किन्तु आत्म-विश्वासी एवं मानव मात्रकी सद्-प्रकृतियोंपर आस्था रखनेवाले गांधीजी ब्रिटेनके नेताओंकी इस अन्यमनस्कतासे विचलित न हुए, बल्कि समझौतेके लिए निरंतर प्रयत्नशील रहनेका इरादा प्रकट करते हुए उन्होंने अपने भाषणमें यह प्रकट किया कि 'आवश्यकता हुई तो मैं इंगलैंडमें अधिक समय तक ठहरनेका विचार रखता हूँ, क्योंकि मैं तो लन्दन आया ही इसलिए हूँ कि सम्मानयुक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजनेका प्रयत्न करूँ।'

प्रश्न और उत्तर

कमेटीमें ब्रिटेनके पक्षमें उठाये गये कई प्रश्नों—सेना, संरक्षण आदिके भी गांधीजीने स्पष्ट उत्तर दिये। उन्होंने काँग्रेसके प्रतिनिधित्व और भार ग्रहण करनेकी क्षमतापर भी अविश्वासियों को विश्वास दिलानेका प्रयत्न किया। किंतु क्या वहाँपर कोई सुनने या समझनेको तैयार था?

गांधीजीने ललकारके साथ यह घोषित किया कि 'काँग्रेस उत्तरदायी शासनसे आनेवाली सब प्रकारकी जिम्मेवारियोंको अपने कन्धोंपर उठानेके योग्य है।'

सेनाका उल्लेख करते हुए आपने कहा कि 'भारतकी सेना वस्तुतः देशपर अधिकार जमाये रखनेके लिए है। अँग्रेजी सैना वहाँपर अँग्रेजोंके स्वार्थोंकी रक्षाके लिए, विदेशियोंके—हमलोंको रोकने व आन्तरिक (राष्ट्रीय) विद्रोहों को दबानेके लिए रखी गयी है।' फिर अपनी राय प्रकट करते हुए आपने कहा कि सम्पूर्ण सेना पर पूर्णतया भारतीय अधिकार होना चाहिए। लेकिन ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंसे ऐसी आशा रखना निरर्थक समझकर, गांधीजीने इसे अपना स्वप्न बतलाते हुए कहा कि "मैं जानता हूँ कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों या जनतासे इस स्वप्नको पूर्ण न करा सकूँगा; लेकिन जबतक मेरा यह स्वप्न पूरा न होगा, फौजपर अधिकार न पा सका तो जिन्दगी भर इसके पूर्ण होनेकी प्रतीक्षा करूँगा।' आगे अपनी शक्तिपर अटल विश्वास जतलाते हुए आपने दुनियाको यह भी इंगित किया कि 'भारत अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिक्ख और राजपूत भारतकी रक्षाकर सकते हैं। राजपूत तो यूनानकी एक छोटी-सी थर्मोपोली नहीं, हजारों थर्मोपोलियोंके जन्मदाता कहे जाते हैं।'

संरक्षणोंके बारेमें गांधीजीने कहा, "मैं एक भी ऐसे संरक्षणकी कल्पना नहीं करता, जो केवल भारतके हितमें होगा। कोई भी ऐसा संरक्षण नहीं है, जो साथ-साथ ब्रिटिश स्वार्थोंकी भी रक्षा न करे, बशर्ते कि हम इच्छित और सर्वथा बराबरीके दर्जेकी साझीदारेकी कल्पना करें।"

लेकिन क्या अंग्रेज गांधीके इस 'साझेदारी' और 'सर्वथा बराबरी' के

सिद्धांतको मानने के लिए तैयार थे? क्या वे हिंन्दुस्तानियोंके 'स्वराज्य' और 'जिम्मेदार शासन' की माँगोंको पसन्द कर सकते थे? और क्या वे कॉंग्रेसकी बढ़ती हुई शक्तिसे विज्ञ थे? अंग्रेज अपनी ताकतके नशेमें इनमेंसे एक भी बातको जानकर भी जानना नहीं चाहते थे, लेकिन गाँधीजीने उन्हें अपनी तरफसे सजग और सचेत करनेमें कोई प्रयत्न बाकी न छोडा। गांधीजी उनकी कर्त्तव्य-बुद्धि को चेतन और हृदयको परिवर्तन करनेकी अंततः चेष्टा करते रहे। उन्होंने अंग्रेजों से अपील करते हुए कहा—"हमें अंग्रेजोंके हृदयमें भारतके प्रति उस प्रेम-भावका संचार कर देना चाहिए, जिससे भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सके। यदि अंग्रेजोंका यह खयाल है कि ऐसा होनेके लिये अभी एक सदी चाहिए, तो इस सदी-भर कॉंग्रेस बयाबानमें भटकती रहेगी। उसे भयंकर अग्नि-परीक्षामें होकर गुजरना होगा, आपदाओंके तूफान और गलत-फहमियोंके बवन्डरका मुकाबला करना होगा और यदि परमात्माकी इच्छा हुई तो गोलियोंकी बौछार भी सहनी पड़ेगी।"

अपनी निजी शक्ति और ताकतकी ओर संकेत करते हुए गांधीजीने अंग्रेजों और अंग्रेज सरकारको स्पष्ट शब्दोंमें यह भी बतला दिया कि 'मैं इस भ्रममें नहीं हूँ कि आजादी वाद-विवाद और सन्धि-चर्चासे मिल सकती है।" और फिर कॉंग्रेसके उच्च ध्येय, राष्ट्रीयता, सर्व प्रियता तथा शक्ति की विशालता का स्मरण कराते हुए उन्होंने गौरवके साथ आगे कहा—"कॉंग्रेस ८५ फी सदी जनताकी प्रतिनिधि है।...अपनी सेवाके अधिकारसे कॉंग्रेस राजाओं, जमींदारों और शिक्षित-वर्गकी भी प्रतिनिधि है। अन्य सब प्रतिनिधि खास-खास वर्गोंके प्रतिनिधि होकर आये हैं, कॉंग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो साम्प्रदायिकतासे दूर है। इस का मंच सबके लिये—एकसा खुला है। इस का ध्येय बहुत ऊँचा है,......" और अंग्रेज सरकार की भूल को इंगित करते हुए गांधीजीने उन्हें चेताया—"फिर भी इसे अनेक दलोंमेंसे एक दल माना गया है। लेकिन यह भी याद कर लेना चाहिए कि यही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिससे किया फैसला

कारआमद हो सकता है।...कुछ लोग अनुभव कर रहे थे कि कॉंग्रेस मुकाबले की सरकार चलानेकी कोशिश कर रही है।" इस धारणाको निमूर्ल बताते हुए, और कॉंग्रेसके ध्येय तथा साधनों पर प्रकाश डालते हुए गांधीजी आगे कहते गये—"कॉंग्रेस हिंसा नहीं, अहिंसाको मानती है। इसीलिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जारी किया गया। इसे भी तो सरकारने बरदाश्त नहीं किया। लेकिन उसका मुकाबला भी नहीं किया जा सकता था। जनरल स्मटस...ने १६०८ में इसको दबाना चाहा; लेकिन सन् १६१४ में उन्हें स्वयं दबना पड़ा। बोरसद व बारडोलीमें सत्याग्रह सफल हुआ है। लार्ड अर्विनने आर्डिनेन्सोंसे देशको खूब तपाया है; लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली...।"

गांधीजीकी चाहना

गांधीजीने इस प्रकार ब्रिटिश सरकारको स्पष्ट रूपसे चेतावनी दे दी थी कि उनकीसामरिक शक्ति भारतीयोंके त्यागमय सत्याग्रहके सामने काम न आ सकेगी, इसलिए ब्रिटिश सरकार कॉंग्रेसके ध्येय 'स्वतंत्रता' को समय रहते स्वीकार करले। गांधीजी निःसन्देह अँग्रेजोंसे एक मैत्रीपूर्ण समझौता कर लेना चाहते थे ताकि बिना किसी रोष और वैमनस्यपूर्ण संघर्षके भारत अपने इच्छित ध्येयको प्राप्त करले और इंगलैंड तथा भारत दोनों प्रेमके सूत्रमें बँध जायँ। लेकिन ब्रिटिश सरकार शायद अपनी तोपों और कानूनको निहत्थे भारतीय राष्ट्रसे अधिक महत्वशाली समझती थी। उसे शायद एक दलित राष्ट्रकी मित्रताकी आवश्कता भी न प्रतीत हुई। परन्तु वे इस बातको न समझ सके कि ३५ करोड़ निहत्थे भारतीयोंका राष्ट्र ब्रिटिश हुकूमतको नापसन्द करने लगा है, और जिस रोज भारतकी सम्पूर्ण नंगी-भूखी जनता एक स्वरसे ब्रिटेनके अधीन रहनेके लिए 'नहीं' का वीर-घोष कर उठेगी, उस दिन उनकी समस्त तोपें, तलवारें, भाले, छुरे और गोलियाँ धरी ही रह जायँगी।

काँग्रेस पर विश्वास कीजिए

पर यह सद्बुद्धि अँग्रेज सरकारमें थी कहाँ? अँग्रेज सरकारने काँग्रेसको केवल बरगलानेके लिए कान्फ्रेन्समें आमंत्रित किया था, न कि काँग्रेस और उसके ध्येयको मान्यता देनेके लिए! लेकिन गांधीकी शक्ति और प्रभावको अँग्रेजी सरकार तब भी भली-भाँति स्वीकार कर चुकी थी। गांधीजी इस बातको स्वयं अनुभव कर रहे थे। अतः अपने भाषणके अन्तमें उन्होंने अँग्रेजोंसे बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें अपील करते हुए कहा, "यद्यपि आप मुझपर विश्वास करते प्रतीत होते हैं, तथापि काँग्रेस पर अविश्वास करते हैं।...आप मुझे उस महान् संस्थासे भिन्न न समझिए जिसमें कि मैं तो समुद्रकी एक बूँदके समान हूँ। मैं काँग्रेससे बहुत छोटा हूँ।...आप काँग्रेस पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझ पर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं; क्योंकि काँग्रेससे जो अधिकार मुझे मिला है, उसके सिवा मेरे पास कोई अधिकार नहीं। यदि आप काँग्रेसकी प्रतिष्ठाके अनुकूल काम करेंगे, तो आप आतंकवादको नमस्कार कर लेंगे। तब आपको उसे दबानेके लिए अपने आतंकवादकी कोई जरूरत न रहेगी। आज तो आपको अपने व्यवस्थित और संगठित आतंकवादके द्वारा वहाँ परके आतंकवादसे लड़ना है; क्योंकि आप वास्तविकतासे अथवा ईश्वरी संकेतसे अपरिचित हैं? क्या आप उस संकेतको नहीं देखते, जो ये क्रान्तिकारी अपने रक्तसे लिख रहे हैं? क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम आज गेहूँकी बनी हुई रोटी नहीं बल्कि आजादीकी रोटी चाहते हैं, और जबतक रोटी नहीं मिल जाती, ऐसे हजारों लोग मौजूद हैं, जो इस बातके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देशको ही चैनसे बैठने देंगे।"

अलग-अलग रास्ते

लेकिन गांधीकी यह स्पष्ट चेतावनी भी निष्फल गयी। अपने भाग्यका कोरा चिट्ठा सुननेपर भी अंग्रेज सरकार अपने भावोंमें परिवर्तन लानेके लिये

कतई तैयार न थी। फलतः १ दिसम्बर १९३१ को जब अपना थोथा अभिनय पूरा करके गोलमेज-परिषद् विसर्जित हुई, तो सभापतिको धन्यवाद देनेका प्रस्ताव पेश करते हुए गांधीजीने इस बातका स्पष्ट ऐलान कर दिया कि अब हमको अलग-अलग रास्तोंपर जाना होगा और हमारे रास्ते विभिन्न दिशाओंमें जाते हैं—"मनुष्य स्वभावका गौरव इसीमें है कि हम जीवनमें आनेवाली आँधियोंसे टक्कर लें। मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशामें होगा, लेकिन इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। यदि मुझे आपसे बिल्कुल विभिन्न दिशामें भी जाना पड़े, तो भी आप मेरे हार्दिक धन्यवादके अधिकारी तो हैं ही।"

खाली हाथ वापिस

गोलमेज-परिषद् समाप्त हो गयी। नतीजा उसका कुछ नहीं हुआ।

गाँधी और उनके साथी शायद परिषद्से कुछ आशा रखते भी न थे। वे यदि उसमें शामिल हुए थे तो केवल यह जतलानेके लिए कि हम मित्रताके मार्गको पसन्द करते हैं और यदि हमसे कोई सचमुच सम्मानप्रद और समानताका समझौता करना चाहता है तो हमारी अथवा काँग्रेसकी तरफसे उसमें कोई असहमति या अस्वीकृति नहीं है।

परन्तु यदि समझौता नहीं होता तो उसकी इतनी लालसा भी नहीं है—क्योंकि गांधी और काँग्रेस भिन्न मार्ग और भिन्न दिशामें चलने और आँधियोंसे टकरानेके लिये भी तैयार हैं। अतः जब परिषद्का प्रहसन समाप्त हो गया तो भारतके राजनैतिक क्षितिजमें उठनेवाली आँधीका अनुमान लगाते और अपने भावी मार्गकी दिशाको टटोलते हुए ५ दिसम्बरको गांधीजी खाली हाथों इंगलैंडसे भारतके लिए रवाना होगये।

अध्याय—२०

फिर आँधी और तूफान

'आँधियोंसे टक्कर' लेनेके विचारके साथ गांधीजी इंगलैंडसे बिदा हुए थे।

अशांति, आँधी और तूफान

इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधीजीके उक्त विचारमें पूरी सत्यता थी। गांधीजी अभी लन्दनमें ही थे जब कि उन्हें यह समाचार मिला कि जिस 'दमन' को रोकनेकी शर्तपर कॉंग्रेस गोलमेज-परिषद्में सम्मिलित हुई थी, वह पूरी तरहसे टूट चुकी थी। सरकारकी इस दमन-नीतिके फलसे बंगाल और युक्तप्रांतमें अशांतिकी आँधी और तूफान धीरे-धीरे विकराल रूप धारण करता जा रहा था। दूसरी ओर बारडोलीकी जाँच का मामला भी बिगड़ चला था। १३ नवम्बर १९३१ को ही सरदार वल्लभ भाई पटेलने तार भेजकर गांधीजीको जाँचके सम्बन्धमें यह सूचना भेजी थी कि जाँचका रूख स्पष्टतः किसान विरोधी और इकतरफा है इसलिए वे जाँचसे अलग हो गये हैं। गांधीजी इन खबरोंको सुन-सुनकर हैरान थे? सरकारने जो भी वायदे किये थे, वे स्पष्टतः टूटते नजर आ रहे थे। गोलमेज-परिषद्में जाते समय गांधीजीको सरकारने आश्वासन दिये थे कि वह 'दमन' नीतिसे काम न लेगी, और बारडोलीमें लगान वसूलीके संबन्धमें पुलिस की ज्यादतियोंके आरोपोंकी निष्पक्ष जाँच करेगी। पर ये दोनों वायदे सरकारने तोड़ डाले थे। तो क्या सरकार अपने आतंककी आँधीसे कॉंग्रेसको उड़ाना चाहती है?—गांधीके मनमें अवश्य ही यह प्रश्न अब विराट रूप धारण करने लगा था।

दमनका दौर-दौरा

असलमें गोलमेज परिषद्का प्रहसन सरकारने अपनी स्थितिको संभालनेके हेतू समय-लाभके लिए रचा था। इरविनकी 'समझौते' की नीतिको ब्रिटिश राज-नीतिज्ञ असलमें पसन्द न कर रहे थे। भारतको समानता और स्वतंत्रता प्रदान करना उन्हें इच्छित न था। वे समझौतेकी जगह पुनः 'दमन' के सिद्धांतको व्यवहारमें लानेके लिये उत्सुक थे। किन्तु इसके लिए थोड़े समयकी आवश्यकता थी. और यह समय उन्हें परिषद्के अभिनयके समय मिल गया। परिणामतः इरविन के साथ ही उसकी समझौतेकी नीति को भी बिदाकर दिया गया और आनेवाले वाइसराय वेलिंगडनके साथ 'दमन' का दौर-दौरा फिर शुरू हो गया।

युक्तप्रान्त, बंगाल और सीमाप्रान्तमें दमन और गिरफ्तारी

सरकारने जिस तेजीके साथ 'दमन' शुरू किया था, शायद उसकी तीव्रता गांधीजी इगलैंडमें परिषद्में उलझे होनेसे पूरा न भाँप सके थे। युक्तप्रान्तमें किसानोंके सवालको लेकर काँग्रेसके सामने एक विकट स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। ताल्लुकदार व जमींदारोंने किसानोंकी दुर्दशा कर डाली थी। किसानों की आर्थिक दशा भाव गिर जानेसे बहुत खराब हो चली थी, किन्तु उनके 'प्रभु' लगान में विशेष छूट देने का राजी न थे। फलतः दीन-हीन किसानोंसे जबरदस्ती और यातना देकर वसूलियाँ की गयीं और बहुतोंको बेदखल तक कर दिया गया। प्रान्तीय-काँग्रेसने बहुत प्रयत्न किया कि सरकार लगानमें काफी छूट दे, किन्तु नतीजा कुछ भी न निकला। सन्धिके प्रयत्न विफल होने पर युक्तप्रान्तीय-काँग्रेस ने अन्तमें किसानोंको सलाह दी कि वे तब तक लगान और मालगुजारी देना बन्द कर दें जब तक कि सरकारसे काई उचित समझौता इस विषय पर नहीं हो जाता। सरकार काँग्रेसके इस वारके लिये भी तैयार थी। वह चाहती ही थी कि 'समझौता' भंग हो ताकि वह खुलकर अपनी ताकतसे काम ले सके। अतः

मौका देखकर सरकार तुरन्त दमन पर उतर आयी और तड़ाक-फड़ाकके साथ सैकड़ों कौंग्रेसी कार्य-कर्त्ताओंको सीकचों में डाल दिया।

इस बीच गांधीजी विलायतसे चल चुके थे, और अभी उनके पहुँचनेमें दो दिन ही शेष थे कि युक्तप्रांतके बड़े-बड़े नेता—पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और शेरवानी भी जेलमें पहुँचा दिये गये।*

बंगालमें भी सरकारकी दमन नीति तीव्र हो चली थी। जेलोंमें जो राजनैतिक कैदी थे, उनपर सरकार जितना हो सकता था, अत्याचार करती जाती थी और बाहरकी जनताको आतंकित करनेके लिये गैर-सरकारी यूरोपियन और गुण्डे मिलकर पुलिसकी सहायतासे जनताकी इज्जत ले रहे थे। सरकारकी यह आतंकवादी नीति युक्तप्रान्त और बंगाल तक ही सीमित न रही बल्कि 'सीमाप्रान्त' में भी उसने उत्पात मचा रखा था। खान अब्दुल गफ्फार खाँ और उनके एक लाख लालपोश खुदाई खिदमतगार सरकारकी आँखोंको भाते न थे। अब्दुलगफ्फार खाँ अपने चरित्र, सेवा और बलिदानसे 'सीमान्त गांधी'का पद प्राप्त कर गये थे। एक गांधीसे निपटना तो पहले ही मुश्किल हो रहा था, अतः इस भीमकाय गांधीसे सरकार शुरूसे ही सतर्क हो उठी। सरकार न चाहती थी कि वह दो गांधियोंके बीचमें दल दी जाय। अतः मूल गांधीके समुद्र पारसे भारतमें आनेसे पहले ही भारत सरकारने खान अब्दुलगफार खाँको बगावती ठहराकर उनके भाई डॉ० खानसाहब समेत जेलमें ठूँस दिया। बगावती होनेका बहाना यह किया गया कि 'खाँ ने सीमा-प्रान्तीय चीफ-कमश्निरके दरबार में सम्मिलित होनेसे इन्कार किया था।'

अतः जब २२ दिसम्बरको गांधीजी भारत पहुँचे ! सरकारकी दमन नीतिका आतंक देशपर पूरी तरहसे छा चुका था। इसलिए बम्बईमें पैर रखते ही

---

*—पट्टाभिने गिरफ्तारी ९ दिन पहले दी है, लेकिन पं० नेहरूकी आत्मकथामें २ दिन दिया है—पृ० ४३४ हिन्दी-संस्करण—

गांधीजीको यह मालूम करते देर न लगी कि देश सरकारके आतंकसे कितना भयभीत और शोकाकुल हो रहा है।

आजादीके सेनापति गांधीका स्वागत

अपने प्यारे सेनापतिका देशवासियोंने विपत्तिमें फँसे होनेपर भी शाही स्वागत किया। उनके स्वागतमें जनताने जो जलूस निकाला था, वैसा शायद कभी बादशाहोंका भी न निकला होगा। गांधीजीके रूपमें निःसन्देह "जनता ऐसे महापुरुषका स्वागत करने पहुँची थी, जिसका एकमात्र जीवनोद्देश था अपने देशको आजाद करना तथा संसारके राष्ट्रोंमें मित्रता, बन्धुता और मानवताका सन्देश पहुँचाना।"*

किन्तु स्वागतमें स्वच्छन्दताका उल्लास न था। सरकारके आतंककी कालिमा ने सारे देशवासियोंके मुख पर एक विचित्र उदासी छा दी थी। सरकारकी इस अनोखी नीतिको देखकर गांधीजी स्वय स्तम्भित हो रहे थे। अतः स्वागतके उत्तरमें २८ ता० दिसम्बरकी शामको आजाद मैदानमें भाषण करते समय देशके नेताओंकी गिरफ्तारीका उल्लेख करते हुए गांधीजीने कहा था—

"मैं इन्हें अपने ईसाई वाइसराय लार्ड वेलिंगडनकी तरफसे बड़े दिनकी भेंट के रूपमें स्वीकार करता हूँ। कुछ तो मुझे दिया जाना चाहिये था, और यही मुझे मिला है।

फिर देशवासियोंको ढाढ़स बँधाते और उन्हें अपने कर्त्तव्यका ध्यान दिलाते हुए उन्होंने आगे कहा—

हमें अहिंसाकी नीति पर चलना चाहिए। सत्याग्रहके भावोंके प्रति हमें सच्चा रहना चाहिए। अहिंसाके आदर्शसे हमें तिल-भर भी न हटना चाहिए।... भारतके लिए स्वराजका अर्थ है विश्व-भरके लिए शांति। हो सकता है हमारी विधिसे स्वराज प्राप्त करनेमें वर्षों लग जायँ, लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं है।"

---

* कॉंग्रेस का इतिहास-पट्टाभि—पृष्ठ ४९२

इस अवसर पर गांधीजीने हरिजनोंके प्रश्न पर फिरसे अपनी वह भयंकर प्रतिज्ञा भी दोहराई और कहा कि—"हिन्दू जातिसे अछूतोंको जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्नको मैं बरदाश्त नहीं करूँगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोधमें मैं अपनी जान तक लड़ा दूँगा।"

परन्तु इस समय किसीको यह खयाल न हुआ कि सचमुच गांधीजी ऐसा करेंगे। अन्तमें गम्भीर होकर गांधीजीने देशको साहसके साथ यह सूचना दी कि अपने बस-भर वे शांतिके लिए कोशिश करेंगे; लेकिन यदि वे इसमें सफल न हो सकें तो उन्हें मैदानमें उतरनेके लिए तैयार रहना चाहिये। सेनापति गांधीके शब्द थे—

"यदि हमें फिरसे लड़ना पड़ा, तो मैं आपसे उसके लिए तैयार रहनेको कहूँगा। यद्यपि मैं जहाँ तक बन सकेगा उसे टालने का प्रयत्न करूँगा। थोड़ी-सी आशा होने पर भी मैं संधि-चर्चा न त्यागूँगा; लेकिन यदि मैं सफल न हुआ तो मैं तुम्हें अपने साथ संघर्षमें शामिल होनेका आमंत्रण दूँगा। ईश्वर आपको शक्ति और साहस दे।"

सरकारकी धृष्टता—

किन्तु क्या सरकार गांधीजीसे सुलहके लिए तैयार थी? स्पष्ट था कि सरकार अपनी तरफसे लड़ाई शुरू कर चुकी है। अन्यथा नेहरू और गफ्फार खाँ आदि जैसे नेताओंकी गिरफ्तारी और आर्डिनेन्स—राजका अर्थ ही क्या था? गांधीजी भी यह समझते थे! परन्तु मानवकी सद्वृत्तियोंपर आस्था रखनेवाले गांधीजीने सोचा था कि शायद वे प्रयत्न करके सरकारकी सद्वृत्तियोंको जागृत कर सकें और तूफानको उठनेसे रोक सकें। पर सरकारकी सद्वृत्ति तो कुम्भकर्णकी निद्रामें सुप्त हो गई थी, इसलिए उसके जगानेका प्रयत्न सफल कैसे हो सकता था? लेकिन यह असफलता असलमें बृटिश-सरकारकी ही असफलता थी और उसके नतीजे भी सरकारको ही भुगतने पड़े। गांधीजीकी विनम्र सलाह और नम्र

प्रस्तावोंकी अवहेलना कर सरकारने देशको वज्र-प्रतिरोध और विकट युद्धके लिए उत्तेजित करा दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि गांधीजीकी सरल माँगों और नम्र प्रस्तावोंपर सरकार ध्यान देती तो उसे न तो दुनियामें बदनामी उठानी पड़ती और न सम्पूर्ण भारतीय जनताके कोपका ही वह भाजन बनती। लेकिन भारतीय जनताको अपनाना तो दूर रहा, सरकारने अपनी कुटिलतासे बृटिश-राज्य में आस्था रखनेवाले गांधीजोको भी बृटिश-साम्राज्यवादका पूरा शत्रु और उन्मूलन करनेवाला 'विक्रमादित्य' बना दिया और उन्हें अन्ततः 'भारत छोड़ो' की माँग करनेके लिए बाध्य किया। सरकारकी इस दुर्नीति और अविवेककी आलोचना करते हुए इला सेनने ठीक ही कहा है कि "He (Gandhi) remained the implacable enemy of British rule, for the Government never saught to placate him. when he demanded reasonable terms, they put him into prison; but when his demands grew sterner and more insistent, when all India called for redress of their wrongs with one voice—the voice of Gandhi—the Govt. offered him meagre consideration. Such behavior not only led the way to disillusionment and estrangement, but was a blot on the much-vaunted British diplomacy".

संधिका निष्फल प्रयत्न

दो-तीन दिनके अन्दर गांधीजीको अपने प्रान्तीय साथियोंसे विभिन्न स्थानोंकी दुःखभरी कथाओंका पता चल गया। सरकारके आतंकको ये कथायें उन्हें हृदय-विदारक और गांधी-इरविन समझौतेके बिलकुल विपरीत प्रतीत

---

* Testament of India, by ElaSen p. 29.

हुई। उन्हें विदित हो गया कि सरकार संधि नहीं लड़ाईकी इच्छुक है। तिसपर भी गांधीजीने अपने वचनानुसार और पद्धतिके अनुकूल पहले संधि और मेलका मार्ग ही ग्रहण किया। अतः २९ दिसम्बर १९३१ को गांधीजीने वाइसराय के नाम एक तार भेजा—

"कल जहाजसे उतरनेपर मालूम हुआ कि सीमाप्रान्त और युक्तप्रान्तमें आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये हैं। सीमांप्रान्तमें गोलियाँ चलायी गयी हैं। मेरे अनमोल साथी गिरफ्तार कर लिए गये हैं। और सबसे बढ़कर बंगालका आर्डिनेन्स मेरी राह देख रहा है। मैं इसके लिए तैयार न था। मेरी समझ में नहीं आता कि आया मैं इनसे यह समझूँ कि हमारी पारस्परिक मित्रताका खात्मा हो चुका, या आप अब भी मुझसे यह उम्मीद करते हैं कि मैं आपसे मिलूँ और इस परिस्थितिमें मैं कौंग्रेसको क्या सलाह दूँ इस विषयमें आपसे परामर्श और पथप्रदर्शन चाहता हूँ?"

इस तारके उत्तरमें ३१ दिसम्बरको गांधीजीको वाइसरायकी तरफसे उसके मंत्रीका तार मिला जिसमें कहा गया था कि कौंग्रेस युक्तप्रान्त और सीमा-प्रान्तमें जिस तरहकी हलचलें चला रही है उसे सरकार अमित्रतापूर्ण समझती है तथा कौंग्रेसके उन कार्योंसे देशमें भारी अव्यवस्था और अशांतिके फैलनेका डर है। इसी कारण सरकारको आर्डिनेन्स आदि आवश्यक उपायोंका अवलम्बन लेनेको मजबूर होना पड़ा है। अन्तमें तारमें स्पष्टतः यह भी कह दिया गया कि यदि गांधीजी गोलमेजमें हुई बातों पर बात करना चाहें तो आवें, लेकिन "सम्राटकी सरकारकी पूरी इजाजतसे जो आर्डिनेन्स बंगाल, युक्तप्रान्त और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तमें जारी किये गये हैं, उनके बारेमें किसी प्रकारकी बहस करनेके लिए वे तैयार नहीं हैं...?"

सरकारका पूर्व-रचित षडयंत्र

गांधीजीको इस प्रकारका उत्तर वाइसरायने कोई अपनी अकेली इच्छासे

न दिया था। असलमें बृटिश-सरकार, अँग्रेज नौकरशाही और अँग्रेज व्यापारी सबने पहलेसे ही कॉंग्रेसको कुचलनेका षड्यंत्र रच रखा था; क्योंकि वे जानते थे कि अकेली एक कॉंग्रेस व गांधी ही उनके सुखभोगके मार्गके काँटे हैं, और यदि इन काँटोंका उन्मूलन हो जाय तो उनका रास्ता भविष्यके लिए निष्कंटक और साफ हो जायगा। अतः लार्ड विलिंग्डनपर इरविन की समझौतेकी नीतिको बदलनेका एकपक्षीय उत्तर-दायित्व रखना निष्प्रयोजन मालूम देता है। वह अथवा उसकी जगह जो भी होता, गांधीजीको ऐसा ही कटु जवाब देता, क्योंकि उसे तो प्रमुखतः बृटिश स्वार्थोंकी रक्षा करना आवश्यक था। इसी धारणाको लेकर पं० जवाहरलाल नेहरूने लिखा था कि "लार्ड इर्विन भी ठीक वही काम करते जो लार्ड विलिंग्डनने किया, क्योंकि दोनों ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतिके अस्त्र थे, और वे निर्धारित दिशामें कुछ बहुत ही मामूली-सा फर्क कर सकते थे।"*

बात सही थी। बृटिश साम्राज्यशाहीके षडयंत्रका विलिंग्डन तो एकमात्र अस्त्र थे। यह षडयंत्र क्या था, इसे समझनेके लिए बेन्थलके 'गुप्त' गश्ती पत्रके उद्धरण पाठकोंके लिए बहुत सहायक होंगे, अतः नीचे हम उन्हें उद्धृत करते हैं—यहाँ पर स्मरण रहे कि ये बेन्थल महाशय गोलमेज-परिषद्में हिन्दुस्तानके यूरोपियन व्यापारिक-प्रतिनिधिके रूपमें शामिल हुए थे ;—

"अगर सम्भव हो तो कोई समझौता करने के इरादे से हम लन्दन गये थे, लेकिन इसके साथ ही इस बातके लिये भी हम दृढ़-निश्चय थे कि आर्थिक और व्यापारिक संरक्षणोंके बारेमें (यूरोपियन) असोशियेटेड चैम्बर्स ऑफ कामर्सने जो नीति निश्चित की है......उसके किसी मूलभूत अंशको नहीं छोड़ेंगे......! यह हम अच्छी तरह जानते थे, कि जो सरक्षण पेश किये जा चुके हैं उनकी कांट-छांट करनेका कॉंग्रेस, हिन्दू-सभा और (भारतीय)

---

* मेरी कहानी, अनु० श्री ह० उपाध्याय पृ० ४३५—४३६

फेडरेटेड चैम्बर्स ऑफ कामर्सकी सम्मिलित शक्तिके साथ प्रयत्न किया जायगा……।

"इस पिछले अधिवेशनके परिणामोंपर अगर आप नजर डालें, तो आप देखेंगे कि गाँधीजी और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्बर्स एक भी ऐसी बात नहीं बतला सकते, जो गोलमेज परिषद्में उनके जानेके फल-स्वरूप ब्रिटिश-सरकारकी ओरसे बतौर रिआयत उनके साथ की गयी हो! वह तो खाली हाथ ही हिन्दुस्तान लौटे हैं।

"एक और भी घटना ऐसी हुई है—जो उनके लिये अच्छी नहीं साबित हुई। साम्प्रदायिक समस्याको हल करनेका उन्होंने जिम्मा लिया, लेकिन सारी दुनियाके सामने उन्हें असफल होना पड़ा……"

"मुसलमानोंका दल बहुत ठोस और मजबूत रहा। यहाँ तक कि राष्ट्रीय मुसलमान कहे जानेवाले अली इमाम भी उससे बाहर नहीं गये। शुरूसे आखिरतक मुसलमानोंने खेल खेला। हमारा समर्थन करनेका उन्होंने वायदा किया था, जिसे उन्होंने पूरी तरह निभाया। बदले में उन्होंने हमसे कहा कि आर्थिक दृष्टिसे बंगालमें उनकी जो बुरी हालत है, उसपर हम ध्यान दें। उनकी ज्यादा लल्लो-चप्पो करनेकी तो जरूरत नहीं; पर अंग्रेजी फर्मोंमें हमें उनको जगह देनेका प्रयत्न करना चाहिये, जिससे वे अपनी भावी हालत और दशाको सुधार सकें।

"(पार्लमेण्ट) के आम चुनावके बाद सरकारी नरम दलने (गोलमेज) परिषद्को असफलकरने और उसका तथा काँग्रेसका विरोध करनेका निश्चय कर लिया।...हमें यह भी निश्चय हो गया था कि कौंग्रेसके साथ लड़ाई अनिवार्य है; तब हमने महसूस किया कि जितनी जल्दी वह शुरू हो जाय उतना ही अच्छा है। लेकिन इसके साथ ही हमने यह भी सोच लिया कि इसमें पूरीसफलता तभी मिल सकती है जब कि जितने हो सकें उन सब मित्रोंको अपने पक्षमें

करलें। मुसलमान तो हमारे साथ थे ही...यही हाल राजाओं और दूसरी अल्प संख्यक जातियोंका था।

हमें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सर सप्रू, जयकर, पैटरो आदिके समान सर्व साधारण हिन्दुओंको अपनी ओर मिला लिया जाय। अगर हम उन्हें कांग्रेसके खिलाफ खड़ा न कर सकें तो कम-से-कम ऐसा तो कर ही सकते हैं कि जिससे वे कांग्रेसका साथ भी न दें। इसके लिये उन्हें सिर्फ यही विश्वास कराने की आवश्यकता है कि संघ-योजनाको नहीं छोड़ा जायगा, जिसे कि मोटे तौर पर अंग्रेज भी स्वीकार कर चुके थे। अस्तु इसीके अनुसार हमने काम किया।

मुसलमान तो अंग्रेजोंके पक्के दोस्त हो ही गये हैं।...वे हमारे साथ काम करनेके लिये तैयार हैं। हाँ, यह न समझ लेना चाहिये कि जब हम यह कहते हैं कि सुधारोंका होना जरूरी है तो हम हर एक प्रान्तमें प्रजा-तान्त्रिक सुधार चाहते हैं। हम जो कुछ चाहते हैं, वह केवल यह कि सरकारके विधान या शासन-पद्धतिमें ऐसे हेर-फेर हों जिससे उसका काम जरा अच्छी तरह चलने लगे।"

सरकार की इच्छा

अतः स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी और अँग्रेजी सरकार पहलेसे ही काँग्रेस और गांधीजीको दबानेके लिए कमर कसे हुए थी, और उसने अपनी तरफसे पं० नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओंको जेलमें बन्द कर लड़ाई छेड़ भी दी थी। सरकारकी इस मनोदशाका उल्लेख करते हुए पं० नेहरू ने लिखा है कि—"यह तो स्पष्ट ही था कि चाहे दूसरा कोई लड़ना चाहता हो, या न हो, लेकिन सरकार तो लड़ाईके लिए बेचैन थी और पहलेसे ही जरूरतसे ज्यादा तैयार बैठी थी?"*

इस स्थितिमें गांधीजीके सुलहके प्रयत्न भला कैसे फलीभूत हो सकते थे?

---

* मेरी कहानी, पृष्ठ—४३५

साम्राज्यवादी अँग्रेजी सरकारको तो अपने स्थिर स्वार्थोंकी रक्षा करना जरूरी था; इसलिए अपने मार्गके बाधक गांधी और काँग्रेसको कुचलना भी उसके लिए आवश्यक हो गया। दूसरे शब्दोंमें ब्रिटिश राजशाही भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनको किसी तरह आगे बढ़ने देनेके लिए अब तैयार न थी, क्योंकि उसका हित ही इसीमें था।

गांधीजी गिरफ्तार

फलतः सरकारने गांधीजीके सुलहके सारे प्रयत्न निष्फल कर दिये। २९ ता० दिसम्बरसे ३ ता० जनवरी तक गांधीजी और वाइसरायमें तारोंका आदान-प्रदान होता ही रहा; किन्तु वाइसरायने गांधीजी और काँग्रेसकी बातें सुननेसे इन्कार कर दिया। गांधीजीको भेंट करनेकी इजाजत तक न दी गयी। आखिर लाचार होकर गांधीजीने अपने ३ जनवरीके तारमें कॉंग्रेस कार्य-समितिके तरफसे यह सूचित कर दिया कि कॉंग्रेस सुलहके मार्गको छोड़कर सत्याग्रहमें कूदनेके लिए तैयार है यद्यपि उनकी यह लड़ाई अहिंसापूर्ण होगी।

इस आखिरी जवाबके लिए ही सरकार अबतक रुकी हुई थी। अब मौका पाकर सरकारने तुरन्त आन्दोलनके मूलपर धावा बोला और ४ जनवरी १९३२ की ठिठुरती हुई सुबहको महात्मा गांधी और उनके विश्वस्त सहायक और कॉंग्रेसके सभापति वल्लभभाईको गिरफ्तार कर राजबन्दी बना दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलनको कुचलना

यह प्रहार सही अर्थमें राष्ट्रीय भारतपर किया गया था। राष्ट्र-पिता गांधी और कॉंग्रेसके अध्यक्ष वल्लभभाईको जेलमें ठूँसनेका अर्थ था—सम्पूर्ण भारतको कारागृहमें बन्द करना, और राष्ट्रीय आन्दोलनकी बेलको कुचलकर रौंद डालना। अतः इस प्रहारके साथ ४ जनवरीको सरकारने चार और आर्डिनेन्स पास किये, और सारे भारतको आर्डिनेन्सोंके जालमें जकड़ डाला। इन आर्डि-

नेन्सोंने भारतीयोंकी सम्पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रताको ही मेट डाला क्योंकि उनके द्वारा सरकार यहाँके जन और धन दोनों पर ही जब चाहे अधिकार कर सकती थी। इन आर्डिनेन्सोंसे, पं० नेहरू लिखते हैं, "सारे देश पर मानों कब्जा कर लेनेकी हालतकी घोषणा कर दी गयी और इसको किस-किस पर और कितना-कितना लागू किया जाय, यह स्थानीय अधिकारियोंकी इच्छा पर छोड़ दिया गया।"*

२६ मार्च सन् १९३२ को भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होरने स्वयं यह स्वीकार किया था कि "आर्डिनेन्स बहुत व्यापक, तीव्र और कठोर हैं। भारतीय जीवनकी लगभग हरेक बात उनकी चपेटमें आ जाती है।"

वीर भारत

परन्तु इतना होनेपर भी राष्ट्रीय भारतने सरकारके सामने घुटने न टेके। वीर भारतने अपने वीर सैनानि महात्मा गांधीके धवल यशपर कोई आँच न आने दी। अपने वीर सेनापति और साहसी अध्यक्षके पदोंपर चलते हुए भारतके वीर स्त्री, पुरुष और बच्चोंने अपनेको हजारोंको संख्यामें सत्याग्रहके युद्धमें झोंक दिया।

सरकार इन निर्भीक स्त्री-पुरुषोंपर जितनी सख्ती करती जाती थी, आन्दोलन भी उतनी ही तीव्रतासे बढ़ता जाता था। सरकारने लाठी प्रहार किये, गोलियां चलायीं, सम्पत्तियाँ जब्त कीं और भेड़-बकरीकी तरह लोगोंको पकड़-पकड़ कर जेलोंमें ठूँसा; लेकिन राष्ट्रीय भारतने अपना दम न टूटने दिया।

किसानोंने भी इस आन्दोलनमें पूरी तरहसे योग दिया। किसानोंकी इस हिम्मतको देखकर सरकार बौखला उठी और जैसे बन पड़ा, उन्हें दबाने लगी। सबसे अधिक कष्ट इस युद्धमें गुजरातके किसानोंको उठाने पड़े। श्री पट्टाभि

---

* मेरी कहानी पृष्ठ—४३६

लिखते हैं कि "गुजरातके किसानोंको, ऐसे कष्ट-सहनकी अग्निमें से गुजरना पड़ा, जिसका वर्णन नहीं हो सकता ; लेकिन वे हिम्मत न हारे।"

निःसन्देह १९३२ का सत्याग्रह-संग्राम पिछले सत्याग्रहसे भी व्यापक और प्रबल साबित हुआ। एक तरफ सरकार यदि दमन पर तुली थी तो दूसरी तरफ जनता बलिदानके लिये उत्सुक थी। वस्तुतः लोगोंको मालूम हो गया था कि स्वतंत्रता केवल मुँह हिला-डुलाकर नहीं मिलेगी, किन्तु उसके लिये अपने सुखों व आनन्दों एवं प्राणोंका भी त्याग व बलिदान करना होगा।

उनके सेनापति ने क्या पहले ही न कह दिया था कि "मैं इस भ्रममें नहीं हूँ कि आजादी सन्धि-चर्चासे मिल सकती है।" और यदि आवश्यकता पड़ी तो, "कांग्रेस बयाबानमें भटकती रहेगी,.....और यदि परमात्माकी इच्छा हुई तो गोलियोंकी बौछार भी सहेगी।"

और अब मौका आ पड़ने पर जनता तथा कांग्रेसने गांधीजीकी उन गर्वोक्तियोंको सही कर दिखलाया था। गाँधीजीने सरकारको गोलमेज परिषद्में चेताया भी था कि भारतमें "ऐसे हजारों लोग मौजूद हैं, जो इस बातके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो स्वयं शांति लेंगे और न देशको ही चैनसे बैठने देंगे।" पर यह चेतावनी शायद तब सरकारको थोथी मालूम दी हो, परन्तु अब उसकी सत्यतामें अविश्वासका किसीको कोई कारण न रह गया था।

चार महीनोंके भीतर ही भारतकी जेलोंमें करीब ८०,००० वीर स्त्रियाँ और पुरुष ठूँसे जा चुके थे ; लेकिन तिसपर भी आन्दोलन रुकनेका नाम न लेता था। काँग्रेस गैरकानूनी होकर बयाबानमें भटक रही थी, राष्ट्रके नेता सब जेलोंमें बन्द थे—परन्तु जनताने अकेला होनेपर भी सत्याग्रहकी लौ को निष्प्रभ न होने दिया। सरकारने सोचा था कि ६ हप्तोंमें ही वह आन्दोलनको कुचल डालेगी ; लेकिन सरकारकी कल्पना गलत निकली और भयंकर दमनके बावजूद नेतृ-विहीन जनताने सारे कष्टोंको झेलते हुए भी पूरे २९ महीनों तक आन्दोलनको चालू रखा !

परिणामतः अप्रैल १९३३ में जब कलकत्ता-कॉंग्रेस हुई तब सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या १२०,००० तक पहुँच चुकी थी।

गांधीजीकी इस व्यापकता और प्रभावोत्पादकतासे सरकार शायद तबतक पूर्ण रूपसे भिज्ञ न हो सकी थी। उसने शायद समझा था कि गांधी यदि सरल है तो सारहीन भी होगा। लेकिन आन्दोलनके इस रूपने निश्चय ही सरकारको दिव्य-दृष्टि प्रदान कर गांधीजीके विराट रूपके दर्शन करा दिये थे !!

अध्याय—२१

मृत्यु के मुख में और बाहर

आन्दोलन उग्रतासे चल रहा था कि इसी बीच महात्मा गांधीके क्रान्तिकारी निश्चयने देशमें एक नयी स्थिति उत्पन्न कर दी। गांधीजीका यह निश्चय आमरण उपवासका भयोत्पादक निश्चय था, जिसने सारे भारत एवं विश्वको ही आसंकुल कर डाला।

निश्चय का कारण

प्राणोंकी बाजी लगाकर मृत्युके मुखमें घुसनेके इस निश्चयका कारण था—सरकारका साम्प्रदायिक निश्चय या निर्णय। इस निर्णयके अनुसार जिसका ऐलान सम्राटकी सरकारने १७ अगस्त १९३२ को किया था, दलित जातियोंको यूरोपियन और मुसलमानोंके साथ-साथ पृथक् निर्वाचनका अधिकार दे दिया गया। गांधीजी सरकारकी इस भेद नीतिको पसन्द न कर सके और प्राण देकर भी उन्होंने उसके विरोधका निश्चय कर डाला।

गांधीजीका यह निश्चय कोई नया निश्चय न था। सरकारकी इस योजनाके पीछे जो चाल थी, उसे भी गांधीजी पूरी तरहसे समझते थे। गोलमेज परिषद्की अल्पसंख्यक कमिटीमें साम्प्रदायिक प्रश्न पर बहस करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा था कि सरकारने ही विभिन्न जातियोंको पृथक मांग करनेके लिये उत्साहित किया है। उन्होंने तभी यह भी प्रकट कर दिया था कि सरकार अपनी इस साम्प्रदायिक योजनाके सहारे भारतके स्वराज्य-आन्दोलनको कुचल कर नौकरशाहीको कायम रखना चाहती है! ऐसी योजनाको गांधीजीने कहा था "कांग्रेस

कभी स्वीकार न करेगी, क्योंकि ऐसा करनेसे "खुली-हवामें पैदा होने वाला आजादी और उत्तरदायी शासनका वृक्ष कभी पनप न सकेगा।" उन्होंने यह भी कह दिया था कि अस्पृश्यताको कायम रखनेके सौदे पर वे स्वराज्य ही क्या दुनियाका राज्य लेना भी पसन्द न करेंगे। अंतमें अपने भाषणको कठोर प्रतिज्ञा के साथ समाप्त करते हुए उन्होंने वेदना भरे शब्दोंमें १३ नवम्बर १९३१ को ही यह कह दिया था कि—

"अछूतोंकी ओरसे पेश किया गया दावा मेरे लिये सबसे अधिक निर्दय है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यताका कलंक निरंतर रहेगा।...हम नहीं चाहते कि अस्पृश्योंका एक पृथक जातिके रूपमें वर्गीकरण किया जाय!... अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। मैं अपनी पूरी शक्तिसे यह कहूँ कि इस बातका विरोध करनेवाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊँ तो भी, अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी, मैं इसका विरोध करूँगा।"

उस समय शायद किसीने गांधीजीके इन शब्दों और प्रतिज्ञापर विशेष ध्यान देना आवश्यक न समझा था। लोगोंको उन शब्दोंकी सक्रियताका उस समय अनुमान लगाना शायद सरल न था और शायद है अंग्रेज श्रोताओंने भी उन शब्दोंको तब एक भावुक भारतीयके केवल उद्गार-मात्र समझा और इसलिये उनसे निकलनेवाले अर्थकी ओर तब उनका कोई ध्यान न जा सका था। किन्तु प्रधान मंत्रीका 'निर्णय' प्रकाशित होनेपर जगत ने विस्फारित नेत्रोंसे देखा कि गांधीके शब्दोंमें उद्गार ही नहीं, मूल्य भी हुआ करता है, और उनकी कथनी और करनीमें कुटिल राजनीतिज्ञोंकी जैसी असमानता नहीं हुआ करती। गांधी जो कहता है करता है और जो करता है, वही कहता है।

गांधीजीकी विवशता

जनवरी १९३२ में जब लोथियन कमेटी, मताधिकार और निर्वाचनकी

सीटोंका निर्णय करनेके लिये भारत पहुँची थी तभीसे गांधीजीको साम्प्रदायिक निर्णयके बारेमें चिन्ता हो गयी थी। अतः इस विषय पर बहुत कुछ सोचने-समझनेके बाद यरवदा जेलसे गांधीजीने ११ मार्च १९३२ को पहला पत्र भारत-मंत्री सर सेम्युअल होरको भेजा। इस पत्रमें गांधीजीने उसे गोलमेज परिषद्‌में की हुई अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाते हुए लिखा था कि पृथक निर्वाचन दलितों और हिन्दू-धर्मके लिए हानिकर है और "इसलिए मैं सम्राट-सरकारको सविनय सूचित करता हूँ कि यदि आपके निश्चयसे दलित वर्गोंको पृथक निर्वाचन मिलेगा तो मुझे प्राणान्त तक अनशन करना होगा।" ठीक एक महीने बाद १३ अप्रैल १९३२ को भारत-मंत्रीका टालमटोलका संक्षिप्त उत्तर गांधीजीको प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था—"लार्ड लोथियनने अपना दौरा समाप्त नहीं किया है...। जब हमें यह रिपोर्ट प्राप्त हो जायगी तब उसकी सिफारिशोंपर ध्यानपूर्वक विचार करना होगा और हम तब तक कोई निर्णय न करेंगे जब तक उन विचारोंपर भी गौर न करलेंगे, जिन्हें आपने इतने जोरके साथ प्रकट किये हैं।... कमिटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होने तक राह देखिये...।" इस सूनी राहको देखते-देखते गांधीजीकी आँखें पथरा उठीं और तब ३-४ महीने बाद यकायक १७ अगस्तको गांधीजीकी इच्छाके विरुद्ध और भारतके अहितके लिये प्रधान मंत्रीका साम्प्रदायिक निर्णय घोषित कर दिया गया।

अतः परिस्थितसे विवश होकर और अन्य कोई उपाय न देखकर गांधीजीने पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार २० सितम्बरसे व्रत लेनेका निश्चय कर डाला और प्रधान मंत्रीको भी अपने निश्चयकी सूचना भेज दी। गांधीजीने प्रधान मंत्रीको भेजे १२ अगस्तके पत्रमें लिखा था—"आपके निर्णयका विरोध मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर करूँगा।...यह अनशन तभी समाप्त होगा जब इस व्रतके रहते ब्रिटिश-सरकार अपनी इच्छासे या सार्वजनिक मतके दबावसे अपने निश्चयपर फिर विचार करे और साम्प्रदायिक-निर्वाचन की योजना, दलित-वर्गोंके संबंधमें वापस ले ले...।" "किन्तु यदि उक्त निर्णयपर", गांधीजीने आगे लिखा,

"विचार न हुआ तो यह अनशन अगले २० सितम्बरके दोपहरसे आरम्भ होगा।"

प्रधान मंत्रीको गांधीजी और भारतके हितोंकी इतनी चिन्ता न थी कि वे उनके पत्रपर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक समझते। इसलिए निश्चिन्तता और आरामके साथ मि० मैकडोनल्डने ८ सितम्बरको गांधीजीको उत्तर देते हुए लिखा कि "सरकारी योजनाके इन अति न्याय-युक्त प्रस्तावोंको देखते हुए मेरे लिये आपके निश्चयका कोई समुचित कारण देखना असंभव है और मैं केवल यही सोच सकता हूँ कि वस्तुस्थितिके समझनेमें भ्रम हो जानेके कारण आपने ऐसा निश्चय किया है।"...

प्रधान मंत्रीके पत्रके उत्तरमें गांधीजीने तुरन्त यरवदा जेलसे ९ सितम्बरको यह लिख भेजा कि—"दलित-वर्गोंके लिए पृथक्-निर्वाचनकी स्थापना मात्रमें मुझे उस विषके इन्जेक्शनकी गन्ध मिलती है जिससे हिन्दुत्व नष्ट हो सकता है और दलित वर्गोंको कुछ लाभ नहीं मिल सकता।.....आप कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, आप ऐसे विषयमें ठीक-ठीक निश्चयपर नहीं पहुँच सकते जो हिन्दू और अछूत दोनोंके लिए जीवन-मरणका प्रश्न है और धार्मिक दृष्टिसे बहुत महत्व रखता है।"

लेकिन गांधीजीके इन सरल, निष्कपट औह सच्चे भावोंपर ब्रिटिश-सरकार ध्यान देनेको प्रस्तुत न थी। वह तो राष्ट्रीय आन्दोलनको दबानेके लिए तुली थी और साम्प्रदायिक-निर्णय उस आन्दोलनको तोड़नेका ही एक उपाय था। फलतः सरकार अपने निर्णयपर कायम रही और गांधीजी भी अपने निश्चयपर डटे रहे। अब केवल यह देखना शेष था कि सत्यकी विजय होती है या असत्यकी; छलकी जय होती है या निश्छलकी और धर्म विजयी होता है या अधर्म। निःसन्देह गांधी और ब्रिटिश-सरकारकी यह लड़ाई देवासुर-संग्रामका ही एक रूप थी।

व्रतका उद्देश्य

अपने आमरण उपवासके द्वारा गांधीजी ब्रिटेनकी भेद-नीतिको ही न समाप्त करना चाहते थे, बल्कि वे साथ ही हिन्दू धर्मसे अस्पृश्यताके कलंकको भी मिटा देनेके लिए कृत-संकल्प थे। गांधीजीको केवल राजनीतिज्ञ समझना उनके व्यापक व्यक्तित्वसे अपना अज्ञान जतलाना है। गांधीजी एक राजनीतिज्ञ ही नहीं, सच्चे अर्थों में समाजके एक क्रान्तिकारी सुधारक थे। राजनैतिक क्षेत्रमें वे राजनीतिज्ञ थे और धर्मके क्षेत्रमें महात्मा थे। यदि वे हिन्दुस्तानको दासताकी जंजीरोंसे मुक्त करानेके लिए दृढ़निष्ठ थे तो उससे भी अधिक वे हिन्दू-धर्मके कलंक—अस्पृश्यताको मिटानेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे। उनके सामने दलित-जातिका प्रश्न केवल राजनैतिक प्रश्न न था, बल्कि एक धार्मिक प्रश्न भी था। हिन्दू सनातन-धर्मके महान सुधारकोंकी कीर्तिमान शृंखलामें गांधीजी स्वयं एक कड़ी थे। महावीर और बुद्ध तथा दयानन्द आदि की भाँति वे धर्मके क्रांति-कारी भी थे। वे देख रहे थे कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मको डुबाने और भारतको दलित करनेका कारण हो रही है, इसलिए वे उसे मिटानेके लिए बहुत समयसे उत्कंठित हो रहे थे। केवल अवसरकी—और अन्तरात्माके निर्देशकी वे बाट देख रहे थे। अतः जब सरकारने 'साम्प्रदायिक निर्णय' का ऐलान किया, उनकी अन्तरात्मा कराह उठी, क्योंकि उस निर्णयसे 'अस्पृश्यता' के कलकको अमर और अमिट बनाया जा रहा था। गांधीके लिए इस कलंकको सहना कठिन ही नहीं असह्य हो उठा और उनके हृदयने—आत्माने उन्हें सर्वस्व लगाकर भी इस 'पाप' के विरोधके लिए विवश कर दिया। निःसन्देह उनका उपवास अस्पृश्यताके विरुद्ध उनकी आत्माका एक जबरदस्त विरोध और विद्रोह था। उन्होंने निश्चय कर लिया कि या तो वे अस्पृश्यताको मेटेंगे या खुदको ही मिटा डालेंगे। इन दो के बीचमें कोई तीसरी बात अब उनके सामने न थी।

१५ सितम्बर को गांधीजीने यरवदा जेल से बम्बई सरकार को जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने अपने उपवासके उद्देश्यों आदि को स्पष्ट कर दिया था।

उनके पत्रके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं, जिससे पाठक महात्माजीके भावों को और स्पष्टतया समझ सकेंगे—

"मेरे अनशन का निश्चय ईश्वरके नाम पर,...उसके आदेश पर किया गया है !

सर्वोपरि, हिन्दू-समाज की अन्तरात्मा को सच्चे धर्मके पालनके लिए प्रेरित करना उसका उद्देश है !

पृथक् निर्वाचन निश्चयके लिए एक निमित्त-मात्र था !......यदि हिन्दू-जनताका अन्तःकरण अस्पृश्यताके जड़-मूलसे उखाड़ फेंकनेको अभी तैयार नहीं हुआ है तो मेरा बलिदान कर देनेमें आगा-पीछा न करना चाहिए।

ईश्वर करे, मेरी यंत्रणा हिन्दू धर्मके अन्तःकरणको शुद्ध करदे और उनके हृदयोंको द्रवित भी करसके जिनकी प्रवृत्ति तत्काल मुझे कष्ट पहुँचाने की हो रही है !

मेरे उपवासका मुख्य हेतु...दलित वर्गके लिए पृथक् निर्वाचनका, विरोध करना है !

...संयुक्त-निर्वाचनके आधारपर सवर्ण हिन्दूओं और दलित-वर्गके जिम्मे-दार नेताओंके बीच कोई समझौता हो, और वह सब प्रकारके हिन्दुओंकी बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओंमें स्वीकृत हो जाय, तो मैं उसे मान लूँगा !

दलित वर्गोंका प्रश्न प्रधानतया एक धार्मिक प्रश्न है, और उससे मैं अपने को विशेष रूप से सम्बद्ध समझता हूँ, क्योंकि मैं अपने जीवनमें हमेशा ही उस पर विचार करता रहा हूँ !

प्रकाश और तपस्याके लिए उपवास एक बहुत पुरानी प्रथा है ! मैंने ईसाई-धर्म तथा इस्लाममें भी इसका उल्लेख देखा है ! हिन्दू धर्ममें तो आत्मशुद्धि एवं तपस्याके उद्देश्यसे किये गये उपवासके उदाहरण भरे पड़े हैं ! किन्तु यह एक विशेष एव उच्च उद्देश्यके साथ-साथ धर्म समझकर ही किया जाना चाहिये !"

जगत व्यापी व्याकुलता

लेकिन सरकार ने गांधीजीके निश्चयपर कोई ध्यान न दिया और अपने

'निर्णय' पर डटी ही रही। १२ सितम्बरको वह सारा पत्र-व्यवहार जो गांधीजी और भारत-मंत्री तथा प्रधान मंत्रीके बीच हुआ था, प्रकाशित कर दिया गया ! इस पत्र व्यवहारके प्रकाशित होते ही भारत एवं सम्पूर्ण जगत एक अद्भुत भयकी आशंकासे संत्रस्त-सा हो उठा ! सबके चेहरोंपर एक अजीब उदासी और भय के चिन्ह प्रत्यक्ष नजर आने लगे थे ! सबके मुँहसे एक ही ध्वनि सुनाई पड़ने लगी कि एक सप्ताह बाद जब गांधीजी आमरण अनशन करेंगे तो न जाने उसका क्या परिणाम होगा ? जगत-भरका हृदय गांधीजीको खोनेके भयसे गहरी उसाँसे लेने लगा था ! सब चिन्तित थे—उदास थे, केवल सरकार अपने रचे हुए इस भयंकर खेलको उपहास-पूर्ण कुतूहलके साथ निरख रही थी !

व्रत आरम्भ होनेके इस एक सप्ताहकी बेचैनीका उल्लेख करते हुए श्री पट्टाभि लिखते हैं—

"यह सप्ताह देश ही क्या, संसार भरके लिए क्षोभ, चिन्ता और हलचलका सप्ताह था। यह सप्ताह बड़े अवसादका सप्ताह था, जिसमें व्यक्तियों और संस्थाओंने जो ठीक समझा, किया।...संसारके कोने-कोनेसे पूना को तार भेजे गये।...मित्र उनके प्राण बचानेके लिए चिन्तित थे और शत्रु उपहासपूर्ण कुतूहल के साथ सारा व्यापार देख रहे थे...।

और "जब गांधीजीने प्रधान मंत्रीको उत्तर दिया कि अब व्रत आरम्भ होगा, तो...सारा देश भयभीत, अवसन्न और स्तब्ध हो गया।"

गांधीजीके इस भयंकर निश्चयने देशकी साधारण जनताको ही नहीं कॉंग्रेसके बलिष्ठ नेताओंको भी भयभीत कर डाला था। गांधीके मृत्युके मुखमें जानेका अर्थ था—कौंग्रेसका मृत्युके मुखमें फँसना, क्योंकि गाँधी और कौंग्रेस अब दो भिन्न वस्तु न रह गये थे। अतः गांधीकी मृत्युके विचारने नेहरू जैसे बलवान नेताका

---

* कांग्रेस का इतिहास-भा-१-पृष्ठ-५१८

भी कम्पित कर दिया था। इस व्रतका उल्लेख करते हुए पं० नेहरू 'मेरी कहानी' में लिखते हैं—

"हमारे शान्त और एक-ढर्रेके जेल-जीवनमें सितम्बर १९३२ के बीचमें मानों अचानक एक वज्र सा गिरा। खबर मिली कि दलित-जातियोंको अलग चुनावके अधिकार दिये जानेके विरोधमें गांधीजीने 'आमरण अनशन' करना तय किया है। लोगोंपर अचानक चोट पहुँचानेकी उनमें कितनी अद्भुत क्षमता है।..सब तरहकी भावी सम्भावनाओंके चित्र मेरे सामने आने लगे, और उन्होंने मेरे स्थिर चित्तको बिलकुल उद्विग्न कर दिया। दो दिन तक मुझे बिलकुल अँधेरा ही अँधेरा दिखायी दिया, और कोई रास्ता नहीं सूझा।...मुझे ऐसा लगता था कि अब शायद मैं उन्हें नहीं देख सकूँगा।"*

प्राणों की रक्षा

२० सितम्बरको गाँधीजीका यह भयंकर व्रत आरम्भ हुआ जिससे सम्पूर्ण देश भयभीत, अवसन्न और स्तब्ध हो उठा। सारे देशके सामने इस समय एक ही प्रश्न था कि गांधीजीके प्राणोंकी किस तरह रक्षाकी जावे? गांधीजीके अवसानमें सारे राष्ट्रको अपने ही अवसानकी छाया देख पड़ रही थी। गांधीजी निःसन्देह देशकी आत्मा बन चुके थे, इसलिये बिना आत्माके देशका जीवित रहना कठिन ही था। अतः देशके जो भी नेता बाहर थे, वे गांधीजीके प्राणोंकी रक्षाका उपाय सोचनेमें जुट गये। नेता ही नहीं, सारा देश गांधीजीके प्राणोंके लिए चिन्तित हो उठा। सारे देशमें २० सितम्बरको अनेक स्त्री-पुरुषोंने सहानुभूतिमें उपवास रखा और ईश्वरसे गांधीजीकी प्राण रक्षाके लिए प्रार्थनायें कीं। गांधीजीके इस उपवासने लोगोंको भयभीत ही न किया, बल्कि अस्पृश्योंके प्रति उनके हृदयोंको भी अनुरागसे भर दिया। गांधीजीके उपस्थित बलिदानने हिन्दू जनताके हृदयोंसे

---

*—अनुवादक, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, पृष्ठ ५०४

सदियोंसे जमा हुआ अस्पृश्यताके मैलको धो डाला। हिन्दू जनताने अपने हृदयोंके इस नये अनुरागको कलकत्ता, दिल्ली और अन्यान्य स्थानोंमें अस्पृश्योंके लिए मन्दिर खोलकर प्रकट किया। निःसन्देह गांधीजीकी यह एक महान आध्यात्मिक विजय थी, जिसने राष्ट्रके हृदयपर उनका अधिकार स्थापित कर दिया।*

---

* महान हर्षकी बात है कि स्वतंत्र भारतकी विधान सभाने २९ नवम्बर १९४८ के अपने निर्णयानुसार महात्मा गांधीकी जयके साथ अस्पृश्यताका अन्त कर दिया है। महात्मा गांधीकी तपस्याका ही यह मधुर फल है। इसमें संदेह नहीं कि अपनी इस उच्चतम आकांक्षाको पूरा हुआ देखकर स्वर्गमें बैठी उनकी आत्माको विमल आनन्द प्राप्त हुआ होगा। उनकी इस सफलताको देखते हुए हम कह सकते हैं कि यद्यपि गांधीका शरीर अब नहीं है, किन्तु उनके विचार आज भी जीवित हैं, और उनका अमर संदेश अथवा 'गांधीवाद' भारत ही नहीं वरन् हिंसा और बैरसे पीड़ित संसारको नित्य नव-प्रेरणा देता रहेगा।

अस्पृश्यता निवारणके महत्वको समझनेके लिए नीचे उसके सम्बन्धमें विदेशी पत्रोंकी सम्मतियाँ उद्धृत की जाती है—

ABOLITION OF UNTOUCHABILITY CALLED ASIATIC MAGNA CHARTA

WASHINGTON, (By Cable)—"Chronicle"

"By any reckoning, the act of the Indian Constituent Assembly in voting to abolish untouchability must be considered historically momentous, an Asiatic Magna Charta.

"This is not to say that every evil of caste system will now evaporate over-night; it is too much to expect even that untouchability will magically fade away. But

पूना-पैक्ट

देशके नेता गांधीजीके प्राणोंको बचानेके लिये बहुत चिन्तातुर थे। पृथक निर्वाचनका किस प्रकार अन्त किया जाय सभीके सामने तब यही प्रश्न था, क्योंकि

---

it is a beginning, and a significant one. It is significant because a representative group of Indians have acknowledged that India imposes obligation superior to group obligations; in principle, this milestone is comparable to the American constiutional convention, and it may not be too much to say that the true identity of an Indian nation will be dated from this act....

"Anyone would agree, we think, that the act was the posthumous triumph, and perhaps the greatest, of India's late great soul (Gandhi). Prejudice, pride and inertia being the barriers that they are, no one else could have built and kept the spiritual flame necessary to burn them away and fuse the elements of an Indian nation. The flame never burned whiter, perhaps, than on the day last January when the breath left his tiny wasted body."

NOT A MERE PAPER ACHIEVEMENT

The December 6 issue of the Kalamazoo, Michigan, "Gazette" (referring to "India's Former Untouchables" said in part)—

"(The law), also represents a posthumous triumph

उसके हल किये जाने से ही गांधीके प्राण बचाये जा सकते थे। बृटिश प्रधान मंत्री तो अपने निश्चयको स्वयं तोड़ने वाले न थे चाहे गांधी रहे या जाय, इसलिये उनके निश्चय को तोड़नेके लिये हिन्दुओंका आपसी समझौता ही एक उपाय रह गया था।

अतः महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीकी प्रेरणापर हिन्दू और काँग्रेसी नेताओंकी एक परिषद् बुलानेका तुरन्त निश्चय किया गया। यह परिषद् बम्बई

---

for the late Mohandas K. Gandhi who spent a good part of his extremely active career fighting the whole system of untouchability. Evidence that it is more than a paper achievement appears in the report that India's present Government includes two members hitherto classed as untouchables, the Minister for Law and the Minister for Labour. As a matter of fact there is good reason to believe that the law, in this case has followed popular sentiment, in some degree at least, instead of preceding it. We are told that the observance of untouchability has been dying out in India's cities in recent years although it has remained strong in some parts of the countryside. If the new Dominion Goverment is really eager to stamp out untouchability as it seems to be, it may have a really tough enforcement problem on its hands in those areas where this ancient caste prejudice still holds sway. Some time may have to pass before all of India's untouchables are liberated in fact as well as in law."—(U. S. I. S.).

में शुरू हुई; लेकिन शीघ्र ही उसका स्थान बदलकर पूना कर दिया गया। इस परिषद्में दलित-वर्ग, कांग्रेस और हिन्दू सभाके नेता शामिल हुए और डा० अम्बेडकर, श्री अमृतलाल ठक्कर, श्री राजगोपालाचार्य, सर चुन्नीलाल मेहता, पं० मालवीय, बिड़लाजी, सरदार पटेल, श्रीमतीसरोजिनी नायडू, श्री जयकर, राय बहादुर एम० सी० राज, बाबू राजेन्द्र प्रसाद और हृदयनाथ कुंजरू आदि की सहायतसे एक योजना तैयार की गयी, जिसे उपवासके पाँचवें दिन सभी दलोंने स्वीकार किया और फलतः दलित जातियोंने पृथक निर्वाचनकी माँग त्याग कर आम हिन्दू निर्वाचनोंको ही स्वीकार कर लिया। हिन्दू और दलित-वर्ग का यह समझोता हमारे कांग्रेसके इतिहासमें यरवदा पूना पैक्ट अथवा समझौताके नामसे प्रसिद्ध है। यह समझौता २४ सितम्बरको हुआ था।

इस समझौतेसे दलित वर्ग पूरी तरहसे संतुष्ट हो गया, क्योंकि प्रधान-मंत्री के निश्चयानुसार उन्हें जितनी जगहें मिलने वाली थीं, अब उन्हें उनसे दुगुनी मिल गयीं और अपनी जन-संख्यासे भी अधिक उन्हें प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। २६ सितम्बरको यह समझौता बृटिश मंत्रि मंडलने भी स्वीकार कर लिया, जिसका अर्थ गांधीजीके उद्देश्यकी विजय थी। अतः विजयी होने पर २६ तारीखको शामके सवा पाँच बजे गांधीजीने उपवास भी भंग कर दिया और विजेता की सफलताके साथ मृत्युके मुख से बाहर निकल आये। किन्तु उपवास-भंग करनेके साथ ही गांधीजीने देशको इस बातकी भी चेतावनी दे दी कि अस्पृश्यता-निवारण संबंधी सुधार यदि ईमानदारीसे पूरे न किये गये तो उन्हें नये सिरेसे उपवास करना पड़ेगा। उन्होंने घोषित किया—"स्वतंत्रता का संदेश हरेक हरिजनके घरमें हुँपचना चाहिये और यह तभी हो सकता है जब सुधार हरेक गाँवमें किया जाय।"

———

अध्याय—२२

सत्याग्रह समाप्ति पर

उपवासका परिणाम

राजनैतिक दृष्टिसे गांधीजीके उपवासका सत्याग्रह आन्दोलन पर बड़ा अहितकारी प्रभाव पड़ा। देशका ध्यान और शक्ति सत्याग्रहसे खिंच गयी और परिणामतः सत्याग्रह आन्दोलन ढीला पड़ गया। पं० जवाहरलाल नेहरूके शब्दोंमें गांधीजीका उपवास सत्याग्रह-आन्दोलन पर 'पहला जबरदस्त प्रहार था।'

इसमें सन्देह नहीं कि तात्कालिक रूपसे गांधीजीके उपवासने सत्याग्रह-आन्दोलनको कमजोर बनाया; लेकिन उसका आखिरी परिणाम आन्दोलनके लिए पूर्ण लाभदायक सिद्ध हुआ। यदि गांधीजी पृथक निर्वाचनको लेकर उपवास न आरम्भ करते तो इसमें सन्देह नहीं कि दलित-वर्ग हिन्दू जातिसे पृथक हो जाता जिसका परिणाम हमारे राष्ट्रीय संगठन और आन्दोलनके लिए घातक हो सकता था। ऐसी स्थितिमें मुस्लिम लीगकी भाँति दलित वर्ग भी अपने लिए अलग 'स्थान' माँगकर भारतको खंडित कर सकते थे। इसलिए इन विनाशकारी खतरोंके सामने गांधीजीको स्वराज्यका प्रश्न तुच्छ प्रतीत हुआ। ऊँचे वर्गके हिन्दुओंके नैतिक अपराधके फलसे उनका ही एक अंग उनसे पृथक हो जाय और भारत उस पापसे खंडित हो उठे, यह गांधीजीको कैसे सह्य हो सकता था। यही कारण था कि उन्होंने अस्पृश्यताके कलंकको मेटना अपना प्रथम और सर्वोपरि कर्त्तव्य समझा। हमें याद रखना चाहिए कि गांधीजी केवल राजनैतिक नेता ही न थे, वे एक महान सुधारक और धार्मिक पुरुष भी थे। उन्होंने कहा ही था कि उनके व्रतका सर्वोपरि उद्देश्य 'हिन्दू-समाजकी

अन्तरात्माको सच्चे धर्मके पालनके लिए प्रेरित करना है।' साथ ही उनका यह भी विश्वास था कि अस्पृश्यताके विरुद्ध उनका संग्राम वास्तवमें मानव-जाति की अशुद्धताके विरुद्ध संग्राम है। ऐसा संग्राम उन्हें दक्षिण अफ्रीकामें भी लड़ना पड़ा था जहाँके यूरोपियन गोरे वर्णके अभिमानमें 'कालों' पर अत्याचार करनेमें नाजियोंकी-सी प्रसिद्धि प्राप्त कर गये हैं। अतः यद्यपि अनेक राजनीतिज्ञोंको गांधीजीका उपवास तब सत्याग्रह आन्दोलनके लिए विनाशकारी मालूम दिया लेकिन गांधीजीको स्वयं अपने उस निर्णय पर पूर्ण भरोसा और विश्वास था। उन्होंने कहा—'सम्भव है कि ऊपरसे देखनेवालोंको यह बच्चोंका-सा खेल दिखाई दे; लेकिन मुझे यह ऐसा नहीं दिखायी देता।

'मेरा विश्वास है कि यदि अस्पृश्यताका वास्तवमें जड़-मूलसे नाश हो गया तो इससे हिन्दू-धर्मका एक बड़ा भारी कलंक ही नहीं मिट जायगा, बल्कि इसका असर सारी दुनिया तक पहुँचेगा। अस्पृश्यताके विरुद्ध मेरा सग्राम वास्तवमें मानव-जातिकी अशुद्धताके विरुद्ध सग्राम है।

'····इस प्रश्नका अलौकिक महत्व है—राजनैतिक शासन-प्रणालीमें वह स्वराज्यसे भी बहुत अधिक महत्व का है।.....'*

अतः साफ है कि गाँधीजी स्वराज्यके आन्दोलनके लिये तब इतना चिन्तित नहीं थे जितना कि वे अस्पृश्योंके प्रश्नको हल करनेके लिये। उन्हें इसका कोई क्षोभ भी न था कि कुछ समयके लिये अस्पृश्यताके आन्दोलनके कारण सत्याग्रह आन्दोलन शिथिल पड़ जायगा, क्योंकि वे समझते थे कि दलित वर्गका प्रश्न खटाईमें पड़नेसे 'स्वराज्य' ही स्वयं खतरेमें पड़ जायगा। इसलिये उनकी नजरोंमें अस्पृश्यताका प्रश्न और आन्दोलन सही अर्थमें स्वराज्य आन्दोलनका ही एक पक्ष था, यद्यपि वह पक्ष राजनैतिककी जगह नैतिक अधिक था। लेकिन गांधी-जीके सामने अन्य पक्षोंके ऊपर नैतिक पक्ष ही अधिक महत्वका रहा है।

---

* कॉंग्रेसका इतिहास–पृष्ठ–६५४–६५५

अतः गाँधीजीके उपवासने यद्यपि सत्याग्रहको ढीला जरूर किया, लेकिन दूसरी ओर दलित-वर्गके उद्धार-आन्दोलनको तीव्र उसने बना दिया। गाँधीजीकी तपस्याने उच्च वर्णके हिंन्दुओंके हृदयमें भरे हुए मैलको भी धो डाला और दलित-वर्गके प्रति उनमें कर्त्तव्य-ज्ञान पैदा कर दिया। श्री घनश्यामदास बिड़ला, जो यरवदा-पैक्ट करानेवालोंमें से एक प्रमुख कार्यकर्त्ता थे, लिखते हैं—'यरवदा-पैक्टके बाद देशमें एक नयी लहर आ रही थी। जगह-जगह उच्चवर्ण हिन्दुओंमें हजारों सालतक हरिजनोंके प्रति किये गये अत्याचारोंके कारण आत्मग्लानि जाग्रत हो रही थी।.....लोगोंने राजनैतिक सत्याग्रहको ता वहीं छोड़ा और चारों तरफसे हरिजन-कार्यमें जुट पड़े। यह एक चमत्कार था। वर्षोंसे गाँधीजी हरिजन-कार्यका प्रचार करते थे; पर उच्चवर्ण हिन्दुओंकी आत्माको वे जागृत नहीं कर सके थे। जो काम वर्षोंमें नहीं हो पाया था, अब वह अचानक हो गया।*

इसमें संदेह नहीं कि उपवासके समयसे ही असलमें—हरिजन आन्दोलनने जोर पकड़ा है। यरवदा पेक्टके बाद ही २५ सितम्बरको बम्बईमें पं० मदनमाहन मालवीयजीके सभापतित्वमें एक सभा की गयी थी जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा यह प्रतिज्ञा की गयी कि हिन्दू अस्पृश्यताका निवारण करेंगे। इस कार्यको करनेके लिए तभी एक संस्थाका भी निर्माण किया गया जो बादमें *हरिजन-सेवक-संघके रूपमें विकसित हुई। कहना न होगा कि जनताने इस कार्य में पूरा-पूरा सहयोग दिया और हिन्दू धर्ममें एक नैतिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

गाँधीजी भी स्वयं यरवदा जेलसे हरिजन आन्दोलनके लिए काम करते रहे। १ दिसम्बर १९३२ को गाँधीजीको एक बार पुनः दो दिनोंके लिये

---

* बापू; पृष्ठ ६१.

यह संघ गांधीजीने फरवरी १९३३ में स्थापित किया था और उसके कामको आगे बढ़ाने के लिये इसी समयमें 'हरिजन' पत्रका प्रकाशन भी आरम्भ किया गया था।

उपवास करना पड़ा था। यह उपवास उन्हें अपने एक जेलके साथी उच्च-वर्णके हिन्दूको भंगीका काम दिलानेको करना पड़ा था। पहले तो सरकारने यह माँग स्वीकार न की ; लेकिन गाँधीजीके उपवाससे घबड़ाकर उन्हें दो ही दिनमें उस माँग पर विचार करनेके लिये तैयार हो जाना पड़ा।

गाँधीजीकी अग्नि-परीक्षा—

हम कह आये हैं कि सत्याग्रह-आन्दोलन ढीला पड़ गया था और हरिजन आन्दोलन बढ़ता जा रहा था। किन्तु देशने सत्याग्रह-आन्दोलनको बिलकुल भुला दिया हो, सो बात न थी। यह बात इसीसे सिद्ध है कि ३१ मार्च १९३२ को जब कलकत्तेमें—काँग्रेसका अधिवेशन हुआ तो वह निषेधाज्ञाके विपरीत किया गया था और तिसपर भी ११०० प्रतिनिधि विभिन्न प्रान्तोंसे उसमें शामिल हुए थे। इस काँग्रेसने सत्याग्रह-आन्दोलनकी शिथिलताको देखते हुए उसे दृढ़ और व्यापक बनानेका प्रस्ताव रखा था।

२१ दिनका उपवास

किन्तु इस काँग्रेसके समाप्त होते ही यकायक हरिजन कार्यकर्त्ताओंकी आत्म-शुद्धिके लिए गांधीजीने २१ दिनका उपवास आरम्भ कर दिया जिससे देशका ध्यान पुनः सत्याग्रहको छोड़कर उनकी तरफ खींच गया। यह उपवास ८ मई १९३३ को आरम्भ किया गया था। सरकारने भी इस परेशानीसे छुट्टी पानेके लिए उसी दिन गांधीजीको बिना शर्तके रिहा कर दिया। इस उपवासके ध्येय पर प्रकाश डालते हुए गांधीजीने कहा था कि "यह अपनी और अपने साथियोंकी शुद्धिके लिए हृदयसे की गयी प्रार्थना है, इसलिए मैं अपने भारतीय तथा संसार-भरके मित्रोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करें कि मैं इस अग्नि-परीक्षा में सकुशल उतरूँ और मैंने जिस उद्देश्यसे उपवास किया है, वह पूरा हो।"

रिहा होने पर गांधीजीने ६ सप्ताहके लिए सत्याग्रह-आन्दोलनको बन्द कर देनेकी सिफारिश की और तदनुसार कॉंग्रेसके प्रधानने उतने समयके लिए सत्याग्रह बन्द कर दिया। ऐसा शायद गाँधीजीने सत्याग्रह-आन्दोलनके अध्ययनके लिए ही किया था। वे इस बातको समझ लेना चाहते थे कि जिस नैतिक और अहिंसाके उच्च आदर्शों पर सत्याग्रहको चलना चाहिए था उससे वह विरत और विपथ तो नहीं हुआ है। रिहा होनेके बाद अपने वक्तव्यमें उन्होंने कहा था—"अब रिहाई होने पर मैं अपनी थोड़ी-बहुत शक्ति सत्याग्रह-आन्दोलनका अध्ययन करनेमें भी लगानेको बाध्य हूँ।

"इसमें सन्देह नहीं कि सत्याग्रहके सम्बन्धमें मेरे विचारोंमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ा है। असंख्य सत्याग्रहियोंकी वीरता और आत्म-त्यागके लिए मेरे पास साधुवादके सिवा और कुछ नहीं है। मैं यह कहे बिना भी नहीं रह सकता कि इस आन्दोलनमें जिस लुका-छिपीसे काम लिया गया है, वह उसकी सफलताके लिए घातक है। यदि आन्दोलनको जारी रखना है, तो मेरा कहना है कि लुका-छिपी छोड़ दो।"

"इसमें सन्देह नहीं कि जन-साधारण पर भयने अधिकार कर लिया है। आर्डिनेन्सोंने उन्हें भयभीत बना दिया है, और मेरी धारणा है कि लुका-छिपीके तरीकोंका भी यह दब्बूपन उत्पन्न करनेमें हाथ है।"*

गांधीजीके इस वक्तव्यसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सरकारके दमनसे जनता काफी त्रस्त हो चुकी थी और इस भयके कारण ही सत्याग्रह खुदबखुद दब चला था और केवल छुट-पुट तरीकेसे कुछ लोग लुक-छिपकर ही आन्दोलनको कायम रखे हुए थे। ऐसी त्रस्त स्थितिमें गांधीजीको यही प्रतीत हुआ कि सत्याग्रह-आन्दोलनका अब जन-आन्दोलनके रूपमें चलना कठिन है और शायद उनका सम्पूर्ण प्रभाव भी जनताको उसके लिए इस समय उकसा न सकेगा।

---

* कॉंग्रेसका इतिहास, पृष्ठ—५२७

यही कारण था कि गांधीजीने सत्याग्रहको कुछ सप्ताहोंके लिए बन्द करा देनेकी सिफारिशकी थी। उनके ऐसा करनेपर वीयानासे श्री विट्ठल भाई पटेल और श्री सुभाष बसुने एक वक्तव्य निकाला जिसमें कहा था कि सत्याग्रहको बन्द करनेकी गाँधीजीकी कारवाई 'असफलताकी स्वीकारोक्ति' है! उन्होने वक्तव्यमें यह भी घोषित किया था कि गाँधीजी राजनैतिक नेताके रूपसे असफल रहे हैं, इसलिये 'नये सिद्धांतोंके ऊपर नये उपायको लेकर काँग्रेसकी कायापलट करना चाहिये और इसके लिये एक नये नेताकी आवश्यकता है, क्योंकि गाँधीजीसे यह आशा करना अनुचित है कि वह ऐसे कार्य-क्रमको हाथमें लेंगे जो उनके जीवनभरके सिद्धांतोंके साथ मेल न खाता हो।'

इस वक्तव्यका साफ अर्थ था कि अहिंसाके मार्गसे देशका उद्धार नहीं हो सकता, इसलिये पश्चिमके सिद्धांत पर, जहाँसे कि वक्तव्य निकाला गया था, हिंसाका मार्ग अपनाया जाना चाहिये और उसका नेतृत्व किसी हिंसा विश्वासी नेताके हाथमें रहना चाहिये! लेकिन इस वक्तव्यसे भारतको कोई विशेष फायदा न पहुँचा! श्री हिरेन्द्रनाथ मुकर्जीने बहुत सही लिखा है कि केवल इच्छा करनेसे कोई नया सिद्धांत, नया उपाय और नया नेतृत्व नहीं पैदा हो सकता* ! अतः गाँधीजी सफलता व असफलताके बावजूद मैदानमें अकेले डटे ही रहे!

गांधीजी उपवासके दिनों श्रीमती ठाकरसीके पूना-आवास 'पर्णकुटी' में रह रहे थे, इसलिए उपवासके अन्त तक राष्ट्रकी आँखें उसी ओर लगी रहीं। अन्त में २१ दिन के लम्बे अर्सेके बाद २९ मई को गांधीजीका उपवास बिना किसी दुर्घटनाके अग्नि-परीक्षा-पूर्तिके रूपमें समाप्त हो गया। राष्ट्रने शांतिकी साँस ली और खतरेको पार हुआ देखकर विश्व भरने मुक्त कंठसे ईश्वरको धन्यवाद दिया। गाँधीजीको बदलनेवाला कोई था भी नहीं जो आकर राष्ट्रके आन्दोलनकी बागडोर अपने हाथोंमें कर लेता!

---

*India struggles for Freeedom, p. 153.

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गांधीजीका अधिकाधिक ध्यान इस समय हरिजन आन्दोलनकी ओर खिंच चला था। राष्ट्र भी आर्डिनेंसोंकी मारसे क्षुब्ध था और उसमें अहिंसाके शांत पथपर बढ़नेकी शक्ति न रह गयी थी। अतः गांधीजी अब इस प्रयत्नमें लगे कि सरकार और कॉंग्रेसके बीचमें एक सम्मानप्रद समझौता कर दिया जाय जिससे देशमें शांति स्थापित हो सके। कॉंग्रेस भी गांधीजीकी इच्छाओंको जानकर ही आगे कदम रखना चाहती थी। अतः कॉंग्रेसके स्थानापन्न सभापति अणेने सत्याग्रहको ६ सप्ताहके लिये और बन्द करा दिया था ताकि गांधीजीका कॉंग्रेसको सलाह देनेका मौका मिलसके। २२ जुलाई १९३३ को इसी उद्देश्यसे कॉंग्रेसकी पूनामें एक अनियमित बैठक हुई। पूनाकी इस कॉंग्रेसने अन्तमें गांधीजीको सरकारसे समझौता करनेका पूरा अधिकार दे दिया। इस निश्चयके अनुसार १५ जुलाईको गांधीजीने वाइसरायसे मुलाकात करनेकी अनुमति माँगी; लेकिन गांधीजीकी इस प्रार्थनापर सरकारने ध्यान न दिया और समझौते का यह प्रयत्न निष्फल ही गया।

वाइसरायके रुखसे स्पष्ट था कि सरकार शांति नहीं, युद्ध चाहती है। अतः हमारे राष्ट्रको भी अपनी टेक रखने के लिए युद्ध जारी रखनेको बाध्य होना पड़ा। परन्तु जैसा कि हम कह आये हैं सामूहिक आन्दोलनके लिये अब अवसर न रह गया था, इसलिये कॉंग्रेसके अधिकारियोंने सामूहिक सत्याग्रह तो बन्द करा दिया और उसकी जगह व्यक्तिगत सत्याग्रह करनेकी सलाह दी। इस निश्चयके साथ कॉंग्रेसके कार्यवाहक सभापतिकी आज्ञा पर सारी कॉंग्रेस-संस्थायें और युद्ध-समितियाँ समाप्त कर दी गयीं।

दमन और गांधीजीकी गिरफ्तारी—

कांग्रेसके इन परिवर्तनोंकी तरफ सरकारने कोई ध्यान न दिया। सरकार

व्यक्तिगत सत्याग्रहियोंको कड़ाईके साथ दबाती ही रही। इस प्रकार सरकारकी तरफसे दमनमें किसी प्रकारकी शिथिलता व ढिलाई न की गयी।

कांग्रेसके व्यक्तिगत सत्याग्रहके अगुआ भी गांधीजी थे। इस सत्याग्रहका आरम्भ उन्होंने साबरमति आश्रमके त्यागके साथ शुरू किया। यह आश्रम उन्होंने पहले सरकारको भेंट किया; लेकिन अस्वीकृत होने पर वह हरिजन-आन्दोलनके अर्पण कर दिया गया। याद रखना चाहिए कि दाण्डी-यात्राके समय ही गाँधीजीने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक स्वराज न मिल जायगा, वे आश्रमको वापस न आयेंगे। इस प्रतिज्ञानुसार गांधीजी केवल एक बार १२ मार्च १९३० में आश्रममें आये थे; लेकिन उसके बाद फिर कभी उन्होंने आश्रममें कदम न रखा।

व्यक्तिगत सत्याग्रह का जोर बढ़ते देखकर सरकार ने १ अगस्त १९३३ को जब गाँधीजी रास गाँव जानेवाले थे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया। ४ अगस्तको सरकारने गाँधीजीको रिहाकर पूना जाकर रहनेका नोटिस दिया। पर गाँधीजी ऐसे अप्राकृतिक प्रतिबन्धको माननेवाले न थे, इसलिए रिहाईके तुरन्त बाद ही वे फिरसे गिरफ्तार कर लिए गये और साल-भरकी सजा दे दी गयी। इस गिरफ्तारीसे सत्याग्रह दबनेके बजाय और व्यापकतासे फैल उठा और सभी प्रान्तोंमें सैकड़ों सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये गये। किन्तु सरकारका दमन सत्याग्रहियोंको अपने नेताके पथपर चलनेसे विपथ न कर सका! १९३३ के अगस्तसे लेकर मार्च १९३५ तक वीर सत्याग्रही अबाध गतिके साथ गाँधीजीके अहिंसाके हथियारको लेकर सरकारसे मोर्चा लेते ही रहे।

गांधीजीकी रिहाई

जेलमें ठूँसनेपर सरकारने इस बार गाँधीजीको जो सुविधायें हरिजन कार्यके लिए पहले दी थीं, बन्द कर दीं। इसपर गाँधीजीने फिर अनशन प्रारम्भ कर दिया। यह अनशन लगभग एक हफ्ते चला; किन्तु इतने ही समयके भीतर

गाँधीजीकी हालत बहुत बिगड़ चली जिससे सरकारने उन्हें २१ अगस्तको ही बिना शर्तके रिहा कर दिया।

इस रिहाई ने गांधीजी को एक असमंजसकी स्थितिमें डाल दिया। उन्हें सालभरकी सजा हुई थी और अनपेक्षितरूपसे वे एक महीनेके पहले ही रिहा कर दिये गये थे। अतः ऐसी हालतमें एक अहिंसक योद्धाके रूपमें गांधीजीने यही निश्चय किया कि उन्हें अपने आपको अपनी सजाकी अवधिकी समाप्ति अर्थात् ३ अगस्त १९३४ तक रिहा न समझना और सत्याग्रहमें शामिल न होना चाहिये। लेकिन इस निश्चयके साथ उन्होंने यह भी घोषित किया कि जो सत्याग्रही उनसे पथ-प्रदर्शन माँगेगे उन्हें वे अवश्य सही मार्ग दिखायेंगे और स्वयं इस अवधिका उपयोग हरिजन-आन्दोलनको बढ़ानेमें करेंगे।

हरिजन-आन्दोलन

अपने निश्चयके अनुसार गांधीजीने नवम्बर १९३३ से हरिजन-आन्दोलन के लिये देशमें दौरा भी शुरू किया। तबसे लगभग दस महीनों तक गांधीजी देशके प्रत्येक प्रान्त का दौरा करते रहे और उनका प्रत्येक दिन हरिजन समस्या के सुलझानेमें ही व्यतीत हुआ। उनके दौरेने जादूका काम किया। एकबार कपिल-वस्तुके शाक्य सिंहने भी इसी प्रकार हरिजनोंके उद्धारके लिये भारत भूमि का भ्रमण किया था। किन्तु दुर्भाग्यसे समयकी गतिके साथ उनकी शिक्षाको भूल-कर भारत पुनः अस्पृश्यताके कलंकमें जा फँसा था। अतः दुबारा भारतको इस कलंकसे उतारने का कार्य प्रबुद्ध गांधी जो बुद्धकी परम्पराके ही एक युगपुरुष हैं, के जिम्मे पड़ा।

सिद्धार्थकी भाँति बचपनसे ही गांधीजीको 'अस्पृश्यों' का प्रश्न एक जटिल समस्याके रूपमें व्यग्र किये हुए था। १२ वर्षके बालक गांधीजीको जब उनके माँ-बापने उनके घरके पाखानों को साफ करनेवाले भंगी उकाको छूने से इनकार किया तो उसे तब भी यह व्यवहार कुछ अनोखा-सा प्रतीत हुआ था। बालक-

की समझमें यह बात अप्राकृतिक लगी कि अपने ही में से एक भाईको अस्पृश्य कहकर उससे छूत बरती जाती है। अतः इस भविष्यके महान् सुधारक और तपस्वीका ध्यान तभीसे बराबर हिन्दू धर्मके इस अनाचारकी ओर खिंच गया था और तभीसे उनके मनमें उसे मेटनेकी साध पैदा हो गयी थी।

बालकके विकासके साथ-साथ उसकी यह सुधार भावना भी बढ़ती चली गयी। जब गांधीजी दक्षिण अफ्रिकामें रहने लगे तो हरिजनोंको भी उन्होंने अपने साथियोंमें शामिल किया। अस्पृश्ययोंके कामको मान्यता देनेके लिए उन्होंने पहले दक्षिण अफ्रिकाके फोनिक्स आश्रममें और बादको साबरमतीके सत्याग्रह आश्रममें भंगीका कार्य आश्रमके वासियोंके जिम्मे दिया। प्रारम्भमें साबरमतीमें हरिजनोंकों रखनेमें उन्हें आश्रमके भीतर और बाहरसे विरोध सहना पड़ा; किन्तु अन्तमें गांधीजीका विश्व-प्रेम ही विजयी हुआ और हरिजनोंके प्रति उच्च वर्ण में भाई-चारा और समानताका भाव पैदा हो गया।

काँग्रेसका नेतृत्व हाथमें लेने पर गांधीजीने १९२० से आगे 'अस्पृश्यता निवारण' काँग्रेसके राजनैतिक कार्यक्रममें शामिल करा दिया। 'अस्पृश्यता निवारण' को गांधीजीने 'स्वराज्य' का आधार घोषित किया। उनका कहना था कि बिना अस्पृश्यता-निवारणके सच्चा स्वराज्य हो ही नहीं सकता। सन् १९२५ में गांधीजीके हस्तक्षेपसे हरिजनोंके लिए ट्रावनकोरकी वह सड़क खोल दी गयी, जिसपर सदियोंसे अस्पृश्योंको जाना मना था।

अस्पृश्योंको अस्पृश्य कहकर ठुकराना गांधीजीको हिन्दू धर्मकी सच्ची आत्माके विरुद्ध जान पड़ा। उनके हिन्दू धर्ममें अस्पृश्य ही नहीं मानव मात्रके लिए समान स्थान है। सच्चा हिन्दू धर्म उनकी दृष्टिमें ऐसा वर्गीकरण नहीं करता कि एक मनुष्य ऊँचा है और दूसरा नीचा। अस्पृश्यता वास्तवमें हिन्दू धर्मका अंग नहीं कलंक है—गांधीजीका यही मौलिक कथन था। इसलिए द्वितीय गोलमेज-कान्फ्रेन्समें अस्पृश्योंके वर्गीकरणका विरोध करते हुए गांधीजीने कहा था कि 'हम नहीं चाहते कि अस्पृश्योंका एक पृथक जातिके रूपमें वर्गीकरण

किया जाय। अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्तिसे, अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी, इसका विरोध करूँगा।"

अतः जब १९३२ में सरकारने साम्प्रदायिक निर्णयानुसार अछूतोंको पृथक् करनेका तरीका निकाला तो गांधीजीने जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, प्राणो की बाजी लगा ही तो दी। इस बलिदानके फलसे हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति खण्डित होनेसे बच गयी और राष्ट्रकी एकताके टूटनेका खतरा भी टल गया। हिन्दू नेताओंने गांधीजीके 'सत्य' को स्वीकार किया और अछूतोंको अस्पृश्य कहनेके बजाय उन्हें 'हरिजन' के रूपमें स्वीकार कर लिया। अतः इस समयसे घृणित अस्पृश्य शब्द भी व्यवहारसे लुप्त हो गया और अब वे हरिजनके रूपमें आर्यजातिके चार प्रतिष्ठित अंगोंमें से पुनः एक अंग मान लिये गये।*

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, सन् १९३३ के नवम्बरसे राजनैतिक कार्य को छोड़कर गांधीजीने पूरे दस महीने हरिजन-आन्दोलनका कार्य करनेमें व्यतीत किये थे। ये महीने हरिजन-आन्दोलनके इतिहासमें बहुत महत्व रखते हैं। १९३८ के प्रारम्भमें गुरूवयूर मन्दिरके सम्बन्धमें उन्हें केलप्पनके साथ पुनः आमरण-उपवास करनेका इरादा भी करना पड़ा था। सौभाग्यसे यह मामला गुरूवयूरके मन्दिरके उपासकोंकी राय पर रखा गया। अतः जब राय ली गयी तो ७७% ने पक्षमें और १३% ने विपक्षमें राय दी। पक्षमें राय देनेवालोंमें आधेसे अधिक स्त्रियोंकी संख्या थी। जगत जानता है कि हिन्दू-स्त्रियाँ कितनी धार्मिक अन्ध-भक्त होती हैं, परन्तु गांधीजीके प्रभावने उनकी अन्ध-भक्तिको दूर कर उनकी सरल आत्माको सरलतासे जाग्रत कर दिया था, और गांधीजीके सन्देशके महत्वको समझनेमें वे पुरुषोंसे भी आगे बढ़ गयी थीं। इन मतोंके फलसे उपवासका खतरा जाता

*—शुद्र जो बादमें अस्पृश्य हो चले, वास्तवमें आर्य-जातिमें से ही एक थे—
—कौटिल्य अर्थशास्त्र

रहा और देश पुनः संकटमें पड़नेसे बच गया। इस संकटके बाद हरिजन-दौरेके समयमें २५ जून १९३४ का एक और संकटसे गांधीजी बाल-बाल बच गये। यह संकट पूनामें आया था जब एक हरिजन-आन्दोलनके विरोधीने गांधीजीकी मोटरकार पर बम फेंकनेका असफल प्रयत्न किया था। देशका यह बड़ा सौभाग्य था कि इस बार भी गाँधीजी खतरेसे अछूते निकल गये। पर क्या इस घटनाने गांधीजीको भयभीत या क्रोधित किया था? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि गांधीजी तो 'स्थित-प्रज्ञ' हो चुके थे और अहिंसक होनेके नाते वे दूसरोंके दोषोंके बजाय अपने ही दोषोंको प्रधानता देते थे। इसीलिए अपने सहयोगियोंके दुराचरण पर गाँधीजीने अपने जीवनमें अनेक बार उपवास भी किये हैं। इसी पूनाकी बम-घटनाके १३-१४ रोज बाद अजमेरमें जब एक उष्ण सुधारवादीने हरिजन-आन्दोलनके विरोधी एक पण्डित पर लाठी प्रहार किया तो उसकी असहिष्णुता और क्रोधका प्रायश्चित करनेके लिए भी गाँधीजीने ७ दिनका उपवास किया था।

इन घटनाओंके बावजूद गाँधीजीका यह भ्रमण-कार्य बहुत सफल रहा। इससे प्रचार-कार्य खूब हुआ और लगभग ८ लाख रूपया आन्दोलनको चलानेके लिए राष्ट्रने गाँधीजीको दान दिया। किन्तु इस सबसे महत्पूर्ण लाभ जो हरिजन-आन्दोलन से हुआ वह था हिन्दू-जाति द्वारा अपने ही विस्मृत और उपेक्षित अंगको फिरसे गले लगाया जाना, निःसन्देह इस कार्य ने धार्मिक तथा राजनैतिक दोनों तरहसे हिन्दू-जातिके संगठन और एकताको भंग होनेसे बचा दिया।

सत्याग्रह की समाप्ति—

१५ जनवरी सन् १९३४ का दिन हमारे राष्ट्रके इतिहासमें एक संकटका दिन साबित हुआ! इस दिन बिहारमें एक बड़ा ही विनाशकारी भूकम्प आया, जिससे हजारों मकान धूलमें मिल गये, तथा हजारों प्राणी जान गँवा बैठे! इस भूकम्पने पलक मारते ही हजारों परिवारोंका ध्वस्त कर हजारोंको अनाथ

बना दिया। इस भूकम्पका प्रभाव लगभग डेढ़ करोड़ जनतापर पड़ा था। इस विनाशने बिहार और राष्ट्रके सभी नेताओंको त्रस्त कर दिया। सब मिलकर भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायतामें जुट गये। ऐसे मौकेपर गाँधीजी कैसे चुप रह सकते थे। अतः अपने सारे कामोंको छोड़-छाड़कर वे तुरन्त बिहार चले आये और एक महीनेतक खुद वहाँपर भू-कम्प पीड़ितोंके लिए कार्य करते रहे।

हरिजन आन्दोलनने राजनैतिक आन्दोलनसे पहले ही ध्यान बँटा दिया था और इस भूकम्पने आकर देशका ध्यान उस तरफसे और भी हटा दिया। भूकम्पकी यातना और सरकारी दमन दोनोंने मिलकर देशपर एक व्यापक उदासीनता छा दी थी। कॉंग्रेस और गाँधीजी दोनों इस बातको महसूस कर रहे थे। अतः ३१ मार्च १९३४ को डा० अन्सारीकी अध्यक्षतामें कॉंग्रेसकी दिल्लीमें एक परिषद् हुई जिसने यह निश्चय किया कि निर्वाचनोंमें भाग लेनेके लिए फिरसे स्वराज्य-पार्टीको जीवित किया जाय और रचनात्मक कार्य-क्रमको आगे बढ़ाया जाय। इस परिषद्ने गाँधीजीको अपने निर्णयसे अवगत करने और सलाह लेनेके लिए उनके पास पटनेमें एक शिष्ट-मण्डल भी भेजा। गाँधीजीने परिषद्के निर्णयोंका हृदयसे स्वागत किया और अपनी स्वीकृति देते हुए इस बातका भी आश्वासन दिया कि स्वराज-पार्टीकी वे पूरी सहायता करेंगे।

गांधीजीने यह स्वीकृति देशकी स्थितिको देखकर ही दी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। वे देख रहे थे कि देशमें अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि सत्याग्रह-आन्दोलनका 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के रूपमें चलना भी कठिन होगया है। देश पस्त और त्रस्त था और लोगोंमें सत्याग्रह करनेका वह जोश व उत्साह रह ही नहीं गया था जो कि उनमें प्रारम्भमें था। इसके अलावा जो छुटपुट सत्याग्रही अभी भी इस काममें लगे थे वे गांधीजीके सत्याग्रहके आदर्शोंपर न चल पा रहे थे। ७ अप्रैल १९३४ को जो वक्तव्य गाँधीजीने प्रकाशित किया था, उससे इन बातों पर पूरा प्रकाश पड़ता है। इस वक्तव्यमें उन्होंने कहा था, "यदि सत्याग्रहको पूर्ण-स्वराज्य प्राप्तिके साधन-स्वरूप सफल होना है, तो फिल-

हाल अकेले मुझे ही वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए, सत्याग्रहका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए।" क्योंकि उन्होंने आगे कहा—"मैं अनुभव करता हूँ कि जनताको सत्याग्रहका पूरा सन्देश नहीं मिला है, क्योंकि संदेश उस तक पहुँचते पहुँचते अशुद्ध हो जाता है।"...

"सत्याग्रह...आध्यात्मिक अस्त्र है।" अतः सत्याग्रहके इस आध्यात्मिक अस्त्रका दुरुपयोग और भ्रष्ट किया जाना गाँधीजीको असह्य प्रतीत हुआ, क्योंकि सत्याग्रहका उपयोग उनकी दृष्टिमें पूर्ण अहिंसात्मक साधनोंके द्वारा ही हो सकता है तथा सत्याग्रही वे ही हो सकते हैं जो 'स्वेच्छासे कानून और अधिकारके आगे सिर झुकाना जानते हों, और झुकाते हों।' लेकिन इन दोनों अर्थोंमें तब सत्याग्रह एक प्रकारसे समाप्त हो चुका था और लोग गाँधीजीके शब्दोंमें 'जैसे-तैसे' सत्याग्रह कर रहे थे जिसका प्रभाव 'न आतंकवादियोंके ही हृदयों तक पहुँच सका, न शासकवर्गके ही हृदयों तक।' फलतः गाँधीजीने सत्याग्रहके विशेषज्ञकी हैसियतसे काँग्रेसको सत्याग्रहको सामूहिक आन्दोलनके रूपमें बन्द कराने और उसे उन तक ही सीमित रखनेका आदेश दिया।

वक्तव्यका प्रभाव

गाँधीजीके इस वक्तव्यका प्रभाव सत्याग्रहके युद्धको बनाये रखनेवालों पर अवश्य वैसा ही निराशा-जनक हुआ होगा जैसा कि चौरीं-चौरा काण्डके बाद सत्याग्रहको बन्द करनेपर हुआ था। लेकिन यदि सही तौरसे देखा जाय तो देशमें इस वक्त सरकारके दमनकी भीषणतासे सत्याग्रहके पथपर आगे बढ़नेकी हिम्मत न रह गयी थी और यदि गाँधीजी ऐसे मौकेपर सत्याग्रहको वापिस न लेते तो शायद वह स्वतः ही समाप्त हो जाता। उस समयकी इस पस्त हिम्मतीका उल्लेख करते हुए—पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है—"हिंदुस्तान दमनकी उग्रता और कठोरताके कारण सुन्न हो गया था। कम-से-कम उस वक्त तो तमाम राष्ट्रका धैर्य चला गया था और नये उत्साहका संचार नहीं हो रहा

था । व्यक्तिगत रूपमें तो अब भी ऐसे बहुतसे लोग थे जो सत्याग्रह करते रह सकते थे ; लेकिन उन लोगोंको कुछ-कुछ बनावटी वातावरणमें (गांधीजीके शब्दोंमें अशुद्धताके साथ) काम करना पड़ता था ।*

अतः गाँधीजीने सत्याग्रह-आन्दोलनको बन्द करनेकी घोषणा समयानुकूल ही की थी । उनकी इस घोषणासे वैधानिक तरीकेसे लड़नेवालोंको भी आगे आने का अच्छा अवसर मिल गया । दिल्ली परिषद्के निर्वाचनोंमें भाग लेने और स्वराज्य-पार्टीको खड़ा करनेके निर्णयको गाँधीजीने स्वीकृति पहले ही दे दी थी, इसलिए विधानवादियोंने स्वराज्य पार्टीको उभारनेके लिए १९३४ की २ और ३ मई को राँचीमें फौरन ही अपनी बैठककी और बड़ी कौंसिलके आगामी निर्वाचनमें भाग लेनेका निश्चय किया ।

इसके बाद १८ और १९ मई १९३४ को पटनामें काँग्रेस महासमितिकी बैठक हुई और उसने गाँधीजीके निर्देशानुसार २० मईसे सत्याग्रहको बन्द करा दिया और दूसरी ओर स्वराज्य पार्टीके 'कौंसिल-प्रवेश' के निर्णयको स्वीकृति दे दी । महासमितिने निर्वाचनोंको लड़नेके लिए पं० मदन मोहन मालवीय और डा० अन्सारीको एक बोर्ड बनानेका कार्य भी सुपुर्द किया, जिसका नाम पार्लमेण्टरी-बोर्ड रखा गया और डा० अन्सारी उसके प्रधान नियुक्त हुये ।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि यदि इस मौके पर गाँधीजीने विधानवादियोंको यह अवसर न दिया होता तो काँग्रेसमें भेद हो जाता और उसमें दो अलग-दल पैदा हो सकते थे । इसीलिये डा० अन्सारीने अपने वक्तव्यमें कहा था कि 'महात्मा गाँधीने अपनी हार्दिक और स्वतः दी हुई सहायताके द्वारा काँग्रेसमें विरोध और भेदभावकी आशंकाको दूर कर दिया है । अब कौंसिलोंके भीतर और बाहर रहकर दुहरा युद्ध किया जायगा, जिससे शिक्षित समाज

* मेरी कहानी—पृ०-४६०

और जनताकी राजनैतिक निष्क्रियता और अंतः कुपित असंतोष दूर हो जायगा।"*

सरकार और गांधी

इन परिवर्तनोंको देखकर सरकारके रुखमें भी परिवर्तन हुआ। १९३२ में महासमितिके अलावा सरकारने कॉंग्रेसकी सारी संस्थाओंको गैर-कानूनी करार दे दिया था। अतः सत्याग्रहके समाप्त कर दिये जानेपर सरकारने १९३४ की १२ जून को कॉंग्रेसकी अधिकांश संस्थाओं परसे प्रतिबंध उठा दिया तथापि सीमान्त-प्रदेश और बंगालकी कॉंग्रेस संस्थायें तथा हिन्दुस्तानी सेवादल आदि पहलेकी ही भाँति गैर कानूनी बने रहे।

तो क्या सरकार अभी भी अपने दमनके पथपर चाबुक कसे आरूढ़ थी? क्या उसकी मन्सा हिन्दुस्तानको स्वराज्यके पथ पर कतई बढ़ने न देनेकी थी? सत्याग्रहका वापिस लिये जानेसे क्या सरकारके हृदयमें अपने पशुबलपर भरोसा और गाँधीजीके आध्यात्मिक-अस्त्र और अध्यात्म-बलके प्रति उपेक्षा पैदा हो गयी थी?

और गाँधीजीके हृदयमें क्या था! ये आगे की घटनायें स्पष्ट करेंगी; लेकिन दृढ़ताके साथ इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि उनमें सत्याग्रहके वापिस लेनेसे न अनुत्साह था न उत्साह। उनके सामने केवल एक सत्य था—भारतकी स्वतंत्रता और उसकी उपलब्धिके लिये एक अस्त्र था—सत्याग्रह; और प्रत्यक्षतः कदम हटाते हुए भी उनके कदमोंका रूख आगे ही था।

भला, गाँधी 'सत्य' को छोड़कर पीछे हट ही कैसे सकता था।

---

* कॉंग्रेसका इतिहास पृष्ठ—५३८

अध्याय—२३

घटनाएँ

आन्दोलन स्थगित

गांधीजीके निर्देशानुसार सत्याग्रह-आन्दोलन जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, बन्द करा दिया गया था। यह एक ऐसी घटना थी जिसने देशमें वाह्य रूपसे एक निराशाकी छाया फैला दी थी। बहुतसे उग्रवादी, और देशकी स्वतंत्रताके लिए उतावले नौजवानोंको गाँधीजीका यह कार्य पसन्द न आ सका। उन्हें प्रतीत हुआ कि गाँधीजीने ऐसा करके देश की राजनैतिक प्रगतिको एक कठोर झटका दिया है, और दुश्मनके सामने अपनी असफलता—अपनी पराजय स्वीकारकी है।

तो क्या १९३०—३२ का आन्दोलन एक असफल आन्दोलन था—क्या उसने राष्ट्रको उसकी मंजिल-स्वतन्त्रता तक पहुँचानेमें कुछ भी कार्य नहीं किया? हम मानते हैं कि प्रथम तो हरिजनोंके प्रश्न पर उपवास लेकर गाँधीजीने सत्याग्रहको आघात पहुँचाया और उसके बादमें सत्याग्रहको अपने ही तक सीमित करके उसकी असफलताके साथ परिसमाप्ति भी कर दी। परन्तु हम यह नहीं मान सकते कि इस असफलताने हमारे राष्ट्रको पराभूत कर दिया था। यह एक ऐसी असफलता थी जिसमें सफलताके अंकुर भी छिपे हुए थे। यह एक ऐसी असफलता थी जिसने राष्ट्रको पीछेके बजाय मंजिलकी ओर ही दो कदम आगे ढकेला था। १९३०-३२ का आन्दोलन यद्यपि वापिस ले लिया गया था—किंतु उसके उज्ज्वल नतीजे मौजूद ही रहे। इस महान् आन्दोलन ने राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य-प्रेमको जो उर्वरता प्रदानकी, वह अमिट थी। इस उर्वरताके फलसे

हमारी स्वतंत्रताका पौधा बढ़ता ही चला गया और उसमें नये-नये कोंपल किसलय और पल्लव फूटते ही रहे। और अन्ततः बृटिश हुकूमतका दमन खंग इस पौधेको चाक करनेमें असमर्थ साबित हुआ। श्रीहीरेन्द्र मुकर्जीने इस आन्दोलनके क्रान्तिकारी परिणामों पर प्रकाश डालते हुए बहुत सही लिखा है—

"This distressing finale can not and should not blind our eyes to the magnificent achievements of 1930 1932. We can well be proud of those years of epic sruggle, proud of the sight, then vouchsafed us, of the untapped reservoirs of our people's patrotism...The multiform craftiness and the ugly repression of Imperialism could not daunt the people who fought on, even when virtually leaderless, as long as it was possible. The struggle left rich lessons, and in the furnace of searing experience, it forged a new self confidence, pride in our common people and determination to fight till freedom is won."*

काँग्रेस से हटना—

किन्तु आन्दोलनके सुपरिणामोंके बावजूद उग्रवादी काँग्रेसी और देशके अन्य नौजवानोंको जिस प्रकार आन्दोलनके बन्द किये जानेसे एक निराशा पैदा हुई—गाँधीजीको भी इन काँग्रेसजनों और नौजवानोंसे एक निराशा-सी पैदा हो गयी थी! गाँधीजीकी यह निराशा यहाँ तक बढ़ी कि आखिरमें उन्होंने काँग्रेससे चार-आनेकी सदस्यताको भी त्याग देनेका निश्चय कर डाला! उन्हें यकायक ऐसा प्रतीत हुआ कि काँग्रेसके बहुतसे बुद्धिमान् लोग उनके

*पृ० १५४–१५५।

कार्यक्रम और अहिंसाकी प्रणालीसे मेल नहीं खाते और वे उन्हें कॉंग्रेसकी प्रगतिमें बाधक समझने लगे हैं ! उन्हें लगा कि इस प्रकारके लोग केवल भक्ति भावनाके वशीभूत होकर उनके सिद्धांतोंके प्रति विद्रोह नहीं करते; लेकिन यदि उन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया गया तो वे गाँधीवादके विपरीत किसी दूसरे वादको ग्रहण कर लेंगे ! ये बुद्धिशाली लोग गाँधीजीके चर्खा और खादीके सिद्धांतसे भी एकमत न थे ! उन्हें ये चीजें अनावश्यक और पाखंड-सी प्रतीत होती थीं ! किन्तु गाँधीजी इन दो को स्वराज का मूलाधार समझते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि विशुद्ध अहिंसा द्वारा पूर्ण स्वतंत्रताकी प्राप्तिके लिए चर्खा और खादी दो अमोघ और परमावश्यक अस्त्र हैं ! इन मौलिक मत-भेदोंके साथ कुछ कॉंग्रेसके उग्रवादी सदस्य निर्वाचनोंके भी विरुद्ध थे जबकि गाँधीजी उसे स्वीकार कर चुके थे ! अहिंसाके सिद्धांत पर भी गाँधीजी और बहुत कॉंग्रेस वालोंमें गहरा मतभेद था ! गाँधीजी सत्याग्रहियोंमें पूर्ण अहिंसा का भाव देखना चाहते थे किन्तु सत्याग्रहकी प्रगतिने यह प्रत्यक्ष कर दिया था कि अहिंसाका लोगोंमें काफी अभाव रहा है ! अतः गाँधीजीको अन्तमें यही-निश्चय करना पड़ा कि जब तक देश अहिंसाके द्वारा (कम-से-कम नीतिके रूपमें) स्वराज्यकी लड़ाई लड़नेको तैयार नहीं हो तब तक उन्हें कॉंग्रेस से अलग होकर अकेलेही पूर्ण स्वाधीनताके लिये काम करना चाहिये !

यही निष्कर्ष था जिसपर पहुँचकर गाँधीजीने प्रथम सत्याग्रहको अपने तक सीमित किया और अन्तमें २८ अक्तूबर १९३४ को बम्बई कॉंग्रेस-अधिवेशन के समय कॉंग्रेससे स्तीफा देकर अपनेको अलग भी कर लिया। उनके इस निश्चयको मतभेद होते हुए भी कॉंग्रेसने बड़े दुःख के साथ कबूल किया ! देशको भी इस अप्रत्याशित घटनासे व्यथा पहुँची। वस्तुतः गाँधी, कॉंग्रेस और भारतकी त्रिमूर्ति एक दूसरेसे भिन्न होते हुए भी अभिन्न हो चुकी थी, इसलिये सबका दुःखी होना स्वाभाविक ही था।

किन्तु इस घटनासे यह समझना गलत होगा कि गांधीजी कॉंग्रेससे बिलकुल

पीठ मोड़ चले थे। अपितु स्तीफा देनेके साथ ही उन्होंने यह आश्वासन भी दे दिया था कि समय और आवश्यकतानुसार वे काँग्रेसको सलाह देने और पथ-प्रदर्शन करनेके लिए हमेशा तैयार रहेंगे। दूसरी ओर बम्बई काँग्रेसने भी एक प्रस्ताव पासकर गाँधीजीके नेतृत्वमें अपना अटल विश्वास प्रकट किया था। अतः जुदा होकर भी काँग्रेस और गांधी जुदा न होने पाये और काँग्रेसके प्रत्येक कार्यक्रम और आन्दोलनोंके पीछे गांधीजीका प्रभावशाली हाथ काम करता ही रहा। अन्तमें १९३९-४० में नाजुक राजनैतिक परिस्थितिके उत्पन्न होनेपर कांग्रेसका पूरा नेतृत्व फिरसे गांधीजीके ही हाथोंमें चला आया।

लेकिन नेतृत्वको पुनः हाथमें लेनेके बीचका यह समय राष्ट्रके और गांधी-जीके जीवनमें बहुत चिन्ताकुल और घटनापूर्ण समय रहा है।

गांधीजीका ध्येय

गांधीजी जनताके मनोभावोंको समझनेमें बहुत ही कुशाग्र रहे हैं। देशकी स्थिति क्या है, लोगोंकी गति किस ओर है, और उन्हें स्वतन्त्रताकी मंजिलकी तरफ किस तरह सफलता और सरलतापूर्वक खींच लेजाया जा सकता है— यह गांधीजी खूब समझते थे। वे निःसन्देह एक जन्मना नेता थे। सत्याग्रहके ठीकसे सफल न होनेके साथ-साथ तृतीय गोलमेज कान्फ्रेन्सकी असफलताने भी देशको निराशासे भर दिया था।* उसकी रिपोर्ट और परिणाम सभी नैराश्य-पूर्ण थे। यह नैराश्य सन् १९३५ के इंडिया ऐक्टसे और भी तीव्र और विपुल हो उठा था। इस निराशाको समाप्त करनेका एक ही उपाय था कि देश उस ऐक्टके विरोधके लिए संघर्ष करनेको तैयार रहे। लेकिन गांधीजीने सोचा कि देशको भीषण संघर्षमें पड़नेके लिए अपनी भीत मजबूत बना लेनी चाहिए,

* वह कान्फ्रेन्स १९३२ के अन्तमें हुई थी जिसमें काँग्रेसको शामिल न किया गया था।

जो कि रचनात्मक कार्योंसे ही संभव थी। अतः इस दृष्टिसे भी गांधीजीने अपनेको कॉंग्रेससे अलग किया था ताकि वे अपना पूरा समय चर्खा और खद्दरके प्रचार, अछुतोद्धार और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको सम्पन्न करनेमें लगा सकें।

गांधी योजनाकी प्रतिक्रिया

परन्तु दुर्भाग्यसे सुभाष जैसे नौजवान नेता अपितु उनके परम भक्त जवाहरलाल नेहरू तक गांधीकी इस रचनात्मक योजनाका मूल्य न समझ सके। उन्हें प्रतीत हुआ कि इन कामोंको हाथमें लेकर गांधीजीने देशको उसके राजनैतिक मार्गसे विमार्ग बना दिया है। बात भी प्रत्यक्ष देखनेमें सही थी क्योंकि सत्याग्रहको बन्द करते समय गांधीजीने कॉंग्रेसियोंको जा सलाह दी थी वह—राजनैतिकके बजाय नैतिक अधिक थी।

इस सलाहसे उत्पन्न प्रतिक्रियाका उल्लेख करते हुए पं॰ जवाहरलाल नेहरूने लिखा है—"ऐसा मालूम पड़ता था कि एक बहुत बड़ा अन्तर मुझे उन (गांधीजी) से अलग कर रहा है। अत्यन्त तीव्र वेदनाके साथ मैंने यह महसूस किया कि भक्तिके वे सूत्र, जिन्होंने इतने वर्षों से उनसे बाँध रखा था, टूट गये हैं। बहुत दिनोंसे मेरे भीतर एक मानसिक द्वन्द हो रहा था। गांधीजीने जो बातें कीं उनमेंसे बहुत सी बातें न तो मेरी समझमें ही आयीं, न वे मुझे पसन्द ही पड़ीं। इन सबने मुझे बहुत ही परेशान किया......।"

किन्तु इस आक्रोशके बाद भी नेहरूका मन गांधीजीसे भटककर बहुत दूर न जाने पाया। नेहरूको अनुभव हुआ कि गांधीजीसे विलग होना और उनकी बातोंकी थाह पाना दोनों ही कठिन बातें हैं। गांधीजीकी विचित्रता और आकर्षण शक्ति पर मुग्ध होकर उन्होंने लिखा है—"आखिर गांधीजी कैसे आश्चर्यजनक आदमी हैं। उनकी मोहकता कितनी ताज्जुबमें डालनेवाली और और एकदम अबाध है और लोगों पर उनका कैसा अद्भुत अधिकार है।

उनकी बातें और उनके लेख, उनकी वास्तविकताका बहुत कम परिचय करा पाते हैं। इससे उनके विषयमें लोग जितनी कल्पना कर सकते हैं, उनका व्यक्तित्व उससे कहीं ऊँचा है। और भारतके लिए उनकी सेवाएँ कितनी महान् हैं। उन्होंने भारतकी जनतामें साहस और मर्दानगी फूँक दी......।

उन्होंने कहा है कि चरित्रकी वास्तविक नींव साहस ही है। बिना साहसके न तो सदाचार ही सध सकता है, न धर्म और न प्रेम ही......। हिंसाको वह बहुत ही बुरा समझते हैं, फिर भी उन्होंने हमको यह बताया है कि "कायरता तो एक ऐसी चीज है जो हिंसासे भी बुरी है।" और......"बलिदान, अनुशासन और आत्म-संयमके बिना न तो भक्ति ही हो सकती है, न तो कोई आशा ही पूरी हो सकती है।"....शायद यह कोरे शब्द या सुन्दर वाक्य और खाली उपदेश ही हों। और हिन्दुस्तान यह जानता है कि यह छोटा-सा व्यक्ति जो कहता है, ईमानदारीसे पूरा करना चाहता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गांधीजी अब एक व्यक्ति नहीं रह गये थे, वरन् उनमें पूरे राष्ट्रका व्यक्तित्व ही समाहित हो गया था। पं० नेहरूके शब्दोंमें गाँधीजी 'आश्चर्यजनक रूपसे (वह) हिन्दुस्तानके प्रतिनिधि बन गये और इस प्राचीन और पीड़ित भूमिकी अन्तरात्माका प्रकट करने लगे। एक प्रकारसे वह खुद भारतके प्रतिबिम्ब थे और उनमें कोई त्रुटियाँ थीं, तो वे भारतकी त्रुटियाँ थीं।'*

कांग्रेस और सुधार योजना—

सन् १९३४ से १९३९ तकका समय निःसन्देह भारतके राजनैतिक इतिहासमें बहुत ही घटनापूर्ण रहा है। अतः यद्यपि महात्मा गाँधी १९३४ के बम्बई काँग्रेसके समयसे काँग्रेससे अलग होकर रचनात्मक कार्योंमें जुट गये थे तथापि

*मेरी कहानी, पृष्ठ—६९०-६९२

घटनाओंके प्रवाहने उन्हें देशके राजनैतिक चक्रसे क्षण भर भी विलग न रहने दिया। वास्तवमें गाँधी जो अब देश, काँग्रेस और जनताकी आत्मा बन चुके थे, किसी तरह अलग हो भी न सकते थे। कहनेको वे बहुत समय तक अलग रहे भी; लेकिन उनकी छाया, उनका प्रभाव और व्यक्तित्व काँग्रेसके कार्योंपर हमेशा प्रभाव डालता रहा और प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय और अवसरपर काँग्रेस उन्हींके आदेशके लिये मुँह जोहती रही। यही कारण है कि सक्रिय राजनीतिसे अलग होनेपर भी राष्ट्र और राजनैतिक संसारने गाँधीजीको कभी काँग्रेससे भिन्न न समझा।

हमें मालूम है कि गाँधीजीका काँग्रेससे हटनेका एक कारण यह भी था कि लोग सत्याग्रहको पूरी तरहसे समझ न पाये थे और क्षणिक असफलता और दमनसे भयभीत हो निराश से हो बैठे थे। इस निराशाके फलस्वरूप १९३४ में कांग्रेस सदस्योंकी संख्या घटकर कुल ४५७,००० रह गयी थी। इस उतारको देखकर ही गाँधीजीने पटनामें काँग्रेसको केन्द्रीय चुनावमें भाग लेनेकी आज्ञा दी थी। अतः १९३४ के अन्तमें कांग्रेसने केन्द्रके लिये चुनाव लड़ा और अपने ४४ प्रतिनिधि केन्द्रकी असेम्बलीमें पहुँचा दिये। इन कांग्रेसी सदस्योंने सरकारको व्यवस्थापिका सभामें यद्यपि अनेक प्रस्तावोंमें करारी हार दी; किन्तु देशको सम्पूर्ण रूपसे जगानेमें वे समर्थ न हो सके।

फलतः कांग्रेस जनताको कोई नूतन प्रेरणा देनेके बजाय उनके सामीप्यसे भी दूर हटी हुई नजर आने लगी। जनता और काँग्रेसकी यह खाई देशके नेताओंके लिये निःसन्देह एक चिन्ताका विषय हो चली थी। काँग्रेस और जनता किसीको अपना ठीक मार्ग न सूझ पड़ रहा था। जनता अपने दुःख-दर्दमें डूबी थी और काँग्रेसके नेतागण, तात्कालिक अवस्थामें जनताको जैसा नेतृत्व मिलना चाहिये, उसकी अपेक्षा फूँक-फूँककर कदम रख रहे थे। पं० नेहरूने

---

*मेरी कहानी, पृष्ठ—७८९

उनकी इस स्थितिका उल्लेख करते हुए लिखा है—"वे जनतासे सहयोगकी तो मांग करते हैं, लेकिन उसकी राय जानने या दुःख-दर्द मालूम करनेकी कोशिश शायद ही करते हों।" नेहरूने सन् १९३६ में लखनऊ काँग्रेसके सभापति पदसे भाषण करते समय भी तात्कालिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुये यह स्वीकार किया था कि "हमने बहुत करके जनतासे अपना सम्पर्क खो दिया है।"

ऐसी स्थितिमें काँग्रेस का निर्बल और जनताका क्षुब्ध होना एक स्वाभाविक बात थी! किन्तु इस निराशाकी स्थितिमें होनेपर भी सरकारकी नयी सुधार-योजनाने नरम पड़ी हुई काँग्रेसको उष्ण और क्षुब्ध राष्ट्रको क्रोधसे उत्तप्त कर डाला। फलतः सम्पूर्ण देश एक आदमीकी तरह १९३५ के इंडिया ऐक्टके आधारपर बनी सुधार-योजनाके विरोधमें खड़ा हो गया।

बृटिश साम्राज्यशाहीकी चाल

नये संघ शासनकी यह सुधार-योजना क्या थी, बृटिश-सरकारकी साम्राज्य-शाहीको बनाये रखनेकी एक चाल थी। इस योजनाके अनुसार सरकारने असली शक्ति और शासनका अधिकार गवर्नर-जनरल और प्रान्तोंके गवर्नरोंके हाथोंमें केन्द्रित कर दिया था। नये सुधारों के अनुसार जनता अपना मंत्रिमंडल तो बना सकती थी, लेकिन इस मंत्रिमंडलको सुरक्षा और अर्थके क्षेत्रोंमें वास्तविक हक न दिये गये थे। नये मंत्रिमंडल और व्यवस्थापिका सभाओंको व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्रमें भी कोई हस्तक्षेप करनेका अधिकार न दिया गया था ताकि बृटिश-शोषकोंके स्वार्थों पर आँच न आ सके। सुरक्षा और शान्तिका कार्य यद्यपि मंत्रिमंडलको दिया गया था, लेकिन गवर्नर और गवर्नर-जनरल अपने वैयक्तिक निर्णयसे मंत्रियोंके कार्यमें हस्तक्षेप कर सकता था। स्टेटकी जनताको कोई अधिकार न दिये गये थे जब कि राजाओंका साम्प्रदायिक वर्गों और संस्थाओं को संघकी व्यवस्थापिकामें यथेष्ठसे अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया गया था। पृथक निर्वाचनके सिद्धान्तको स्वीकार कर भारतीय जनताको कई जाति-विभागोंमें बाँट

दिया गया था। निःसन्देह ये सुधार स्पष्टतया ब्रिटिश हकूमतशाहीको जमानेके लिये ही प्रतिपादित किये गये थे, न कि भारतकी जनताको त्राण देनेके लिये। यही कारण था कि कॉंग्रेस और उग्र दल वालोंसे लेकर नरम दल वालों तक ने उसका कठोर विरोध किया। पं० नेहरूने इस संघ और शासन योजनाको निरर्थक बतलाते हुए कहा था—"राजनैतिक सुधारकी दृष्टिसे यह प्रस्तावित शासन-योजना और भीमकाय संघ एक वाहियात चीज है; और सामाजिक और आर्थिक दृष्टिसे और भी बदतर है। समाजवादका रास्ता तो जान-बूझकर रोक दिया गया हैं। ऊपरी तौरसे बहुत कुछ जवाबदेही भी सौंप दी गयी है; लेकिन कोई महत्वपूर्ण कार्य करनेकी शक्ति तथा साधन नहीं दिये गये हैं*।"

निर्वाचन और प्रान्तीय सरकारें

किन्तु इस विरोधके बावजूद बहुत कुछ सोचने समझनेके उपरान्त लखनऊ (१९३६) कॉंग्रेसने सन् ३७ प्रान्तीय धारा सभाओंके चुनावमें भाग लेनेका निश्चय किया। लेकिन इस निश्चयका अर्थ यह नहीं था कि कॉंग्रेसने 'नये शासन विधान' को जैसेके तैसा स्वीकार कर लिया है। कॉंग्रेसके रुखमें वस्तुतः काई परिवर्तन न हुआ था, और केवल अपनी शक्तिको परखनेके लिए ही वह चुनावमें शामिल हुई थी। फैजपुर कॉंग्रेसमें चुनाव संबंधी जो मैनिफस्टो पास हुआ था, उसमें कहा गया था कि 'कॉंग्रेस अपने उस निश्चयको दुहराती है कि वह उक्त विधानको न तो स्वीकार करेगी न उसके साथ सहयोग करेगी। किन्तु वह उसे खतम करनेके प्रयोजनसे धारा सभाके अन्दर और बाहर उसका प्रतिरोध करती रहेगी। कॉंग्रेस यह स्वीकार नहीं कर सकती कि किसी विदेशी सत्ताको भारतके राजनैतिक व आर्थिक स्वरूपको निर्धारित करनेका अधिकार प्राप्त है। कॉंग्रेसने अपने वक्तव्यमें यह भी प्रकट कि वह जन-तंत्री प्रोग्रामको लेकर चलेगी और मजदूरों तथा किसानोंकी माँगोंको पूरा करेगी।

---

* मेरी कहानी पृष्ठ—७९४-७९५

अतः फैजपुर काँग्रेस (१९३७) के समाप्त होते ही काँग्रेसके नेता और कार्यकर्त्ता चुनावकी लड़ाईमें जुट गये। सरकारकी विरोधी चेष्टाओंके बावजूद काँग्रेसने चुनावमें आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की। संयुक्तप्रान्त, विहार, बंगाल, आसाम, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, मद्रास और बम्बई प्रान्तोंमें काँग्रेसको बहुत अधिक मत प्राप्त हुए। केवल सिंध और पंजाबमें काँग्रेसको सफलता न मिल सकी।

इस चुनावने सिद्ध कर दिया कि कांग्रेस ही भारतकी एक मात्र शक्तिशाली राजनैतिक संस्था है, जिसे जनताका पूर्ण सहयोग प्राप्त है। किन्तु कांग्रेसकी इस शक्ति का आधार-शिला गांधीजी ही थे। यद्यपि गांधीजी कांग्रेससे अलग थे और चुनावमें उन्होंने स्वयं भाग न लिया था, लेकिन उनका जादू-भरा नाम चुनावमें पूरी तरहसे काम करता रहा। कांग्रेसके नेता और कार्य-कर्त्ता 'गांधीजी की जय' के नारेके बलपर ही सर्वत्र मत प्राप्त करते रहे। जनताको मुग्ध करनेमें गांधीजीके नामने जादू का सा काम किया। उनके नामका ही यह आकर्षण था कि देशकी जनताने कांग्रेस पर उमड़-घुमड़कर मत बरसाये। अतः कांग्रेससे दूर और अलग हटे होनेपर भी गांधीकी शक्ति और प्रभाव कांग्रेसपर पूरी तरह से छाया रहा और उसके कार्योंको प्रभावित और संचालित करता रहा।

निर्वाचनके बाद अब मंत्रीमंडल बनानेका प्रश्न आया। नये विधानके अनुसार १ अप्रैल १९३७ को मंत्रिमंडल कायम हो जाने चाहिये थे। अतः सरकार मंत्रीमंडल बनानेको बहुत उत्सुक थी, लेकिन काँग्रेसी नेता इस प्रश्नको तय नहीं कर पाते थे। गवर्नरोंके हाथमें विशेषाधिकारोंके होते काँग्रेसको मंत्रि-मंडल बनाना पसन्द न था। इस अवसर पर भी काँग्रेसको अन्तमें गाँधीजीकी ही सलाह लेनी पड़ी। मार्चमें जब दिल्लीमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटीकी बैठक हुई तो गाँधीजीने यह सलाह दी कि यदि गवर्नर इस बातका वायदा करें कि जो विशेष अधिकार उनको विधान द्वारा दिये गये हैं, उनका वह व्यवहार न करेंगे, बल्कि मंत्रियोंकी सलाहसे ही सब बातोंमें काम करेंगे तो काँग्रेसको

मंत्रीमंडल बना लेने चाहियें। सरकारने पहले तो गाँधीजीके इस प्रस्ताव पर ध्यान न दिया और काँग्रेसकी परवाह न कर १ अप्रैल १९३७ को सूबोंमें गुड़िया मंत्रिमंडल स्थापित कर दिये। लेकिन ३ महीनेसे अधिक ये गुड़िया मंत्रिमंडल कायम न रह सके, और अन्तमें सरकारको गाँधीजी द्वारा प्रस्तावित 'वायदा' स्वीकार करना पड़ा। फलतः जुलाईमें काँग्रेसने ११ प्रान्तोंमेंसे ९ में मंत्रिमंडल बनाये और देशमें जनताके राज्यका श्रीगणेश किया।

काँग्रेसके प्रभुत्वमें आनेसे देशमें आशा और उत्साह की लहरें, हिलोरें मारने लगीं; जनताको यह देखकर खुशी थी कि काँग्रेसके वे ही लोग जो कल तक जन-सेवाके अपराध में ब्रिटिश-जेलोंमें बन्द रहा करते थे, आज शासकके पद पर बैठकर अपने देशका शासन संचालित करने लगे हैं। दूसरी ओर गाँधी जी भी सतर्क होकर मंत्रियोंका सलाह देते जाते थे कि वे मंत्रीपद पर रहकर भी जन-सेवाका व्रत न भूलें और वहाँ भी 'तकली' चलाते और नशे-बन्दी आदिके के लिये काम करते रहें। उन्होंने काँग्रेस मंत्रिमंडलको इसी तरह अनेक जन-हितके कार्य करने तथा स्वयं आदर्शसे पूर्ण सरल जीवन यापन करनेके आदेश दिये। *

मंत्रिमंडलके मार्गमें रोड़ा

किन्तु खेदकी बात है कि काँग्रेस-मंत्रियोंके सुयोग्य होनेपर भी उन्हें ठीक तरहसे काम न करने दिया गया। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ उनके काममें हर प्रकारसे रोड़े अटकाने लगीं। सबसे बड़ा रोड़ा काँग्रेसके मार्गमें मुस्लिम-लीग थी। खिलाफत आन्दोलनके बादसे मुसलमान काँग्रेससे हटते चले गये थे। इसी-कारण १९३५ में गांधीजीने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर लिखते हुए कहा थाः—

---

* गाँधीजीके इन निर्देशोंके कारण ही कांग्रेसी मंत्रियोंने अपनी तनख्वाह ५००) रु० रखी थी।

"मैंने इस मामलेमें पराजय स्वीकार की है।" जिन्नाके नेतृत्वमें मुस्लिम-लीगने अब अपना संगठन मजबूत कर लिया था और काँग्रेसका हर तरहसे विरोध करना अपना 'धर्म' सा बना लिया था। अतः अप्रैल १९३८ में गांधीजीने जिन्नासे मिलकर काँग्रेस और लीगमें जब 'ऐक्य' स्थापित करनेका प्रयत्न किया तो उन्हें सफलता न मिल सकी।

गाँधीजीका क्षोभ

गांधीजी इस अनैक्यसे क्षुब्ध थे ही कि इधर सुभाष बाबू और राजकोटवाली दो घटनाओंने उन्हें और भी क्षुब्ध कर डाला।

सन् १९३९ में काँग्रेसके सभापतिके पदके लिए गांधीजी डा० सीतारामय्या-को चाहते थे, किन्तु सुभाष बाबूने वाम पक्षवालोंकी मददसे अपना चुनाव करा लिया। सीतारामय्याकी इस हारको गांधीजीने अपनी हार स्वीकार किया। अतः काँग्रेस वर्किंग कमेटीने भी इस्तीफा दे दिया और बोससे अलग हो गये। गांधी जी और वर्किंग कमेटीके इस विरोधसे सुभाष बासके लिए काँग्रेसका सभापति बना रहना कठिन हो गया। बोसने तब सभापति पदसे इस्तीफा दे दिया, और काँग्रेसके विरोधमें अपना एक नया दल फार्वर्ड ब्लाक, खड़ा कर दिया। काँग्रेस-की इस आन्तरिक फूटसे गांधीजीको बहुत दुःख हुआ। लेकिन बोसके हाथोंमें वे राष्ट्रकी बागडोर सौंपकर इस फूटको मेटनेमें भी असमर्थ थे। गांधीजी अहिंसा पर विश्वास रखते थे, और उनका विचार था कि यदि बोसको राष्ट्रका नेतृत्व सौंप दिया गया तो वे हिंसक उपायोंको लेकर भी सत्याग्रह छेड़ देंगे। इस 'हिंसा' के भयके अतिरिक्त गांधीजी तब देशको सत्याग्रह-संग्राममें फँसाना भी नहीं चाहते थे। अतः इन कारणोंसे मजबूर होकर गांधीजीको बोसका विरोध करना पड़ा और काँग्रेसके आन्तरिक कलहका दुःख भी सहना पड़ा। इसके सिवा दूसरा मार्ग उनके लिए रह भी न गया था।

इस दुर्घटनाके साथ ही राजकोटके मामलेसे भी गाँधीजीको गहरा आघात

पहुँचा। १९३७ से जब कि पं० नेहरूने मैसूरके मामलेमें सीधे हस्तक्षेप किया था, काँग्रेस रियासतोंके बारेमें बहुत दिलचस्पी लेने लगी थी। काँग्रेस जितना ब्रिटिश भारतकी जनताके लिए चिंतातुर थी, उतनी ही रियासती जनताके लिए भी। दूसरी ओर गाँधीजी रियासती मामलोंमें काँग्रेसका सीधा हस्तक्षेप करना पसन्द न करते थे; परन्तु रियासतोंकी बढ़ती दुर्नीतिने उन्हें इस नीतिसे हटने को बाध्य कर दिया। अतः दिसंबर १९३८ में उन्होंने रियासतोंके कुशासनपर एक कड़ा लेख लिखा और राजाओंको यह चेतावनी दी कि निकट भविष्यमें ही काँग्रेस सार्वभौम सत्ताका स्थान ग्रहण करेगी। किन्तु राजाओंने इस चेतावनी पर कोई ध्यान न दिया और रियासतोंमें अत्याचार बढ़ते चले गये। गुजरातकी एक छोटी-सी रियासत राजकोटका भी यही हाल था। अतः वहाँकी जनताने जिम्मेदार शासनके लिए अहिंसक युद्ध छेड़ दिया। वल्लभभाई पटेलने काँग्रेसकी ओरसे राजकोटकी जनताका नेतृत्व ग्रहण किया। आखिर राजकोटके ठाकुरको जन-आन्दोलनके सामने झुक जाना पड़ा। फलतः १९३८ के अन्तमें ठाकुर साहबने वल्लभभाईसे समझौता किया और वैधानिक सुधार देना स्वीकारकर लिया।

लेकिन यह समझौता अधिक दिन तक न चला। ठाकुरने वायदेके विरुद्ध समझौतेकी शर्तोंको तोड़ दिया। इस पर राजकोटमें पुनः सत्याग्रह छिड़ गया। ठाकुर साहबकी तरफसे जनतापर खूब जोर व जुल्म किये जाने लगे। जनताको बल पहुँचानेके लिए कस्तूरबाने भी राजकोटके सत्याग्रहमें भाग लिया। उन्हें भी तुरन्त जेलमें बन्द कर दिया गया।

राजकोटकी इस विषम स्थितिको देखकर गाँधीजी बहुत क्षुब्ध हो उठे। अतः बीमार होने तथा रियासतके मामलोंमें सीधा हस्तक्षेप करनेकी नीतिका पक्षपाती न होने पर भी गाँधीजीसे तटस्थ न रहा जा सका। वे बीमारीकी अवस्थामें ही राजकोटके लिए चल पड़े। गाँधीजीने ठाकुरको सद्बुद्धिसे काम लेनेकी सलाह दी; लेकिन मंत्री वीरवालाके प्रभावसे ठाकुर पर उनकी बातोंका कोई

असर न पड़ सका। विवश होकर गाँधीजीने ३ मार्च १९३९ से आमरण उपवास शुरू किया, ताकि ठाकुरके हृदय पर असर हो और वे जनताकी माँगोंको स्वीकार कर लें। ७०वर्षके बूढ़े और बीमार गाँधीजीके इस 'व्रत' ने सारे देशको चिंता और दुःखमें डुबो दिया। सारे देशने एक स्वरसे सार्वभौम सत्तासे इस संबन्धमें हस्तक्षेप करनेका आग्रह किया। कॉंग्रेस मंत्रिमंडल भी गाँधीजीके व्रतसे उद्विग्न होकर इस्तीफा देनेकी सोचने लगे।

देशकी इस संकटापन्न स्थितिको देखकर वाइसराय लार्ड लिनलिथगो आगे बढ़े। उन्होंने कहा कि गाँधीजी और राजकोटके मामलेका फैसला हिन्दुस्तान के चीफ जस्टिसको सौंपा जायगा, इसलिए गाँधीजीको अब 'व्रत' त्याग देना चाहिये। गाँधीजीने इस निर्णयका पसन्द किया, और ७ मार्च १९३९ का उन्होंने अपने विकट उपवासको समाप्त कर देशको धीरज बँधाया।

चीफ जस्टिसका फैसला गाँधीजीके पक्षमें हुआ। इस फैसलेके अनुसार ठाकुरको पटेलके साथ किये समझौतेको स्वीकार करना आवश्यक हो गया; किन्तु इस निर्णयके बावजूद राजकोटके मंत्रीने साम्प्रदायिक हिन्दू-मुस्लिम सवालको उठाकर समझौतेके मार्गमें कई बखेड़े पैदा कर दिये। इन झगड़ोंसे तंग आकर गाँधीजी राजकोटसे उद्विग्न और निराश होकर लौट आये।

द्वितीय विश्व-युद्ध

किन्तु सेगाँव लौटने पर भी गाँधीजी कुछ दिन शान्तिमे न बिता सके। द्वितीय युद्धके बादल धीरे-धीरे दुनियाके राजनैतिक आकाश पर इकट्ठे होने शुरू हो गये थे। उनकी गड़गड़ाहटने सेगाँवके संतको भी विचलित कर दिया। मुसोलिनी द्वारा अबीसिनियाके हरणकी कहानी सुनकर गाँधीजी व्याकुल हो उठे। म्युनिखकी अनैतिक घटनाने उन्हें और भी दुःखी बना दिया। नाजियों द्वारा यहूदियों पर होनेवाले अत्याचारोंसे उनका हृदय आक्रान्त हो उठा! वे सोचने लगे कि क्या दुनियासे सत्य और अहिंसा उठ गयी है; परन्तु इस पर उन्हें

विश्वास न हो सका। गीताका भक्त ऐसा विश्वास कर ही कैसे सकता है। वह तो यह मानता है कि धर्मकी ग्लानि होती तो है; लेकिन तभी भगवान् उसके पुनर्स्थापनके लिए अवतार लेकर चले आते हैं।

गाँधीजी इसी उधेड़-बुनमें थे कि विश्वव्यापी युद्ध छिड़ गया। इस स्थिति को देखकर (इंग्लैंड द्वारा नियमित रूपसे युद्ध घोषित करनेके लगभग ३ हफ्ते पूर्व) कौंग्रेस वर्किंग कमेटीने ११-१२ अगस्त १९३९ को एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया था कि यद्यपि कौंग्रेसकी सहानुभूति जनतन्त्रके लिए लड़नेवालों की तरफ है, लेकिन ब्रिटिश-सरकार द्वारा भारतका युद्धमें घसीटा जाना उसे बिलकुल पसन्द नहीं हो सकता। प्रस्तावमें ब्रिटिश-सरकार द्वारा भारतीय फौजों का मिश्र और सिंगापुर भेजे जानेका भी विरोध किया गया था। इस विरोधको सक्रिय रूप देनेके लिए कौंग्रेसने केन्द्रिय धारा सभाके कौंग्रेसी सदस्योंको उसमें सम्मिलित न होनेका आदेश निकाला। सदस्योंने इस आदेशको शिरोधार्य किया। कौंग्रेसके इस प्रस्ताव और विरोध प्रदर्शनमें गाँधीजीकी पूरी सहमति थी।

ब्रिटिश-सरकारकी तानाशाही—

किन्तु कौंग्रेस व गाँधीजीके इस विरोधके बावजूद ब्रिटिश-सरकार अपने स्वेच्छाचारी मार्गसे ज़राभी विचलित न हुई। तो क्या कौंग्रेस और गाँधीजी को ब्रिटिश-सरकार बलहीन और नगण्य समझती थीं? जो भी हो, लेकिन ब्रिटिश-सरकार उनके विरोधकी चिन्ता करके अपने इच्छित मार्गसे हटनेको कतई तैयार न थी।

अतः ३ सितम्बर १९३९ को जब इंगलैंडने नियमित रूपसे जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की तो भारतके वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने भी कांग्रेसके विरोधके बावजूद भारतकी तरफसे जर्मनीके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इसी समय लार्ड लिनलिथगोने गांधीजीको भी शिमलेमें भेंटके लिये बुलाया। अतः ४ सितम्बरको गाँधीजीने वाइसरायसे भेंट की और ५ सितम्बरको उन्होंने एक खुला

वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था कि वाइसराय और उनके बीच कोई समझौता नहीं हो सका और वे खाली हाथ लौट आये हैं।

किन्तु समझौता न होने पर भी गांधीजी तुरन्त ब्रिटिश सरकार के विरोध में खड़े होने की बात न सोच सके। गांधीजी की मनःस्थिति इस समय बड़ी विकट अवस्था में थी। वे क्या करें उन्हें सूझ ही न पड़ रहा था। एक तरफ उनकी सहानुभूति अंग्रेज और मित्र राष्ट्रोंकी तरफ थी और इसलिये वे उनकी हार न चाहते थे; किन्तु दूसरी तरफ वे ब्रिटिश-सरकारकी साम्राज्यवादी नीतिको भी पसन्द न कर पा रहे थे क्योंकि अंग्रेज भारतको दबाये बैठे थे, और उनका मित्र फ्रांस भी एशियाके उपनिवेशों पर अधिकार किये हुए था। अतः अंग्रेजोंका विरोध किये बिना भारतके स्वतंत्रता संग्रामका सफल होना भी कठिन था। गांधीजी अब हिंसक-युद्धोंके भी बिलकुल विरोधी हो चले थे, इसलिए वे चाहते थे कि हिंसाका प्रतिरोध हिंसासे न किया जाय।

इस मनोदशामें गांधीजीको कुछ सूझ न पड़ रहा था। उन्हें यह भी विचार आया कि यदि वे इस मौके पर भारतकी आजादीके लिए सत्याग्रह छेड़ें और सफल भी हो जायँ, किन्तु अगर दूसरी ओर इंगलैंड और फ्रांसका पतन हो गया तो उनकी आजादी किस काम की होगी?

लेकिन मनकी इस विचित्र स्थितिके बावजूद गांधीजी और कौंग्रेस इस बात पर अटल थे कि ब्रिटेन भारतकी पूर्ण आजादीको स्वीकार करे। अतः १४ सितम्बरके प्रस्तावमें कौंग्रेस कार्य-समितिने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि यह लड़ाई मित्रराष्ट्र अपने उपनिवेशों और विशेषाधिकारोंको बनाये रखनेके लिए लड़ रहे हैं तो भारत ऐसी लड़ाईसे कोई सरोकार नहीं रख सकता। फलतः २६ सितम्बरको वाइसरायसे दूसरी बार मिलने पर गांधीजीने इस बात पर ज़ोर दिया कि ब्रिटिश सरकार युद्धके बाद भारतको पूर्ण आज़ादी देनेका वचन दे, और तत्काल के लिए केन्द्रमें कौंग्रेसको भी 'सत्ता' में हिस्सा प्रदान करे।

किन्तु ब्रिटिश-सरकारने अपने तानाशाही रुखमें कोई परिवर्तन न दिख-

लाया। १७ अक्तूबरको वाइसरायने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था कि युद्धके मन्तव्यों पर अभी विशेष रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी तरह भारतके आज़ादीके प्रश्नको भी स्पष्ट करनेके बजाय वाइसरायने साफ टाल दिया था।

गम्भीर स्थिति

वाइसरायके वक्तव्यसे गांधीजीको अँग्रेजी सरकारके मनोभावोंको समझनेमें देर न लगी। उन्हें प्रतीत हो गया कि काँग्रेसको समझौतेकी आशा छोड़कर— पुनः सत्याग्रहके पथ पर ही अग्रसर होना पड़ेगा। गांधीजीने कहा था: "काँग्रेसको अपने ध्येय तक पहुँचनेके खातिर शक्तिशाली और शुद्ध बननेके लिए पुनः अग्नि- बानसे होकर गुज़रना पड़ेगा।"

स्थिति निःसन्देह अब बहुत गंभीर हो चली थी, और काँग्रेस तथा ब्रिटिश सरकारके बीच समझौता असम्भव सा हो गया था। अतः २२ अक्तूबर १९३९ को काँग्रेस कार्य-समितिने निश्चय किया कि वह ग्रेट ब्रिटेनको युद्धमें कोई मदद नहीं देने की। इसके साथ कार्य-समितिने काँग्रेसी मंत्रिमंडलोंको भी आदेश दिये कि वे इस्तीफे देकर बाहर चले आवें।

आदेशानुसार मंत्रि मंडलोंने इस्तीफे दाखिल कर दिये और ब्रिटिश सरकारने सेक्सन ९३ का लागू करके प्रान्तोंका शासन अंग्रेज गवर्नरोंके हाथोंमें सौंप दिया।

इन घटनाओंसे अब स्पष्ट हो गया कि निकट भविष्यमें ही काँग्रेस और ब्रिटिश-सरकारके बीच अवश्य संघर्ष छिड़ जायगा। यद्यपि यह भी स्पष्ट था कि यह संघर्ष पूर्णतया अहिंसापूर्ण होगा, और गांधीजी ही उसके अहिंसक सेनानी होंगे।

अध्याय—२४

विषम-स्थिति

विश्व-युद्धकी ज्वाला अब काफी भड़क चुकी थी ! भारत युद्धमें जबरदस्ती शामिल किया जा चुका था। इस विषम-स्थितिमें कॉंग्रेस ठीकसे अपना कोई मार्ग निर्धारित न कर पा रही थी। दूसरी ओर गांधीजी इस हिंसाग्निको देखकर क्षुब्ध थे, और अहिंसाके द्वारा उसे शान्त करनेको व्यग्र थे। लेकिन स्थिति रोज विकटतर होती जा रही थी—और भारतकी स्वतन्त्रताका प्रश्न अधरमें लटका हुआ था। अतः कॉंग्रेस और गांधीजीके सामने इस समय सबसे बड़ी समस्या थी कि इस विषम-स्थितिको मेट कर किस प्रकार भारतकी गुलामी की जंजीरों को काट कर फेंका जाय।

कॉंग्रेस और गाँधी

१९४० आया। फ्रांसने जर्मनीके सामने घुटने टेक दिये। फ्रांसके इस पतन से भारतमें भी तहलका मच उठा। नाजी प्रभुताको बढ़ते देखकर कॉंग्रेसको भी चिन्ता हो उठी। नाजियोंकी इस बढ़ती हुई बाढ़को रोकना भारतके लिए भी हितकर था। अतः कॉंग्रेसने सोचा कि इस अवसर पर गांधीजीके 'अहिंसा' को तिलांजलि देकर भी उसे ब्रिटेनका साथ देना चाहिये। कॉंग्रेस इसके लिए प्रस्तुत भी हो उठी।

किन्तु गाँधीजीके रूखमें कोई परिवर्तन न आने पाया। उनकी दृष्टिमें हिंसाकी सारी जीत अस्थायी और क्षणिक थी। अतः अहिंसाके व्रतीको हिंसा की इन दहलानेवाली विजयोंसे कोई घबड़ाहट न पैदा होने पायी। जून १९४० के हरिजनमें गाँधीजीने चेतावनीके तौर पर यह लिखा कि यदि सरकारने स्वतंत्रता

न दी तो वे सत्याग्रह शुरू कर सकते हैं; लेकिन इसके लिए देशको पूर्णतः संयम और अहिंसाका पालन करना होगा। परन्तु यह सत्याग्रह कब हो इसका उल्लेख करते हुए गाँधीजीने आगे लिखा—"मेरी राय है कि हमें तब तक रुके रहना चाहिये जब तक कि मित्रराष्ट्रोंके देशमें लड़ाईकी उग्रता शीतल नहीं पड़ जाती, और भविष्य आजकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट नहीं हो जाता। हम ब्रिटेनको नष्ट करके अपनी स्वतंत्रता नहीं चाहते, यह अहिंसाका मार्ग नहीं है।" गाँधीजीने अपने लेखोंमें यह भी स्पष्ट किया कि विध्वसक युद्धोंका मुकाबला अहिंसाके द्वारा ही होना चाहिए और भारतको खुद रक्षात्मक सेना न रखकर अहिंसाका आदर्श उपस्थित करना चाहिये।

गाँधीजीके इन महान् आदर्शोंने उनके और काँग्रेसके बीचमें एक वियोग की स्थिति पैदा कर दी। फलतः काँग्रेसने २१ जूनको एक प्रस्ताव पास करके गाँधीजीकी इस प्रकारकी अहिंसाको माननेसे इनकार कर दिया। परन्तु प्रस्तावमें आखिर यह भी जोड़ दिया गया कि—"कार्य समिति जब कि इस बात को स्वीकार करती है कि काँग्रेसको अपने स्वाधीनताके संग्राममें पूरी तरह अहिंसाके सिद्धान्त पर चलना चाहिये...समिति इस निश्चय पर पहुँची है कि वे पूरी तरहसे गाँधीजीके साथ नहीं चल सकते; लेकिन वे यह स्वीकार करते हैं कि गाँधीजी स्वतंत्रतापूर्वक अपने महान् आदर्शका पालन कर सकते हैं।"

इस प्रस्तावसे स्पष्ट हो गया कि गाँधीजी और काँग्रेसमें एक पृथकत्व पैदा हो गया है। किन्तु इस पृथकत्वमें वस्तुतः कोई वास्तविकता न थी। गाँधीजी काँग्रेसके आत्मा और प्राण बन चुके थे, इसलिये बिना प्राणके काँग्रेस आगे बढ़ ही नहीं सकती थी। गाँधी और काँग्रेसमें सिर व पूँछका-सा अंतर भी था। पूँछ सिरका नेतृत्व करे यह हो ही नहीं सकता था। यही कारण है कि कुछ समयके बाद कांग्रेसको ही पुनः अपने प्राण और मस्तिष्क गाँधीकी शरणमें लौट आना पड़ा।

गाँधीजीकी सलाह

कॉंग्रेसने यद्यपि गाँधीजीको अपने रास्ते पर चलनेके लिए अकेला छोड़ दिया था, लेकिन वे तब भी कॉंग्रेसवालोंको अपनी सलाह देते ही रहे। ६ जुलाईके 'हरिजन' में लिखते हुए गाँधीजीने कहा था कि भारतका तात्कालिक उद्देश्य विशुद्ध पूर्ण स्वराज्य होना चाहिए। उन्होंने बतलाया कि जो लोग सुरक्षाके लिए सेना और शस्त्रों पर विश्वास करते हैं, उन्हें विवश होकर अन्ततः ब्रिटेनके झंडेके नीचे आना पड़ जायगा। इसलिए उन्होंने सलाह दी कि कॉंग्रेसवालोंको शस्त्रका सहारा लेनेसे दूर रहना चाहिए। तथा कॉंग्रेसको, यदि वह अहिंसा और स्वतन्त्रता पर विश्वास करती है तो किसी दशामें उसे वाइसरायकी सभामें शामिल न होना चाहिए। अन्तमें गांधीजीने यह विश्वास प्रकट किया कि कॉंग्रेस अपने पूर्ण स्वाधीनताके ध्येय पर कायम रहेगी।

गाँधीजीके इस सलाहवाले लेखसे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—एक तो उनका ब्रिटिश सरकारके षडयन्त्र पूर्ण वायदों परसे विश्वास उठ गया था, और दूसरा, वे शंका करने लगे थे कि युद्धकी भीषणतासे घबड़ाकर कॉंग्रेस कहीं उन वायदोंमें फँसकर भारतकी स्वतंत्रताके ध्येयको ही गड़बड़ा न दे। आगे की घटनाओंने इस बातको साबित भी कर दिया कि गाँधीजीका ब्रिटिश सरकार पर इस तरहसे अविश्वास करना गलत न था।

कॉंग्रेसकी तत्परता

गाँधीजीके ६ ता० के लेखके बाद ही ७ जुलाईको दिल्लीमें कॉंग्रेस कार्य-समितिकी बैठक हुई। समितिको अब भी आशा थी कि शायद ब्रिटिश सरकारकी न्याय-बुद्धि जागृत हो सकेगी और वह कॉंग्रेसकी माँगको स्वीकार कर लेगी। अतः समितिने एक प्रस्ताव द्वारा ब्रिटेनसे भारतकी पूर्ण-स्वतंत्रताका वचन माँगा और तत्कालके लिए केन्द्रमें एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनानेकी घोषणा करनेको कहा। प्रस्तावमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि सरकार

समितिकी इन शर्तोंको स्वीकार कर लेगी, तो कॉंग्रेस ब्रिटेनको लड़ाईमें सक्रिय मदद देगी।

कॉंग्रेसने इस निश्चयको लेकर प्रत्यक्षतः अहिंसा और गाँधीजीका साथ छोड़ दिया था। भारतकी आजादीके लिए उत्सुक कॉंग्रेस ब्रिटेनके साथ सहयोगके लिए भी अग्रसर हो उठी थी। कॉंग्रेसके इस निर्णयसे महात्मा गांधीको लगा कि उनके लिए अब उसमें कोई स्थान नहीं रह गया है, इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि वे अब कॉंग्रेससे सबन्ध भी न रखेंगे। गाँधीजीके इस निश्चयसे सारे देशमें खलबली मच उठी। उनके सच्चे भक्त अब्दुल गफ्फारखाँने भी कॉंग्रेसके इस रुखको देखकर वर्किंग कमेटीसे इस्तीफा दे दिया।

पर कॉंग्रेस अपने निर्धारित किये मार्गपर डटी ही रही। पूनामें अखिल-भारतीय कॉंग्रेस कमिटीने भी कार्य समितिके प्रस्तावको बहुमतसे मंजूर किया। फलतः कॉंग्रेसने अपने निश्चयानुसार ब्रिटिश सरकारको नियमित रूपसे मदद देनेका प्रस्ताव भेजा। इस प्रकार कॉंग्रेस अहिंसा और गाँधीजीको त्यागकर भी ब्रिटेनके साथ सहयोग करनेके लिए जहाँ तक आगे बढ़ सकती थी, बढ़ गई। किन्तु कॉंग्रेसके इस सहयोगपूर्ण रुखके बावजूद ब्रिटिश सरकारके रुखमें कोई परिवर्तन न आने पाया। ब्रिटिश सरकार कॉंग्रेसका सहयोग तो चाहती थी, लेकिन कॉंग्रेसकी शर्तों पर नहीं। अतः ब्रिटिश सरकारने कॉंग्रेसकी उदात्त भावनाओं और सहयोगके प्रस्तावका कोई आदर न किया और भारतकी आकांक्षाओंको ठुकरा कर अपने दुर्विनीत मार्गपर अड़ी ही रही। सरकारके इस रवैय्येसे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन भारतको अपना एक गुलाम मुल्क समझता है जिसको वह जिस तरहसे चाहे दबाव डालकर अपनी सेवामें घसीटनेका अधिकारी है।

यही कारण था कि ब्रिटिश सरकारकी तरफसे कोई सहयोगपूर्ण हाथ न बढ़ा। वरन् ब्रिटिश सरकारकी तरफसे वाइसरायने अपनी अगस्त घोषणा द्वारा कॉंग्रेसके सहयोगके प्रति उपेक्षा ही जाहिर की और भली-भाँति यह प्रकट कर दिया कि

ब्रिटिश सरकार काँग्रेसके कहने पर अपनी 'सत्ता' को मिटाकर भारतको आजाद करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हो सकती। अतः लार्ड लिनलिथगोने अपनी अगस्त-घोषणामें काँग्रेसकी माँग माननेकी बात तो दूर रही, उसका उल्लेख तक न किया।

इस तरह डा० राजेन्द्र प्रसादके शब्दोंमें 'जो नक्शा वर्किंग कमेटी और अखिल भारतीय कमिटीने बनाया था, वह बातकी बातमें टूट फूट गया।" फलतः काँग्रेस वाइसरायकी घोषणासे पुनः क्रुद्ध और असंतुष्ट हो उठी। काँग्रेसने सहयोगके लिए जो हाथ बढ़ाया था, सरकारने उसे झटक दिया था। काँग्रेसको अब प्रत्यक्ष हो गया कि ब्रिटिश सरकार बिना लड़े भारतको अधिकार देनेको कदापि तैयार नहीं है? इस भावनाने सरकार और काँग्रेसके बीचमें पुनः शत्रुताकी गहरी खाई पैदा कर दी। अतः काँग्रेस जो अब तक सहयोगके लिए तड़प रही थी, पुनः महात्मा गांधीके असहयोग पथकी ओर अभिमुख हो चली। गाँधीजीने इस स्थितिको 'बहुत ही विषम' बतलाया, और कहा कि इससे काँग्रेस और ब्रिटेनके बीचमें गहरी खायी पैदा हो गयी है; किन्तु सरकारने गाँधीजीकी इस चेतावनी को तुच्छ समझा और उसपर ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता न प्रतीत की।

काँग्रेसको लाचारीवश तब ब्रिटिश सरकारसे अपने अधिकारोंकी लड़ाई छेड़नेके लिए प्रस्तुत हो जाना पड़ा। असहयोगके सिवा सहयोगके लिए कोई चारा रह ही न गया था। इस निश्चय पर आकर काँग्रेसने अब अपने सेनानी गाँधीका आह्वान किया। १७ सितम्बर १९४० को बम्बईमें अखिल-भारतीय काँग्रेस कमिटीकी मीटिंग हुई, और गाँधीजीसे आग्रह किया गया कि वे फिर नेतृत्व ग्रहण करके काँग्रेसका पथ-प्रदर्शन करें।

गाँधीजी और वैयक्तिक सत्याग्रह—

गाँधीजीके नेतृत्वमें अब कांग्रेसने ब्रिटिश सरकारकी दुर्नीतिके विरुद्ध और अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए सत्याग्रह करनेका पूरी तरहसे निश्चय कर लिया। लेकिन गाँधीजी इस अवसर पर भी ब्रिटिश सरकारको परेशानीमें डालना न चाहते थे। इसलिए उन्होंने भारतके स्वतंत्रता संग्रामको व्यापक रूप न देकर

'वैयक्तिक सत्याग्रह' का ही निश्चय किया। इस निश्चयानुसार सत्याग्रहको हर प्रकारसे संयत और सीमित रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया। सत्याग्रहमें वे ही भाग ले सकते थे जिन्हें गाँधीजी मंजूरी देते। सत्याग्रहीको सत्याग्रह करनेसे पूर्व अधिकारियोंको उसकी सूचना देना भी अनिवार्य था। सत्याग्रहीको यह घोषणा करनी होती थी कि हम किसी प्रकारसे युद्धमें मदद नहीं कर सकते। उनका नारा था—'न एक भाई, न एक पाई!'

२७ सितम्बर १९४० को वाइसरायसे भेंट करने पर गाँधीजीने अपने सत्याग्रह-युद्धकी सारी योजना सरकार पर भी प्रकट कर दी और ११ नवम्बर १९४० को उन्होंने वाइसरायको उन निर्देशोंकी सूचना भी भेजी जो वे कांग्रेसी सत्याग्रहियों को दे रहे थे। इस प्रकार एक सच्चे सत्याग्रहीके नाते गाँधीजीने अपने सत्य संग्रामकी कोई बात सरकार व दुनियासे लुका-छिपाकर न रखी, और यह भी जाहिर कर दिया कि वे ब्रिटिश-सरकारकी दुर्नीतिसे विवश होकर ही असहयोग और सत्याग्रहका मार्ग लेने पर विवश हुए हैं।

वह व्यक्ति जिसे इस सत्य-संग्राममें प्रथम भाग लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, विनोवा भावे थे। भावे की गिरफ्तारी के अनन्तर सारे भारतमें व्यक्तिगत सत्याग्रह छिड़ गया, और सरकारने भी जोर-शोरसे पकड़-धड़क शुरू कर दी। काँग्रेसके बड़े-बड़े नेता—नेहरू, आजाद, पटेल सब गिरफ्तार कर लिये गये। सारे भारत भरमें लगभग २०,००० आदमी इस प्रकार जेलोंमें ठूँस दिये गये। किन्तु गाँधीजी पर ब्रिटिश सरकारने हाथ न लगाया। अतः गांधीजी बाहर रहकर अन्त तक सत्याग्रहका संचालन करते ही रहे।

गांधीजीने यह आंदोलन ब्रिटेनके अनाचार और अत्याचारोंके प्रतिरोधमें केवल एक प्रतीकके रूपमें खड़ा किया था। वे जानते थे कि इस आंदोलनसे ब्रिटिश-सरकार झुक तो नहीं सकती; लेकिन उसके द्वारा वे संसारको इतना जरूर विदित करा देना चाहते थे कि भारत ब्रिटेनकी अनीति और हिंसामें शामिल नहीं है। यह सत्याग्रह लगभग १ साल तक चला और ३० दिसम्बर १९४१ को

कौंग्रेसने उसे वापस लेकर समाप्त कर दिया। किन्तु सरकार और कौंग्रेसके बीच जो खिंच पैदा हो गयी थी वह वैसी ही बनी रही।

विषम अन्ताराष्ट्रीय परिस्थिति

इसी समय अन्ताराष्ट्रीय स्थिति भी बहुत बिगड़ चली। जर्मनीने रूसके साथ युद्धकी घोषणा कर दी। जर्मन सेनाएँ रूसके अन्दर जा घुसीं। इधर यूरोपमें स्पेन और पुर्तगाल तथा स्वीडन और इटलीको छोड़कर यूरोपके प्रायः समस्त देशों पर जर्मनीका अधिकार हो चला। इटली जर्मनीका दोस्त बनकर युद्धमें शामिल हो गया। दूसरी तरफ एशियामें जापानने भी अमेरिका और इंगलैंडके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। १९४१ के नवम्बरमें जापानने पर्ल-हार्बर पर धावा बोल कर अमेरिकाकी जलसेनाको तहस-नहस कर डाला। जर्मनी और इटलीके साथ जापानने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया और कुछ ही समयके भीतर दक्खिन पूरब एशियाके बहुत बड़े हिस्से पर अधिकार जमा लिया। जापानका यह बढ़ाव बड़ी द्रुतगतिसे हुआ। सिंगापुर और मलायाको लेता हुआ वह बर्माकी ओर बढ़ चला और देखते हो देखते मोलमीन, रंगून, मांडले आदि नगरोंको दखल करता हुआ सारे बर्मा पर छा गया।

जापानके इस बढ़ावने अँग्रेजी सरकार और कौंग्रेसी नेताओं दोनोंको व्यग्र कर दिया। केवल गाँधीजी ही इस आँधीके बीच अविचल बने रहे। ब्रिटिश-सरकार सोचने लगी कि इस अवसर पर हिन्दुस्तानसे मेल करलेनेमें हित है। कौंग्रेसके नेता भी सोचने लगे कि जापान, जर्मनी और इटलीके 'त्रिगुट'से देशकी रक्षा करनेके लिए शस्त्र उठाना लाभदायक है। अतः इस मनःस्थितिमें सरकारने कौंग्रेसके नेताओं आदिको रिहाकर यह भाव प्रकट किया कि वह कौंग्रेससे मेल करनेको उत्सुक है। कौंग्रेसके नेताओं विशेषकर पं० नेहरू और आजादने भी इस रुखका आदर किया और वे गाँधीजीके मार्गसे विरत होकर

'त्रिगुट'के विरुद्ध शस्त्र उठानेकी उत्सुकता भी प्रकट करने लगे—यद्यपि इसके लिए उन्होंने कुछ शर्तें भी रखीं।

अतः काँग्रेसने दिसम्बर १९४१ को बारडोलीमें एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि यदि भारतमें राष्ट्रीय सरकार बना दी जावे तो भारत संयुक्तराष्ट्रोंका मित्र बनकर 'त्रिगुट'के विरुद्ध शस्त्र उठाने तकको तैयार होगा। इस प्रस्तावके मुख्य समर्थक पं० नेहरू, मौलाना आजाद, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त और आसफअली थे। इस तरहके प्रस्तावको पास करनेका स्पष्ट अर्थ था कि काँग्रेस फिर गाँधीजीके मार्गसे हटकर देशकी स्वरक्षाके हेतु हिंसा और युद्धके मार्गको ग्रहण करने और मित्र-राष्ट्रोंका साथ देनेको तैयार है। गाँधीजीके कट्टर भक्त श्री वल्लभभाई पटेलने भी गांधीजीका साथ छोड़कर बारदोली प्रस्तावका समर्थन किया। प्रतीत होता था कि गाँधीजीको उनकी अहिंसाके साथ काँग्रेसने पुनः अपनेसे विलग कर दिया है और उनके नेतृत्वको तिलांजली देदी है।

क्रिप्स योजना

इस स्थितिसे लाभ उठानेका ब्रिटिश सरकारने भी उपक्रम किया। सरकारने भारतके लिए एक योजना तैयार की और सर स्टैफर्ड क्रिप्सको अपना प्रतिनिधि बनाकर हिन्दुस्तान भेजा। क्रिप्स मार्च १९४२ में हिन्दुस्तान पहुँचे। आते ही क्रिप्सने काँग्रेसके प्रधान मौलाना आजाद और गांधीजी तथा दूसरे नेताओंके साथ बातचीत शुरू कर दी।

लेकिन क्रिप्स द्वारा लाई गयी योजना पर गांधीजीने अधिक विचार करनेकी आवश्यकता न प्रतीत की। उन्होंने योजना को देखते ही यह कह दिया कि यह योजना भंग होते हुए बैंकका ऐसा चेक है जिसकी तिथि समाप्त हो चुकी है। गांधीजीके इस कथनसे स्पष्ट हो गया कि 'योजना' अवश्य ही निरर्थक है और उससे हिन्दुस्तानकी समस्याका हल होना असंभव है। फलतः यह योजना जहाँ की तहाँ ही धरी रह गयी।

लेकिन गांधीजीके असमर्थनके बावजूद कॉंग्रेसके दूसरे बड़े नेताओं मौलाना आजाद, पं० नेहरू और राजगोपालाचार्य आदिने भरसक प्रयत्न किया कि सरकारके साथ किसी तरह समझौता हो जाय—पर अन्ततः समझौता न हो सका। अन्तमें कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग दोनोंने ही क्रिप्स-योजनाको माननेसे इनकार कर दिया। समझौताका प्रयत्न निष्फल होनेपर क्रिप्स खाली हाथ अप्रैलमें इंगलैंड वापस चले गये। भारतको अपने लाभके लिए युद्धमें फँसानेका सरकारका प्रयत्न धरा ही रह गया। गांधीजीकी सत्यताके सामने उनका छल कामयाब न हो सका। भारत और सरकारके बीचमें वैमनस्यकी खाई और भी चौड़ी हो गयी ? ब्रिटिश सरकारने 'योजना' की असफलताका सारा दोष कॉंग्रेसके सिरपर मढ़ा और विश्व-भरमें कॉंग्रेस-विरोधी प्रचार करना आरंभ कर दिया। सरकारका खयाल था कि इस तरह विश्व-भरकी सहानुभूति कॉंग्रेससे हटाकर वह अपने पक्षको दृढ़ कर सकेगी।

इधर रंगूनका पतन हो जानेसे जापानी सेना भी हमरे पूर्वी दर्वाजेकी ओर बढ़ती चली आ रही थी। इससे देशमें एक भय और आशंकाकी स्थिति पैदा हो गयी थी। किन्तु गांधीके साहस और धैर्यने देशके साहस और धैर्यको टूटने न दिया। जनताको अपने महान् नेतापर विश्वास था और उनके साथ वह किसी अंध-कूप में कूद पड़ने तकको तैयार थी।

इस विषम स्थितिमें कॉंग्रेसने भी पुनः गांधीजीका आह्वान किया। कॉंग्रेस की नाव जिस राजनैतिक भँवरमें जा फँसी थी, उससे उबारनेकी सामर्थ्य गांधीके सिवा और किसमें थी ? फलतः देश और कॉंग्रेसने इस आपद्कालमें अपनेको गांधीके सुपुर्द कर दिया। केवट गांधीने भी सहर्ष नौकाकी पतवार अपने हाथोंमें ली, और अकेले ही राजनैतिक तूफान और अंधड़के बीच कूद गये।

———

अध्याय—२५

अब क्या किया जाय ?

क्रिप्स योजनाको ठुकरा दिया गया था। उस प्रस्तावमें भारतको वस्तुतः कुछ न दिया गया था। हाँ, युद्धके बाद कुछ देनेका वायदा अवश्य किया गया था। किन्तु उस वायदेको निरर्थक समझकर गांधीजीने क्रिप्सके प्रस्तावको दिवालिए बैंकके नामका ऐसा चेक बतलाया था, जिसकी तिथि समाप्त हो चुकी है। फिर जो कुछ देनेको कहा गया था, उससे देशका कोई भला न होने वाला था। यही कारण था कि गांधीजी और काँग्रेस तथा अन्य राजनैतिक दलोंने भी आखिर क्रिप्स प्रस्तावको ठुकरा दिया।*

क्रिप्सको शायद यह आशा थी कि जापानी सेनाओंके भारतके पूर्वीय द्वार पर पहुँचनेसे संत्रस्त होकर भारतीय नेता उसके भुलावेमें आ जायँगे और काँग्रेस ब्रिटिश-साम्राज्यवादका दाहिना हाथ बन जायगी ; लेकिन उसकी यह

---

* क्रिप्स-प्रस्तावमें युद्धके बाद भारतको निम्न वायदे दिये गये थे—

(१) भारतको प्रांतोंके अलग हो जानेके अधिकारके साथ—पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) दिया जायगा।

(२) ब्रिटिश भारतके सभी प्रान्तों एवं सभी देशी राज्योंको आत्म-निर्णय का अधिकार होगा।

(३) एक या अधिक भारतीय संघ बनानेकी गुंजायश रहेगी।

(४) प्रस्तावित भारतीय संघ या संघोंके लिए एक विधान-निर्मातृ समिति की स्थापना की जायगी।

आशा निर्मूल साबित हुई। वस्तुतः साम्राज्यवादके प्रखर पुजारी चर्चिल और उसकी प्रतिक्रियावादी सरकारके छलको, जिन्होंने क्रिप्सको उक्त-मसौदेके साथ हिन्दुस्तानको ठगनेके लिए भेजा था, गांधीजीने एक ही झटकेमें विदीर्ण कर डाला और दुनिया पर भी उनकी चालको प्रकट कर दिया। क्रुद्ध ब्रिटिश-सरकारने इसीलिए क्रिप्सकी असफलताका सबसे बड़ा दोषी गांधीजीको ठहराया था।

गांधीजीका कोप—

इधर ब्रिटिश सरकारकी चाल-कुचालको देखकर गाँधीजीका धैर्य भी अपनी सीमाको पहुँच गया था। ब्रिटिश–राजके कृत्रिम व्यवहार और कूटनीतिसे उनका कोपानल ऐसा भड़क उठा कि उसकी दहकती हुई चिनगारियाँ भारतके राजनैतिक आकाशमें साफ उड़ती हुई दिखाई पड़ने लगीं। गाँधीजी अब देशको आनेवाले संग्रामके लिए उद्यत करने और तपानेके लिए हरिजनमें भी बराबर तीव्र लेख लिखने लगे। इन लेखोंमें उनकी कोपाग्निकी दहकती लौ स्पष्ट दीख पड़ती है। उनके इन लेखोंसे तब सभी पर यह प्रकट हो गया था कि निकट भविष्यमें ही देश और ब्रिटिश सरकारके बीच एक विकट युद्ध छिड़नेवाला है। इन दिनोंकी चर्चा करते हुए बाबू राजेन्द्रप्रसादजीने लिखा है—"मुझे ऐसा मालूम होता था कि अब ब्रिटिश गवर्नमेण्टके साथ मुठभेड़ हुए बिना न रहेगा। गाँधीजी जबरदस्त लेख लिख ही रहे थे। देशमें बड़ी अशान्ति थी।"

अशांतिके कारण स्पष्ट ही थे। एक तरफ जापान हमारे पूर्वी दरवाजोंकी कुण्डी खटखटा रहा था और दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार भारतको स्वतंत्रता देनेके लिए तैयार न थी। क्रिप्स-योजनामें जो दिया गया था, उससे देशकी आजादीकी माँग पूरी नहीं होती थी। क्रिप्स-योजनामें प्रान्तों और रियासतोंको आत्म-निर्णय और केन्द्रसे अलग होने का अधिकार देकर हिन्दुस्तानकी एकता पर भी आघात पहुँचाया गया था। जो कुछ देनेको कहा भी गया था, वह

युद्धके बादका वायदा था। अतः ब्रिटेन की इस कटु-चालसे कौंग्रेस, गांधीजी तथा देशके सभी दल व नेता असंतुष्ट तथा अशांत हो चले थे। १६ अप्रैल १९४२ को 'हरिजन' के एक लेखमें गांधोजीने क्रिप्स-मसौदेपर लिखते हुए कहा था कि ब्रिटिश गवर्नमेन्टने राजनैतिक जिचको खतम करनेके लिए जो प्रस्ताव भेजा था, वह प्रत्यक्षतः कहीं भी स्वीकार होनेके योग्य न था।

क्रिप्स-मसौदे और उसके बाद ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें जो बहस उसपर हुई, उससे गांधीजीको पूरा विश्वास हो गया कि ब्रिटेन मरते दमतक भारतको अपने पंजेसे छोड़ना नहीं चाहता। ब्रिटेनकी सद्भावना और सद्वृत्ति परसे उनका रहा-सहा विश्वासभी जाता रहा, और वे अब इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि ब्रिटेनको भारतसे उखाड़नेके लिए दबाव डालने और धक्का देनेकी नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि वे यहाँसे तभी जायँगे जबकि उन्हें जानेके लिए मजबूर और विवश किया जायगा। इस प्रकार एक बार ब्रिटिश—सरकारपर आस्था रखनेवाले गांधीमें क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा हुआ और उनके मस्तिष्कमें 'भारत-छोड़ो' के नारेने मूर्त-रूप धारण किया। 'भारत-छोड़ो' का नारा यद्यपि १९४२ में दिया गया, लेकिन उसकी कल्पना गांधीजीके मस्तिष्कमें १९१६ में ही पैदा हो गयी थी। सन् १९१६में हिन्दू-विश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर गांधीजीने कहा था—"यदि भारतकी मुक्तिके लिए मुझे यह जरूरी जान पड़ा कि अंग्रेजोंको यहाँसे चला जाना चाहिए, या उन्हें यहाँसे भगा दिया जाना चाहिए, तो मैं यह कहनेमें हिचकूँगा नहीं कि उन्हें जाना पड़ेगा•••।"

आखिर १९४२ में यह समय आ ही पहुँचा, और तब अपनी २५ वर्ष पुरानी प्रतिज्ञाका स्मरण करते हुए गांधीजीने भारतके हितके लिए अंग्रेजोंको भारत-छोड़नेकी निर्भीक सलाह देनेमें जराभी संकोच और हिचकिचाहट न दिखलायी। इस विषयपर उन्होंने हरिजनमें बहुतसे लेख भी लिखे। 'प्रत्येक अंग्रेजसे अपील' नामक लेखमें गांधीजीने लिखा था—

"मैं प्रत्येक इँगलैण्ड निवासीसे माँग करता हूँ कि वह अँग्रेजोंसे मेरी इस

माँगका समर्थन करे कि वे तमाम एशियाई, अफ्रीकी मुल्कों और कम-से-कम हिन्दुस्तानसे इसी घड़ी चले जायँ। अबतक शासकोंको ओरसे कहा गया है कि वे खुशी-खुशी वापस जानेको तैयार हैं; लेकिन उन्हें यह नहीं पता चलता है कि वे शासन-सूत्र किसके हाथोंमें सुपुर्द करें। मेरा जवाब है 'भारतवर्षको भगवानके भरोसे छोड़ दो।"

अपनी इस माँगके परिणामों पर प्रकाश डालते हुए गांधीजीने आगे कहा—"इसकी सुन्दरता और आवश्यकता इसी बातमें है कि यह काम फौरन हो। हम दोनों इस समय आगकी लपटोंके बीचमें हैं। अगर वे चले जायँ तो इस बातकी सम्भावना है कि हम दोनों बच जायँ। अगर वे नहीं जाते तो भगवान जाने क्या होगा। हो सकता है कि उनके चले जानेसे आपसी एकता कायम हो जाय। यह भी हो सकता है कि सारे देशमें बदअमनी फैल जाय। यह भी खतरा है कि कोई दूसरी शक्ति इस मौकेसे लाभ उठावे और रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिए प्रयत्नशील हो। फिर भी अँग्रेज शांतिपूर्वक, स्वेच्छासे चले जायँ तो इससे उसका नैतिक स्तर ही अधिक ऊँचा न होगा, उनको एक विशाल राष्ट्रका स्वेच्छापूर्ण साहाय्य भी प्राप्त हो जायगा।

मैं कहा करता था कि मेरा नैतिक समर्थन बिलकुल अँग्रेजको है। मुझे यह स्वीकार करते हुए दुःख होता है कि मेरा मस्तिष्क अब उन्हें वह समर्थन देनेको तैयार नहीं है। भारतके प्रति अँग्रेजोंके व्यवहारने मुझे बहुत दुःख दिया है। मैं एमरी साहबकी कलाबाजियोंके लिए तैयार न था, न सर स्टैफर्ड क्रिप्सके मिशनके लिए। मेरे अनुसार इन चीज़ोंने अँग्रेजोंको नैतिक दृष्टिसे आपदपूर्ण स्थितिमें डाल दिया है।"

गांधीजीके लेखके इन उद्धरणोंसे उस समयकी उनकी मनःस्थितिका साफ पता लग जाता है। गांधीजी अँग्रेजी सरकारकी चालबाजियोंसे ऊब उठे थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि अँग्रेज, उनकी सरकार और सेनाके रहते भारतका कल्याण और छुटकारा होनेवाला नहीं है। इसीलिए गांधीजीने साफ तौरसे

अँग्रेजोंको अपनी तमाम सेनाके साथ यहाँसे चले जानेकी सलाह दी थी। उनका मस्तिष्क इस बारेमें भी साफ था। उनके चले जानेसे हिन्दू-मुस्लिम समस्या जो भी रूप लेगी, उसके लिए वे तैयार थे। वे जापानी खतरेके लिए और बदअमनीके लिए भी तैयार थे; किन्तु किसी भी हालतमें अँग्रेजोंको यहाँ टिकने देनेके लिए तैयार न थे।

दूसरी तरफ कांग्रेसके बड़े-बड़े नेता अभी अपना मत निश्चय न कर पाये थे। उनके दिल-दिमाग डोल ही रहे थे। जापानके बढ़ते हुए खतरेसे वे घबरा भी उठे थे। १३ अप्रैल १९४२ को पं० नेहरूने इस खतरेका उल्लेख करते हुए देशको और कांग्रेसको सलाह देते हुए कहा था—"यह हमारा फर्ज है, यह प्रत्येक कॉंग्रेसवालेका फर्ज है, यह प्रत्येक व्यक्तिका फर्ज है कि वह अन्तिम सीमा तक स्वरक्षा और स्वयंपूरकताके प्रोग्रामको पूरा करे। हो सकता है कि हमें छापेमार लड़ाई लड़नी पड़े......।"

इसी तरह कॉंग्रेसके महान नेता श्रीराजागोपालाचार्य भी जापानी खतरेका मुकाबला करनेकी बात सोच रहे थे। वे चाहते थे कि किसी तरहसे काम चलाऊ राष्ट्रीय सरकार बनाकर जापानी खतरेका मुकाबला किया जावे; किन्तु कांग्रेसने राजाजीके इन प्रस्तावोंको अनुचित बतलाया, जिसपर उन्होंने ३० अप्रैल १९४२ को कांग्रेस-वर्किंग कमेटीसे इस्तीफा दे दिया।

इसी समय इलाहाबादमें २७ अप्रैलसे कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी और ए० आई० सी० सी० की बैठकें भी हुईं। ये बैठकें १-२ मई तक चलीं। ए० आई० सी० सी० की बैठक में गांधीजी स्वयं तो न आये, लेकिन उन्होंने मीराबेनके हाथ अपना प्रस्ताव वर्किंग कमेटीके लिए भेजा था। उनके प्रस्तावमें मुख्यतः निम्न बातें थीं—

(१) जापानका झगड़ा हिन्दुस्तानके साथ नहीं है। वह बृटिश साम्राज्यके साथ युद्ध कर रहा है।

(२) अगर हिन्दुस्तान आजाद हो जाय तो शायद उसका पहिला कदम होगा, जापानसे सुलहकी बातचीत करना।

(३) अँग्रेज अगर भारत छोड़ दें तो हिन्दुस्तान जापानी अथवा किसी अन्य आक्रमणसे अपनी रक्षा कर लेगा।

(४) इसलिए, अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीका मत है कि अँग्रेजोंको भारत छोड़ देना चाहिये।

(५) अगर जापान हमला करता है तो हमें अहिंसात्मक असहयोगके द्वारा उसका विरोध करना चाहिये। हमें उसके सामने घुटने नहीं टेकना चाहिये।

(६) साथ ही, हमें ब्रिटेनकी मदद भी सक्रिय रूपसे नहीं करनी चाहिये।

(७) अँग्रेज चाहते हैं, हम गुलाम रहकर ही उनकी मदद करें—इस स्थितिको हम कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

(८) दुश्मनके हमलेके अवसर पर आग लगा देनेवाली नीतिको केवल लड़ाईके सामानके साथ लागू करनी चाहिये; ऐसा केवल युद्ध सम्बंधी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर करना चाहिये।

(९) हिन्दुस्तानमें विदेशी सैनिकोंका रहना हानिप्रद है। उनको फौरन हिन्दुस्तानके बाहर चला जाना चाहिये।

गांधीजीके इन सुझावोंको यद्यपि इलाहाबाद ए॰ आई॰ सी॰ सी॰ ने पूरी तरहसे स्वीकार नहीं किया, किन्तु इतना अवश्य मान लिया कि युद्धमें बाधा न पहुँचाते हुए वे उसमें साथ भी न देंगे, और जापानियोंके देश में घुसने पर शान्तिमय असहयोगसे काम लेंगे।

अँग्रेज और उनकी सेना

काँग्रेसके नेताओंके इस रुखसे स्पष्ट हो गया था कि वे अँग्रेज सरकारका विरोध करते हुए भी अँग्रेजी-सरकारके युद्ध-प्रयत्नमें बाधा पहुँचाना ठीक नहीं समझते और इसलिए वे अँग्रेजी सेनाको यहाँसे तुरन्त वापस चले जानेको कहना अनु-

चित और राजनैतिक दृष्टिसे अप्रासंगिक तथा अहितकर मानते हैं। इसी समय चांगकाईशेक भी भारतमें आये हुए थे और उन्होंने भी गांधीजीसे कहा कि जापानके विरुद्ध भारतका युद्धसे हट जाना अहितकर होगा। अमेरिकाके प्रेस-प्रतिनिधियोंने भी गांधीजीको बतलाया कि अँग्रेजी फौजको जापानियोंका मुकाबला करनेसे विरतकर उन्हें चले जानेको कहना ऐसे अवसरपर ठीक नहीं है, क्योंकि इससे अमेरिका भारतके राष्ट्रवादियोंसे असंतुष्ट हो जायगा। अतः इन सब बातोंको देखते हुए अन्तमें गांधीजीनेभी अनिच्छापूर्वक युद्धकार्यके लिए ब्रिटिश सेनाका यहाँपर रुकना स्वीकार कर लिया।*

किन्तु 'भारत-छोड़ो' नारा तब भी कायम रहा। गांधीजी किसी तरह अँग्रेजोंको इस देशसे निष्कासित हुआ देखना चाहते थे। पर कहने-सुननेसे तो अँग्रेज भारत छोड़नेके लिए तैयार न थे ? तब क्या किया जाय ? कौन-सा उपाय काममें लाया जाय—वैयक्तिक सत्याग्रह तक इस कार्यमें असफल हो चुका था...तो अब !!

गांधीजी बहुत समय तक इन प्रश्नोंपर विचार करते रहे और अन्तमें 'करो या मरो' के मंत्रके साथ वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिस जन-आन्दोलनको वे अब तक टालते चले आ रहे थे, उसके सिवा दूसरा कोई उपाय अँग्रेजी सरकारको यहाँसे विदा करानेमें समर्थ न हो सकेगा। गांधीजीके उद्वेलित मस्तिष्क और हृदयमें अब निरंतर यही आवाज़ें उठने लगीं—खुला विद्रोह...खुला विद्रोह !!

———

* Mahatma Gandhi, by Polak, Brailsford, Pathick lawrence, pp. 249-250

अध्याय—२६

खुला विद्रोह

देशकी स्थिति

गांधीजीकी 'भारत छोड़ो' माँगकी प्रतिध्वनि सारे देशमें व्याप्त हो चुकी थी। सभी लोगोंके मुखसे अब यही 'नारा' सुनाई पड़ता था। गांधीजीके इन दिनों के लेख आग उगल रहे थे। शान्त गांधी रौद्र हो चले थे। उनके लेखों और वक्तव्योंकी उग्रतासे स्पष्ट लग रहा था कि निकट भविष्यमें ही विकट संघर्ष छिड़नेवाला है। सारे देशमें अँग्रेजी राज्यके प्रति घोर घृणा पैदा हो चुकी थी। लोग अँग्रेजोंसे 'भारत छुड़ाने' के लिए उत्कंठित हो उठे थे। केवल 'भारत छोड़ो' के वीर-घोष-कर्त्ता गांधीके इंगितकी प्रतीक्षाकी जा रही थी।

देशकी इस परिस्थिति और सरकारके कड़े रुखने काँग्रेसके उन नेताओं—पं० नेहरू, मौलाना आजाद, पं० पंत को भी संघर्षके लिए उत्तेजित कर दिया जो अब तक जापानी खतरेके भयसे सरकारसे किसी तरह सम्मानप्रद समझौता कर लेने और युद्धमें सहायता देनेके पक्षमें थे। अतः वर्धामें जब काँग्रेस वर्किंग कमेटीकी बैठक हुई तो ये लोग भी गांधीजीकी 'सघर्ष' की नीतिके पक्षमें हो गये।

वर्धा का प्रस्ताव—

वर्धा में काँग्रेस कार्य समितिकी बैठक ६ जुलाई १९४६ को प्रारम्भ हुई! लगभग १ हफ्तेके विचार-विनिमयके बाद काँग्रेसने १७०० शब्दों का एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें तत्कालिक राजनैतिक स्थितिपर प्रकाश डालते हुए

अँग्रेजोंसे शीघ्र भारत छोड़ देनेकी अपील की गयी थी ! यह प्रस्ताव राजनैतिक दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण था। अतः संक्षेपमें उसे नीचे उद्धत किया जाता है—

"दिन-प्रति-दिन घटनेवाली घटनाएँ और भारतकी जनता जिस परिस्थिति में होकर गुजर रही है उसका अनुभव, कौंग्रेस-जनोंकी उस राय को मजबूत बनाता है कि भारतमें अँग्रेजी राज्यका शीघ्र अंत हो जाना चाहिए—

असफल क्रिप्स-प्रस्तावने साफ तौर पर यह बतला दिया कि भारतके प्रति अँग्रेजी-सरकारके रुखमें कुछ भी अन्तर नहीं आया है और भारत परसे अँग्रेजी गुलामीका पंजा किसी भी प्रकार हटने को नहीं है। सर स्टैफोर्ड क्रिप्सके साथ समझौतेकी बातचीतमें कौंग्रेसके प्रतिनिधियोंने अपनी पूरी कोशिश लगायी। राष्ट्रीय माँगके अनुकूल कम-से-कम अधिकार भी माँगे ; पर सब व्यर्थ ! इस विफलतासे ब्रिटिश-विरोधी दुर्भावनामें बहुत तीव्र और व्यापक प्रगति हुई है। साथ ही इसने जापानी विजयोंके प्रति संतोष भी बढ़ा दिया है ! कार्य समिति इस बात को बहुत खतरनाक समझती है, क्योंकि यदि इस मनोवृति को रोका न गया तो यह अनिवारणीय रूपसे आक्रमणको चुपचाप स्वीकार करा देगी।"

साम्प्रदायिक स्थितिके बारेमें प्रस्तावमें कहा गया था कि उक्त प्रश्नके हल न होनेका कारण भी विदेशी सरकार है, इसलिए उसके यहाँ रहते हुए साम्प्रदायिक समस्याका सुलझना तब तक असंभव है। किन्तु प्रस्तावमें यह भी स्पष्टकर दिया गया कि—

"अँग्रेजी शासनके भारतसे बिदा हो जानेका प्रस्ताव करते हुए कौंग्रेस बिलकुल नहीं चाहती कि ब्रिटेन को अथवा दूसरी मित्र शक्तियों को युद्धोयोग में किसी भी प्रकार तंग किया जाय अथवा भारत विरोधी आक्रमणको प्रोत्साहित किया जाय,… ऐसा कोई भी कार्य करना कौंग्रेस नहीं चाहती।…मित्र शक्तियों के रक्षा-साधन को भी किसी प्रकार हानि पहुँचाने का कौंग्रेस का बिचार नहीं। अतः कौंग्रेसको इस बातमें कोई उज्र नहीं कि भारतमें मित्र शक्तियोंके सशस्त्र सैनिक रहें…।

प्रस्तावमें 'भारत छोड़ो' के नारे को स्पष्ट करते हुए कहा गया कि उसका "यह अर्थ कदापि नहीं कि वे अँग्रेज भी यहाँसे बोरिया-बधना लेकर विदा हो जायँ जो इसे अपना घर बनाकर रहना चाहते हैं और यहाँ के नागरिक बनकर दूसरोंके साथ बराबरीके भावसे रहना चाहते हैं।"

प्रस्तावके अंतमें यह भी कह दिया गया कि यदि उचित समझौता नहीं हो सका और कांग्रेसकी अपील व्यर्थ गयी तो उसे विवश होकर समग्र रूपसे सम्पूर्ण शक्तिके साथ देश व्यापी अहिंसात्मक आन्दोलन चलाना पड़ेगा जिसके नेता महात्मागांधी होंगे। लेकिन—

"चूँकि यह प्रश्न भारतकी जनताके साथ संयुक्त राष्ट्रकी जनताके लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है, इसलिए कार्य समिति उसे अंतिम निर्णयके लिए अ० भा० काँग्रेस कमिटीके सामने उपस्थित करेगी, जिसकी बैठक ७ अगस्त, १९४२ को बंबईमें होगी।"

वर्धा प्रस्तावसे प्रकट हो गया कि काँग्रेस देशकी स्वतंत्रताके लिए अब पूर्ण तरहसे सघर्ष करनेका निश्चय कर चुकी है। सरकारके रुखसे भी स्पष्ट हो गया कि वह भी समझौते के बजाय 'संघर्ष' पर ही उतारू है। फलतः देशमें अब सर्व संघर्षके ही आसार नज़र आने लगे थे। सारा वातावरण आनेवाले तूफानकी प्रतिछायासे घिरा मालूम पड़ता था। कब देशव्यापी आन्दोलनका तूफान अपने झंझावातको लेकर फूट पड़ेगा, लोग इसी प्रतीक्षामें मौन और निस्तब्ध हो रहे थे। किन्तु भीतर-ही-भीतर सम्पूर्ण देशके नर-नारियोंमें रणक्षेत्रमें उतरनेकी उमंग हिलोरें ले रही थी। सबकी निगाहें अपने नेता, बापू और सैनानि गांधीकी तरफ जमी हुई थीं। बापूके इंगितकी प्रतीक्षा थी और समग्र देशवाशी स्वातंत्र्य-युद्धकी ज्वालामें कूदनेके लिए तत्पर थे। निःसन्देह 'भारत छोड़ो' के नारेने भारतीयोंमें अपने शोषकों और गुलाम बनानेवालोंको निकाल बाहर करनेके लिए अपूर्व बल और साहस उत्पन्न कर दिया था।

लेकिन आगामी संघर्ष किस प्रकारका होगा, इसके बारेके देश को कु

पता न था। स्वयं नेतागण और गाँधीजी तब तक संघर्षके रूप और कार्यक्रम को निश्चित न कर सके थे। 'न्यूज क्रानिकल' के एक प्रतिनिधिने वर्धा प्रस्ताव के पास होनेके दिन ही गाँधीजीसे प्रश्न पूछा था कि आपका आन्दोलन किस प्रकारका होगा? इसके उत्तरमें गाँधीजीने इतना ही कहा था–'आन्दोलनके कार्य-क्रममें जन-आन्दोलनके अन्तर्गतकी विशुद्ध अहिंसात्मक सारी बातें आ जाती हैं।' किन्तु 'मैं विशेष विवरण के साथ अभी कुछ भी नहीं कह सकता।... क्योंकि अभी तक कोई खास कार्य-क्रम तय ही नहीं किया गया है।' डा० राजेन्द्र बाबूने भी अपनी आत्मकथामें वर्धाके बादकी स्थितिका उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'इस बात में किसी तरहका सन्देह मेरे दिलमें नहीं रह गया था कि ब्रिटिश गवर्णमेण्टके साथ हमारा टंटा होगा ही। मैंने खुलकर साफ-साफ अपने भाषणोंमें यह बात कही। अभी तक हमारे पास कोई कार्यक्रम नहीं था। इसलिए मैं कार्यक्रम नहीं बतला सकता था और नहीं बतलाया; पर इतना अवश्य कहा कि यह भद्र अवज्ञा का ही रूप धारण करेगा। साथ ही बिल्कुल अहिंसात्मक होगा। और...पहलेके आन्दोलनोंसे यह कहीं उग्र होगा।*

ऊपरी नेता जब कार्य-क्रमके बारेमें अनिश्चित से थे बिहार, यू० पी०, बम्बई व आन्ध्र आदि प्रान्तोंमें लोगों और कांग्रेसवालोंमें यह चर्चा ज़ोरोंसे फैल उठी कि आनेवाले आन्दोलनमें गुप्त संगठन, रेलवेकी पटरियोंको उखाड़ना, पुल और सरकारी इमारतोंको तोड़ना आदि सभी कुछ शामिल रहेगा। यह चर्चा कैसे फैली और उसके पीछे कौन संगठन कार्य कर रहा था, इसका ठीकसे उत्तर देना कठिन है। हो सकता है क्रोधित जनताके मनस्ताप और उद्वेगने ही ऐसी बातोंको जन्म दिया हो तथा शस्त्र-बल व हिंसामें विश्वास करनेवाले राजनैतिक दलोंने भी कांग्रेसके नामसे ऐसी अफवाहें फैलायी हों। जो भी हो, इन अफवाहोंके परिणामसे अनेक स्थानोंमें लोगोंने उक्त प्रकारकी तैयारियाँ भी शुरू कर दी थीं।

---

*आत्मकथा पृष्ठ ५३३।

बम्बईमें

वर्धाके बाद ७ और ८ अगस्त १९४२ को बम्बईमें अखिल भारतीय काँग्रेस-कमिटीकी महत्वपूर्ण बैठक ग्वालिया टैंकके विशाल मैदानमें हुई थी। इस अवसर पर लगभग २ लाख आदमी वहाँ एकत्रित हुए थे। भारतके भाग्यका निर्णय करनेवाला प्रसिद्ध ८ ता० वाला अगस्त प्रस्ताव इसीमें पास हुआ था। वह प्रस्ताव नहीं बल्कि भारतकी आजादी और विदेशी सत्ताको उखाड़ फेंकनेके लिये खुले विद्रोहका 'घोषणा-पत्र'. था।

प्रस्तावके मुख्य अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"......भारतके भले और संयुक्तराष्ट्रकी सफलताके लिए आवश्यक है कि हिन्दुस्तानमें अँग्रेजी सरकारका फौरन अन्त हो जाय। उसके कायम रहनेसे देश गिरता जा रहा है और कमजोर होता जा रहा है, वह धीरे-धीरे अपनी रक्षाके लिए और विश्व-स्वातंत्र्यमें सहायता देनेके लिए नाकाबिल होता जा रहा है।

"कमेटीने चीनी और रूसी जनताके बढ़ते संकटको दुखके साथ अनुभव किया है। वह अपनी आजादीकी रक्षाके लिए उनकी वीरताकी प्रशंसा करती है। यह परिस्थिति और आनेवाला खतरा उन लोगोंको जो आजादीके लिए प्रयत्न कर रहे हैं, इस बातके लिये मजबूर करते हैं कि वे मित्र राष्ट्रोंकी नीतिकी मूल भित्तियोंकी परीक्षा फिरसे करें। यह नीति आजादीके आधारपर नहीं है!.........साम्राज्य एक अभिशाप और बोझ बन गया है। वर्तमान साम्राज्यवादका प्रदेश भारत सारी समस्याका मुख्य विषय बन गया है, क्योंकि हिन्दुस्तान की आजादीके मापदण्डसे ही ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रोंकी परख की जा सकती है और एशिया तथा अफ्रीकाके निवासियोंके दिलोंमें आशा और उत्साह भरा जा सकता है।

"इस प्रकार अंग्रेजी शासनका इस देशमें समाप्त हो जाना महत्वपूर्ण

और तात्कालिक प्रश्न है। इसीपर युद्धका भविष्य, आजादी तथा प्रजातंत्रकी सफलता निर्भर है। आजाद हिन्दुस्तान इस सफलताको निश्चित बना सकता है—क्योंकि ऐसी हालतमें वह अपने सारे साधन नाजीवाद, फासिस्टवाद और साम्राज्यवादको समाप्त करनेमें लगा देगा।

"आजके खतरेसे हिन्दुस्तानकी आजादी और साम्राज्यवादका अन्त आवश्यक हो गया है। भविष्यके वायदे आजकी परिस्थितिपर असर नहीं डाल सकते, न खतरेको ही दूर कर सकते हैं। वे जनताके मस्तिष्कपर आवश्यक मनोवैज्ञानिक असर नहीं डाल सकते। केवल स्वतन्त्रताका प्रकाश ही अब जनता के उस उत्साह और शक्तिको संजीवन प्रदान कर सकता है जो फौरन युद्धकी रूपरेखाको बदल देगा।

"इसलिए, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपनी सारी शक्तिके साथ हिन्दुस्तानसे अंग्रेजी शासनके निकल जानेकी माँगको दुहराती है।

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी फिरसे, इस आखिरी घड़ी में, संसारकी स्वतंत्रताके हितमें, ब्रिटेन और संयुक्त-राष्ट्रोंसे अपनी अपीलको दोहराती है। लेकिन कमेटी अनुभव करती है कि वह उस साम्राज्यवादी, निरंकुश सरकारके विरुद्ध जो कि राष्ट्रको गुलाम बनाये हुए है और उसे अपने तथा मानवताके हितमें कार्य करनेसे रोकती है, राष्ट्रको अपनी इच्छापूर्वक बढ़नेसे अब नहीं रोक सकती। इसलिये, भारतकी आजादी और मुक्तिके स्वाधिकारकी रक्षाके लिए, विशाल-से-विशाल स्तरपर, अहिंसात्मक ढंगसे जन-संघर्ष छेड़नेके लिए कमेटीने आज्ञा दे देनेका निश्चय किया है, जिससे देश पिछले २२ सालोंके शान्तिमय संघर्षसे बटोरी हुई सारी अहिंसात्मक शक्ति इकट्ठा कर उसे काममें ला सके। निश्चय ही यह संघर्ष गांधीजीके नेतृत्वमें ही होगा, इसलिए कमेटी उनसे अपील करती है कि वे बागडोर अपने हाथमें लें और राष्ट्रको बतावें कि वह कौन-सा अगला कदम उठावे।

'कमेटी भारतकी जनतासे अपील करती है कि वह आनेवाले खतरों और

मुसीबतोंका सामना हिम्मत और बहादुरी से करें और गांधीजी के नेतृत्वमें रह-कर उनके आदेशोंको हिन्दुस्तानकी आजादीके सिपाहियोंकी तरह पूरा करें। उन्हें याद रखना होगा कि इस आन्दोलनका आधार अहिंसा ही है। ऐसा समय आ सकता है जब आदेश दे सकना और आदेशोंका जनता तक पहुँच सकना असम्भव हो जायगा। उस समय कोई भी काँग्रेस कमेटी अपना काम न कर सकेगी। जब ऐसा हो तो हर मर्द-औरतको जो कि इस आन्दोलनमें शामिल है, आम हिदायतोंके अनुसार ही काम करना होगा। हर उस हिन्दुस्तानीको जो आजादी चाहता है और उसके लिए प्रयत्नशील है, स्वयं अपना मार्ग-प्रदर्शक बनना होगा और उस कठिन रास्ते पर चलते जाना होगा जिस पर आरामगाह नहीं है और जो अन्तमें स्वतंत्रता और भारतकी मुक्ति तक हमें ले जाता है।

'अन्तमें, वर्किंग कमेटी यह साफ कह देना चाहती है कि इस जन-संघर्ष को आरम्भ करके वह काँग्रेसके लिए शक्ति संचय नहीं करना चाहती। शक्ति जब कभी आयेगी तो वह हिन्दुस्तानकी सारी जनताकी होगी।'

यह प्रस्ताव ८ अगस्तकी रातको अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीमें थोड़ी बहुत बहसके बाद पास किया गया और वर्किंग कमेटी द्वारा भी स्वीकृत कर लिया गया। प्रस्ताव पास होनेके बाद महात्मा गांधीका क्रान्तिकारी भाषण हुआ जिसमें उन्होंने आनेवाले आन्दोलनके स्वरूप पर प्रकाश डाला और समग्र देश को 'करो या मरो' के लिए तैयार रहनेको आमंत्रित किया। गांधीजीके मुखसे उस समय शब्द नहीं वरन् क्रान्तिके दहकते अंगारे निकल रहे थे। उनके भाषण में दृढ़-निष्ठा और देश की आजादीके लिए मर-मिटनेकी साध समाई हुई थी। उन्होंने कहा था:—

'मेरी ज़िन्दगीकी यह आखिरी लड़ाई है। देर करना अहितकर होगा। उससे हम सबका अपमान होगा। हमारी लड़ाई शुरू होने वाली है। लेकिन लड़ाई छेड़नेके पहिले मैं एक खत वाईसरायको लिखूँगा और उनके उत्तरका

इन्तजार करूँगा। इसमें एक हफ्ता, दो हफ्ता अथवा तीन हफ्ते लग सकते हैं। तब तक हम १३ नियमोंके अलावा नीचे लिखा नियम मानेंगे। हर हिन्दुस्तानी अपनेको स्वतंत्र समझे। वह आजादी प्राप्त करने अथवा उसके लिए प्रयत्न करनेमें मिट जाने के लिये तैयार रहे। ज़िन्दगीकी तरफ उसका यही रुख होना चाहिये कि वह आजाद इन्सान है।...आजादीकी मांगमें समझौता नहीं हो सकता। आजादी सबसे पहिले, उसके बाद और कुछ। कायर मत बनो क्योंकि कायरोंको जीवित रहनेका अधिकार नहीं है। आजादी ही तुम्हारा मन्त्र होना चाहिये, उसीका तुम जाप करो।'

''इस क्षणसे तुममें से हर मर्द और औरत अपनेको स्वतंत्र समझे। सब ऐसा ही व्यवहार करें जैसे कि वे स्वतंत्र हैं और साम्राज्यकी चक्कीमें नहीं दबे हैं। विश्वास मानिये, मैं वाईसरायसे मंत्रिमण्डलों अथवा इस तरहकी चीज़ोंके मोल-भाव करने नहीं ज़ा रहा हूँ। पूर्ण स्वतंत्रतासे कममें मुझे बिलकुल संतोष नहीं होगा। हम करेंगे या मरेंगे। या तो हम हिन्दुस्ताको आजाद करेंगे अथवा उसी प्रयत्नमें प्राण होम कर देंगे।''

गांधीजीने हिन्दुस्तानके पत्रोंको भी सम्बोधित कर कहा कि वे अपना प्रकाशन स्थगित कर दें और जब भारत स्वतंत्र होगा तब फिर प्रकाशन शुरू करें। सरकारी कर्मचारियोंको उन्होंने निर्देश दिया कि उन्हें शीघ्र स्तीफा देनेकी आवश्यकता नही है; लेकिन वे सरकारको इतना सूचित कर दें कि हम कौंग्रेसके साथ हैं। विद्यार्थियों और शिक्षकोंके लिए उन्होंने तैयार रहनेका आदेश दिया। अन्तमें ज़ोरदार शब्दोंमें गाँधीजीने पुनः यह घोषित किया कि आन्दोलन सर्वाङ्गीण रूपसे अहिंसात्मक होगा और चेतावनी दी कि "संघर्षमें यदि आपने हिंसा की तो आप विश्वास करें आप मुझे जीवित न पायँगे।"

गांधीजीने आसन्न आन्दोलनको स्पष्टतया 'खुला विद्रोह' घोषित किया और

काँग्रेसके सभापति मौलाना आजादने काँग्रेसके प्रस्तावको एक चेतावनी बतलाया। इसके बाद जलसेकी कार्यवाही समाप्त हुई।

सरकार द्वारा आक्रमण

निःसन्देह ८ अगस्तका प्रस्ताव अँग्रेजी सरकारके लिए एक चेतावनी, भारत छोड़कर चले जानेका नोटिस और खुले विद्रोहका दर्प पूर्ण एलान था। आखिर १५० वर्षोंकी अँग्रेजी गुलामीके बाद तरुण भारतने अपने वृद्ध नेता महात्मा गांधीके इशारे और बल पर ८ ता० १९४२ को अपनी परतंत्रताकी शृंखलाको तोड़ फेंकनेको संकल्प कर लिया था। तरुण भारतने गुलामीमें न रहनेकी उस क्रान्तिकारी दिनको प्रतिज्ञा ले ली थी। अपने सबल नेता गांधीके निर्देशानुसार भारतके समग्र नर-नारियोंने विदेशी सत्ताको न माननेका पूरा निश्चय कर लिया था। फलतः देश अब परतंत्रतासे परित्राण पानेके लिए उन्मत्त-सा उठा था और महात्माके 'करो या मरो' के मंत्रसे अभिभूत होकर वह आजादीके मार्ग पर चल पड़नेके लिए उद्यत हो चला था। इस निश्चय के साथ भारतने मानों अपने कधोंको हिलाकर अँग्रेजी जुएको नीचे फेंक दिया था और वह अब परतंत्रताके असह्य बोझसे दबे सिरको ऊँचा उठाकर विदेशी सरकारसे लोहा लेनेके लिए अदम्य साहसके साथ खुला विद्रोह करने पर उतारू हो गया था। लेकिन 'करो या मरो' तथा 'खुले विद्रोह' का निश्चय कर लेने पर भी परितप्त भारतने अपने शोषकोंकी हिंसक दुर्नीतिको अपनानेसे इन्कार कर दिया था। भारतने अपने युद्धको विशुद्ध अहिंसा और सत्यताके साथ परिचालित करनेका निश्चय किया था। उसे इस बातकी कोई चिन्ता न थी कि उसकी प्रतिद्वन्द्वी विदेशी अँग्रेजी सरकार उसके साथ क्या और कैसा व्यवहार करेगी। यदि अँग्रेज और अन्य पश्चिमी राष्ट्र, नीति और आदर्शसे नीचे गिर गये हैं तो भारतको उनका अनुकरण थोड़े ही करना था! भारत सर्वदासे ऊँचे आदर्शोंका मानने वाला रहा है, अतः वह किसी भी स्थितिमें अपने आदर्श और उच्च भावोंको त्यागनेके लिए तैयार नहीं हो

सकता। इन भावनाओं से हीन होने पर भारत अपने अस्तित्वको ही खो देगा—वह मिट जायेगा। इसीलिए भारतीय आत्मा की सजीव और साकार मूर्ति महात्मा गांधीने खुले विद्रोहके गुहारके साथ देशको यह चेतावनी भी दी थी कि यदि आसन्न संघर्षमें हिंसासे काम लिया गया तो वे उन्हें जीवित न पायेंगे।

किन्तु खुले विद्रोहका प्रस्ताव पास हो जाने पर भी अधिकांश लोगोंका अभी यह विश्वास था कि संघर्ष छिड़नेमें कुछ समय लगेगा ही। लोगोंका खयाल था कि गांधीजी अभी शायद वाइसरायसे पत्र-व्यवहार करेंगे, मुलाकात करेंगे और तब जाकर कहीं संघर्षका कार्य-क्रम बनेगा तथा आन्दोलन शुरू होगा। स्वयं गांधीजी और काँग्रेसके अन्य बड़े नेताओंका भी यही विचार था। बातचीतके दौरानमें गांधीजीने बिड़ला हाउस में कहा था—"सरकार अभी हम लोगोंको नहीं पकड़ेगी। अगर वह पकड़ेगी तो बहुत बड़ी मूर्खता करेगी।" डा० राजेन्द्र बाबूने इस स्थितिका उल्लेख करते हुए आत्मकथामें लिखा है—"इसी बीचमें एक दिन दिल्लीसे एक समाचार छपा कि ८ अगस्तके बाद कांग्रेसके लोगोंकी गिरफ्तारी नहीं होगी और गवर्नमेण्ट इस बातका इन्तजार करेगी कि कांग्रेस क्या करती है—इस समाचारको हमने सच मान लिया और समझ लिया कि अब तुरन्त कुछ होनेवाला नहीं है……।*"

गांधीजीकी गिरफ्तारी—

लोगों और काँग्रेसके नेताओंका यह विचार गलत निकला। वस्तुतः सरकार काँग्रेसपर प्रहार करनेको पहलेसे ही तैयार बैठी थी। वार करनेके लिए वह केवल मौकेकी राह देख रही थी। अतः ८ ता० को १०-३० बजे रात गोवालिया तालाब पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक समाप्त हुई थी, और रात खुलते-खुलते ६ अगस्त सन् ४२की सुबह ५ बजे हीगाँधीजीको सरकारने बिड़ला

---

* आत्मकथा, पृष्ठ—५८९—

हाउस में पुलिस भेजकर गिरफ्तार करा लिया। गाँधीजीके साथ-साथ वर्किंग कमेटीके सभी सदस्य जो बम्बईमें मौजूद थे, बन्दी बना लिए गये। ये गिरफ्तारियाँ सरकारने बड़े पोशीदा ढङ्गसे की थीं। नगरके सारे टेलीफोनको काट दिया गया था ताकि नेताओंकी गिरफ्तारीकी खबर बम्बईवालोंको लगने न पावे। किन्तु इस प्रबन्धके होने पर भी क्रानिकल और असोशियेटेडके सम्वाददाताओं-ने सारी खबरें तुरन्त ही मालूम कर लीं और क्रानिकलने ६ बजे ही अपने दफ्तरके फाटकपर एक पोस्टर भी लगा दिया कि वर्किंग कमेटी गिरफ्तार हो गयी है।

अतः बात-की-बातमें गाँधीजी और वर्किङ्ग कमेटीकी गिरफ्तारीका समाचार सारे बम्बईमें बिजलीकी तरह फैल गया। परिणामतः क्रान्तिके लिए उन्मत्त हुई जनता का अपार समूह विक्टोरिया टार्मिनसके पास आ इकट्ठा हुआ और जब पुलिसकी लारियाँ बन्दी नेताओंको लेकर वहाँ पहुँची तो उन्होंने 'इनक्लाब जिन्दाबाद' के गगन-भेदी नारोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकम्पित कर दिया। खुले विद्रोहका यह प्रथम प्रकम्पन था।

सरकारने इस हड़कम्पको दबानेके लिए १० अगस्तको सारी कांग्रेस कमेटियोंको गैरकानूनी घोषित कर दिया। देशके प्रतिगामी दलों—हिन्दू-सभा और मुसलिम लीगने भी स्वतंत्रताकी इस लड़ाई पर अवरोध लगानेका प्रयत्न किया। हिन्दू महासभाके सभापति सावरकरने हिन्दुओंको इस आन्दोलनमें शामिल न होनेको कहा। मुस्लिम लीगके सभापति जिन्नाने तो आन्दोलनको मुसलमानोंके ही खिलाफ छेड़ा गया बतलाया और उनसे उसमें शामिल न होनेकी प्रार्थना की। किन्तु सरकार और उसके पृष्ठ-पोषक हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीगके विषैले प्रचारों और अवरोधोंके बावजूद स्वतंत्रताके लिए उन्मत्त हुए वीर भारतीय स्त्री और पुरुषोंने क्रांतिकी गति, प्रवाह और वेगमें कोई अन्तर न आने दिया। सम्पूर्ण भारत ही मानों एक आदमीकी तरह ब्रिटिश-सत्ताको उखाड़ फेंकनेके लिए उन्मत्त होकर खड़ा हो उठा था।

गांधीजी और वर्किंग कमेटीको गिरफ्तार करके सरकारने सोचा था वह क्रान्तिके स्रोतको दबा देगी और 'क्रान्ति' का 'नारा' मात्र ही शून्यमें चक्कर काटता रह जायगा। किन्तु सरकारकी यह धारणा निर्मूल साबित हुई। गांधीजी और अन्य महान नेताओंकी गिरफ्तारीने जनताको हतोत्साहित करनेके बजाय रणोन्मत्त कर दिया। सरकारने भी यह महसूस किया और गिरफ्तारियों पर गिरफ्तारियाँ करती चली गयी। ६ ता० को ही देश भरमें तमाम स्थानीय काँग्रेसी नेता और कार्यकर्त्ता पकड़कर जेलोंमें ठूँस दिये गये। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीके लगभग १४८ सदस्योंको भी जेलोंमें डाल दिया गया।

जनता फिर भी निरुत्साहित न हुई। १९३२ के आन्दोलनके समय क्या उन्होंने नेतृ-विहीन होनेपर आन्दोलनको सफलतापूर्वक न चलाया था? महात्मा गांधीने हमें बन्दूकके सहारे चलना थोड़े ही सिखाया था जो बन्दूकके छीन जानेपर हमें हाथ खड़ा कर देना पड़ता? गांधीजीने तो भारतीय स्त्री-पुरुषोंको 'स्व-बल' अथवा 'आत्मबल' का सहारा दिया था, जिसे दुनियाकी कोई भी शक्ति छीन नहीं सकती। इसीलिए गिरफ्तार होते समय जब उनके मंत्री श्री प्यारेलालने उनसे पूछा था कि आप जनताको क्या आदेश देते हैं, तो उत्तर मिला कि 'आजसे हिन्दुस्तानका हर आदमी राष्ट्रपति है। वह जो उचित समझे, करें।"

भारतके वीर स्त्री-पुरुषोंने भी गाँधीजीके इस विश्वासपूर्ण आदेशको पूरा करके दिखलाया। जनताने सचमुच अपने ऊपर नेताओंकी-सी जिम्मेदारी महसूस की और विद्रोहको फैलाने और बढ़ानेमें जो भी उनसे हो सकता था, किया। ऐसा करने में हिंसा और अहिंसाके रूपमें कुछ भूलें भी अवश्य हुईं, किन्तु वे इस रूपमें क्षम्य थीं कि गाँधी जैसी समझ रखने वाला उनको राह दिखानेके लिए कोई बाहर न था और साथही सरकारके भयंकर और नृशंस दमनसे वे अपने आपे को भी खो बैठे थे जिस कारण उनका हिंसा-अहिंसा का अधुरा ज्ञान भी जाता रहा था। अतः इस 'हिंसा'की बहुत कुछ जिम्मेदारी

सरकार के ऊपर ही पड़ती है। इसके अलावा कुछ हिंसा में विश्वास करनेवाले राजनैतिक दलोंने भी अवश्य उसके प्रचारमें योगदान दिया था। इसीलिए १३ अगस्तको श्री राजगोपालाचार्यजीने एक वक्तव्य निकालकर लोगोंको हिंसासे विरत होनेकी अपील करते हुए कहा था कि "संगठित रूपसे संचालित मार पीट और हिंसा गाँधीजी और कॉंग्रेस के नाम पर कालिमा पोत रही है।"

परन्तु सरकारी दमनके कारण लोग ऐसे उन्मत्त हो उठे थे कि उन्हें अब कोई रोक न सकता था। प्रतिहिंसाकी भावनाने उन्हें सचमुच पागल-सा बना दिया था। कॉंग्रेसके प्रोग्राममें इस समय फौजमें विद्रोह फैलाना, पुल तोड़ना और रेलकी पटरी हटाना आदि भी शामिल कर लिये गये थे। इस कार्यक्रमके कारण भी हिंसात्मक कार्यवाहियोंको उत्तेजना मिली।* श्री मश्रुवालाने २३ अगस्तके हरिजनमें लिखा था—"यातायातके साधनोंमें तोड़-फोड़ मचाया जा सकता है। तार काटने, रेलकी पटरियाँ उखाड़ने, छोटे-छोटे पुलोंको तोड़नेसे ऐतराज नहीं

---

* तोड़-फोड़ आन्दोलन किस प्रकार शुरू हुआ और उसे लोगों ने क्यों कॉंग्रेसका कार्य-क्रम समझा, इसका उल्लेख करते हुए डा० राजेन्द्र बाबू लिखते हैं—" ८ अगस्तके प्रस्तावके साथ-साथ गवर्नमेण्ट की एक विज्ञप्ति ९ अगस्त (१९४२) के सबेरेके समाचार-पत्रोंमें निकली था, जिसमें गवर्नमेण्टने गाँधीजी और वर्किंग-कमेटीके लोगोंकी गिरफ्तारीके कारण बताकर लोगोंको यह समझाने की कोशिश की थी कि गवर्नमेण्टकी यह कारवाई उचित है—उसीमें यह बात साफ-साफ लिखी थी कि कॉंग्रेसकी ओर से इस बार रेल-तार आदि तोड़ने-काटने का भी कार्य-क्रम दिया गया है। उसी दिन या उसके दूसरे दिन मि० एमरीने रेडियोपर भाषण किया था जिसमें भी यह बात कही गयी थी और यह भाषण भी अखबारोंमें छपा था··लोगोंने समझ लिया कि यही कार्य-क्रम होगा और गवर्नमेण्टकी बातों पर विश्वास करके लोगोंने काम शुरू कर दिया।" आत्माकथा पृष्ठ ६०९.

किया जा सकता, अगर ऐसा करनेसे जीवनको खतरा न हो। अहिंसात्मक क्रान्तिकारियोंको चाहिए कि वे अँग्रेजी शासनको वैसा ही समझें जैसा वे धुरी राष्ट्रोंको समझते हैं...।" बादमें जब गाँधीजी छूटकर बाहर निकले तो उन्होंने श्री मश्रुवालेके इस प्रोग्रामको हिंसात्मक बतलाया और उनपर अहिंसाके मर्मको न समझनेका आरोप लगाया था। पर उस समय तो लोगोंने श्री मश्रुवालेके आदेशको गांधीजीका ही आदेश समझा और देश-भरमें वीर युवकों और युवतियोंने उन आदेशोंको पूरा करनेमें कुछ उठाकर न रखा और हजारोंकी संख्यामें उसके लिए बलिदान हो गये।

क्रान्तिकी प्रथम लहर बम्बईमें उठी थी और शीघ्र ही अन्यान्य प्रान्तोंमें फैलकर समग्र देशमें व्याप्त हो उठी। क्रान्तिके इस तूफानने एकबारगी अँग्रेजी शासन और साम्राज्यवादकी जड़ोंको झकझोर डाला। सरकारने भी भारतकी आजादीके इस तूफानको रोकनेमें कुछ उठा न रखा। अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र और पुलिस तथा फौजको लेकर सरकार भारतकी स्वतंत्रताके प्यासे स्त्री और पुरुषोंको कुचलनेमें व्यस्त हो गई। पहला प्रहार बम्बई ही पर हुआ। पुलिसने गोलियाँ चलाकर बम्बईकी जनताको भुननेमें कोई कसर न रखी। 'गांधी महाराज' की जय बोलनेपर एक निरीह बच्चेको तक भून डाला गया। घरोंके अन्दरसे घसीट-घसीटकर लोगोंको बाहर निकाला गया और उनपर लाठियाँ बरसायी गयीं, तथा अनेक प्रकारके अत्याचार किये गये।

किन्तु पुलिस व फौजकी बन्दूकें और लाठियाँ तथा अश्रुगैस क्रान्तिकी अंगारमय ज्वालाको फैलनेसे न रोक सकीं। बम्बईके अत्याचारोंकी प्रतिध्वनि और वीरोंके दर्प-पूर्ण आर्त्तनादने हिन्दुस्तानके प्रान्त-प्रान्तमें क्रान्तिकी चिनगारियाँ प्रज्वलित कर दीं। विद्रोहकी लहर नगरोंसे चलकर देहातोंमें भी फैल उठी। गांधीजीकी गिरफ्तारीके २-३ सप्ताहके बाद ही कई इलाकोंमें जनताने अपनेको स्वाधीन भी घोषित कर दिया। लोगोंने सरकारी अदालतों और दफ्तरोंका कार्य ठप कर दिया और पुलिस थानोंपर अपना अधिकार जमा लिया। बिहार,

सी० पी, आंध्र, यू० पी०, गुजरात, कर्नाटक, आसाम, और बंगालके भी कुछ भागोंमें सरकार बिलकुल उखड़ गयी थी और वहाँ जनताकी अपनी सरकारें कायम हो गयी थीं।

सरकारने इस स्थितिको अधिकारमें लानेके लिए जो भी दमन-कार्य और दुर्विनीत-कर्म उससे हो सकते थे किये। आन्दोलन प्रारम्भ होनेके लगभग पन्द्रह दिन बाद बृटिश पार्लियामेण्टमें भारतीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए चर्चिलने बतलाया था कि इस आन्दोलनमें ५०० आदमी मरे हैं; लेकिन यह संख्या मिथ्याजनक थी। बम्बई, कलकत्ता तथा दिल्लीमें ही तब तक लगभग ८०० आदमी सरकारकी गोलियोंके शिकार हो चुके थे। सरकारी दमनका यह वेग बढ़ता ही चला गया। और उसकी प्रतिक्रियाने स्वभावतः भारतकी जनतामें भी प्रतिहिंसा को उत्पन्न कर दिया। फलतः जहाँ-तहाँ कुछ पुलिसके अधिकारी व अफसर आदि भी जनताके द्वारा मार डाले गये। किंतु सरकार द्वारा की गयी हत्याओं, अत्याचारों और बलात्कारोंके सामने जनता द्वारा की गयी हत्याएँ नगण्य थीं। यू० पी० में हैलटकी सरकारने जो नादिरशाही बरपाकी, वह कभी भूलनेकी चीज़ नहीं है। अपनी निरंकुशता और अत्याचारोंमें हैलटशाही आदि नादिरशाहीसे भी अधिक कु-नाम कर गयी है। किन्तु बलियाने हैलटशाहीके भीषण अत्याचारोंका शिकार होने पर भी कुछ समयके लिए अँग्रेजी शासनको अपने इलाकेसे उखाड़ फेंका था। २० अगस्तको जिला काँग्रेस कमेटीके प्रेसीडेन्ट पं० चीतू पाण्डेके नेतृत्वमें बलियाने अपने 'प्रजातंत्र' का ऐलान किया था। इस प्रजातंत्रने मंडलोंको सूचना भेजी कि गाँव-गाँवमें पंचायतें कायम हों। उसी दिन प० चीतू पाण्डेने डुग्गी पिटवाई थी कि अब बलियामें काँग्रेसका शासन है। अतः जिसको जो दर्खास्त देनी हो जिला काँग्रेस कमेटीमें दे, उसकी उचित सुनवाई होगी। सरकारने बलियाके प्रजातंत्रको ध्वस्त करनेके लिए २२-२३ अगस्तकी रातको मि० मार्श स्मिथ और नेदर सोलके साथ फौजें भेजीं। लगभग ७ दिन तक यह फौज बलियामें रही। इस फौजने जो-जो अत्याचार किये, उनकी कहानी सुनकर और पढ़कर

रोंगटे खड़े हो उठते हैं। आखिर बलियाकी जनताको कुचलकर, लूटकर और उनके घरोंको जलाकर अगस्तके अन्तमें फौज वापस लौट गयी और उसकी जगह पुलिसका आतंकी राज्य कायम कर दिया गया।* किन्तु इतना सब होने पर भी जनताकी स्वातन्त्र्य भावना दबने न पायी। यू० पी० के अन्य जिलोंमें भी हैलट शाहीके अत्याचार कम न हुए।

बलियाकी तरह बिहारमेंभी जनताने अपूर्व वीरता और साहससे काम किया। बलियावालोंकी तरह वहाँ भी जनताने कई इलाकोंमें अपना प्रजातन्त्र स्थापित किया और कुछ दिनोंके लिए अंग्रेजी शासनको अपने यहाँसे उखाड़ फेंका। किन्तु बलियाकी ही भाँति सरकारने बिहारके दमनमें भी पूरी उग्रता से काम लिया। उसने सारे बिहार प्रान्तको एक छोरसे दूसरे छोर तक बिलकुल रौंद डाला। विद्रोही जनताको दबानेके लिए बिहारमें सरकारने हवाई जहाजसे गोले तक बरसाये। इस प्रकार सिंध से लेकर बंगाल व उड़ीसा और पश्चिममें गुजरात तथा दक्षिणके अनेकानेक प्रान्तोंमें जनताने 'महात्मा गांधीके 'करो या मरो' के मंत्रको लेकर क्रान्तिको आगे बढ़ानेमें अपना तन-मन अर्पण कर दिया था और दूसरी तरफ सरकारके दमन-चक्रने भी खूँरेजीमें नादिरशाह और तैमूर लंगके नामोंको धूमिल बना दिया था। परन्तु सरकारका दमन और अमानुषिक अत्याचार 'क्रान्ति' की लौ का न तो दबा सके और न उसकी ज्वालाको ही शांत करनेमें समर्थ हुए। इस स्थानपर प्रत्येक प्रान्तोंमें हुए विद्रोहों तथा सरकार द्वारा किये गये दमन व अत्याचारोंका विस्तारसे वर्णन नहीं किया जा सकता। यह विषय इतना विस्तृत है और सरकारके काले कारनामे इतने अधिक हैं कि उनपर अलग पुस्तक ही लिखी जा सकती है ? अतः सरकारके अमानुषिक अत्याचारों और दमनके स्वरूपको बतलानेके लिए हम यहाँ पर उदाहरण-स्वरूप 'आष्टी और चिमूर' का वर्णन देकर इस विभत्स कहानीको समाप्त करदेंगे।

---

* बलियाके दमनका विस्तृत इतिहास जाननेके लिए 'बलियामें क्रान्ति और दमन' देवनाथ उपाध्याय की पुस्तक देखें।

आष्ठी और चिमूर मध्यप्रांतके दो गाँव हैं। अन्य स्थानोंकी तरह अपने नेताओंके गिरफ्तार होने पर यहाँ भी १२ ता० अगस्तको जनताने प्रदर्शन किया। जनता आष्ठीके थाने पर पहुँची। पुलिसने गोली चलायी और लाठियाँ भी बरसायीं। भीड़ भड़क उठी और फलस्वरूप ६ ग्रामीण और ३ पुलिसके आदमी संघर्षमें मारे गये। पुलिस भाग खड़ी हुई और जनताने थाने पर झंडा फहरा दिया। उसी रात वहाँ गोरी फौज भी आ पहुँची। फौजने लोगों पर ऐसे जुर्म किये, जिसकी याद करके आज भी खून उबल उठता है। फौजने चिमूर और आष्ठीके लोगोंको कई घंटे कड़कती धूप में खड़ा रखा और जब किसीने पानी माँगा तो उन्हें बूटोंसे खूब पीटा गया। कई दिनों तक पुलिसने सैकड़ों लोगों को करीब १५ फुट चौड़े और २५ फुट लम्बे एक कोठेमें ठूँस कर रखा और 'पानी-पानी' चिल्लाने पर भी पानी नहीं दिया, जिससे अनेक व्यक्ति बेहोश हो गये थे।

फौज और पुलिसने स्त्रियों और बालिकाओं पर भी ऐसे जघन्य अत्याचार और बलात्कार किये जिनकी कहानी सुनकर दिल काँप उठता है। बच्चों तकको उल्टा पेड़ोंसे लटकाया गया। आष्ठी और चिमूरमें यह भीषण दमन महीनों तक चलता ही रहा। इस बीच वहाँ अनेकों गोलीके शिकार हुए और अनेकों स्त्रियों ने अपनी लज्जाको छिपानेके लिए आत्महत्या करली।*

स्त्रियों पर किये गये अत्याचारोंका विस्तृत विवरण डा० मुंजे और श्रीमती रमाबाई ताम्बेकी रिपोर्टमें दिया हुआ है। ताम्बेने अपनी रिपोर्ट बम्बईके गवर्नर को भेजी थी, किन्तु उसे झूठी कहकर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया था। तत्कालीन वाइसरायके कौंसिलके माननीय सदस्य श्री अणे भी चिमूर गये थे और वहाँकी सही हालतका निरीक्षण करने पर उन्हें यह कहना पड़ा—

---

* हमारा संघर्ष—ले० श्री क्षेमेन्द्र 'सुमन' पृष्ठ—१२५

'जो नहीं होना चाहिये था, वह वहाँ हुआ। ईश्वरमें विश्वास रखो, वह अवश्य इसका न्याय करेगा।'

सचमुच आन्दोलनको दबानेमें सरकारने जो न किया कम ही था। सरकारके इस भीषण दमनसे सारे भारतपर शोक और दुःखसे उदासी-सी छा गयी और कुछही महीनोंके बाद आन्दोलन प्रत्यक्षतः दबा-सा प्रतीत होने लगा। किन्तु क्या सचमुच आन्दोलन दब गया था? इसमें सन्देह नहीं कि बाहरसे आन्दोलनकी तीव्रता और वेग कुछ ही महीनों बाद शिथिल और शांत पड़ गया था, लेकिन भीतरसे क्रुद्ध और क्षुब्ध भारतने मन और आत्मासे गुलामी और परतंत्रताको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया था। अतः सरकारको भी यह प्रतीत हो गया कि 'विद्रोही भारत' पर शासन करना अब सरल न होगा। आन्दोलनका यह परिणाम उसके साफल्यका प्रमाण भी है। किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि दमनके भीषण प्रहारोंसे भारतपर इस समय आतंकका गहरा काला पर्दा-सा पड़ गया था जिससे लोग खुलकर साँस तक न ले सकते थे। सम्पूर्ण भारतको सरकारने, निःसन्देह एक 'कारागृह' के रूप में परिवर्तित कर दिया था।

गांधीजीकी अग्नि परीक्षा

अगस्तसे अक्तूबर-नवम्बर तक आन्दोलन काफी तीव्रतासे चलता रहा। इसके बाद दमनने आखिर आन्दोलनको ऊपरी सतहसे नीचे भूमिगत कर दिया। भूमिगत आन्दोलनको चलानेमें और क्रान्तिकी लौको बनाये रखनेमें समाजवादी दल तथा फारवार्ड ब्लाकने भी काफी काम किया। वीर सेनानी जयप्रकाश और डा० राम मनोहर लोहिया तथा श्रीमती अरुणा आसफअलीने क्रान्तिकी ज्वालाको प्रज्वलित रखनेमें अदम्य साहस और उत्साहसे काम किया। यद्यपि इस भूमिगत आन्दोलन और उसमें बर्ती जानेवाली हिंसा गांधीजीको पसन्द न आ सकी, तथापि उनके देश-प्रेम और अदम्य साहसकी उन्होंने प्रशंसा ही की। गाँधीजीके ऐसा रुख लेनेका कारण उनका हिंसामें अटल अविश्वास ही

था। उन्होंने अपने एक बयानमें कहा था—"श्रीमती अरुणा मेरी लड़की हैं, क्या हुआ कि उन्होंने मेरे घरमें जन्म नहीं लिया या कि वह विद्रोही बन गयी हैं।...मैंने उनकी बहादुरी,...और गहरे देश-प्रेमकी सराहनाकी है। परन्तु मेरी सराहना इससे आगे नहीं बढ़ी। मैंने उनके छिपकर काम करनेको पसंद नहीं किया। मैं छिपकर किए जानेवाले किसी कामको पसंद नहीं करता। मैं जानता हूँ कि देशके करोड़ों स्त्री-पुरुष छिपकर कार्य नहीं कर सकते, कुछ मुट्ठी भर लोग यह सोच सकते हैं कि पोशीदा हलचलोंके जरिये वे करोड़ोंके लिए स्वराज्य ला सकेगें लेकिन क्या यह बच्चोंको चम्मचसे दूध पिलाने जैसी बात न होगी। आम जनता तो खुली चुनौती और खुले कामोंका रास्ता ही अपना सकती है।..."

इसी तरह एक सार्वजनिक-सभामें श्रीजयप्रकाश नारायण और श्री राम मनोहर लोहियाकी रिहाईका जिक्र करते हुए महात्मा गांधीजीने कहा था—'हिंदुस्तानके ४० करोड़ लोग उनको देश-भक्त मानते हैं, क्योंकि उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है। उनके तरीकेको मैंने नापसंद किया हो; परन्तु इसका उनकी रिहाईसे कोई सम्बंध नहीं।

"उनकी दिली तमन्ना यही थी कि हिन्दुस्तान किसी तरहसे आजाद हो जाय।..."

निःसन्देह, आन्दोलनके भूमिगत हो जानेसे वह आम जनताका आन्दोलन न रह गया था और जो तेजी और तीव्रता आन्दोलनके प्रारम्भ कालमें 'खुले-विद्रोह' में रही वह दिसम्बर तक पहुँचते-पहुँचते शिथिल पड़ गयी थी। आन्दोलनको भूमिगत होनेके लिए सरकारका भीषण दमन भी जिम्मेदार था। सरकारी दमनने ही प्रतिहिंसाको पैदा किया था जिससे लोग बदला लेनेकी भावनासे लुक-छिपकर सरकारपर प्रहार करनेका प्रयत्न करने लगे थे। इन साहसियों और देशके प्रेमियोंके सामने हिंसा-अहिंसाके बजाय देशकी आजादी हासिल करना ही एक ध्येय और एक अभिलाषा बन गई थी।

जब आन्दोलनकी यह दशा थी और देश सरकारी दमन तथा अन्न और वस्त्र-संकटसे क्षुब्ध हो रहा था, १० फरवरी १९४३ को उसने सरकारी विज्ञप्ति द्वारा एकाएक यह खबर पायी कि १० फरवरीसे महात्मा गांधीजीने ३ हफ्तेका उपवास ले लिया है। इस खबरको पाते ही सारे देशमें विकट आतंक छा गया और सबके हृदय अपने नेताके खोये जानेकी आशंका और पीड़ासे क्षुब्ध हो उठे। लेकिन दूसरी तरफ सरकार और मुस्लिम लीगके नेता मि० जिन्नाने गांधीजीके व्रतको एक ढकोसला और रिहाई पानेका एक तरीका बतलाकर मजाक उड़ाया। सरकार और लीगी नेताके ऐसे आक्षेप उनके हृदयमें भरी हिंसाके ही द्योतक थे।

गांधीजीका यह उपवास भी वस्तुतः सरकारकी हिंसा और 'दमन' के विरोधमें किया गया था जैसा कि उनके पत्रोंसे ही प्रकट है। गिरफ्तार होनेके ५ ही दिन बाद १४ अगस्त १९४२ को गांधीजीने वाइसरायको एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने 'आन्दोलन' का उल्लेख करते हुए कहा था—

"ऐसा संकट उत्पन्न करके सरकारने गलती की...। अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमिटीमें दिये गये भाषणोंसे आप जान सकते थे कि मैं फौरन ही कुछ करने नहीं जा रहा था। भाषणमें जिस अवधिकी बात कही गयी थी उसे आप इस्ते-माल करके कॉंग्रेसकी माँग पूरी करनेकी प्रत्येक सम्भावनाको काममें ला सकते थे।...मैं कहना चाहता हूँ कि यह समझना कि कॉंग्रेसकी माँगको पूरी करनेसे भारत भरमें अशान्ति फैल जाती, मानव मस्तिष्कका मजाक उड़ाना है। हाँ, उस माँगके अस्वीकार कर देनेसे निश्चय ही राष्ट्र और सरकार दोनों संकटमें फँस गये हैं। कॉंग्रेस तो हिन्दुस्तानको मित्र राष्ट्रोंके साथ मिला देनेका पूरा प्रयत्न कर रही थी।

"अगर भारत और मित्र राष्ट्रोंके ध्येयकी समानताके बावजूद भी कॉंग्रेसकी माँगका जवाब सरकार तीव्र दमनसे ही देना चाहती है तो मेरे यह नतीजा निकाल लेने पर, कि उसे मित्र राष्ट्रोंके आदेशोंकी उतनी परवाह नहीं है जितनी इसकी कि साम्राज्यवादी नीतिके अनुसार हिन्दुस्तान उसके अधिकारमें रहे, उसे

आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इसी इरादेके कारण उसने काँग्रेसकी माँगको ठुकरा दिया और सारे देशपर दमनकी चक्की चलानी शुरू कर दी।''

इस पत्रसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि काँग्रेसका इरादा तुरन्त सत्याग्रह-आन्दोलन छेड़नेका न था और सरकारने ही यकायक प्रहार करके जबरदस्ती आन्दोलनको उभाड़ा था। अतः उस स्थितिमें जनताने जो कुछ किया या उसे जो कुछ भी करना पड़ा वह केवल सरकारी दमनकी उत्तेजनाका ही प्रतिफल था। यह बात गांधीजीने भारत सरकारके गृहमन्त्रीको २३ सितम्बर १६४२ के पत्रमें ही जतला दी थी। इस पत्रमें गांधीजीने लिखा था—

''लगता है कि तमाम नेताओंकी गिरफ्तारीके कारण जनता क्रोधसे पागल हो गयी है, यहाँ तक कि उसका आत्मनियन्त्रण भी छूट गया है। मैं समझता हूँ कि जो कुछ ध्वंस कार्य हो रहा है उसके लिये सरकार जिम्मेदार है, काँग्रेस नहीं।

''मेरे अनुसार सही मार्ग केवल यह है कि सरकार सभी कांग्रेस नेताओंको फौरन रिहा कर दे। तमाम दमनकारी कानूनोंको वापिस ले ले और समझौतेके रास्ते ढूँढ़ निकाले। निःसन्देह ही सरकारके पास इतनी शक्ति है कि वह हिंसात्मक कार्योंको फौरन दबा सकती है। दमनसे असन्तोष और घृणाका ही सृजन हो सकता है।''

किन्तु सरकारने गांधीजीके पत्रों पर कोई ध्यान न दिया। यदि सरकार इन पत्रोंको तभी प्रकाशित कर देती जब उसे मिले थे तो आन्दोलन हिंसाके कूलोंमें प्रवाहित न होता। परन्तु दमनपर तुली सरकारको अपने पशुबलका भरोसा था। वह दमनके द्वारा एकबारगी भारतकी आत्माको कुचलकर उसकी आवाजको ही घोंट देना चाहती थी! शायद उसका विश्वास था कि दमनका मौका हाथ आ जानेपर वह भारतवासियों और उनकी आजादीकी चाहको ही रौंद डालेगी। फलतः सरकारने दुनियामें कांग्रेसको प्रतिगामी, फासिस्ट और मित्रराष्ट्रोंका शत्रु बतलाकर बदनाम किया और घरमें उसे पीस डालनेमें जुट गयी।

लेकिन इसपर भी गांधीजीने भारत सरकारके प्रतिनिधि वाइसराय साहबकी

सद्बुद्धिको जगानेका प्रयत्न न छोड़ा। क्रिसमस्के अगले दिन (दिसम्बर १९४२) गांधीजीने पुनः वाइसरायको पत्र लिखा जिसमें उन्होंने इस बातको दुहराया था कि सरकारने कांग्रेसी नेताओंको गिरफ्तार करके अच्छा नहीं किया—क्योंकि इससे जनता क्षुभित होकर हिंसाकी ओर अग्रसर हुई है। किन्तु वाइसरायने १३ जनवरी १९४३ को इसपर यही उत्तर लिख भेजा कि सारा दोष कांग्रेसका है और गांधीजी तथा वर्किङ्ग कमेटी यदि हिंसाके पक्षमें नहीं थी तो उन्होंने 'हिंसा' के विरुद्ध चुप्पी क्यों साध रखी है! इसका उत्तर देते हुए १९ जनवरीको गांधीजीने वाइसरायको यह लिखा कि वे यद्यपि पूर्ण अहिंसक हैं लेकिन बन्दीके रूपमें बाहरके बारेमें वे कोई बयान देनेमें असमर्थ हैं। परन्तु वाइसराय गांधीजीकी बातोंको समझनेकी मुद्रामें था ही नहीं इसलिए उसने पुनः सारे आन्दोलन और उसमें होनेवाली हिंसा आदिके लिए कांग्रेस तथा महात्मा गांधीको ही दोषी ठहराया। इसके लिए गांधीजीने वाइसरायसे प्रमाण माँगे और सन्तोषजनक उत्तर न मिलनेपर सत्याग्रहीके नाते ९ फरवरी (बादमें १० फरवरी कर दिया गया) से २१ दिनका उपवास करनेका इरादा प्रकट किया।

गांधीजीके इस निश्चय से चिढ़कर वाइसरायने उन्हें एक बहुत ही उत्तेजनात्मक पत्र लिखा जिसमें उसने उनके व्रतका उपहास करते हुए उसे एक राजनैतिक चाल बतलाया था। इसके उत्तरमें गांधीजीने इतना ही कहा कि यह व्रत वाइसरायसे न्याय न प्राप्त होनेपर ही ईश्वरके सर्वोच्च न्यायालयसे एक अपीलके रूपमें किया जा रहा है और आनेवाली पीढ़ी ही इसका निर्णय करेगी कि किसका पक्ष सही था?

परन्तु सरकार इस समय सत्य और असत्य किसी भी बातको सुननेके लिए तैयार न थी। वह तो अपने अस्तित्वको बनाये रखनेके वास्ते गांधीजीके अस्तित्वको मेटनेके लिए भी तैयार हो चुकी थी। अतः सरकारने अपनी विज्ञप्ति में यह स्पष्ट घोषित कर दिया था कि व्रत और उसके परिणामोंकी जिम्मेदारी

गांधीजीपर ही होगी। सरकारने यह भी सूचित किया कि गांधीजी चाहें तो वे उपवास तकके लिए रिहा कर दिये जायँगे। लेकिन गांधीजीने इस प्रकार की रिहाईको पसन्द न किया इसलिए १० फरवरीसे आगा खाँ महल (बन्दीगृह—जहाँ गांधीजीको कैद रखा गया था) पूनामें ही उन्होंने अपने पक्षकी सत्यताको साबित करनेके लिए अग्नि-परीक्षाके रूपमें उपवास आरम्भ कर दिया।

गाँधीजीके उपवासके समाचारने सारे देशको हिला दिया। बिजलीकी तरह यह खबर यकायक सारे देशमें फैल उठी। सारा हिन्दुस्तान वरन् सम्पूर्ण जगत ही गांधीजीकी इस अग्नि-परीक्षा की खबर पाकर व्याकुल हो उठा। देश भरसे सैकड़ों-हजारों संस्थाओंने गांधीजीकी रिहाईके लिए तार भेजे। तमाम हिन्दुस्तान के समाचारों-पत्रोंने भी एक स्वरसे गांधीजीकी रिहाईकी माँगकी। केन्द्रीय व्यवस्थापिका और बंगाल प्रान्तकी व्यवस्थापिका सभाओंने जनताकी इस माँग का समर्थन किया। इस प्रकार सारे देशने ही समेत-स्वर से महात्मा गांधीकी रिहाईके लिए माँग की। निःसन्देह सारा देश गांधीजीकी इस अग्नि-परीक्षासे बिलकुल विक्षुब्ध हो उठा था। लन्दन के प्रसिद्ध अखबार मैनचेस्टर गार्जियन ठीक ही लिखा था कि गांधीजीके व्रतसे भारतकी अन्तरात्मा भी दहल उठेगी। उसके शब्द थे—"Mr. Gandhi had embarked upon a fast, which, however much the Government might disclaim responsibility, might move India to its depths"

हिन्दुस्तानके अलावा दक्षिण अफ्रिका, अमेरिका और इगलैंडसे भी जनता और उनके प्रतिनिधियोंने सरकारसे महात्मा गांधीकी रिहाईके लिए प्रार्थनाएँ भेजीं। इन देशोंके समाचार पत्रोंने भी इसी तरह रिहाईकी माँग की। किन्तु सरकार पर किसीकी आवाज या माँगका कोई भी असर न पड़ने पाया।

सरकारकी इस हटधर्मीसे चिढ़कर वाइसराय कौंसिलके ३ सदस्यों श्री एच० पी० मोदी, श्री एन० आर० सरकार और एम० एस० अणेने स्तीफा दे दिया (१८ फरवरी १९४३)। १९ फरवरीको श्री राजगोपालाचार्यने दिल्लीमें भार-

तीय नेताओं की एक सभा आयोजित की। इस सभामें देश भरसे लगभग ३०० नेतागण सम्मिलित हुए, जिनमें हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, अंग्रेज सभी जातियों के लोग शामिल थे। इस सभाने एक मतसे महात्मा गांधीकी रिहाईका प्रस्ताव पास किया। प्रस्तावकी एक प्रति वाइसरायके पास भेजी गयी और केबुल द्वारा ब्रिटेनके प्रधान मंत्री चर्चिल और भारत मंत्री एमरीको भी प्रस्तावसे अवगत कराया गया। किन्तु मदोन्मत्त साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकारके भारतीय प्रतिनिधि वाइसराय तथा उसके मंत्री आदिने तब भी कुछ ध्यान न दिया।

इससे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार भारतकी आजादी के आन्दोलनको कुचलनेके हेतु गांधीजीकी हत्याके लिए भी तैयार है। अतः गांधी मरे या जिये लेकिन ब्रिटेनका प्रधान मंत्री चर्चिल गांधीकी रिहाई और भारतकी आजादीको स्वीकार करके ब्रिटिश-साम्राज्यको क्षति पहुँचानेके लिए तैयार न था।

किन्तु ईश्वरकी कृपासे चर्चिलकी मंशा पूरी न हो सकी। ३ मार्च १९४३ को भारतके बापू महात्मा गांधीने सफलता-पूर्वक अग्नि-परीक्षाको पारकर व्रतको पूरा कर दिखाया। बुधवार ३ मार्चको ६-३० बजे प्रभातके समय भगवानकी प्रार्थनाके साथ महात्मा गांधीने २१ दिनका उपवास पूरा करने पर माँ कस्तूरबा के हाथसे नारंगीका शर्बत पान किया।

महात्मा गांधीकी इस सफलता पर सारा विश्व हर्षित हो उठा और उद्विग्न भारतने राहतकी सांस ली। गांधीजीकी इस अग्नि-परीक्षाने विद्रोहियोंके पक्ष और आजादीकी लड़ाईकी न्यायोचितता भी जगतको सिद्ध करके दिखला दी।

अध्याय—२७

स्वतंत्र भारत

गाँधीजी और काँग्रेससे युद्ध छेड़कर सरकारने देशमें विकट स्थिति उत्पन्न कर दी थी। गांधीजीके उपवाससे देशमें उद्विग्नता और भी बढ़ गयी थी। लोग सोच नहीं पाते थे कि वे इस विकट स्थितिमें क्या करें जब कि उनके प्राणाधार बापू और काँग्रेसके सभी महान नेता जो उन्हें रास्ता बता सकते थे, धीरज बँधा सकते थे, ब्रिटिश सरकारके बन्धनागारमें बन्द थे।

१९४३ और १९४४ के संकटपूर्ण वर्ष

सरकारके दमन और युद्धकी परिस्थितियोंने मिलकर आर्थिक असाध्यसता भी पैदा कर दी थी। इसके परिणाम स्वरूप देशभरमें अन्न-संकट उत्पन्न हो गया था। इस अन्न-संकटका सबसे भीषण शिकार बंगाल हुआ। १९४३ के शाँतिके दिनों बंगालमें जो दुर्भिक्ष पड़ा उसमें लगभग ५० लाख* स्त्री-पुरुष और बच्चों की जानें चली गयीं। इस समय बंगालमें मुस्लिम लीगका मन्त्रिमंडल था। सर नाजिमुद्दीन वहाँके प्रधान-मंत्री थे, और सोहरावर्दी खाद्यके मंत्री। लेकिन लीगी सरकारसे इन निरीह प्राणियोंकी रक्षाके लिए कुछ करते न बन पड़ा। बड़े लाट लिनलिथगो और बंगालके गवर्नर सर हर्बटने प्रशान्त उपेक्षासे काम लिया। बंगालकी तरह उड़ीसा, मालाबार, काठियावाड़ आदि प्रान्तोंमें भी अन्न-संकटसे हजारों आदमी भूखसे मर गये।

---

* आत्मकथा, डा० राजेन्द्रप्रसाद—पृष्ठ—६०६

इस भुखमरी और सरकारके तीव्र दमनने देशको बिलकुल पस्त कर डाला था। आन्दोलन पर भी इसका असर होना अनिवार्य था। आन्दोलनकी गतिमें अब काफी शिथिलता चली आयी थी। १९४३ के मध्य तक कॉंग्रेसी बन्दियों की संख्या ३६ हजारके लगभग पहुँच चुकी थी; लेकिन आन्दोलनके शिथिल पड़ जानेसे अब सरकारने बन्दियोंको छोड़ना भी शुरू कर दिया था। अतः बाहरी तौर पर सरकार आन्दोलनकी गतिको अवरुद्ध करनेमें सफल हो चुकी थी, किंतु राजनैतिक गतिरोध बना ही रहा।*

इस गतिरोधको तोड़नेके लिए उदारदली नेताओंने काफी प्रयत्न किया, लेकिन असफल रहे। किंतु अग्नि-परीक्षासे गांधीजीके सकुशल निकल आनेसे सबको यह आशा बँध गयी कि उनके रहते अवश्य एक-न-एक दिन यह गतिरोध टूटेगा और राजनैतिक विषमता भंग हो जायगी। यही कारण था कि उदारदली नेताओंने बार बार सरकार पर इस बात का जोर दिया कि वे उन्हें महात्माजीसे मिलने दें तथा महात्माजीको जेलसे रिहा कर दें ताकि जो राजनैतिक गतिरोध पैदा हो गया है उसका कोई हल निकाला जा सके। लेकिन इन उदारदली नेताओंकी बात सुननेसे वाइसराय लार्ड लिनलिथगोने साफ इनकार कर दिया। वाइसरायने उदारदलवालोंको स्पष्ट रूपसे यह बतला दिया कि वह किसी प्रकारसे नीति बदलनेके लिए अभी तैयार नहीं है। वाइसरायके इस कड़े रुखकी आलोचना करते हुए श्री राजगोपालाचार्यने एक वक्तव्यमें कहा था—

---

* आन्दोलनकी शिथिलता पर प्रकाश डालते हुए डा० राजेन्द्रप्रसादने लिखा है—

"आन्दोलनका जोर तो प्रायः एकसे दो महीने तक ही रहा। उसके बाद उसका असर जो कुछ रह गया हो, पर लोग आक्रमण न करके अपने बचावमें ही लग गये और गवर्नमेण्टके दमन चक्रका शिकार बनते रहे। कुछ लोगोंने पट पड़े हुए आन्दोलनको फिरसे उभाड़नेका बहुत प्रयत्न किया, पर उस प्रयत्न का कोई विशेष फल देखनेमें नहीं आया...।"

"His excellency's refusal to alter his attitude towards the congress and the policy of Seeking to humiliate nationalist India are bound to drive hostility underground and into undesirable channels ।"

२२ मई १९४३ को सर तेजबहादुर सप्रु, डा० एम० आर० जयकर, डा० एस० सिन्हा, सर चुन्नीलाल बी० मेहता, राजा महेश्वरी दयाल सेठ, और जगदीश प्रसाद सिंहने सरकारकी निरंकुशताका ललकारते हुए एक वक्तव्य निकाला जिसमें एक निष्पक्ष ट्रिब्यूनलके द्वारा महात्मा गांधी और काँग्रेस पर लगाये गये आरोपोंकी जांच करनेको कहा गया था। किन्तु सरकारने इस माँगको भी ठुकरा दिया। भारत-मंत्री श्री अमेरीने तब कामन्स सभामें कहा था कि गांधीजी और काँग्रेसी नेताओं पर मुकदमे चलानेकी सरकारकी कोई इच्छा नहीं है।

इन नेताओंके प्रयत्नके अलावा गांधीजी भी स्वयं गतिरोधको हल करनेके लिए प्रयत्नशील थे। सन् १९४२ के अगस्तसे ही, जब कि वे बन्दी बनाये गये थे, वे इस प्रयत्नमें अन्त तक लगे ही रहे जैसा कि उनके अगस्त, सितम्बर (१९४२) और उपवासके समयके पत्रोंसे विदित है। गतिरोधको हल करनेके हेतु श्री जिन्नाके कहने पर गांधीजीने एक खत उन्हें भी लिखा, लेकिन सरकार ने उस पत्रका भी रोक दिया। दूसरी ओर श्री जिन्ना, जिन्होंने बड़े ताव से यह कहा था कि यदि गांधीजी मेरे पास खत भेजें तो सरकार उसे रोक नहीं सकती, से कुछ करते न बन पड़ा। अपनी इस कमजोरीको छिपानेके लिए भी जिन्नाने उल्टे गांधीजी पर यह आरोप लगाया कि वे उन्हें सरकारसे लड़वाना चाहते थे। इस प्रकार सरकार और लीगने किसीके भी सद्प्रयत्नको सफल न होने दिया।

लेकिन राजाजीका प्रयत्न फिर भी जारी रहा। सफलता और असफलताकी चिन्ता न कर वे राजनैतिक गतिरोधको हल करनेके लिए एकके बाद दूसरा प्रयत्न करते ही चले गये। अप्रैल १९४३ में राजाजीने सरकारसे जेलमें गांधीजी

से मिलनेकी आज्ञा प्राप्त की। राजाजीने जिन्नासे समझौता करनेके लिए जो 'फारमूला' तैयार किया था, उसे गांधीजीको दिखाया। गांधीजीने ५ मिनटमें ही 'फारमूला' को स्वीकार कर लिया। लेकिन जब ८ अप्रैलको राजाजीने उस 'फ़ारमूला'के बारेमें जिन्नाको पत्र लिखा तो उसका कोई नतीजा न निकला। जिन्नाने उक्त फारमूलाको भी अस्वीकार कर दिया। अतः यह प्रयत्न भी असफल रहा।*

---

*राजाजीका 'फारमूला' इस प्रकार था

(१) आजाद हिंदुस्तानके लिए विधानके संबंधमें नीचे लिखी बातोंको ध्यानमें रख मुस्लिम लीग भी भारतीय स्वतंत्रताकी माँगको स्वीकार करती है। वह बीचके समयके लिए अस्थायी सरकारके बनानेमें काँग्रेसके साथ सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होनेपर एक कमीशन बिठाई जायगी जो कि भारतके उन उत्तर-पश्चिम और पूर्वी क्षेत्रोंकी सीमा बाँधेगी जिसमें मुसलमान आबादी बहुसंख्यक है। ऐसे सीमाबद्ध क्षेत्रोंमें, बालिग मताधिकारके आधारपर तमाम बसनेवालों का मतसंग्रह किया जायगा। अथवा इसी प्रकारका कोई और ढंग निकाला जायगा जिससे हिंदुस्तानसे अलग प्रभुत्व पूर्ण 'स्टेट' कायम करनेके प्रश्नपर मत जाना जा सके। अगर बहुमत चाहता है कि हिंदुस्तान से अलग प्रभुत्व-पूर्ण 'स्टेट' कायम किया जाय तब इस निर्णयको अमलमें लाया जावेगा। लेकिन उस समय सीमांतके जिलोंको अधिकार रहेगा कि वे जिस 'स्टेट' में शामिल होना चाहें, हो सकें।

(३) हरएक पार्टीको जन-मत संचयके पूर्व प्रचार करनेका पूर्ण अधिकार रहेगा।

(४) अलग होते समय रक्षा, वाणिज्य और यातायात तथा दूसरे आवश्यक मामलोंके संबंधमें आपसी समझौता हो जायेगा।

(५) आबादीका स्थान-परिवर्तन पूर्ण-स्वेच्छा पर निर्भर रहेगा।

इसी समय १९४४ में लार्ड लिनलिथगो वापस चले गये और उनकी जगह सैनिक वाइसराय लार्ड वावेल हिंदुस्तानमें आये।

वावेलने आते ही पहले बंगालका भ्रमण किया और अकालकी स्थितिको सुधारनेका प्रयत्न किया। नये वाइसरायके प्रयत्नसे स्थितिमें थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य हुआ। डा० राजेन्द्रप्रसादके शब्दोंमें 'किसी तरहसे, कई महीनोंके बाद, हालत कुछ बदली।' और 'लोगोंका सड़कोंपर बेमौत मरना बंद हुआ।'*

लेकिन राजनैतिक क्षेत्रमें गतिरोधको तोड़नेकी प्रारम्भमें वावेलने कोई विशेष उत्सुकता न दिखलाई और न कोई प्रयत्न ही किया। बिना लंदनके इशारे पर भारतके वाइसराय कुछ करनेका अधिकार भी तो नहीं रखते! वस्तुतः लिनलिथगोने जो नहीं किया या जो कुछ भला-बुरा किया वह लंदनके इशारेपर ही किया था; और इसी तरह वावेलको भी वहींके इशारोंपर नाचना था। इसलिए जैसे-जैसे इशारे लंदनसे होते रहे वैसे ही वैसे वावेल भारतीय नीतिमें परिवर्तन आदि करते गये।

लार्ड वावेलने १७ फरवरी १९४४ को वाइसरायकी हैसियतसे पहला सार्वजनिक भाषण किया। भाषणमें शत्रु (जापान) को भारतके द्वारसे ढकेलनेकी आवश्यकता तथा खाद्य-स्थितिको मजबूत करनेपर जोर दिया गया था; और आर्थिक स्थितिको सुधारनेके लिये १५ वर्षीय औद्योगिक योजनाको उचित बताया गया था। वावेलने भारतके प्रति ब्रिटेनके ध्येयपर भी प्रकाश डाला था

---

(६) ऊपर लिखी बातें तभी लागू होंगी जब कि ब्रिटेन भारतको शासनके लिए पूर्ण शक्ति और जिम्मेदारी दे दे (स्वतंत्रता संग्रामके १० वर्ष श्री कृष्णदास, पृष्ठ—३०४-३०५)।

श्री जिन्ना सरकारी कलमसे अपनी इच्छानुसार हिन्दुस्तानको बाँटनेके लिए उत्सुक थे, अतः उन्हें राजाजीके फारमूलेका 'जन-मत' का सिद्धान्त पसन्द न आ सका और इसीलिए उन्होंने 'फारमूले' को अस्वीकार किया।

*आत्मकथा—पृष्ठ—६०६—

और कहा था कि भारतको ब्रिटेन एक अखंड, समृद्धिशाली, पूर्णतया स्व-शासित और स्वेच्छापूर्वक कॉमनवेल्थके एक साझीदार मुल्कके रूपमें देखना चाहता है। उसने यह भी कहा कि क्रिप्स-प्रस्ताव आज भी जैसाका तैसा है। मुस्लिम लीगके देश विभाजनके सिद्धांतपर भी उसने प्रकाश डाला और यह राय प्रकट की कि 'देशके भूगोलको बदला नहीं जा सकता, इसलिए जहाँ तक देशकी रक्षा, विदेशोंसे संबंध तथा देशकी अनेक आन्तरिक और बाहरी समस्याओंका सवाल है, भारत एक इकाई है। लेकिन हिन्दू और मुसलमान तथा दूसरे अल्प संख्यक एवं रियासतें किस तरहसे इस इकाईके अन्दर अपनेको रखना चाहेंगे इसका निर्णय भारतीय स्वयं ही कर सकते हैं।'

वाइसरायके इस भाषणसे स्पष्ट हो गया था कि लिनलिथगोके समयसे ब्रिटेनकी नीतिमें अब कुछ परिवर्तन हो आया है। इससे उत्साहित होकर कांग्रेसके सदस्योंने भी पुनः केन्द्रीय सभामें जाना शुरू कर दिया। कांग्रेसी सदस्योंको श्री भूलाभाई देसाईका सहयोग और श्रीमती सरोजनी नाइडूका आशीर्वाद भी मिल गया। काँग्रेसी और लीगी सदस्योंने कई बार मिलकर सरकारको हराया भी। सरकारकी सबसे बड़ी हार 'बजट' पर हुई। भूलाभाई देसाई और लियाकत अलीने मिलकर सरकारको इस बार करारी हार दी थी। किन्तु भूलाभाईके प्रयत्नोंके बावजूद लीग और काँग्रेसके बीचमें कोई स्थायी समझौता न हो सका।

गाँधीजीकी रिहाई—

गाँधीजीको इस बारके बन्दी जीवनमें दो बड़े व्यक्तिगत आघात सहने पड़े। जेलमें आते ही सबसे पहले उन्हें अपने परम-भक्त, मित्र, सहयोगी, मंत्री और पुत्र समान महादेव देसाईकी मृत्युका आघात उठाना पड़ा। इस सदमेके बाद जेलके अन्तिम दिनोंमें कस्तूरबा भी उन्हें छोड़कर स्वर्ग सिधार गयीं। कस्तूरबाने सही अर्थमें पूरे ६० वर्ष तक अपने महान पतिके साथ सहधर्मिणीका कर्त्तव्य निभाया था। महात्मा गाँधीके जीवनके प्रत्येक सुख-दुःख और चढ़ाव-

उतारमें वह 'छाया' की तरह हर वक्त साथ रही थीं। अपने महान पतिकी तरह उन्होंने भी अपना सारा जीवन देश और मानव-मात्रकी सेवामें अर्पण कर रखा था। अतः यदि गाँधीजी 'बापू' थे तो कस्तूरबा भी अपने प्यार, सेवा तथा त्याग व तपस्यासे सम्पूर्ण भारतीय जनताकी 'माता' बन गयी थीं। उनकी मृत्यु भी देशकी आजादीके लिए लड़ते हुए ही हुई। अपने महान् पतिके साथ वे भी अगस्त १९४२ से आगाखाँ महलमें ही बन्दी-जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनका बूढ़ा शरीर इस बार जेलकी कठोरताको सहन न कर सका और उनका स्वास्थ्य बिगड़ उठा। वे रुग्ण रहने लगीं और काफी समय तक बीमार रहनेके बाद २२ फरवरी १९४४को स्वर्ग सिधार गयीं। उनकी मृत्युसे गाँधीजीको काफी आघात लगा और उन्हें यही प्रतीत हुआ कि उनका सचमुच आधा भाग उनसे विलग हो गया है। गाँधीजीके लिए निःसंदेह 'बा' का वियोग असहनीय था; लेकिन ईश्वरके विधानपर विश्वास करनेवाले महात्माको इसमें भी ईश्वरका हाथ ही दिखलाई दिया। ईश्वर जो कुछ करता है ठीक ही करता है। अतः महात्माको शोक और दुःख किस बात का? फिर दूसरोंके लिए सेवाका व्रत लेकर अपने दुःख और शोकमें फँसना गाँधीजीको सह्य भी न था। लेकिन देशभरने 'बा' की मृत्युपर बहुत शोक मनाया। 'बा' की स्मृतिमें सारे देशने मिलकर एक 'कोष' स्थापित किया। भारतके गाँवकी स्त्रियों और बच्चोंके उत्थान तथा सुरक्षाके लिए इस कोषसे संस्थाओंके निर्माणके लिए धन दिया जाता है। किन्तु २१ दिनके उपवासके बाद 'बा'की मृत्युका आघात गाँधीजीके शरीरपर अपना प्रभाव छोड़े बिना न रहा। व्रतसे उत्पन्न हुई शारीरिक कमजोरी और इस आघातने मिलकर उनके शरीरको बिलकुल रुग्ण कर डाला। उन्हें मलेरिया भी हो आया जिससे सरकारको भी चिन्ता हो उठी। अतः डाक्टरोंकी सलाहपर ६ मई १९४४ को सरकारने गाँधीजीको बिना किसी शर्तके रिहा कर दिया।

गाँधीजी फिर मैदानमें—

गाँधीजीकी रिहाईसे देश प्रसन्न हो उठा। लोगोंके चेहरोंपरसे नैराश्यको

घनीभूत छाया मिट चली और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब तक जो साँस अवरुद्ध थी, वह फिर खुलकर चलने लगी है। निःसदेह गाँधीजीके कारागृहमें बन्द होनेसे देशके प्राण और आत्मा ही मानों बन्द पड़े थे और उनकी रिहाईसे दोनों (प्राण और आत्मा) अब मुक्त हो चले थे। अतः यद्यपि सरकारी दमनसे देश अभी तक क्षत-विक्षत पड़ा था फिर भी उसके मुखपर प्रसन्नता झलक उठी और लोगोंमें यह विश्वास बढ़ने लगा कि अब उनके कष्ट के दिन भी समाप्त होनेपर हैं, और जिसके लिए उन्होंने इतने कष्ट सहे, उसे निकट भविष्यमें ही वे प्राप्त कर लेंगे।

गाँधीजी छूटनेके बाद तुरन्त जुहूमें स्वास्थ्यलाभ करनेको चले गये; किन्तु उन्हें आराम करने ही कौन देता! देशभरके लोगों और नेताओंके वे प्राणाधार थे। वे बापू थे, जनताके नायक थे और काँग्रेसके सेनानि थे। अतः सभी प्रकारके लोग जुहूमें रोज एकत्र होने लगे। राजगोपालाचार्य जैसे लोग उनसे राजनैतिक पहलूपर बात करनेको पहुँचते और साधारण जनता उनके दर्शन मात्रके लिए रोज सुबह शाम प्रार्थना-सभामें एकत्र हुआ करती। इस प्रकार सारे देश और विश्व-भरकी आँखें जुहूमें इस अद्भुत महात्मापर जाकर केन्द्रित हो गयी थीं। सभीको आशा होने लगी कि गाँधीजी अब अवश्य ही कुछ ऐसा करेंगे जिससे सारा गतिरोध समाप्त हो जायगा और भारत अपने ध्येयको प्राप्त कर लेगा।

अजातशत्रु महात्मा गाँधीने भी स्वास्थ्यलाभमें अधिक दिन न व्यतीत किये और पूर्व पराक्रमके साथ तुरन्त ही फिर मैदानमें उतर आये। भारतकी महान् राष्ट्रीय-काँग्रेसका अद्वितीय अहिंसक महासेनानी अधिक दिन तक भला कैसे आरामसे बिस्तरपर लेटा रह सकता था? उसने जिस ध्येयके लिए युद्ध छेड़ा था, वह अभी पूरा नहीं हुआ था, और ध्येयकी उपलब्धिके बिना चुप बैठे रहना उस अलौकिक वीरके लिए सम्भव ही न था।

गाँधीजीने सबसे पहले सरकार द्वारा काँग्रेसपर लगाये गये हिंसात्मक आरोपोंका उत्तर दिया। उन्होंने १९४२ के विद्रोहके समय जनता द्वारा किये गये तमाम हिंसात्मक कार्योंके लिए सरकारको जिम्मेदार ठहराया। सरकारने

जिन समाजवादी नेता श्री जयप्रकाश नारायणको हिंसात्मक कार्योंका सबसे बड़ा दोषी करार दिया था, उन्हें गाँधीजीने सबसे महान् देश-भक्त घोषित किया, और उनके कार्योंके लिए भी सरकारकी हिंसा और दमननीतिको ही जिम्मेदार बतलाया। गांधीजीका कहना था कि सरकारकी हिंसाने ही जनता, काँग्रेसवालों और दूसरोंमें प्रतिहिंसा उत्पन्नकी, जिस कारण वे अपनापा खो बैठे और पागलों की तरह कार्य करने लगे।

इसके साथ ही गाँधीजीने वाइसरायसे भी नये तौर पर बातें शुरू कीं, ताकि ब्रिटेन और भारतके बीच जो 'जिच' पैदा हो गयी है, वह समाप्तकी जा सके। स्वराज्य न देनेमें ब्रिटिश सरकारका सबसे बड़ा बहाना हिन्दू-मुस्लिम अनैक्यका था। अतः गाँधीजीने इस प्रश्नको हल करने का कार्य भी फिर शुरू कर दिया और इसके लिए श्री जिन्नासे मिले। यदि हिन्दू-मुस्लिम अनैक्य ही भारतकी स्वतंत्रताका अवरोधक है तो इसे किसी-न-किसी तरहसे जल्दी ही सुलझा लेना चाहिए। अतः गाँधीजी दृढ़तासे यह निश्चय कर चुके थे कि ब्रिटेनसे भारत को मुक्त हो ही जाना चाहिये चाहे इसके लिए उन्हें श्री जिन्नाको श्रीराज-गोपालाचार्यके सुझावपर पाकिस्तान रूपकी चीज क्यों न देनी पड़े। यही कारण था कि अप्रैल १९४४ में गाँधीजीने राजगोपालाचार्यके फारमूलाको स्वीकार किया था और उन्हें उस आधारपर जिन्नासे समझौता करनेकी स्वीकृति प्रदानकी थी। यद्यपि उक्त फारमूलाके प्रकाशित होनेपर भारतमें काफी तहलका मचा था और बहुतसे हिन्दुओं तथा विशेषकर सिक्खोंने उसका जबरदस्त विरोध किया था।

गाँधीजीकी सुलहकी शर्तें—

इस बीच गाँधीजी वाइसरायसे काँग्रेस और ब्रिटिश राजके बीचके गतिरोधको हटानेके बारे बातें चलाते रहे। २७ जुलाई १९४४ के अपने पत्रमें गाँधीजीने गतिरोधको मिटानेके लिए वाइसरायके पास निम्न शर्तें पेश कीं—

(१) मैं कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीको यह सलाह देनेको तैयार हूँ कि परिवर्तित परिस्थितियोंमें, १९४२ के प्रस्तावमें जिस सामूहिक आन्दोलनका निश्चय किया गया है, उसे अब समाप्त कर दिया जाय।

(२) कांग्रेस युद्ध प्रयत्नोंमें पूरी तरहसे सहयोग करे बशर्तें कि पूर्ण स्वतंत्रता की तत्काल घोषणा कर दी जावे और साथही एक राष्ट्रीय सरकार बना दी जावे जो केन्द्रीय सभाके प्रति जिम्मेदार हो, और युद्ध जैसा चल रहा है उसी तरहसे चलता रहे; लेकिन उसके व्ययका भार भारतपर न डाला जाय।

गांधीजीने अन्तमें यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि सरकार इन शर्तोंको स्वीकार कर ले तो वे कांग्रेसको भी उन्हें माननेके लिए जोर देंगे। किन्तु ब्रिटिश सरकार राष्ट्रीय-सरकारको किसी तरह भी पूरी शक्ति देनेको तैयार न थी; और मुस्लिम लीगको भी भारतीय गतिरोधका यह हल पसन्द न था, क्योंकि श्री जिन्ना समझते थे कि इससे सारी शक्ति कांग्रेसके हाथमें चली जावेगी और लीग देखती ही रह जायगी। अत: लीग और सरकार दोनोंने गांधीजीके इस प्रयत्नको सफल न होने दिया। वाइसरायने स्पष्टतया १५ अगस्त १९४४ के अपने पत्र द्वारा उक्त शर्तोंको मंजूर करनेसे कतई इनकार कर दिया। गांधीजीको वाइसरायके इस रुखसे बहुत दुःख हुआ। उन्हें यह विश्वास हो गया कि जबतक ब्रिटेनकी बागडोर चर्चिल और एमेरी जैसे साम्राज्यवादी प्रतिगामियोंके हाथमें है, समझौतेकी कोई सूरत उपस्थित नहीं हो सकती। अपनी उदात्त शर्तों द्वारा गांधीजीने जगतको भी यह विदित करा दिया कि भारत शांति और समझौतेके लिए हर तरहसे इच्छुक है; परन्तु ब्रिटेन ही अपने अधिकारको बनाये रखनेके हेतु गतिरोधको टूटने नहीं देना चाहता है।

गाँधी-जिन्ना मिलन—

ब्रिटिश साम्राज्यवादसे सुलह करनेमें असफल होनेपर गांधीजीने श्री जिन्नाके साम्प्रदायवादसे सुलह करनेका प्रयत्न शुरू किया। गांधीजीने जिन्नासे मिलनेका

प्रस्ताव रखा। जिन्ना राजी हो गये और देश प्रसन्न हो उठा। लोग यह आशा करने लगे कि शायद इन दो महान नेताओंके मिलनेसे कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें समझौता हो जायगा और राजनैतिक गतिरोध भी टूट जायगा। किन्तु देशका दुर्भाग्य था कि यह समझौता न हो सका और परिणामतः देशको खंडित होनेके घोर दुष्परिणामोंका शिकार होना पड़ा, और न जाने कबतक होना पड़ेगा?

गांधीजी और जिन्ना सितम्बर (१९४४) के महीनेमें आपसमें मिले। मुलाकात ९ सितम्बरसे २७ सितम्बर तक होती ही रही। इस दर्मियान गांधीजी १४ बार श्री जिन्नासे मिले; किन्तु यह सब मिलना-जुलना बेकार हुआ। गांधी और जिन्नामें आकाश और पातालका अन्तर था। गांधी एक राष्ट्रीयताके कट्टर पक्षपात थे तो जिन्ना 'दो राष्ट्र' (Two nation theory) के सिद्धान्तको माननेवाले थे। वे हिन्दू और मुसलमानको पूरी तरहसे भिन्न मानते थे और कांग्रेसको हिन्दुओंकी संस्था बतलाते थे। कांग्रेसके मुसलमानों तकको वे मुसलमान न समझते थे। अतः ऐसी स्थितिमें यदि दोनों व्यक्तियोंमें समझौता न हो सका तो कोई आश्चर्यकी बात न थी। देशकी अखण्डतामें विश्वास करनेवाले गांधीजीने समझौतेके लिए आखिर यह स्वीकार किया कि मुसलमान—बहुसंख्यावाले प्रांतोंमें यदि चाहें तो अपनेको भारतीय राज्यसे जनमतके आधारपर अलग कर लें; लेकिन आम हितके मामले—सुरक्षा, वैदेशिक नीति, व्यापार और यातायात आदि के बारे दोनों राज्य आपसमें एक सुलहनामा कर लें। किन्तु दो राष्ट्रके सिद्धान्तमे विश्वास करनेवाले मि० जिन्नाको ये शर्तें मुसलमानोंके हकपर अवरोधजनक प्रतीत हुईं, और इसलिए समझौता जहाँका तहाँ ही भंग हो गया। गांधी-जिन्ना वार्ताके इस प्रकार भंग होनेसे निःसन्देह देशको बड़ा धक्का लगा और लोगोंके हृदय पुनः निराशासे भर उठे। इस अवसरपर देशको आशा बँधाते हुए गांधीजीने कहा था "हम मित्रकी हैसियतसे ही अलग हुए हैं। हमारे ये दिन नष्ट नहीं हुए। मुझे विश्वास हो गया है कि मि० जिन्ना अच्छे आदमी हैं। मुझे आशा है हमलोग फिर मिलेंगे।" किन्तु खेद है कि गांधी-

जीका जैसा विश्वास जिन्नाके हृदयमें न था, अतः स्पष्ट था कि फिर और मिलनेके सभी प्रयत्न एक रूपसे बेकार ही जायँगे !

उदारदली नेताओंका प्रयत्न

१९४४ में श्री तेजबहादुर सप्रू और उनके साथी अन्य उदारदली नेताओंने मिलकर भारतके लिए विधान बनानेको एक कमेटी बनायी। गांधीजी तो उसमें सहयोग देनेको तैयार हो गये; लेकिन मि० जिन्नाने उसमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया। मि० जिन्नाका कहना था कि भारतके लिए एक विधान हो ही नहीं सकता। उसके लिए दो विधान चाहिएँ — एक तो हिन्दू भारतके लिए और दूसरा मुस्लिम भारतके वास्ते। अतः १९४५ के बसन्तमें जब उक्त कमेटीने विधानपर अपनी रिपोर्ट तैयार करके प्रकाशित की तो मुस्लिमलीग और उसीकी जैसी महासभा दोनोंने उसकी बातोंको अंगीकार करनेसे इनकार कर दिया। फलतः वह प्रयत्न भी जहाँ का तहाँ ही धरा रह गया।

लियाकत-देसाई समझौता या पैक्ट

जनवरी १९४५ में भुलाभाई देसाई और लियाकतअलीमें भी काँग्रेस तथा लीगमें समझौता करानेके लिए बातें चलीं ताकि केन्द्रमें दोनों मिलकर अन्तरिम सरकार बनानेमें समर्थ हो सकें। दोनोंने मिलकर इसके लिए एक मसविदा तैयार किया और दोनोंके दस्तखतके साथ वह समझौता मान भी लिया गया।

इस समझौते की शर्तें प्रमुखतः निम्नलिखित थीं—

(१) वाइसरायकी नयी कार्यकारिणीमें काँग्रेस और लीगको बराबर सीटें मिलेंगी।

(२) अल्पसंख्यकों— अछूतों और सिखोंके हितोंको नहीं भुलाया जायगा।

(३) कमाण्डर-इन-चीफ वाइसरायके एक्स-आफिशियो सदस्य रहेंगे।

(४) पद ग्रहण करनेके बाद नयी सरकार तुरन्त कॉंग्रेस वर्किंग कमेटीके तमाम सदस्यों और अन्य कॉंग्रेस-जनोंको रिहा कर देगी।

(५) केन्द्रमें सरकार बन जानेके बाद उन तमाम प्रान्तोंमें भी जिनमें धारा ९३ के अनुसार शासन चल रहा है, कॉंग्रेस और लीगके संयुक्त-मंत्रिमण्डल बनाये-जायँगे।

समझौतेका यह मसविदा बावेलको पेश किया गया। इसे लेकर बावेल चर्चिल और एमरीसे सलाह करनेके लिए विलायत गये और उनके सदुपदेशोंके साथ जल्दी ही वापस चले आये। ये सदुपदेश इस बातको रोकनेके लिए ही थे कि किसी तरह कॉंग्रेस और लीग मिलने न पावें और भारतमें राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना टलती जावे। यही कारण था कि वाइसरायने लौटनेके बाद १४ जून १९४५ को अपनी घोषणामें ऊँचे स्वरसे यह कहा कि हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधियोंमें जब तक समानता नहीं हो पाती तब तक न तो हिन्दू-मुसलमान समस्या ही सुलझ सकती है और न केन्द्रीय सरकार ही स्थापित हो सकती है। वाइसरायके इस ब्राडकास्टसे साफ था कि हिन्दू-मुस्लिम एकता और समानताका प्रश्न उठाकर लियाकत-देसाई समझौतेको सरकार तोड़ देना चाहती है।

सरकारकी इस मंशाको देखकर गाँधीजीने १५ जूनको ही फौरन एक वक्तव्य प्रेषित कर वाइसरायको चेतावनी दी कि कांग्रेस-लीग समानता (Parity) की जगह हिन्दू-मुस्लिम समानताका प्रश्न उठानेका अभिप्राय है कि लियाकत और भूलाभाईका प्रस्ताव समाप्त हो जायगा। किन्तु बावेल और एमरीको इसकी क्या चिन्ता थी कि प्रस्ताव समाप्त हो जायगा या नहीं हो जायगा। अतः एमरीकी सलाहसे लियाकत-भूलाभाईके प्रस्तावमें कॉंग्रेस-लीग समानताकी जगह बावेलने हिन्दू-मुस्लिम समानताका प्रश्न ला खड़ा किया। वाइसरायने तब लियाकत-भूलाभाईके प्रस्तावकी जगह अपने प्रस्तावपर दोनों पक्षों—कॉंग्रेस और लीगको विचार करनेके लिए शिमलामें आनेका निमंत्रण दिया।

शिमला कान्फ्रेन्स या सम्मेलन—

१४ जूनको अपने ब्राडकास्टमें वावेलने कांग्रेस कार्यकारिणीके सदस्योंको छोड़नेका भी ऐलान किया था और तदनुसार १५ जूनकी सुबहको सारे सदस्य रिहा कर दिये गये थे। अतः शिमला सम्मेलनमें काँग्रेसके छूटे हुए सदस्य भी शामिल हुए। यह सम्मेलन लगभग तीन हफ्ते चला; किन्तु अन्तमें उसका कोई फल न निकला। एक बार तो ऐसा मालूम पड़ा कि शायद सम्मेलन सफल होगा और काँग्रेस लीगके साथ मिलकर राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनामें सफल होगी। काँग्रेसने अपनी तरफसे केन्द्रीय सरकार बनानेके लिए १५ नाम भी पेश कर दिये थे जिनमें ५ सवर्ण हिन्दू, ५ मुसलमान (३ मुस्लिम लीगी और १ कांग्रेसी तथा १ गैर-कांग्रेसी), २ हरिजन और ३ सिख, क्रिस्तान, पारसी आदि जातियोंके प्रतिनिधि शामिल थे। साथ ही काँग्रेसने यह भी घोषित किया कि लीग यदि अपनी ओरसे खुद ३ मुसलमानोंका नाम देना चाहे तो दे सकती है। किन्तु मि० जिन्नाने वाइसरायके हिन्दू-मुसलमान समानता (न कि काँग्रेस-लीग समानता) के सिद्धान्तका आश्रय लेकर यह दावा पेश किया कि मुसलमानोंके सभी प्रतिनिधियोंको नामजद करनेका अधिकार लीगको है, और वे किसी दूसरे मुसलमान (राष्ट्रीय, काँग्रेसी और गैर-लीगीको) को पसन्द नहीं कर सकते। दूसरी ओर वाइसराय भी १ मुसलमान सदस्य पंजाबकी यूनियनिस्ट पार्टीका रखना चाहते थे। इसपर भी जिन्ना राजी न हुए। अतः काँग्रेस और लीग तथा वाइसराय सभीमें मतभेद पैदा हो गया और फलतः कान्फ्रेन्स वहीं समाप्त हो गयी। कान्फ्रेन्सके टूटने और काँग्रेस-तथा लीगमें समझौता न हो सकनेसे ब्रिटिश सरकार जैसा चाहती थी, वह हो गया। ब्रिटिश सरकारको दुनियामें यह प्रचार करनेका भी मौका मिल गया कि वह तो सत्ता-हस्तांतरित करनेको तत्पर थी; लेकिन कांग्रेस और लीगके अनैक्यने ही सारा खेल बिगाड़ दिया। किंतु वास्तवमें हिन्दू और मुस्लिम समानताका प्रश्न ही इस सम्मेलनकी असफलताका मुख्य कारण था, और इस भाव एवं सिद्धान्तको उपजानेवाले ब्रिटिश

सरकारके एजेन्ट एमरी और वावेल ही थे। अतः कह सकते हैं कि कॉंग्रेस-लीगके अनैक्य और असफलताका आधार सरकारने स्वतः ही तैयार किया था, और इसलिए जो कुछ हुआ, वह सरकारकी कुटिल चालका ही परिणाम था। किन्तु खेद तो यह है कि ब्रिटिश सरकारके बजाय कॉंग्रेस और लीग इस असफलताके लिए एक-दूसरेको ही कोसते रहे और दोनोंमें मतभेद और अनैक्य की खाई इतनी गहरी हो चली कि गाँधीजी भी उसे पाटनेमें समर्थ न हो सके। गाँधीजीने इस बीच जिन्नासे मिलकर कुछ हल निकालनेकी इच्छा प्रकट भी की; किन्तु जिन्नाके असंगत दावे और कुचालसे कॉंग्रेस वर्किङ्ग कमेटी इतनी रुष्ट हो गयी कि उन्होंने गाँधीजीको भी मिलने जानेसे रोक दिया। यह रोष यहाँ तक बढ़ा कि कॉंग्रेस-लीग एकता चाहनेवालोंको ही अब कड़ी निगाहसे देखा जाने लगा और फलतः इसी बातको लेकर बादमें पंजाब कॉंग्रेस कमेटीके प्रधान तकको इस्तीफा देकर हट जाना पड़ा।

विद्रोह और बेचैनी

इस बीच युद्ध समाप्त हो चुका था। उधर इंगलैंडमें युद्धके बाद जो नया चुनाव हुआ था उसमें लेबर पार्टी जीत गयी थी। ५ जुलाई १९४५ को लेबर पार्टीकी विजयका ऐलान हुआ था। चर्चिलके दलके गिरनेसे हिन्दुस्तान को अवश्य ही प्रसन्नता हुई। लेबर पार्टीके शक्तिमें आनेसे हिन्दुस्तानमें पुनः यह आशा जाग्रत हो उठी कि शायद अब जल्दी ही राजनैतिक गतिरोध खतम हो जायगा। लेबर पार्टीने अपने चुनावके घोषणापत्रमें हिन्दुस्तानकी आजादीका ऐलान किया भी था। एमरीकी जगह अब पैथिक-लॉरेन्स भारत मंत्री हुए थे और उन्होंने भी पार्लियामेन्टमें यह ऐलान किया था कि भारतमें जल्दी ही चुनाव कराये जायँगे और क्रिप्स-प्रस्तावके अनुसार उसके बाद एक विधान-निर्मातृ सभा बुलाई जायगी।

१९४५ के अन्त और १९४६ के प्रारम्भमें इधर भारतके नौजवान अपनी

आजादीके लिए बहुत उतावले हो चले थे। १६४२ के दमनके बावजूद देशके हर व्यक्ति और युवकमें स्वतंत्र होनेकी दृढ़ कामना प्रबल हो उठी थी। 'आजाद हिन्द' सरकारके बहुतसे सैनिक अफसरोंको सरकार बर्मासे हिन्दुस्तान ले आयी थी। आजाद-हिन्द फौजके मेजर जनरल शाहनवाज और उनके साथियों पर राजद्रोह और अमानुषिकताके अपराधोंका मुकदमा चलाया गया। इससे देशमें बड़ी सनसनी फैली। कॉंग्रेसने उनके मुकदमेकी पैरवीका भार उठाया और भूलाभाई देसाईको यह काम सौंपा। इस मुकदमेमें भुलाभाईकी अपूर्व विजय हुई। सम्पूर्ण देश अपने इन आजादीके दीवानोंको छुड़ानेके लिए एक आदमी की तरह उठ खड़ा हुआ था। फलतः वे ही नहीं बल्कि और भी अनेक आजाद-हिन्द-फौजवाले रिहा कर दिये गये। आजाद-हिंद फौजके प्रति यह भाव इस बात का द्योतक था कि हिन्दुस्तान अपनी आजादीके लिये लड़नेवालोंका कहाँ तक साथ दे सकता है? यह ध्यान देनेकी बात है कि आजाद-हिन्द फौजके सैनिक-बन्दियोंकी रिहाईके लिए कलकत्ताके नौजवानोंने १६ नम्बरको शान्तिपूर्ण जुलूस निकालकर प्रदर्शन किया था और साम्राज्यवादी सरकारकी नृशंस पुलिसने उन्हें तितर-बितर करनेके लिए बे-भाव गोलियाँ बरसाई थीं। इस नृशंसताके खिलाफ सारा कलकत्ता ही तब उठ खड़ा हुआ था और दो दिन तक वहाँ जनता सरकारके विरोधमें प्रदर्शन करतीही चली गयी। कलकत्तेके उदाहरणपर सारे देश भरमें नौजवानोंने आजाद-हिंद फौजकी रिहाईके लिए हल्ला मचाया और प्रदर्शन किये अतः सरकारको मालूम हो गया कि सारा देश अपनी आजादीके लिए लड़नेवाले सैनिकोंके पीछे है, इसलिए उनकी भलाई इसीमें है कि वह शाहनवाज आदि बहादुरोंको रिहा कर दे। यह बात सरकारको उस समय और भी स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष हुई होगी जब फरवरी १९४६ में कलकत्ता, करांची, मद्रास और दिल्ली आदि नगरोंमें नाव और वायु सेनाने भी आजाद हिन्द फौजकी सहानुभूतिमें हड़तालें की थीं। इन विद्रोहोंमें सबसे विकट विद्रोह रॉयल-इन्डियन नेवीका हुआ था। (फरवरी २१-२३)। यद्यपि यह विद्रोह अधिक दिन न चला और कॉंग्रेसी

तथा लीगी नेताओंके बीच बचाव करनेसे शांत हो गया : लेकिन उससे इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवादके सभी पाये उखड़ चुके हैं। नौ सेना और हवाई सेना आदिके विद्रोह इस बातके सुप्रमाण थे कि ब्रिटिश-सत्ता उन भारतीय सैनिकोंके आधार पर, जिन्हें ब्रिटिश-सरकारने ही शिक्षित-दीक्षित किया है, अन्त तक यहाँ पर अपना आसन जमाकर नहीं रह सकती और न उनके द्वारा जन-आन्दोलनों एवं जनताकी स्वतन्त्र होनेकी अमिट-आकांक्षाको ही हमेशा कुचलनेमें समर्थ हो सकती है। यदि ब्रिटेनके राजनीतिज्ञोंमें दूरदर्शिता होती तो यह बात उन्हें तभी समझ लेनी चाहिये थी जब कि १९३० में गढ़वाली फौजने पेशावरमें निहत्थी जनता पर हथियार चलानेसे इनकार किया था। श्रीहीरेन्द्र-नाथ मुकर्जीने बहुत सही लिखा है कि—"In 1930, at Peshawar the Garhwali soldiers had refused to fire on the unarmed crowds. That was the first clear intimation that British-recruited, trained and organised Indian armed force could not for ever be used for the supression of a people's movement. The widespread Strikes of the Navy and also the Indian Air force dissolved the Imperialists omplacent confidence and marked there-fore, the end of an era."

स्पष्टतः १९४६ के प्रारम्भमें देशमें गुलामीके कारण अद्भुत बेचैनी पैदा हो गयी थी और देशका नौजवान अपनी आज़ादीके लिए हिंसात्मक मोर्चा लेनेको भी उतावला हो चला था। देश अब अपनी गुलामीको अधिक बर्दास्त करनेको कतई तैयार न था। इस स्थितिपर प्रकाश डालते हुए पं० नेहरूने भी कहा था कि बहुतसे नौजवान आजाद होनेके लिए अब ताकत अजमानेकी सोचने लगे हैं।* इस बेचैनी और उतावलेपनका साफ़ कारण यही था कि भारतीयोंको

* The British Achievement in India by H. G. Raw-Linson pp. 225-226.

ब्रिटेनके वायदों और बचनोंमें बिल्कुल विश्वास नहीं रह गया था। गांधीजीका तक ब्रिटिश वायदों परसे विश्वास उठ गया था, और उनके हृदयमें भी यह बात जम गई थी कि ब्रिटिश-राजके गोरे महाप्रभु एशियाके कालों पर राज्य करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझ बैठे हैं। इस भावनासे उद्वेलित होकर ही १९४२ में गांधीजीने ब्रिटेनको 'भारत छोड़ो' का नारा दिया था।

ऐसी मनःस्थितिमें देशमें निराशा और बेचैनीका होना स्वाभाविक ही था। इस अवस्थाको सुधारने और ब्रिटेनके प्रति सद्भावना उत्पन्न करनेका उत्तर-दायित्व अब लेबर सरकारपर था। यदि लेबर सरकार अपने और पुरानी सरकारके दिये वायदोंको पूरा करे तो समस्या सुलझी-सुलझाई थी। अतः स्पष्टतया पहला प्रश्न लेबर सरकारके सामने यह था कि यदि वह भारतकी जनता और ब्रिटेनकी जनता में पुनः एकात्मभाव पैदा करना चाहती है तो उसे जल्दी ही ऐसे कार्य करने चाहिये जिससे भारतमें मुर्झाई हुई आशाएँ पुनः जाग उठें और खोया विश्वास फिरसे लौट आवे। भारत और ब्रिटेनके बीच गतिरोध समाप्त करने और समझौता करनेके लिए भी ये ही उपाय फलप्रद हो सकते थे। लेबर सरकारके भारत-मंत्री श्रीपैथिक-लॉरेन्सने तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते हुए स्वयं इस बातको स्वीकार किया है—

A glance may now be taken at the Situation as it appeared to the new Labour Government in Britain, and to myself who had been appointed as the new secretary of state. In face of our determination to emancipate India from British rule and to bring into being complete self-Government on democratie lines, we were confronted with political deadlock. Gandhi had lost faith in British intentions about Indian freedom. Jinnah had lost faith in fair treatment for Muslims at the hands of a Hindu majority. we realized no less clearly than Gandhi

that this deadlock was inducing a growing feeling of frustration and bitterness, and it had to be broken at the earliest possible moment. In its place had to be instilled hope and confidence and a way had to be found to reach a final settlement......"

अतः मौजूदा गतिरोध और बेचैनीकी स्थितिमें सुधार लानेके लिए लेबर सरकारने प्रथमतः केन्द्र और प्रांतोंमें २१ अगस्त १९४५ को चुनाव करानेका ऐलान कराया। इसके साथ ही लार्ड वावेल इंगलैंड बुलाये गये और एक महीनेके बाद जब वे लौटकर वापस आये तो सरकारकी तरफसे १९ सितम्बरको उसने यह घोषणा की कि चुनावके तुरन्त बाद प्रान्तोंमें मंत्रीमण्डल बनाये जायँगे, विधान-निर्मातृ-सभा बुलायी जायगी और वाइसरायकी कार्यकारिणीका नये ढंगपर निर्माण किया जायगा। किन्तु इस घोषणापर गांधीजीने कोई राय जाहिर न की। देशमें जो निराशा और बेचैनी छाई थी वह भी जैसी-की-तैसी ही बनी रही। परिणाम यह हुआ कि १९४५ के अन्त और १९४६ के प्रारम्भमें देशके नौजवान सशस्त्र विद्राह पर उतारू हो आये जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

१९४५ के अन्तमें केन्द्रीय असेम्बली और १९४६ के बसन्तमें प्रान्तीय सभाओंका चुनाव भी हो गया। इन चुनावोंमें काँग्रेस और मुस्लिमलीगको भारी विजय प्राप्त हुई। हिन्दू-क्षेत्रोंमें सब सीटें काँग्रेसको प्राप्त हुईं और मुस्लिम क्षेत्रोंमें मुस्लिम लीगको। किन्तु सीमा-प्रान्तमे मुस्लिमलीगके बजाय अधिकतर मुस्लिम सीटें काँग्रेसको ही प्राप्त हुईं और पंजाबमें भी लीगको इतना बहुमत न प्राप्त हुआ कि वह वहाँ अपना मंत्री-मण्डल कायम कर सकती। अतः पंजाबमें यूनीयनिस्ट, काँग्रेस और सिक्खोंके सहयोगसे मलिक खिज्र हयात खाँ का मंत्रीमंडल ही कायम रहा। चुनावके बाद सीमाप्रान्त, युक्त-प्रान्त, बिहार,

* Mahatma Gandhi—by H. S. Polak, H. N. Brailsford, Lord Pethick Lawrence PP. 263-64.

मध्यप्रान्त, आसाम, उड़ीसा, मद्रास और बम्बईमें काँग्रेसके मंत्री-मंडल बने, सिंध और बंगालमें लीगका मंत्रीमण्डल बना और पंजाबमें युनीयनिस्ट, सिख तथा काँग्रेसियोंका सम्मिलित मंत्री-मंडल बना। यह भी याद रखनेकी बात है कि सिंधमें लीगका पूरी तरहसे बहुमत न होने पर भी गर्वनरने लीगको ही मंत्री-मण्डल बनाने को कहा, और बंगालमें यूरोपियन सदस्योंको अपने साथ मिलाकर ही लीग बहुमत प्राप्त कर सकी। ये दृष्टान्त इस बातके प्रमाण हैं कि ब्रिटिश सरकारके ऊँचे अधिकारी और यूरोपियन, लीगको काँग्रेसके विरुद्ध मजबूत बनाने और उसकी अनैतिक माँगोंको सहारा देने पर किस प्रकार तुले हुए थे!

. इसी बीच १९ फरवरी १९४६ को ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें यह ऐलान हुआ कि ब्रिटिश कैबिनटकी ओरसे ३ मंत्रियों का एक प्रतिनिधि-मंडल भारत आयेगा और वाइसरायके सहयोगसे भारतीय नेताओंसे मिलकर गतिरोधको समाप्त करने तथा विधान-निर्मातृ-सभाका निर्माण करनेका हल निकालेगा। प्रधान मंत्री मि० एटलीने कैबिनेट मिशनके यहाँ आनेसे पूर्व १५ मार्चको अपने वक्तव्यमें यह स्पष्ट घोषित किया कि भारत अपने भविष्यका विधान बनानेके लिए पूरी तरहसे स्वतंत्र होगा किन्तु वे आशा करते हैं कि भारतीय राष्ट्र स्वेच्छासे ब्रिटिश कामनवेल्थमें रहना पसन्द करेगा। इस घोषणासे भारतकी निराशा अवश्य कुछ भंग हुई और पुनः देशमें आशा और संतोषकी लहर उठती दिखाई पड़ने लगी।* मि० एटलीके घोषणाके शब्द थे—'India must choose what will be her future constitution. I hope that the Indian people may elect to remain within the British common-wealth. I am certain that she will find great advantages in doing so..But if she does so elect, it must be by her

---

* इस घोषणाका उल्लेख करते हुए डा० राजेन्द्र प्रसादने लिखा है—"घोषणा बहुत अंशोंमें संतोष-जनक मालूम हुई।" पृष्ठ ६३४

own free will. The British commonwealth and Empire is not bound together by chains of external compulsion. It is a free association of free peoples. If on the other hand, she elects for Independence, in our view she has a right to do so••"

कैबिनेट मिशनमें तीन व्यक्ति थे—लार्ड पेथिक लॉरेन्स, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और मि० ए० वी० अलेक्जण्डर। इनमेंसे दो भारतीय नेताओं और विशेषकर गांधीजी व प० नेहरूजीसे पूर्व परिचित थे। केवल अलेक्जण्डर ही नये व्यक्ति थे जिनका भारतीय नेताओंसे कोई पूर्व परिचय न था। यह मिशन २४ मार्च १९४६ को दिल्ली पहुँचा और आते ही उसने अपना कार्य भी शुरू कर दिया।

कैबिनेट मिशनने कॉंग्रेसके सभापति मौलाना आजाद और लीगके सभापति मि० जिन्नासे मुलाकातें कीं। इनके अलावा वे सिक्ख और अछूतोंके नेता अम्बेदकर तथा रियासतोंकी तरफसे भोपालके नवाब आदिसे भी मिले। गांधीजी भी मिशनके आमंत्रणपर दिल्ली चले आये और समझौतेकी बातोंमें बराबर भाग लेते रहे। यद्यपि साधिकार रूपसे मौलाना आजाद ही बातचीत के लिए नियुक्त किये गये थे, लेकिन स्पष्टतया बिना गांधीजीके कोई बात या समझौता पूरा नहीं हो सकता था। यही कारण था, जैसा कि लार्ड पेथिक लॉरेन्सने स्वयं लिखा है कि गांधीजीको मिशनके पहुँचते ही आमंत्रित कर लिया गया—

"in view of his unique position and his unequalled prestige among all classes in India, he was invited, at an early stage to express his Views to the Mission."*

कैबिनट मिशन और कॉंग्रेसी नेता, तथा महात्मा गांधी व मि० जिन्नाके

---

* Mahatma Gandhi, by H. S. polak ete. P. 269.

बीचमें प्रारम्भमें जो बातें चलीं उससे कोई फल न निकला। जिन्ना दो राष्ट्रके आधारपर पाकिस्तान नामसे नया-राज्य बनाना चाहते थे और कॉंग्रेस इस बातको स्वीकार न करती थी। गांधीजी अपनी तरफसे गतिरोध समाप्त करनेके लिए काफी प्रयत्नशील रहे। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि राजनैतिक वातावरणको शांत करनेके लिए तमाम राजनैतिक बन्दियोंको रिहा कर देना चाहिये तथा नमक करको हटा देना चाहिए। उन्होंने यह भी जाहिर किया कि 'दो-राष्ट्र' के सिद्धान्तपर देशका विभाजन असंगत है। लीगके संदेहोंको मिटानेके लिए उन्होंने मिशनके सामने यह सुझाव रखा कि मि॰ जिन्नाको ही केन्द्रीय सरकार बनाने को आमंत्रित किया जाय। लेकिन यदि जिन्ना स्वीकार न करें तो कांग्रेसको यह भार सौंपा जाय।

किन्तु जब महात्मा गांधीके इन सुझावोंको मि॰ जिन्नाने स्वीकार न किया और कांग्रेस तथा लीगके नेताओंमें कोई समझौता न हो सका तो मिशनने शिमला में गोलमेज़ कान्फ्रेन्स बुलाई और उसमें कांग्रेस तथा लीगसे चार-चार प्रतिनिधि आमंत्रित किये। यद्यपि गांधीजी चुने गये प्रतिनिधियोंमेंसे नहीं थे किन्तु अपने विशिष्ट-व्यक्तित्वके कारण कांग्रेसी प्रतिनिधियों एवं मिशनवालोंको सलाह देनेके लिए वे भी शिमले चले आये। लेकिन दुर्भाग्यवश यह कान्फ्रेन्स भी असफल रही और कांग्रेस तथा लीगमें कोई समझौता न हो सका।

इस स्थितिमें मिशनने कान्फ्रेन्सको खतम कर एलान किया कि दिल्लीमें अब वे स्वयं ही अपनी योजना देशके सामने रखेंगे। इस घोषणा पर गांधीजीने वक्तव्य निकालकर यह आशा प्रकट की कि मिशन की तजवीज किसी 'अवार्ड' (award) या निर्णयके रूपमें न होगी बल्कि वह राजनैतिक दलोंके सामने सुझावके रूपमें रखी जायगी। गांधीजीकी इस आशाको मिशनने बहुत कुछ पूरा किया। १६ मईको मिशन और वाइसरायने सरकारकी ओर से अपनी योजनावाला वक्तव्य प्रेषित किया।

योजना क्या थी ?

इस योजनाके तीन प्रमुख भाग थे ।

(१) पहले भागमें पाकिस्तानकी माँग अव्यवहार्य्य बतलाई गयी थी। इसलिए मिशनने यह योजना दी कि ब्रिटिश भारत के सूबों और देशी रियासतों का एक संघ बनेगा । इस केन्द्रीय संघके अधिकारमें तीन विभाग—सेना और सुरक्षा, वैदेशिक मामले, और रेल-तार इत्यादि होंगे । इन विभागोंके लिए आवश्यक रुपयोंको वसूल करनेका भी केन्द्रको अधिकार होगा। शेष विषयोंमें प्रान्तोंको स्वतंत्रता होगी ।

(२) दूसरे भागमें विधान-निर्माण-समितिकी योजना दी गयी थी। विधान-सभाके सदस्योंका चुनाव प्रान्तीय असम्बेलियों पर रखा गया जो अपने अपने प्रान्तकी आबादीके प्रत्येक १० लाख पर एक प्रतिनिधि चुनेंगी । ब्रिटिश-भारत की प्रथम विधान-निर्माण समितिमें सभी चुने हुए सदस्य शामिल होंगे। लेकिन इसके बाद सदस्य सूबोंके तीन विभाजनके रूपमें अलग-अलग बैठेंगे। सूबोंके तीन विभाजनों में, पहले विभागमें मद्रास, बम्बई, युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त और उड़ीसा थे ; दूसरे विभागमें पंजाब, सीमाप्रान्त सिन्ध और बलूचिस्तान तथा तीसरे विभागमें बंगाल और आसाम रखे गये थे ।

(३) तीसरे भाग में तत्कालीन सरकारको कायम करनेकी बात कही गई थी।

मिशनकी इस योजनाको दो हिस्सोंमें बाँट दिया गया था—

(१) तात्कालिक योजना और (२) दीर्घकालीन योजना । तात्कालिक योजनामें तत्काल अन्तरकालीन सरकार बनानेकी बात थी और दीर्घकालीनमें विधान-निर्माण सभाकी बात थी ।

इस योजनाके प्रकाशित होने पर गाँधीजीने संतोष प्रकट किया और १७ मई १९४६ को प्रार्थना सभामें यह घोषित किया कि कैबिनट मिशनमें अवश्य ऐसी बातें रखी हैं जिसके लिए वे गर्व कर सकते हैं। दूसरे दिन उन्होंने फिर

प्रार्थना सभामें यह आशा प्रकट की कि मिशन अपने घोषणा पत्रको पूरे भावके साथ पूरा करेगा।

२६ मईको गाँधीजीने मिशनकी घोषणाके बारेमें लिखते हुए यह भाव व्यक्त किया कि वर्तमान परिस्थितियोंमें ब्रिटिश सरकारका यह घोषणा पत्र काफ़ी अच्छा रहा है। किन्तु गाँधीजीने सूबोंके तीन-विभाग किये जाने पसन्द न किये। उनका कहना था कि पंजाबको सिन्ध, बिलोचिस्तान और सीमाप्रान्तमें मिलानेसे सिखोंका अहित होगा और इसी तरह सीमाप्रान्तको उसकी इच्छाके विरुद्ध पंजाबमें मिलाना असंगत होगा। हिन्दू-बहुमतके प्रान्त आसामको बंगालमें मिलाना भी उन्होंने अनुचित बतलाया।

इस बीच ५ जूनको मुस्लिम लीगने मिशनकी योजनाको स्वीकार कर लिया। लेकिन गांधीजी और वर्किङ्ग कमेटी तबतक विचार करनेमें ही लगे रहे। मिशन और वाइसरायने साथ ही तात्कालिक सरकार बनानेकी बात भी चलाई, किन्तु कांग्रेस वाइसरायकी अन्तरकालीन सरकारकी योजनाको स्वीकार न कर सकी। फलतः अन्तमें मिशन और वाइसरायने १६ जूनको विज्ञप्ति निकाली कि वे अन्तरिम सरकार बनानेके लिए स्वयं १४ आदमियोंको निमन्त्रित करेंगे! इनमें ५ कांग्रेसी, ५ लीगी मुसलमान, १ कांग्रेसी हरिजन, १ सिख, एक ईसाई और १ पारसीके नाम रखे गये थे।

गाँधीजी और कांग्रेस वर्किंग कमेटीने इसपर बहुत विचार किया और अन्तमें अपनी तरफसे नाम भी पेश किये। मालूम होता था कि शायद समझौता हो जायगा। कांग्रेसने जो नाम पेश किये थे उनमें उन्होने ५ मुसलमानोंके नामोंमें एक गैर-लीगी मुसलमानका नाम भी दिया था। वाइसरायने इसे स्वीकार नहीं किया और जब कांग्रेस वर्किंग कमेटी अपनी ५ सीटोंमें से ही एक सीट राष्ट्रीय मुसलमानको देनेका विचार करने लगी तो इसी बीच वाइसरायका पत्र आया कि कांग्रेस किसी मुसलमानका नाम न दे क्योंकि वह स्वीकार नहीं किया जायगा।

वाइसरायका यह निर्णय लीगके दो राष्ट्रके सिद्धान्तको पक्का करता था

और मि० जिन्नाके इस दावेको भी मजबूत बनाता था कि कॉंग्रेस केवल हिन्दुओंकी ही संस्था है और मुसलमानोंका वह कोई प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। इस स्थितिको एक-राष्ट्रीयताके महान पुजारी महात्मा गाँधी और उनकी कॉंग्रेस कैसे सहन कर सकती थी। अतः गाँधीजीकी पूरी सलाहके साथ कांग्रेस वर्किंग कमेटीने अन्तरकालीन सरकारमें शामिल होनेका १६ जूनवाला मिशनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और २५ जूनको मौलाना आजादने इस निर्णयको मिशनको भी सूचित कर दिया। लेकिन १६ मईकी दीर्घकालीन विधान-निर्मातृ सभावाली योजनाको, इस आश्वासनके साथ कि विभागोंमें रखे गये सूबोंको अलग होनेका अधिकार होगा, कांग्रेसने स्वीकार कर लिया।

दूसरी तरफ लीगने १६ जूनकी योजनाका स्वीकार किया और तुरन्त कॉंग्रेसके बिना ही अन्तरिम सरकार बनानेकी माँग पेश की। किन्तु वाइसरायने मि० जिन्नाके रोषके बावजूद केवल सरकारी अफसरोंको लेकर एक 'काम चलाऊ' (a stop-gap Government of officials) सरकार बनाई और अन्तरकालीन सरकारकी योजनाको कुछ समयके लिए स्थगित कर दिया। २९ जूनको कैबिनेट मिशन भारतसे इंगलैण्ड वापस चला गया।

कांग्रेस और लीग के मनोभाव

यद्यपि मिशनकी योजनाएँ पूरी न हो सकीं और वे कार्यको अधूरा छोड़कर ही वापस चले गये तथापि उन्होंने समझौताके लिए जो कुछ भी प्रयत्न यहाँ रहकर किये थे उससे गांधीजी और दूसरे कांग्रेसी नेताओंको अवश्य संतोष था और उन्हें यह विश्वास भी हो गया था कि अबकी बार शायद सरकार भारतको आजादी देनेका अपना वायदा पूरा करके दिखायेगी।

लेकिन लीग और उसके नेता मि० जिन्ना इस बातसे बहुत असंतुष्ट थे कि १६ मई और १६ जूनकी योजनाको स्वीकार करनेपर भी उन्हें सरकार न बनाने दी गयी और कांग्रेसका ही विशेष खयाल रखा गया। इसी रोष में २७ जुलाई

को लीगकी वर्किंग कमेटी की बैठक हुई और उसने निश्चय किया कि वह मिशन की दोनों योजनाओंको अब नामंजूर करती है और अपने ध्येय पाकिस्तानकी प्राप्तिके लिए वह अब समय और आवश्यकतानुसार सीधी कार्रवाई (Direct-action) काममें लायगी। यह सीधी कार्रवाई क्या और कैसी होगी इसकी कोई व्याख्या तब न की गयी थी, लेकिन जब कलकत्तेमें लीगने १६ अगस्तको सीधी कार्रवाईका स्वरूप दिखाया तो संसार भरको मालूम हो गया कि यह कार्रवाई 'खूंरेजी' और 'भीषण साम्प्रदायिक दंगों' के रूपमें ही निश्चित की गयी थी। निःसंदेह मुस्लिम लीगका यह निर्णय विनाशक और हत्याकारी साबित हुआ।

अन्तरकालीन सरकार की स्थापना

लीगकी बैठकके बाद ही वर्धामें कांग्रेस समितिकी बैठक भी हुई और उसने मिशनकी १६ जूनकी योजनाको मंजूर कर लिया। अतः इस बार जब वाइसरायने मि० जिन्ना और पं० नेहरूको अंतरकालीन सरकार बनानेके लिए आमंत्रित किया तो जिन्नाने निमंत्रण को ठुकरा दिया (३० जुलाई); लेकिन पं० नेहरूने सरकार बनाना स्वीकार कर लिया। फलतः १२ अगस्तको वाइसरायने पं० नेहरूसे नाम भी माँगे। पं० नेहरू तुरन्त बम्बई गये और मि० जिन्नाको अंतरकालीन सरकारमें शामिल होनेका अपनी तरफ से निमंत्रण दिया, पर उन्होंने फिर शामिल होनेसे इनकार कर दिया। अतः पं० नेहरू ने तब लीगके बिना ही सरकार बनानेका निश्चय किया और वाइसरायको नाम दे दिये। इस प्रकार २ सितम्बर १९४६ को पं० नेहरूकी नई अन्तरिम—सरकार स्थापित हुई।

अन्तरिम सरकारकी स्थापनाका दिवस हमारे इतिहासका एक नया दिवस था, क्योंकि इस दिनसे ही हमारे इतिहासमें एक नया पृष्ठ जुड़ा और ब्रिटिश राजकी जगह भारतीय-राजका श्रीगणेश हुआ। किन्तु कुछ राजनैतिक दलों जैसे समाजवादी दलने इसमें ब्रिटिशकी चाल ही देखी और यह विश्वास न किया कि सचमुच ब्रिटेन सत्ता भारतीयोंको सौंपकर भारतसे चला जायगा। ब्रिटेनकी पूर्व

चालोंके फलसे समाजवादी दल का यह अविश्वास जनतामें भी जड़ जमा सकता था, लेकिन गांधीजीने मिशन और ब्रिटिश सरकारपर पुनः विश्वास करनेका आदेश देकर जनताको अविश्वासकी तरफ मुड़नेसे रोक दिया।

लीगका क्रोध और साम्प्रदायिक दंगे

हम ऊपर कह आये हैं कि लीगने असंतुष्ट होकर सीधी कार्रवाईका निर्णय किया था। अतः जब कौंग्रेस सरकारके साथ अन्तरकालीन व्यवस्थाको तय करनेमें लगी थी, दूसरी तरफ लीग अपनी सीधी कार्रवाईके लिए षडयंत्र रचनेमें व्यस्त थी। निःसंदेह लीग और मि० जिन्ना अन्तरकालीन व्यवस्थाको असफल बनाने और जबरदस्ती भारतको विभाजित करनेपर उतारू हो चले थे।

फलतः अपने इन उद्देश्योंसे प्रेरित होकर लीगने अगस्त १६ तारीखको कलकत्तेमें सीधी कार्रवाई प्रारम्भ कर दी। बंगालमें तब लीगका मंत्रीमण्डल था और सुहरावर्दी उसके प्रधान मंत्री थे। लीगकी सीधी कार्रवाईको मदद पहुँचानेके लिए लीग-मंत्री-मंडलने उस दिन वहाँ छुट्टी दे दी। लीगियोंने १६ ता० को जबरदस्ती सभी लोगोंको दुकानें बन्द करने और हड़ताल करने पर भी मजबूर किया। इसपर दंगा छिड़ गया और मार-काट शुरू हो गई। चार रोज तक हिन्दू-मुसलमानोंमें भीषण कत्ले-आम मचा रहा जिसमें लगभग ५ हजार आदमियोंकी जानें गईं और करीब १५ हजार घायल हुए। यह सरकारी गणना है, लेकिन गैर-सरकारी गणनाके अनुसार उक्त संख्या इससे कई गुना अधिक थी। यह कत्लेआम छिट-पुट रूपमें महीने रोजसे भी अधिक चला। इस हत्या-काण्डका उल्लेख करते हुए डा० राजेन्द्रबाबू लिखते हैं—

"इस तरहका कत्ले-आम कलकत्तेमें कभी न हुआ था। शायद नादिरशाहके दिल्लीवाले कत्ले-आमके अलावा और कहीं भारतवर्षके इतिहासमें ऐसा नहीं हुआ।......लीगकी कार्रवाईका कुछ नमूना लोगोंके सामने आ गया।"*

* आत्मकथा पृष्ठ—६४२-६४३

कलकत्तेके उपद्रवोंके बारेमें

कलकत्तेकी तरह १ सितम्बरको बम्बईमें भी लीगियोंने काले झंडे निकालकर उत्पात मचाया। यह दंगा कलकत्तेके बराबर न हुआ लेकिन करीब एक पखवाड़े तक छिटपुट हत्यायें होती रहीं। इस दरमियान लगभग २८० आदमी मारे गये और ८०० के करीब घायल हुए। इसी तरह अन्य जगहों और पंजाबमें भी दंगे शुरू हो गये और देशमें एक अजीब खलबली मच उठी।

जिस दिन २ सितम्बरको पं० नेहरूकी अन्तरिम सरकार बैठी लीगने सर्वत्र काले झंडे लगाये। फलतः दंगे दब न सके और जो आग लीगने लगाई थी सुलगती ही चलती गयी। अक्तूबरमें ढाका, नोआखाली, चिटगाँव आदिमें भी भीषण दंगे शुरू हो गये। इन जगहोंमें हिन्दू अल्पसंख्यामें और कमजोर थे, इसलिए वे बुरी तरहसे मारे गये और बहुत से भागकर प्राण बचाने के लिए कलकत्ता और बिहार की तरफ चले आये।

नोआखालीका रक्तकांड

नोआखालीमें लीगी मुसलमानोंने १० अक्तूबरसे संगठित रूपसे वहाँके अल्पसंख्यक लोगों पर हमले शुरू किये। वहाँके रामगंज, बेगमगंज, लक्ष्मीपुर आदि थानोंके गाँवोंमें हिन्दुओंको बुरी तरह से मारा और काटा गया। हिन्दुओं की स्त्रियोंका अपहरण, बलात्कार और धर्मपरिवर्तन भी किया गया। मन्दिर और देवस्थान भी तोड़े और भ्रष्ट किये गये। लेकिन लीगी मंत्री-मण्डल हाथपर हाथ रखकर चुप बैठा रहा। लीगके प्रमुख नेता सर फीरोज खाँ नूनने सीधी कार्रवाईके दिनोंमें कहा ही था कि वे ऐसी हालत पैदा कर देंगे जैसी चंगेज और हलाकू खाँ ने भी नहीं की थी। जब बात ऐसी थी तो लीगी मंत्री-मण्डलसे कुछ किये जानेकी आशा व्यर्थ ही थी। हिन्दुओंपर कैसे भीषण अत्याचार वहाँ हुए इसका उल्लेख करते हुए 'स्टेट्स मैन' अखबारने लिखा था कि नोआखाली और टिपरा जिलोंके डेढ़ लाख हिन्दू इन दंगोंके शिकार हुए थे।

इन भयंकर दंगों के समाचारोंसे उद्विग्न होकर कॉंग्रेसके तत्कालीन सभापति आचार्य कृपलानी और श्री शरत्‌चन्द्रबोस वायुयान द्वारा नोआखाली और चाँदपुर पहुँचे। वहाँ का दौरा समाप्त करनेपर आचार्य कृपलानीने पत्र-प्रतिनिधियोंसे बात करते हुए यह प्रकट किया कि "नोआखाली और टिपरा जिलोंकी हिन्दू आबादीपर किया गया आक्रमण पूर्व आयोजित और पूर्व संगठित था। इसकी योजना मुस्लिम लीगने तैयार की थी।"

नोआखालीके इन दर्दनाक भीषण अत्याचारोंकी कहानी सुनकर महात्मा गाँधीका हृदय अत्यन्त आन्दोलित हो उठा। उनका दिल इन दर्दनाक किस्सों को सुन-सुनकर रो उठता था। लेकिन उन्होंने तब भी विश्वास प्रकट किया कि मानवता अभी भी शेष है और ये हिंसायें अवश्य खतम होंगी। २० अक्तूबरको गाँधीजीने नोआखालीके बलात्कारों और धर्म परिवर्तनका उल्लेख करते हुए प्रार्थना सभामें यह अनुशासन प्रेषित किया कि जबरदस्तीसे किया गया धर्म-परिवर्तन परिवर्तन नहीं माना जा सकता और न राक्षसी अपहरण और बलात्कारके कारण हिन्दू लड़की और औरतको घर वापस आनेसे रोका जा सकता है। ऐसे मामलोंमें उन्होंने किसी प्रकार के प्रायश्चित करनेकी भी आवश्यकता नहीं बतलाई। यदि हिन्दू समाज ऐसोंके लिए प्रायश्चित निर्धारित करता है तो वह गलती पर है—गाँधीजीके इस धर्मानुशासनने अत्याचार पीड़ित अबलाओंको निःसन्देह बहुत धीरज बँधाया और उनके घावोंको भरनेमें संजीवनाका काम किया। हिन्दू-समाजने भी गाँधीजीके इस अनुशासनको स्वीकार किया और भारतके महान पंडितों तथा शंकराचार्यने भी उसी तरहके आदेश प्रेषित किये।

२१ अक्तूबरकी प्रार्थना-सभामें उत्तेजित बंगाली युवकोंकी भीड़को शांत करते हुए गाँधीजीने बहुत ही मार्मिक उद्गार प्रकट किये। उन्होंने करुणाके साथ यह स्वीकार किया कि 'आज उनका स्थान पूर्वी बंगालमें होना चाहिये। आज सभीका दिल बंगालके लिए रक्तके आँसू ढार रहा है।' कुछ दिन बाद

गाँधीजीने अपने इस आश्वासनको पूरा भी कर दिखाया और जब कौंग्रेस और लीग राजनैतिक पचड़ोंमें व्यस्त थे गांधी नोआखालीके अत्याचार पीड़ितोंकी मरहम-पट्टी करनेमें संलग्न थे।

लीग मंत्रिमंडलमें—

लीगकी इन काररवाईयोंसे समस्त देश और विश्व आश्चर्यसे भर उठा। किन्तु इन भीषण हत्याकांडों और उनकी साधी कार्रवाईका नमूना देखनेके बाद भी वाइसराय बजाय लीगको राहपर लानेके उन्हें कौंग्रेसी-मंत्रिमंडलकी राहमें लानेका प्रयत्न करने पर लगे थे। अंतमें वाइसरायने मि० जिन्नाको राजी कर ही लिया और २६ अक्तूबरको लीगके ५ मन्त्री कैबिनेटमें रख लिये गये। कैबिनेटमें शामिल होनेके लिए १६ जूनके वक्तव्यके साथ १६ मईका वक्तव्य मानना भी लीगके लिए जरूरी था। इसके मानने का अर्थ यह होता कि लीग विधान परिषद्में भी शरीक होगी। कौंग्रेसके मत्रियोंने वावेलसे इस बातको पूछा भी और उन्हें तब यही उत्तर दिया गया कि 'अन्तरकालीन सरकारमें शामिल होनेका अर्थ ही है कि १६ मईवाले वक्तव्यको लीग मंजूर करती है।'* किन्तु मंत्रिमंडलमें घुस जानेपर लीगने स्पष्ट रूपसे यह बतला दिया कि उसने १६ मई के वक्तव्यको कतई स्वीकार नहीं किया है और न वे कांग्रेस-मंत्रियोंके साथ मिलजुलकर कैबिनेटकी तरह ही काम करनेको आये हैं। 'वे तो इस बातको मानते हैं कि जैसे पहले की एग्जिक्युटिव कौन्सिल काम किया करती थी उसी तरह वे अब भी करेंगे।' फलतः लीगके मंत्री कांग्रेस कैबिनेटकी निजी मीटिंगोंमें कभी शरीक न हुए और अपनी भिन्नताको बनाये रहे। लीगके इस रवैयेसे साफ था कि कौंग्रेस और वे एकमत होकर एकसाथ नहीं चल सकते और न कभी चल ही सकेंगे। लीगका तो दृढ़ निश्चय ही था कि वह विदेशियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंसे भले ही मेल कर ले, लेकिन कौंग्रेस और

---

*डा० राजेन्द्र बाबू, आत्मकथा—पृष्ठ ६५१

हिन्दुओंसे मेल न करेगी, कभी न करेगी। अन्यथा उसका 'दो-राष्ट्र' का सिद्धान्त और 'भारतके विभाजन' की माँग—जिसके पीछे साम्राज्यवादी चर्चिल, एमरी और वावेल जैसे अँग्रेजोंका भी उन्हें सहारा प्राप्त था, जहाँकी तहाँ धरी न रह जाती।*

बढ़ते हुए दंगे

वाइसरायने लीगको मंत्रिमंडलमें घुसानेका बहाना तो यह किया था कि ऐसा करना दंगोंको रोकनेके लिए आवश्यक हो गया था। लीग के मंत्रीमंडलमें लाने का उल्लेख करते हुए लार्ड पेथिक लारेन्सने यही भाव 'महात्मा गांधी' नामक पुस्तकमें प्रकट किये हैं (पृष्ठ-१८४)। किन्तु क्या दंगे रुके? लीग ने समझ लिया था कि ब्रिटिश सरकार उनके ध्येय और उनके 'दो राष्ट्र वाद' को शनैः शनैः आगे बढ़ानेमें योग देती जा रही है, इसलिए जब तक भारतका एक खंड टूट कर पाकिस्तान नहीं हो जाता तब तक दंगोंका रुकना उनके लिए हितकर नहीं है। यही कारण था कि मंत्रीमंडलमें घुसने के बावजूद लीगका रुख बदल नहीं सका और वे अपनी सीधी कार्रवाई और चंगेजखाँ व हलाकूके पथ पर आरूढ़ ही रहे।

---

*चर्चिलका कन्जरवेटिव दल आज भी हिन्दुस्तानके विरुद्ध पाकिस्तानको बढ़ावा देने पर लगा हुआ है, लन्दन, सितम्बर १६ ता० का समाचार है (अमृतबाजार पत्रिका १ अक्तूबर १९४९) कि कन्जरवेटिव दलने अपने आगामी सालाना कान्फ्रेन्सके लिए, जो अगले महीने होगा, एक प्रस्ताव यह रखा है कि कन्जरवेटिव सरकार स्थापित होनेपर उसे पाकिस्तानके सीमान्तोंकी सुरक्षाके लिए आश्वासन देना चाहिये।

इसी तरह परसाल चर्चिल आदिने हैदराबाद (दक्षिण) के मामलेमें भी हिन्दुस्तानके विरुद्ध पाकिस्तानको निष्फल योग देनेका प्रयत्न किया था।

इन रक्त-रंजित दंगोंका समाचार सुनते-सुनते गाँधीजीने अन्तमें यह निश्चय किया कि बजाय सरकार पर निर्भर रहनेके उन्हें स्वयं ही उन क्षेत्रोंमें जाकर आपसी मेल-जोल और प्रेम-भाव उत्पन्न करना चाहिये। अतः २८ अक्तूबर १६४६ को गांधीजी दिल्लीसे नोआखालीके लिए रवाना हो गये लेकिन कलकत्ते पहुँचने पर ५ नवम्बर तक वहीं ठहरे रहे।

इस बीच कलकत्तेके दंगेसे भागे हुए बहुत से बिहारके लोग अपने घर वापस चले आये। इन लोगों ने आकर बिहारवालोंको मुसलमान दंगईयोंके वे सब किस्से सुनाये जो उन्होंने देखे और सुने थे। इन किस्सों तथा अक्तूबरके मध्य में नोआखाली और त्रिपुरा आदि जिलोंकी भीषण खबरें सुनकर बिहारमें हड़-कम्प मच गया और वहाँके हिन्दुओंने प्रतिशोधमें भरकर मुसलमानोंको मारना-काटना और लूटना शुरू कर दिया। हिन्दुओंका यह प्रतिशोध भी बहुत ही भयंकर और भीषण था। इस बलवेकी खबर पाकर प० नेहरू, सरदार पटेल और लीगी मंत्री मि० लियाकत अली और सरदार-निश्तर—जो उस समय बंगाल की हालत देखने कलकत्ते गये थे, वापसीके समय पटनेमें रुक गये। इनमें से सरदार पटेल और मि० लियाकत अली जरूरी कामसे दिल्ली लौट आये, लेकिन प० नेहरू और सरदार निश्तर कुछ दिन बिहारमें ही ठहर गये। पं० नेहरू और डा० राजेन्द्र बाबूने दंगोंका दबानेके लिए काफ़ी दौड़-धूप की। कहते हैं दंगईयोंको डरानेके लिए पं० नेहरूने यह धमकी भी दी कि ऐसी बर्बरता सहन नहींकी जा सकती और यदि दंगोंको दबानेके लिए केन्द्रीय सरकारको हवाई जहाज से बम भी गिराने पड़ेंगे तो वे हिचकेंगे नहीं। पं० नेहरूके इस वक्तव्यसे गांधीजीको क्षोभ हुआ और उन्होंने प्रार्थना-सभाको दिये संदेशमें यह प्रकाशित किया कि वह तरीका ब्रिटिशका है और सेना द्वारा दंगोंको रोकनेका अर्थ भारतकी आजादीको रोकना होगा। किन्तु क्या इस ऊँचे आदर्शको माननेकी किसी में क्षमता थी? किसीमें हो या न हो लेकिन गांधीजीमें अवश्य थी, और नोआखाली, कलकत्ते व दिल्लीमें शान्ति स्थापित करके उन्होंने उस आदर्श

का जीवित स्वरूप भी विश्वके सामने प्रकट करके रख दिया था। अतः कहना पड़ेगा कि मनुष्य अपनी कमजोरी और स्वार्थपरताको छोड़नेके भयसे ही जीवन के सरल सत्योंको, भीमकाय आदर्शोंमें बदल देता है और दलील पेश करता है कि वे आदर्श छोटे मनुष्योंके लिए नहीं बल्कि देवता और महात्माओंके लिए ही सुरक्षित हैं। पर यदि मनुष्य अपने छोटे स्वार्थों और निजी लाभोंका त्याग कर दे तो गांधीका जीवन इस बातका साक्षी है कि एक सरल सीधा और साधारण काय तथा मस्तिष्कका आदमी भी महात्मा और अवतार बन सकता है।

बिहारमें शांति

बिहारमें जिस समय बलवा चल रहा था, गांधीजी कलकत्तेमें ही ठहरे हुए थे। अतः रोज ही उन्हें हिन्दुओंके प्रतिशोधकी कहानियाँ सुननेको मिला करती थीं। इन कारुणिक गाथाओंसे गांधीजीका हृदय करुणासे भर उठा। हिन्दुओंकी प्रतिहिंसासे उद्विग्न होकर आखिर उन्होंने ५ नवम्बरको पं० नेहरूको सूचित किया कि बिहारके समाचारोंने मुझे डाँवाडोल कर दिया है।... ता० ६ नवम्बरको गांधीजी नोआखाली चले गये। वहाँ भी उन्हें बिहारवालोंके प्रतिशोधकी कहानियाँ सुननेको मिलती रहीं। इन कहानियोंसे ऊबकर और दुःखी होकर गाधीजीने कहा —"बिहारवालोंने कायरता दिखाई है। अगर उन्हें प्रतिशोध लेना था, तो वे नोआखाली जाकर प्राण दे सकते थे। लेकिन हजारों हिंदुओं का मिलकर मुट्ठी भर मुसलमानोंको मार डालना — प्रतिशोध नहीं अत्याचार है।" अतमें गांधीजीने नोआखालीसे यह घोषणाकी कि यदि बिहारमें बलवा न रुका तो वे आमरण अनशन करेंगे। इस घोषणाका जादूका-सा असर हुआ और अपने पूज्य नेताको खो देनेके भयसे बिहारके हिन्दुओंके हाथ जहाँके तहाँ रुक गये और बलवा सहसा बन्द हो गया।

नोआखालीमें शांति

६ नवम्बर १९४६ को गांधीजी कलकत्तेसे नोआखाली चले गये। १९४६

और १९४७ के शीतके दिन पूर्वीय बंगालमें ही शांति-स्थापनाके लिए घूमते हुए बीते। पूर्वी-बंगालके विनाशके दृश्योंको देखकर गांधीजीका हृदय पीड़ासे कराह उठा। गोपेरबाग (चौमुहानीके पास नोआखाली जिला,) के विनाशकारी दृश्यको देखकर तो गांधीजी रो पड़े। ७ नवम्बरको वे इस गाँवमें पहुँचे थे। इसके बाद वे दूसरे-दूसरे गाँवोंमें गये और १५ नवम्बरको नन्दनपुर पहुँचे। यहाँकी हालत देखकर गाँधीजीने कहा था 'जहाँ कहीं भी मैं गया हूँ, सर्वत्र मुझे विनाशके दृश्य दिखायी दिये हैं। मेरी आँखों में तो अब आँसू ही नहीं रहे जो बाहर निकलें।' वेदनाके इन शब्दोंसे समझा जा सकता है कि क्या हालत वहाँ की हो चली होगी?

२० नवम्बरको गांधीजी श्रीरामपुर पहुँचे। कुछ समयके लिए गांधीजी ने इसी स्थानको अपना शिविर बनाया। एक महीने यहाँ रहकर उन्होंने मुसलमानोंमें हृदय परिवर्तन और भय-त्रस्त हिन्दुओंमें धीरज और विश्वास उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया और अपने दलके शेष लोगोंको आस-पासके गाँवोंमें अहिंसा और एकताके प्रचार करनेको भेजा।

मदरासके प्रसिद्ध 'हिन्दू' पत्रके संवाददातासे बातें करते हुए गाँधीजीने अपने श्रीरामपुर जानेके उद्देश्यपर प्रकाश डालते हुए कहा था—"मैं यहाँ अपने कुछ नये प्रयोग करूँगा। जिनमें मेरी अहिंसा की सच्ची परीक्षा होगी। यदि मुझमें काफी साहस होगा और उस साहसको मैं अपनी अहिंसासे मिला सका तो मैं हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंको प्रभावित कर सकूँगा। यहाँ मैं अकेले गाँवोंका भ्रमण करूँगा...और मेरे दलके सभी लोग अलग-अलग गाँवोंमें जाकर अहिंसा तथा साम्प्रदायिकताका प्रचार करेंगे।'

गाँधीजीने श्रीरामपुरमें पहुँचनेपर एक वक्तव्य भी प्रकाशित किया जिसमें प्रतिज्ञापूर्ण शब्दोंमें उन्होंने यह घोषित किया था कि—"मेरा उद्देश्य यहाँ एक महीने तक रहकर अपने जीवनके महान ध्येय साम्प्रदायिक एकताके लिए अंतिम प्रयत्न करनेका यदि आवश्यक हुआ तो मैं अपने प्राणभी विसर्जित कर दूँगा।"

इसमें सन्देह नहीं कि गाँधीजीने अपनी प्रतिज्ञानुसार अपने ध्येयको पूरा करके ही विश्राम लिया। उनके भाषणों और उपदेशोंने सचमुच हिन्दू और मुसलमान दोनोंको खूब प्रभावित किया। मुसलमानोंके हृदयोंमें उन्होंने अपने अत्याचारोंके प्रति पश्चातापकी भावना जगायी और हिन्दुओंमें नैतिक साहस एवं विश्वास उत्पन्न किया। इस चमत्कारके फलसे ही २३ नवम्बरको गांधीजीकी उपस्थितिमें हिन्दू-मुसलमानोंका एक सम्मेलन हुआ और यह निश्चय किया गया कि हिन्दू शरणार्थियोंको फिरसे बसानेके लिए शांति-कमेटियाँ बनाई जायँ। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानोंके बीच रहते और घूमते हुए गाँधीजीने पूरा एक महीना श्रीरामपुरमें व्यतीत किया। २० सितम्बरको श्रीरामपुरमें रहते और घूमते हुए गाँधीजीका एक महीना पूरा हुआ। गाँधीजीने अब यह निश्चय किया कि आगे वे गाँव-गाँवकी पैदल यात्रा शुरू करेंगे। लेकिन इसी समय मंत्रिमंडलके काँग्रेसी सदस्य और नेता गाँधीजीसे परामर्श करनेको श्रीरामपुर आने वाले थे, अतः उन्होंने काँग्रेसी नेताओंके आगमन हो जानेके बाद ही १९४७ के नये वर्षके आरम्भसे अपनी पैदल यात्रा शुरू करने का निश्चय किया।

राजनैतिक अड़चन

हम कह आये हैं कि मुस्लिम लीग अक्तूबरमें मंत्रिमंडलमें शामिल हो गयी थी। काँग्रेसने समझा था कि शायद मुस्लिम लीग विधान-सभामें भी शामिल होगी। लेकिन अन्ततः लीग विधान-सभामें शामिल होनेको तैयार न हो सकी। मुस्लिम लीग चाहती थी कि प्रान्तोंके जो गुट बने हैं वे उसी तरहसे अलग राजनैतिक इकाईके रूपमें रहें। लेकिन काँग्रेसका कहना था कि प्रान्तोंको किसी गुटमें शामिल होने या न होनेकी छूट रहनी चाहिये। मुस्लिम लीग और काँग्रेसमें पैदा हुई इस 'जिच' का हल निकालनेके लिए ब्रिटेनके प्रधान मंत्री एटलीने पं० नेहरू, मि० जिन्ना, बलदेवसिंह और लियाकतअलीको इंगलैंड भी बुलाया; किन्तु फिर भी समस्या न सुलझ सकी। इसपर ब्रिटिश कैबिनेटने ६ दिसम्बरको

अपनी ही ओर से एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें यह कहा गया था कि प्रान्तोंके विभागोंमें शुद्ध बहुमतसे वोट लिये जायँगे और यदि विधान ऐसी विधान-निर्मातृ सभाके द्वारा बनाया गया जिसमें देशकी जनताके एक वृहत्तर भागका प्रतिनिधित्व नहीं हुआ हो तो वह विधान अनिच्छुक जनताके ऊपर लादा न जायगा।

इस स्थितिमें ६ दिसम्बरको जब विधान-निर्मातृ सभा बैठी तो मुस्लिम लीग उसमें शामिल न हुई। पं० नेहरूने इस प्रथम बैठकमें स्वतंत्रताकी घोषणाका प्रस्ताव पेश किया और सभापतिका चुनाव आदि करनेके बाद सभा विसर्जित कर दी गयी।

कॉंग्रेसके नेता मुस्लिम लीगकी इस अड़चनकी नीतिसे यह समझ गये कि लीग जैसा कि मि० जिन्ना हमेशासे कहते आये हैं, भारतके लिए एक विधान नहीं दो विधान चाहती है। ब्रिटिश सरकारके ६ दिसम्बरके वक्तव्यसे भी लीग को अपनी इस नीतिपर चलनेका बल प्राप्त हो गया। वक्तव्यमें साफ कह दिया गया था कि यदि जनताका एक बड़ा भाग किसी विधान बनानेवाली सभामें शामिल न हो तो उसका बनाया विधान शामिल न होनेवाली जनतापर लादा न जायगा। कॉंग्रेसके नेता स्थितिको अधिकाधिक उलझते देखकर आखिर अपने गुरु, नेता और दार्शनिक गांधीजीकी सलाह लेनेको विकल हो उठे। अतः २७ दिसम्बरको राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और कॉंग्रेसके प्रधान मंत्री श्री शंकररावदेव श्रीरामपुर पहुँचे। २ दिन तक इन नेताओंने गांधीजीसे परामर्श किया और ३० दिसम्बरको वापस लौट आये। गांधीजीके परामर्शानुसार ५-६ जनवरीको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने यह निश्चय किया कि ब्रिटिश सरकारका ६ दिसम्बरका वक्तव्य मान लिया जाय, और आसाम तथा सीमाप्रांत गुटोंमें शामिल हों, परन्तु आगे यदि यह देखा जाय कि बहुमत दलके शासनमें अल्पसंख्यकोंके प्रति उचित व्यवहार नहीं होता और जबरदस्ती मनमाना विधान लादा जाता है, तो उस दशामें ये प्रान्त गुटसे निकल आवें।

गुटमें शामिल होनेके प्रश्नपर १६ दिसम्बरको आसामके दो प्रमुख कॉंग्रेसी

भी प्रान्तोंके गुटमें शामिल होनेके प्रश्नपर गांधीजीसे सलाह लेनेको उनके पास पहुँचे थे। उस समय भी उन्होंने यही सलाह दी थी कि यदि आसामवाले और सिख गुटमें शामिल होना उचित न समझें तो उन्हें विरोध प्रकाशितकर विधान-सभासे हट जाना चाहिये।

गांधीजीकी इस सलाह और अ॰भा॰ कॉं॰ कमेटीके प्रस्तावको देखकर लीगको यह लगा कि प्रान्तोंके गुटके टूटनेसे उनका पाकिस्तान ही टूट जायगा, इसलिए वे भारतकी विधान सभामें शामिल न होनेके लिए और दृढ़-प्रतिज्ञ हो गये।

इस बीच ब्रिटिश सरकारने २० फरवरीको यकायक यह घोषणा की कि जून १९४८ में वे भारतको छोड़ देंगे, किन्तु 'सत्ता' को वे किस प्रकारसे सौंपकर जायँगे, इसपर वे समुचित ध्यान रखेंगे। इस घोषणासे हिन्दुस्तानमें एक नया वातावरण अवश्य उत्पन्न हुआ, लेकिन लीग और कॉंग्रेसमें तब भी कोई समझौता होता न नजर आया। फलतः चीजें जहाँ की तहाँ ही बनी रहीं, और राजनैतिक मनमुटाव और जिसके साथ-साथ लीग द्वारा उभाड़ी गयी हिंसा गांधीजीके शीतल-स्पर्शके बावजूद सुलगती ही चली गयी।

शांति-दूत गांधी

किन्तु हिंसा और द्वेषके इस उत्तप्त वातावरणमें भी गांधीजी शांति और निर्भीकताके साथ पूर्वी-बंगालमें अहिंसा और साम्प्रदायिक एकताके प्रचारमें लगे ही रहे। वे अपने उदाहरणसे यह साबित करना चाहते थे कि यदि "मेरे सदृश ७८ वर्षका बूढ़ा अहिंसाको अमलमें ला सकता है तो दूसरे लोग क्यों नहीं अमल में ला सकते......लोग मुझे 'महात्मा' कहते हैं। परन्तु मैं यह बता देना चाहता हूँ कि मैं अपनेको महात्मा नहीं समझता। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। मेरा हृदय गरीबों और उनके कष्टोंके लिए रोता है। मैं तो समस्त मानव जातिका एक तुच्छ सेवक हूँ" (१६ दिसम्बर—प्रार्थना-सभा श्रीरामपुरमें दिया भाषण)।

पहले कहा जा चुका है कि गांधीजीने श्रीरामपुरमें १ महीने ठहरनेके बाद गाँव-गाँव पैदल यात्रा करनेका निश्चय किया था। तदनुसार ता० ३० दिसम्बरको काँग्रेसी नेताओंके श्रीरामपुरसे विदा होनेपर २ जनवरी १९४७ से गांधीजीने अपनी पैदल यात्रा शुरूकी। हिन्दीके पत्रकार पं० रामकिशोर मालवीयके शब्दोंमें गांधीजीकी यह पैदल यात्रा जिसे वे 'तीर्थ-यात्रा' मानते थे "वर्तमान युगके अद्वितीय शान्ति-दूतका केवल नोआखालीके ही लिए नहीं वरन् अप्रत्यक्ष रूपसे समस्त-भारतके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकताका निःसन्देह एक परम अद्भुत और अभूतपूर्व प्रयोग था।"*

गांधीजीकी यह यात्रा २ जनवरीसे १७ फरवरी तक जारी रही। इस बीच गांधीजीने नोआखालीके ४० गाँवोंकी पैदल यात्राकी। इसके बाद गांधीजीका विचार टिपरा जिलेमें जानेका हुआ, किन्तु बिहारको जाना जरूरी समझकर यह यात्रा स्थगित कर दी गयी और मार्चमें गांधीजी बिहार चले आये। गांधीजीने नोआखालीमें आनेका अपना ध्येय हिन्दुओंमें विश्वास और मुसलमानोंमें पश्चातापका उद्रेक करना बतलाया था। निःसंदेह उनके अद्भुत प्रचारसे उनके दोनों ही उद्देश्य सफल हुए और भीषण मारकाट वा उत्पातोंके बाद वहाँके हिन्दू और मुसलमानोंमें पुनः मेल और विश्वासके भाव पैदा हो गये। फलस्वरूप हिन्दू लोग अब लौट-लौटकर पुनः अपने टूटे-फूटे मकानोंमें मुसलमानोंके बीच ही रहने लगे तथा उनके मन्दिरोंमें भी शंख तथा घण्टोंकी ध्वनि भी प्रतिध्वनित होने लगी जो इस बातका द्योतक थी कि हिन्दुओंमें पुनः विश्वासकी भावना पैदा हो गयी है। दूसरी ओर मुसलमान स्वयं हिन्दुओंके लूटे मालको ला-ला वापस करने लगे जो इस बातका प्रमाण था कि मुसलमानोंमें अपने किये पर पश्चाताप है और उसका वे अब प्रायश्चित करना चाहते हैं। बादलकोटमें (यहाँ गांधीजी १८ जनवरीको पहुँचे थे) वहाँके मुस्लिम नेता मोहम्मद आसफ

---

*महात्मा गांधीकी नोआखाली यात्रा, पृष्ठ—४५

भूयाँने एक संवाददातासे कहा था—'मुसलमानोंका फर्ज है कि वे महात्मा गांधीके शांति और सुलह प्रयत्नको सफल बनावें। जो कुछ हुआ है वह सब हमें भूल जाना चाहिए।...हिन्दुओंके लूटे गये मालको हम लोगोंने कई जगहोंसे ढूँढ कर निकाला है।...और हिन्दुओंको वापस किया है।"

शांति-दूत महात्मा गांधीने नोआखालीमें अपना यह अद्भुत चमत्कार दिखलाकर आजकी युद्ध-पीड़ित मानवताके लिए भी शांतिका मार्ग इंगित कर दिया है। इंगलैंडके राजनीतिज्ञ मि० होरेस एलेकजेंडरने गांधीजी की इस यात्राका उल्लेख करते हुए कहा था—"गांधीजी पूर्वी बंगालमें जिस परस्पर भाई-चारे, सहिष्णुता और एकताका प्रचार कर रहे हैं और घर-घर इसका संदेश पहुँचा रहे हैं, वह केवल बंगाल तथा भारतके लिए न होकर वर्तमान समस्त संसारके लिए है और मेरा विश्वास है कि संसारको स्थायी-शांतिके लिये यही मार्ग अनुसरण करना होगा।"

नये वाइसराय लार्ड माउन्ट बैटन

इसी समय मार्चमें लार्ड वावेल वापस चले गये और उनकी जगह लार्ड माउन्ट बैटन वाइसराय होकर हिन्दुस्तान आये। अँग्रेजी वाइसरायोंकी शृंखला में वे अन्तिम वाइसराय हुए हैं। उन्होंने आते ही अपने प्रथम वक्तव्यमें स्वयं यह प्रकट किया कि वे आखिरी वाइसराय के रूपमें यहाँ आये हैं और भारतीयों को सत्ता सौंपकर चले जायँगे।

इस परिवर्तनके समय गांधीजी बिहारमें शांति प्रचार के कार्यमें लगे थे। १३ मार्चको पटनामें भाषण करते हुए उन्होंने हिन्दुओंसे कहा कि उन्हें अपने मुसलमान भाइयोंको फिरसे अपने साथ बसाना चाहिए और उनके लूटे हुए धन-मालको वापस कर देना चाहिये। मुसलमानोंमें विश्वास पैदा करनेके लिए, गांधीजीने कहा, हिन्दुओंको स्वयं मुसलमानोंके नष्ट-भ्रष्ट किये मकानोंकी मरम्मत करनी चाहिये ताकि मुसलमान-भाई अपने घरोंको वापस आ सकें।

उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि यदि वे इस तरहसे आपसमें मेल न स्थापित करेंगे तो नये वाइसराय ने जो वायदा किया है, उसे वे इन झगड़ोंके कारण तोड़ सकते हैं।

गांधीजीको इस बीच कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी बढ़ती तनातनीसे यह भय भी पैदा हो गया था कि शायद हिन्दू और मुसलमान आपसकी फूटसे हिन्दुस्तान को तोड़-फोड़कर ही चैन लेंगे। बंगालके विभाजित करनेके बारेमें २३ मार्च १९४७ को हरिजनमें उन्होंने लिखा था—विभाजन के वे हमेशा विरोधी रहे हैं; लेकिन भाइयोंका आपसमें लड़ना और विभक्त होना दोनों ही असाधारण बात नहीं कही जा सकती। अगर हिन्दू जबरदस्ती दूसरोंको साथ रहने पर विवश करें तो इसका वे विरोध करेंगे। वे जबरन एकता और जबरन बँटवारेके विरोधी हैं। इसमें संदेह नहीं कि ब्रिटिश यहाँसे जा रहे हैं। हिन्दू और मुसलमानोंको इसलिए आपसमें मेल और शांति से रहना चाहिये। अन्यथा गृहयुद्ध अनिवार्य है, जिससे सारा देश टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। लेकिन क्या हिन्दू और मुसलमानोंने शांति दूतकी इस कोमल-कठोर वाणी को सुना? सुना होता तो आज भारत खंडित न हुआ होता।

अन्तर-एशिया सम्मेलन

अप्रैलमें दिल्लामें अन्तर-एशिया सम्मेलन हुआ, अतः प० नेहरूके दबाव डालने पर बिहारकी तीर्थ-यात्राका थोड़े समयके लिए स्थगित कर गांधीजी सम्मेलनमें भाग लेनेको दिल्ली आये। महात्मागांधीने एशियाके एकत्र हुए प्रतिनिधियोंको संदेश देते हुए कहा कि यदि वे भारतकी आत्माका दर्शन करना चाहते हैं, तो उन्हें पश्चिमके रंगमें रँगे शहरोंके बजाय भारतके सात लाख गाँवोंमेंसे किसीको देखना चाहिये। जगतके सभी प्रसिद्ध धर्म-गुरु पूरबमें हुए हैं। अतः गांधीजीने कहा कि एशियाको पुनः पश्चिमी-जगतको उन गुरुओंका संदेश देना चाहिए जो कि प्रेम और सत्यका संदेश है।

इस सम्मेलनके बाद गांधीजी पुनः बिहार चले आये और फिर से शान्ति स्थापनाके कार्यमें जुट गये। इसी समय गांधीजीने मि० जिन्नाके दस्तखतोंके साथ एक अपील भी निकाली जिसमें कहा गया था कि 'हम राजनैतिक उद्देश्यों की प्राप्तिके लिए हिंसाका प्रयोग निषिद्ध समझते हैं, और सभी जातियोंके लोगोंको चाहिए कि वे हिंसा और अशान्तिके कार्योंसे ही दूर न रहें अपितु बोलने और लिखनेमें भी उन बातोंका खयाल रखें जिनसे ऐसे कार्योंको उत्तेजना मिलती है।'

स्वतंत्र हिन्दुस्तान व पाकिस्तान

लेकिन इस अपीलके बावजूद मुस्लिम लीगसे हिंसाका मार्ग न छोड़ा जा सका। उन्हें पाकिस्तान चाहिए था—और इसके लिए वे मारने तथा मरनेको तैयार थे। अतः गांधीजीकी लाख कोशिश करनेके बाद भी लीग कांग्रेसके साथ न मिली और भारतको खंडित करके ही उसने दम लिया। लीगकी इस मनोवृत्तिको समझकर ही पं० नेहरूने १६ अप्रैलको एक वक्तव्यमें साफ प्रकट किया कि "कुछ लोग हमारे साथ मिलकर चलना नहीं चाहते...अब समय आ गया है जब कि हमें निश्चय करना है कि क्या हम अखण्ड भारत चाहते हैं या खंडित। सिंबने ऐलान किया है कि वे अँग्रेजोंके जानेके बाद जून १६४८ में स्वतंत्र हो जायँगे। यदि पंजाब और बंगाल विभक्त होना चाहते हैं तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। नेताओंको इन समस्याओंका अब हल निकालना चाहिये।"

इस हल को निकालने के लिए मई १६४७ में लार्ड माउन्टबैटन ने कांग्रेस, लीग और सिखों के नेताओं से परामर्श किया और उसी महीने के अन्त में भारत मंत्री लार्ड लिस्टोवल (अप्रैल के अन्त में लार्ड पेथिक लारेन्स की जगह नियुक्त हुए थे) से मिलने लन्दन चले गये। परामर्श के बाद हिन्दुस्तान लौटने पर ३ जून को वाइसराय ने तब अपने सुझावोंवाला वक्तव्य प्रेषित किया। यही वक्तव्य उस दिन विलायत में भी प्रेषित हुआ।

इस वक्तव्य में पाकिस्तान की माँग तथा बंगाल और पंजाब के प्रान्तों के विभाजन को स्वीकार किया गया था। सिलहट जिले के बारे में कहा गया था कि वहाँ इस बात के लिए जन-मत लिया जायगा कि वह आसाम में रहना चाहेगा या पूर्वी बंगाल में। वक्तव्य में यह भी घोषित किया गया था कि विधान या विधानों के बनने के समय तक भारत का स्थान 'डोमिनियन' का रहेगा और उसके बाद भारतीयों की जैसी इच्छा होगी वे वैसा कर सकेंगे।

ब्रिटिश सरकार के इस सुझाव को कांग्रेस के नेता पं० नेहरू, लीग के नेता मि० जिन्ना और सिख-नेता बलदेवसिंह तीनों ने स्वीकार किया। विलायत में भी कॉमन्स और लार्ड सभा दोनों ने ही उक्त वक्तव्य को पास किया। फलतः ३ जून के वक्तव्य के आधार पर कुछ ही समय के अन्दर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 'इन्डियन-इन्डिपेन्डेन्स ऐक्ट' (भारतीय-स्वतन्त्रता-ऐक्ट) भी पास कर दिया जिसमें यह कहा गया था कि १५ अगस्त १९४७ को भारत में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान नाम से दो स्वतंत्र राज्य कायम किये जायेंगे, भारतीय सेना का बँटवारा किया जायगा और बंगाल तथा पंजाब दो भागों में बाँट दिये जायँगे।

स्वतन्त्रता दिवस

इस निर्णय के अनुसार १५ अगस्त को ब्रिटेन के आखिरी वाइसराय ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को सत्ता सौंप दी और दोनों जगह जनता ने धूम-धाम से अपनी स्वतन्त्रता का दिन मनाया?

किन्तु इस 'स्वतंत्रता' में स्वतंत्रताका जो असली स्वाद था वह किसीको अनुभूत न हो सका। आखिर यह आजादी मेलसे नहीं वैमनस्यके आधारपर आयी थी जिसने भारतके दो टुकड़े करके छोड़े। अतः भारतकी अन्तर-आत्मा इस आजादीसे हर्षोत्पन्न हो ही कैसे सकती थी। यही कारण था कि भारतकी आत्माके प्रतीक महात्मा गांधी स्वतंत्रता दिवसके हर्षोल्लासमें योग न दे सके,

यद्यपि भारतको विदेशी सत्तासे मुक्त कराने और अँग्रेजोंको भारतसे विदा कराने का सर्वतः श्रेय उन्हींको था।

भारतके खंडित किये जानेका गांधीजीने आखिर तक विरोध भी किया था। लेकिन जब विवश होकर काँग्रेसके नेताओंने विभाजन स्वीकार कर लिया तो गांधीजीने भी दुःखके साथ उसे मान लिया। तिसपर भी उनका यह विश्वास बना ही रहा कि यह बँटवारा अवास्तविक है और एक दिन आयेगा जब कि यह बँटवारा समाप्त कर दिया जायगा और भारत फिरसे एक होगा।

तो क्या गांधीजीकी यह पुण्यमयी आशा किसी दिन पूरी हो सकेगी?— भविष्यका इतिहास ही इसका उत्तर दे सकेगा!

———

अध्याय—२८

मसीहा फिर सूलीपर

१५ अगस्तके बाद

१५ अगस्त १९४७ को हिन्दुस्तान आजाद हो गया। लेकिन उत्फुल्ल मनसे न तो हिन्दुस्तान ही खुशी मना सका और न पाकिस्तान ही। सभीके मन देशके खंडित किये जानेसे भारी हो रहे थे। विशेषकर बंगाली और सिख जिनके प्रान्तोंको खंडित किया जाना तय हुआ था—दुःख और आशंकासे उद्विग्न थे।

असल में यह बँटवारा हिन्दू, मुसलमान और सिख किसीको भी सुखदायी प्रतीत न हुआ। लीगी मुसलमान पाकिस्तानके अन्तर्गत पूरे पंजाब और बंगाल को चाहते थे—वह हुआ नहीं, अतः उन्हें जो मिला उससे वे असन्तुष्ट बने ही रहे। हिन्दू-जनता भी खंडित आजादीको पाकर दुःखी हो चली। देशका बँटवारा महती जनताको पसन्द न आ सका। बंगाली और सिखोंका तो अपने प्रान्तोंको बँटता देखकर दिल ही टूट गया। अतः कांग्रेस लीग और सिखोंके नेताओंने जिस पारस्परिक असन्तोष और द्वेष-भावको मिटानेके हेतु देश और प्रान्तोंका बँटवारा निश्चित किया था, वह ध्येय सफल न हो सका।

पंजाबका भीषण दंगा

इस स्थितिमें आपसी द्वेषाग्निका फूटना स्वाभाविक ही था। पाकिस्तानके बनते ही जब यह निश्चित हो गया कि पंजाबका आधा हिस्सा—पश्चिमी भाग, पाकिस्तानमें मिला दिया जायगा, तो सिखोंके हृदय रोष और सन्तापसे भर उठे। सिखोंके लिए पंजाब ही मातृभूमि और सर्वस्व है। वही पंजाब जो उनका घर था, लीगकी साम्प्रदायिक तलवारकी भेंट हो गया। अतः सिखोंके

दिल स्वभावतः रोषसे भर उठे। दूसरी ओर लीगी पंजाबके आधे हिस्सेको पाकिस्तान मान बैठे थे। अतः उन्हें सिखोंके मनोभाव लीग और पाकिस्तान-विरोधी प्रतीत हुए। इसीलिए पाकिस्तानी मुसलमानोंने सिखोंको मुस्लिम विरोधी और पाकिस्तानका दुश्मन घोषित किया। फलतः खंडित आजादीका बीभत्स रूप सबसे पहले पंजाबमें प्रकट हुआ। वहाँके हिन्दू और मुसलमान तथा सिखोंमें भयंकर राक्षसी मारकाट शुरू हो गयी। मुसलमानोंने हिन्दू और सिखोंको मारा उनके घर लूटे और जलाय तथा सिखों और हिन्दुओंने भी जहाँ उनसे हो सका वही हाल मुसलमानोंके किये। परिणामतः वहाँ ऐसा भीषण बलवा और नरसंहार हुआ कि उसकी कहानी सुनकर सारी दुनिया ही चकित हो उठी।

पंजाबका भीषण अभूतपूर्व दंगा २४ फरवरी १९४७ को अमृतसरमें शुरू हुआ। दंगेको दबानेका कुछ यत्न किया भी गया, लेकिन सफल न हुआ। ४ मार्चको लाहौरमें भी हिन्दू-सिख और मुस्लिम दंगे शुरू हो गये। इसके बाद सारे पश्चिमी पंजाबमें ही दंगा मच उठा। हजारोंकी संख्यामें निरीह स्त्री-पुरुष और बच्चे दङ्गाइयोंने मार डाले। बेदर्दीके साथ स्त्रियोंपर बलात्कार भी किया गया और बहुत-सी स्त्रियाँ अपहृत की गयीं। ऐसा भीषण नरमेध और बलात्कार व अत्याचार भारतमें १९४६ में नोआखाली और कलकत्तेमें भी नहीं हुआ था। कलकत्तेके दङ्गेको राजेन्द्र बाबूने नादिरशाहके कत्लेआमसे मिलाया था लेकिन पंजाबके दङ्गों और सामूहिक कत्लेआम तथा स्त्रियोंके अपहरण और बलात्कारका मिलान करनेके लिए दुनियाके इतिहाससे किसी युग और आततायी का नाम नहीं लिया जा सकता। पंजाब एक बार पागल राक्षसोंके तांडवका क्रीड़ास्थल ही बन चला था और मालूम होता था मानवता वहाँ किसीमें रह ही नहीं गयी है।

पश्चिमी पञ्जाबमें लीगी मुसलमानोंने जो अधम कृत्य किये, उनकी प्रतिक्रिया पूर्वी पंजाबमें होना स्वाभाविक था। पूर्वी पंजाबमें मुसलमान अल्प संख्यामें थे। अतः पूर्वी पंजाबमें हिन्दू और सिखोंनेभी उसी राक्षसी बर्बरतासे मुसलमानों

को मारा लूटा और उनकी स्त्रियोंको अपहृत किया जैसा कि पश्चिमी पंजाबमें मुसलमानोंने किया था। इन भीषण दङ्गोंके फलसे हजारों और लाखोंकी संख्यामें हिन्दू-सिख और मुसलमान शरणार्थी बनकर पाकिस्तान और हिंदुस्तान में आने-जाने लगे।

मार्चके अन्तिम सप्ताहमें सरकारने इन दंगोंको रोकनेके लिए २० हजार सेना और हवाई जहाजोंके दो दल पंजाब भेजे। तब कहीं जाकर प्रान्तके टुकड़े किये जा सके और पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान और पूर्वीय हिन्दुस्तानमें मिलाया गया। इस बँटवारेके बाद भी दंगे न थमे। मुसलमानोंने अपने प्रान्तसे हिन्दू और सिखोंको मार भगाना शुरू किया और हिन्दुओं व सिखोंने अपने प्रान्तसे मुसलमानोंको खदेड़ा। इस स्थितिको देखकर भारत सरकारने सख्तीसे काम लिया और कुछ ही समयके भीतर पूर्वी पंजाबके दंगोंको रोक दिया, परन्तु लीगी सरकारके पश्चिमी पंजाबमें १९४७ के अन्त तक दंगे चलते ही रहे।

लीगका 'दो राष्ट्र'के सिद्धान्त और घृणा-प्रचारका ही यह भीषण प्रतिफल था। लीगने सोचा था कि इन दंगोंसे उसको फायदा होगा और हिन्दुस्तान नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। किन्तु दंगोंके परिणामसे दोनों ही दलोंको क्षति हुई और दोनों जगहकी सरकार अभी तक शरणार्थियोंको बसानेकी समस्यामें उलझी पड़ी है।

बंगालमें अशांति

पंजाब और सीमाप्रान्तके भीषण दंगोंका असर सारे भारत पर पड़ा और समस्त भारतमें उससे हड़कम्प मच उठा। किन्तु भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारोंकी दृढ़ता और सतर्कतासे हिन्दुस्तानमें ये दंगे जोर न पकड़ सके।

दंगोंका सबसे अधिक भय इस समय बंगालमें था। वहाँ पर लीगी-मंत्रिमंडलके जमानेमें ही दंगे शुरू हो गये थे। बंगालको भी पंजाबकी तरह बाँटा गया था, इसलिए वहाँ पर लोगोंमें रोषका बढ़ना स्वाभाविक था। लीगकी सीधी कार्रवाईके कारण और साथ ही पंजाबकी भीषण खबरोंसे भी बंगालमें रोषकी

ज्वाला बुझने न पाई थी। भय था कि पंजाबकी तरह बंगालमें पुनः १९४६ की भाँति दंगे न शुरू हो जायँ; लेकिन महात्मा गांधीके शीतल और शांत प्रभावने द्वेषाग्निकी लौ को फूटनेसे रोक दिया।

१५ अगस्तके कुछ ही दिन बाद गांधीजी पुनः नोआखाली जाना चाहते थे, किन्तु भू० पू० लीगी मंत्री सुहरावर्दीने उन्हें कलकत्तेमें ठहर जानेकी ही सलाह दी। अतः गांधीजी कलकत्तेमें ही रुक गये। उनके कलकत्तेमें रुक जानेसे हिन्दू और मुसलमानों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उनके प्रेम और एकताके वचनोंने विद्वेषसे भरे हिन्दू और मुसलमानोंके हृदयोंको धो डाला और दोनों परस्पर प्रेमसे गले मिलने लगे। परिणामतः १८ अगस्तको ईद के अवसर पर कलकत्तेके हिन्दू भी मुसलमानोंके त्योहारमें शामिल हुए।

किन्तु लीगका बोया साम्प्रदायिक कलहका बीज अभी भी बंगालकी भूमिमें मौजूद था। यकायक १ सितम्बर १९४७ को पुनः वह घृणाका बीज फूटा और फिरसे कलकत्तेमें भीषण दंगे शुरू हो गये। गांधीजी यह देखकर त्रसित हो उठे। श्रीरामपुरमें गांधीजीने एक बार कहा था कि साम्प्रदायिक एकताके लिए वे 'यदि आवश्यक हुआ तो प्राण भी विसर्जितकर देंगे।' अतः इस बार कलकत्तेके दंगोंको हमेशाके लिए समाप्त करनेको गांधीजीने पूर्वनिश्चयानुसार आमरण उपवास करनेका ऐलान कर दिया। ऐलानमें यह स्पष्ट कर दिया गया कि यह उपवास तभी समाप्त होगा जब कलकत्तेमें हत्याएँ होनी रुकेंगी। इस उपवासके ऐलानका जादू-भरा प्रभाव पड़ा और हत्यारोंने हत्या करनेसे अपने हाथ रोक लिये। तलवारों को दूर फेंक हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेके गले जा लगे और शान्तिके सम्राट गांधीजीने मुस्कराते हुए ७२ घंटेके बाद ही उपवासको समाप्त कर दिया।

गांधीजीके इस चमत्कारके सुपरिणामसे आज तक हिन्दू मुसलमानोंमें कलकत्तेमें पारस्परिक सौहार्द और स्नेह बना हुआ है और आशा की जाती है कि लीग का घृणित प्रचार वहाँसे हमेशाके लिए मिट गया है। महात्मा गांधीके इस महान् प्रयत्नसे हर्षित होकर लीगी पत्र 'मॉर्निंग न्यूज़' ने भी बिना

हिचकिचाहट के यह स्वीकार किया था कि गांधीजी 'मरनेको भी तैयार थे ताकि वे (मुस्लिम) जीवित रह सकें।'

और लन्दन टाइम्सके सम्वाददाताने गांधीजीके इस चमत्कारको देखकर यह कहा था कि उन्होंने वह कर दिखाया जिसे फौजोंकी कई टुकड़ियाँ भी न कर सकती थीं। इस प्रकार आखिर पश्चिमके लोगोंको भी गांधीजीने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि अहिंसा और प्रेमका अस्त्र—हिंसात्मक अस्त्र-शस्त्रोंसे कहीं ऊँचा, महान और कारगर है और निश्चय ही एटम बम्बको भी उनमें शीतल करनेकी क्षमता व शक्ति निहित है।

दिल्लीमें उपद्रव

पश्चिमी पंजाब, लायलपुर, खैरपुर और सीमाप्रान्तमें मुस्लिम लीगियोंके अत्याचार और अनाचारकी दर्दभरी कहानियों और समाचारोंने दिल्लीमें भी अशांति उत्पन्न कर दी। हिन्दुओं और पाकिस्तानसे भागकर आये हुए शरणार्थियोंमें रोष फैल उठा। लीगी मुसलमानोंने भी अपनी ओरसे भिड़नेकी पूरी तैयारी कर रखी थी। उन्होंने अपने पास अस्त्र-शस्त्र एकत्रित कर रखे थे। किन्तु अल्प संख्यामें होने के कारण मुसलमान निरुपाय हो गये और अपनी अधिक संख्याके बलपर हिन्दू तथा सिखोंकी बन आई? कहते हैं, दिल्लीमें सितम्बरमे जो दंगा हुआ वह राष्ट्रीय स्वयं-सेवक दल और पाकिस्तानसे आए हुए हिन्दुओं और सिखोंसे प्रारम्भ हुआ था।

सौभाग्यसे सितम्बरके अन्तमें गांधीजी दिल्ली पहुँच गये थे। अतः उनकी उपस्थिति और नेहरू सरकारकी सतर्कता तथा दृढ़ताके कारण दिल्ली पूरी तरहसे वीरान होनेसे बच गयी और शनैः-शनैः दंगोंकी उष्णता जाती रही। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तानमें हिन्दू और सिखोंपर आक्रमण होते रहनेके कारण दिल्लीकी स्थिति पूरी तरहसे सुधरने न पायी और भय तथा आतंक जैसा-का तैसा छाया रहा। फलतः इस स्थितिसे घबड़ाकर सैकड़ों मुसलमान दिल्लीको छोड़कर पाकिस्तान चले गये।

देशकी इस भयंकर दशाको देखकर गांधीजीका हृदय अब दुनियाकी तरफ़ से खट्टा हो चला। उन्हें लगा कि लोग अपने पागलपनमें मनुष्यताको भी खो बैठे हैं। अपनी प्रार्थना-सभाओंमें गांधीजी अब विशेषकर इन्हीं बातोंकी चर्चा करने लगे। पाकिस्तानसे हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानसे पाकिस्तान आने-जानेवाले करुण शरणार्थियोंकी दशा देखकर गांधीजीके हृदयको अकथनीय दुःख होने लगा। अपनी प्रार्थना-सभामें एक दिन उन्होंने इस विषयकी चर्चा करते हुए सलाह दी कि दोनों राज्यों को अपने यहाँ के अल्प-संख्यकोंकी रक्षाका दायित्व अपने ऊपर लेना चाहिये। इसी तरह उन्होंने रावलपिंडी और अन्यत्र पाकिस्तानमें रहनेवाले हिन्दू और सिखोंको सलाह दी कि चाहे वे सबके सब वहीं मर जायँ, लेकिन अपने घरोंको छोड़कर भागें नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि 'उनका विचार स्वयं बिना किसी रक्षा-दलके पाकिस्तानके प्रत्येक भागमें जानेका है। वे मुसलमानों और दूसरोंके मित्रके रूपमें ही वहाँ जायँगे। उनका जीवन उन्हीं लोगोंके हाथमें होगा, और यदि कोई उनका प्राण लेना चाहेगा तो वे खुशी-खुशी प्राण भी दे डालेंगे। ऐसा करके वह स्वयं उस बातको सिद्ध कर दिखायेंगे जो वे दूसरोंको करनेको कहते हैं।'

किन्तु अहिंसाके देवताके निर्देशोंके बावजूद दंगे पूरी तरहसे थम न सके। मुसलमानों और हिन्दू व सिखोंमें आपसी विद्वेष तब भी बना ही रहा। अतः जब २ अक्तूबरको ७८ वीं वर्ष-गाँठके उपलक्षमें छोटे और बड़े लोगोंने गाँधीजीके पास बधाइयाँ भेजीं तो उन्हें स्वीकार करते हुए उन्होंने यही कहा कि आज उनके हृदयमें सिवाय 'दर्द' के कुछ नहीं है। साथ ही उन्होंने, यद्यपि पहले वे १२५ वर्ष तक जीनेको कहा करते थे, यह भी प्रकट किया कि अब संसार उनके लायक नहीं रह गया है, क्योंकि चारों तरफ मारकाट और घृणाने वायुमण्डलको दूषित कर दिया है। अतः उन्होंने सबसे और विशेषकर हिन्दू तथा सिखोंसे यह अपील की कि वे इस पागलपन को समाप्त करें और पुनः देशमें शान्ति लावें।

अपराध किसीका भी रहा हो, लेकिन गांधीजी हमेशा हिन्दू और सिखों को ही

दंगोंको रोकने और समाप्त करनेके लिए कहा करते थे। हिन्दुस्तानके हिन्दू और सिखोंको वे नहीं चाहते थे कि पाकिस्तानका उदाहरण लेकर यहाँके अल्पसंख्यक मुस्लिमोंकी हत्यासे वे हाथ रंगें। वे हमेशा ही यह उपदेश देते रहे कि दूसरा यदि पाप करता है तो हमें उसीका जैसा आचरण नहीं करना चाहिये। अतः यदि पाकिस्तान घृणासे काम लेता है और वहाँके अल्पसंख्यक हिन्दू व सिखोंको निकाल बाहर करता है तो तब भी हिन्दुस्तानवालोंको ऐसा न करना चाहिये। इस प्रकार बदला लेना गांधीजीकी दृष्टिमें हिंसा करना ही था। क्योंकि प्रतिहिंसासे हिंसा तथा घृणासे घृणा ही तो पैदा होती है। इसीलिए गांधीजी बारम्बार हिन्दुस्तानके सिख और हिन्दुओंको यही उपदेश देते रहे कि वे पाकिस्तानकी तरह घृणा न बरतें और न अपने बीच रहनेवाले अल्पसंख्यक मुसलमानोंपर प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर किसी प्रकारका अत्याचार करें।

दुर्भाग्यवश, देवताकी बातोंको सुननेके लिए हिन्दुस्तानवालोंके कानभी तब बहरे हो चले थे। अपितु हिन्दू और सिख उनके उपदेशोंपर चलनेमें उल्टा अपना अहित ही समझ बैठे। अतः जब सीमाप्रान्तके हजारा और डेरा इस्माइल खाँके जिलोंमें हिन्दू और सिखोंपर वहाँके मुसलमानोंने भीषण प्रहार किये तो हिन्दुस्तान भी प्रतिहिंसासे भर गया। पश्चिमी पाकिस्तानके क्रूर दंगोंसे हिन्दुस्तानवालोंको यह प्रतीत होने लगा कि पाकिस्तानी किसी भी गैर-मुस्लिमको पाकिस्तानमें न रहने देंगे। इस विचारने बदलेकी भावना को और भी प्रज्वलित किया और परिणामस्वरूप यू० पी०, राजपूताना, मध्य-भारत, पंजाबकी रियासतों, काश्मीर और दक्षिण हैदराबाद तथा बम्बई आदिमें भीषण दंगे शुरू हो गये।

गांधीजीका अंतिम उपवास

दिल्लीपर भी इन दंगोंका प्रभाव पड़ा और वहाँका वातावरण पुनःभय और आशंकाओं से घिर गया! देशकी इस स्थितिको अब और अधिक सहना

गांधीजीके लिए कठिन हो चला। उन्होंने अब यही निश्चय किया कि वे साम्प्रदायिक एकताके लिए अपने प्राणोंको दे देंगे। फलतः हिन्दू, सिख और मुसलमानोंमें हार्दिक मैत्री स्थापित करनेके हेतु गांधीजीने १२ जनवरी १९४७ को यह ऐलान किया कि वे १३ जनवरीसे आमरण उपवास करेंगे और वह उपवास तभी खतम होगा जब कि उन्हें यह निश्चय हो जायगा कि सभी सम्प्रदायोंके हृदय बिना किसी बाहरी दबावके स्वतः मिल गये हैं। वक्तव्यमें गांधीजीने यह भी प्रकट किया कि यद्यपि पुलिस तथा सेनाकी सहायतासे नगरमें वाह्य रूपसे पूर्ण शांति स्थापित हो गयी है, परन्तु भीतरसे लोगोंके हृदय अब भी उद्वेलित हैं। इसलिए उनके हृदयमें आज जो तूफान भरा हुआ है, वह कभी भी प्रकट हो सकता है! इस विवेचनाके साथ 'करो वा मरो' के सूत्रकारने अपने हृदयकी व्यथाको प्रकट करते हुए तभी यह भी घोषित किया कि अब आगे "शांति ही मुझे जीवित रख सकती है। मैं हिन्दू, मुसलमान, सिख सभीमें पूर्ण मैत्री चाहता हूँ। आज उस मैत्रीका पूर्ण अभाव है। ऐसी स्थिति कोई भी देश-भक्त सहन नहीं कर सकता।"

कुछ आलोचकोंने गांधीजीके इस उपवासका विरोध किया और कहा कि यह (व्रत करना) हिन्दू व सिखों पर दबाव डालने का—एक उपाय है। ऐसे आलोचकोंको गांधीजीने इतना ही उत्तर दिया कि 'विरोधी कथनोंका मूल्य ही क्या जब मेरा उद्देश्य पवित्र है।...भारत, हिन्दुत्व तथा इसलामका विनाश होते हुए असह्य अवस्था में देखते रहनेकी अपेक्षा मृत्यु मुझे गौरवपूर्ण मुक्ति प्रदान करेगी।'

अपने विचारकी अटलता प्रकट करते हुए गांधीजीने अपने मित्रोंसे भी यह अनुरोध किया कि 'वे बिड़ला-भवनकी ओर दौड़ न पड़ें। वे न तो मुझे अपने निश्चयसे विचलित करनेकी चेष्टा करें और न चिन्ता ही प्रकट करें...।'

इस प्रकार १३ जनवरीको प्रथम भोजनके पश्चात् गांधीजीका अनशन शुरू हो गया। उनके उपवाससे दुनिया भरमें खलबली मच उठी। विश्व-

भरकी आँखें इस अद्भुत कर्मयोगीके चमत्कारको उत्सुकताके साथ निरखने लगीं। पाकिस्तानसे भी गांधीजीके पास संदेश आने लगे। हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके नेता तथा दोनों जगहोंकी जनता गांधीजीके प्राणोंको बचानेके लिए व्यग्र हो उठी।

इधर गांधीजीका अनशन चलता ही चला गया। लेकिन उस अवस्थामें भी वे रोज प्रार्थना-सभा में भाषण करते रहे। १७ जनवरीको डाक्टर सुशीला नायरने प्रार्थना-सभामें गांधीजीका लिखित संदेश पढ़कर सुनाया जिसमें उन्होंने कहा था कि वे पाकिस्तानके भाग्य-विधाताओंसे यह कहे बगैर नहीं रह सकते कि 'यदि उनकी चेतना जागृत नहीं होती और पाकिस्तानके अपराधोंको वे स्वीकार नहीं करते तो वे पाकिस्तानको कायम नहीं रख सकते।'

गांधीजीके इस उपवासका पाकिस्तान पर असर हुआ हो या नहीं, लेकिन भारत और भारतीयों पर उसका वांछित प्रभाव पड़ा। काश्मीरके संघर्षके कारण भारत सरकारने जो ५० करोड़ रुपया पाकिस्तानको देना रोक दिया था; इस उपवाससे प्रभावित होकर उसने अपना पूर्व-भाव बदलकर पाकिस्तानको तुरन्त वह रुपया चुका दिया। भारत सरकारके इस कार्यसे गांधीजीको प्रसन्नता हुई और उन्होंने आशा प्रकटकी कि पाकिस्तानका भी भाव-परिवर्तन होगा और वे काश्मीर तथा अन्य मामलोंमें सम्मानप्रद समझौता करनेको तैयार होंगे। लेकिन गांधीजी की यह आशा दुराशा ही साबित हुई और आज भी काश्मीर व दूसरे बहानोंको लेकर पाकिस्तान हिन्दुस्तानसे झगड़ता चला जा रहा है!

भारत सरकारकी तरह भारतीय नेताओं पर भी गांधीजीके उपवासका गहरा प्रभाव पड़ा और राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबूने हिन्दू, सिख, महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, और पंजाब तथा सीमाप्रान्तके शरणार्थियोंके १०० प्रतिनिधियों द्वारा यह लिखित प्रतिज्ञा कराईकी चाहे जो कुछ भी हो यहाँ पर हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, यहूदी सभीमें परस्पर प्रेम रहेगा। इस प्रतिज्ञापत्रको

देखकर गांधीजीको संतोष हुआ और १२ जनवरीको उन्होंने अपना व्रत समाप्त कर दिया। उस दिनकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने फिर यह घोषित किया कि "यदि साम्प्रदायिक एकता स्थापित करनेकी प्रतिज्ञा पूरी हुई तो मैं दूनी शक्तिसे ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा कि वह मनुष्यमात्रके लिए मुझे पूरे जीवन-काल भर जीने दे' (अर्थात् १२५ या १३३ वर्ष जैसा कि वे पहले भी कहा करते थे)। अपने व्रतके उद्देश्य पर भी फिर उन्होंने प्रकाश डालते हुए कहा—"मेरे व्रतका उद्देश्य था पहले हिंदके हिन्दू-मुसलमानोंका पारस्परिक हार्दिक स्नेह और बाद पाकिस्तानके हिन्दू और मुसलमानोंमें प्रेम-भाव।" वस्तुतः इस उद्देश्यके लिए गांधीजी हमेशासे हो प्रयत्न करते आये थे और इसी उद्देश्यको सफल बनानेमें अन्तमें उन्होंने अपने प्राणोंको भी विसर्जित कर दिया।

गांधीजीका उपवास सफल होने पर भारत और दुनियाने बड़ा हर्ष मनाया। सबको यह देखकर खुशी हुई कि गांधीजी उपवासके टूटनेसे मृत्युके मुखमेंसे वापस आ गये हैं और जैसे कि उन्हींका कहना था अब वे पूरे जीवनकाल तक संसारमें रहकर मानव-जातिकी सेवा कर सकेंगे। लेकिन दैवने कुछ और ही सोच रखा था।

उपवास पूरा होनेके दो दिन बाद ही ता० २० जनवरीको दैवका संकेत प्रकट भी होगया। उस दिन साम्प्रदायिक उन्मादसे उन्मत्त एक हिन्दू युवकने महात्मा गांधीकी प्रार्थना-सभाके समय बिरला-हाउसके आँगनमें एक बम्ब छोड़ा। सौभाग्यसे उसके फूटनेसे किसीको हानि न पहुँच सकी। किंतु गांधीजीको बम्बके फूटनेका तब खयालतक न हुआ। दूसरे क्या करते हैं इसका वे ध्यान ही कब करते थे—वे तो अपने कर्त्तव्य और कर्मपर ही ध्यानावस्थित रहा करते थे। लोगोंके बतानेपर ही गांधीजीको उस घटनाका बोध हुआ था। पर वह घटना उनके लिए कोई महत्त्व न रखती थी। अपने कर्तव्यके लिए जो हथेलीमें प्राणोंको रखे फिरता हो उसे प्राणोंका भय दिखाकर कैसे कोई विचलित

कर सकता है ? गांधीजी तो मृत्युञ्जय थे—मृत्युसे तब उन्हें भय ही क्या था ? उन्होंने कहा था—

"मैं मृत्युसे कभी नहीं डरता। मेरा जीवन तो भगवानके हाथमें है, वह जबतक उसका उपयोग चाहेगा करेगा। मैं चोटसे भी भय नहीं करता। धार्मिक-सहिष्णुता और हिन्दू-मुस्लिम एकतासे मेरे जीवनकी इच्छा बढ़ेगी। मुझे यदि अपने बीच देखना चाहते हो, तो मेरी यह शर्त है कि भारतकी सभी जातियाँ एक दूसरेसे मिल-जुलकर शांतिसे रहें—शस्त्र-प्रदर्शन, बल-प्रयोगसे नहीं वरन् प्रेमसे, ताकि यही प्रेम हमें विश्वसे बाँध सके।"

निःसन्देह गांधीजी अपने लिए कभी न जिये—वे तो हमारी और विश्वकी सेवाके लिए ही जीवित थे। अतः उन्हें मारने और चोट पहुँचानेसे जिन पागलोंने उनको क्षति पहुँचाना समझा, असलमें उन्होंने अपने और मानव-मात्रको ही क्षति पहुँचायी, क्योंकि उनके उस घृणित कार्यसे संसारका सबसे महान शांति-पाल और वर्तमान युगका बुद्ध तथा मसीहा इस धरतीसे सहसा गायब होगया।

उक्त बम्ब-घटनासे गांधीजीको उस युवककी उच्छृङ्खलता और अज्ञान पर ही तरस आया था। उन्हें उस घटनासे न क्रोध हुआ और न घृणा ही! प्रबुद्ध गांधी भी तो वर्तमानके बुद्ध थे और उनका भी यही कहना था कि क्रोधसे क्रोध और घृणासे घृणाको परास्त नहीं किया जा सकता, वरन् प्रेम और अहिंसासे ही हृदय जीते जा सकते हैं। बम्ब-घटनाके दूसरे दिनकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने कहा था कि उन्हें तब इसका पता भी नहीं चला कि हुआ क्या है ! अब उन्हें उस बातका पता है, इसलिए वे कहना चाहते हैं कि लोग उस उच्छृङ्खल युवकको घृणाकी निगाहसे न देखें। शायद है वह गांधीको हिन्दूत्वका दुश्मन समझता था। लेकिन युवकको यह न समझना चाहिये कि जिनके विचार उससे नहीं मिलते वे अवश्य बुरे ही होंगे। जो उस युवकके सहयोगी हैं, उनसे वे प्रार्थना करेंगे कि ऐसी चेष्टा न किया करें। हिन्दुत्वको बचानेका यह तरीका

नहीं है ।' उन्होंने अपने प्रवचनमें यह भी प्रकट किया कि वे इन्सपेक्टर-जनरल-पुलिससे कह चुके हैं कि उस युवकको किसी तरहसे आक्रान्त न करें । उन्हें उस युवकको प्रेमसे जीतना चाहिये और सत्य-विचार तथा सत्य-मार्गकी तरफ उसे ले जाना चाहिये । अन्तमें अपने श्रोताओंको गांधीजीने बम्ब-बाजी और गोलियोंकी बौछारके बावजूद शांत और स्थिर होकर केवल प्रार्थनामें तल्लीन रहनेका निर्देश दिया ।

स्थित-प्रज्ञ गांधी जीवनकी अन्तिम घड़ी तक अज्ञात और अंधकारमें भटकती मानवकी आत्माको प्रकाश दिखाते रहे । लेकिन अपने चारों ओर की स्थिति को देखकर उनका अपना मन दुनियाके तौर-तरीकोंसे उद्विग्न हो उठा । साम्प्रदायिक विद्वेषके अलावा उन्हें यह देखकर भी अत्यन्त कष्ट होता था कि जिस कांग्रेसकी वे अर्द्ध-शताब्दीसे भी अधिक सेवा करते रहे, आज स्वतंत्रता मिलने पर पतनकी ओर अग्रसर है । १८ जनवरीके वक्तव्यमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे कांग्रेस वालोंको चेताते हुए कहा था—"देशके सम्मुख राजनैतिक तथा आर्थिक गुत्थियों में सबसे बढ़कर कांग्रेस-जनोंका नैतिक पतन है ।...स्वराज्य प्राप्तिकी भावनासे प्रभावित होकरके असंख्य नरनारी कांग्रेसके नेतृत्वके तले आये । पर अब वह ध्येय पूरा हो गया है ।" किन्तु ध्येय पूरा होने पर 'राम-राज्य' की जगह "आज कांग्रेसके कार्यकर्ता अपने व्यक्तिगत हितोंकी पूर्तिके लिए राष्ट्रीय आन्दोलनोंके कट्टर शत्रुओंसे हाथ मिला रहे हैं...इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस सरकार बुरी तरह बदनाम हो रही है ।"* २६ जनवरीको स्वतंत्रता दिवसके अवसर पर

---

* गांधीजीके समय पर चेतावनी देनेके बाद भी आज तक कांग्रेस अपने अन्दर आये भ्रष्टाचारको रोक नहीं सकी है । २ अक्तूबर १९४९ को पुरुषोत्तमदास पार्क इलाहाबादमें भाषण करते हुए यू० पी० सी० सी के प्रधान और स्पीकर टंडनजी ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि आज भी ताकत नौकरशाही, जिसे अंग्रेजी जमानेमें बहुत बुरा-भला कहा जाता था,

प्रार्थना-सभामें बोलते हुए गांधीजीने कहा था कि 'स्वतंत्रता मिल जाने पर आज उन्हें दीख रहा है कि उससे वे प्रताड़ितसे मालूम करते हैं।' क्योंकि, 'सच्ची स्वतंत्रता बिना पूर्ण-अहिंसा और निम्न-से-निम्न ग्रामीणका उद्धार किये बिना आ नहीं सकती—' और इस तरफसे ही उन्हें अब कांग्रेसी उदासीन दीख पड़ रहे थे। यही कारण था कि गांधीजीको अपने 'रामराज्य' की कल्पना स्वराज्य प्राप्तिके बाद दूर हटती सी ही दीख पड़ने लगी।

देश की तात्कालिक आर्थिक समस्यासे भी गाँधीजीको काफी उद्विग्नता थी। उन्होंने अपने वक्तव्योंमें सरकारको कंट्रोल उठाने पर जोर दिया और रोज-दिनके हड़तालोंको देशके लिए हानिकर बतलाया। अन्तमें उन्होंने अपने श्रोताओंसे यही प्रार्थना की कि जो भी भ्रष्टाचार और हिंसा इस समय व्याप्त हैं वह सब उनके सचेष्ट और सतर्क रहनेसे ही दूर हो सकती हैं, और तभी भूमिपर शान्तिका साम्राज्य भी कायम हो सकता है।

किन्तु महात्माओंको भी दूषित मानव घृणा और आक्रोससे देखता रहा है। साम्प्रदायिक विद्वेषसे पागल हुए कुछ भारतीयोंने शान्तिके इस अवतारको भी अपने हिंसा-पथका रोड़ा ही समझा। अतः एक ऐसे ही पागलने गांधीजीको समाजसे दूर हिमालयमें चले जानेकी राय भेजी ताकि उसके जैसे लोगोंको कोई कुकृत्य करनेसे न रोकने पावे। परन्तु उसे भी गांधीजीने ममता पूर्ण शब्दोंमें २९ जनवरीको अपने प्रवचन द्वारा यही उत्तर दिया—"मैं हिमालय क्यों नहीं जाता? वहाँ रहना तो मुझे पसन्द पड़ेगा। ऐसा नहीं कि वहाँ मुझे खाना-पीना ओढ़ना नहीं मिलेगा। वहाँ जाकर शान्ति मिलेगी। मगर मैं अशान्तिमें शांति चाहता हूँ, नहीं तो उस अशान्तिमें मर जाना चाहता हूँ। मेरा हिमालय यहीं है। आप सब हिमालय चलें तो मुझे भी साथ लेते चलें।"

के ही हाथोंमें है और उन्हींका देशके शासनमें बोलबाला है (अमृत-बाजार पत्रिका, ४ अक्तूबर, १९४९)।

आह, और ३० जनवरीकी घातक संध्याको विश्वके इस विराट-पुरुषने सचमुच ही शान्तिकी खोजमें अशांतिमें अपने प्राणोंको निछावर कर दिया। उस रक्त-रंजित संध्याको ५ बजकर ५ मिनटपर बिड़ला-भवनसे गांधीजी प्रार्थना-सभामें जानेके लिए बाहर निकले। आभा और मनु गांधीके कंधोंपर वे सहारा लिए चल रहे थे। लेकिन ज्यों ही वे प्रार्थना-सभाके मंचके पास पहुँचे, एक उन्मादी हिन्दू युवक भीड़मेंसे निकलकर गांधीजीके समीप चला आया और उनकी पौत्रियोंको धक्का देकर उसने धड़ाधड़ चार गोलियाँ रिवाल्वरसे उनपर दाग दीं।*

एक गोली गांधीजीके पेटमें लगी और वे 'राम-राम' कहते हुए गिर पड़े। इसके बाद तीन और गोलियाँ उनके शरीर पर लगीं। उनकी छाती और पेटसे

---

* गोली दागनेवाले युवकका नाम नाथूराम गोडसे था। उसपर तथा नारायण आप्टे व ६ और व्यक्तियों पर हत्या तथा हत्याके षडयंत्रके अभियोग पर २७ मई १९४८ को लाल किलेमें न्यायधीश आत्माचरणकी इजलाशमें मुकदमा चला। ३० दिसम्बर १९४८ को मुकदमे की सुनवाई पूरी हुई। १० फरवरीको उन्हें सजा सुनायी गई। इनमेंसे एक अभियुक्त श्री वी० डी० सावरकर भी थे लेकिन वे निरपराधी साबित होनेपर छोड़ दिये गये। गोडसे, आप्टेको फाँसी और बाकी पाँचको कालेपानीकी सजा मिली। इसपर अभियुक्तोंने पूर्वी पंजाबके हाईकोर्टमें अपील की। २१ जून १९४९ को हाईकोर्टने फैसला दिया। गोडसे, आप्टे और ३ व्यक्तियोंकी सजाको हाईकोर्टने भी मंजूर किया, लेकिन डा० पराचुरे और शंकरको बरी कर दिया। अभियुक्तोंने प्रिवी कौंसिलमें भी अपीलके लिए प्रयत्न किया। लेकिन ११ अक्तूबरको कौंसिलने अपील करनेकी स्वीकृति नामंजूर कर दी। २६ अक्तूबर को जज आत्मारामकी जगह नये जज श्री एस० एस० दुआर ने फाँसीके वारण्ट पर दस्तखत किये और ८ बजे सुबह १५ नवम्बर १९४९ को गोडसे व आप्टेको फाँसी दे दी गई।

खूनकी धाराएँ बह चलीं। उनकी आँखें बंद हो गयीं लेकिन उनके दोनों हाथ इस तरह से आकर जुड़ गये मानों वे प्रार्थनाके लिए आये हुए लोगोंका अभिवादन कर रहे हों और ईश्वरकी प्रार्थनामें तल्लीन हों।

यकायक जो न होना था, सो हो गया। गांधीजीके खूनसे लथपथ हुए शरीरको तुरन्त बिड़ला-भवन पहुँचाया गया। डाक्टर आये—उन्होंने सिर हिला दिया।

आध घंटे बाद ५–२० पर बिड़ला-भवनमें एकत्रित हुई क्षोभ और शोकमें डूबी जनताको एक आदमीने भीतरसे बाहर निकलकर सूचित किया—"बापू नहीं रहे।"

यह सुनते ही एक आह सारे वायुमंडलमें व्याप्त हो गयी। जिसने जहाँ सुना वहीं सिर धुनने लगा। सारे भारतमें हाहाकार मच उठा। कौन था जो न रोता हो! बापू भारतको अनाथकर चले गये थे। भारतका दारुण-विलाप देखा न जा सकता था।

उधर दुनियामें जब यह शोक संवाद पहुँचा तो विश्वभर क्रन्दन कर रो उठा। उसका भी तो मसीहा उठ गया था।

लन्दनमें बरनार्ड शा ने सुना और कहा—"बहुत भला होना भी खतरनाक है।"

अमेरिकाके किसानने सुना और उसे कुछ आश्चर्य-सा हुआ। उसे रास्तेमें अपने वहाँकी प्रसिद्ध विदुषी पर्ल० एस० बक मिलीं और उन्हें रोककर उसने पूछा,—"संसारका प्रत्येक मनुष्य कहता था कि गांधीजी एक श्रेष्ठ व्यक्ति हैं। फिर किसीने उनकी हत्या क्यों की।" जब इसका उत्तर न मिला तो उसने स्वयं ही ठंडी साँस लेते हुए कहा—"मैं देखता हूँ कि मसीहाके समान ही उनकी भी हत्या कर दी गयी।"

आह! सचमुच जगतका मसीहा और भारतका बापू मानवके पापको धोनेके लिए अपना रक्त बहाकर स्वर्ग सिधार गया था।

दूसरे दिन सुबह १० बजे फूलोंसे सुसज्जित सैनिक गाड़ी पर महात्मा गांधीका शव रखा गया। ११-४१ पर जुलूस रवाना हुआ। पं० नेहरू, सरदार पटेल और सरदार बलदेवसिंह जुलूसका नेतृत्व कर रहे थे और दुनियाके सभी बड़े आदमी, राजदूत, भारतके गर्वनर-जनरल और असंख्य जनताकी भीड़ शोकमें निमग्न ५ मीलकी कतारमें शवके पीछे सरकती चली जाती थी, मालूम होता था शोकका अपार समुद्र ही उमड़ आया है। ४ बजकर ५० मिनट पर रामदास गांधीने चिताको प्रज्वलित किया। हवाके झोंकोंके साथ लपटें आसमान में दौड़ने लगीं मानों गांधीके आगमनकी सूचना स्वर्गको दे रही हों। और तभी अपार जन समूहने तुमुल घोष किया 'महात्मा गांधी अमर हो गये।'

निःसंदेह, गांधीका शरीर चला गया है, किन्तु—अमर गांधीवाद कभी दुनियासे न जा सकेगा।

———

अध्याय—२६

महात्मा गांधीका इतिहासमें स्थान

'Gandhi is one of history's most amazing paradoxes — a soldier who fights with the weapon of a saint.'

महात्मा गांधीको आज सम्पूर्ण दुनिया राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसाकी तरह एक 'अवतारी पुरुष' मानने लगा है। इसका क्या कारण है? संक्षेपमें इसके तीन कारण दिये जा सकते हैं—सत्य, अहिंसा और सेवा! उनके जीवनकी सारी भित्ति, यदि हम उनके जीवनका अध्ययन करें तो इस 'त्रि-रत्न' के ऊपर ही स्थित मिलेगी। अतः जो लोग उन्हें यह समझते हैं कि वह केवल एक राजनीतिज्ञ और विदेशी शासनके विद्रोही थे—वे उन्हें पूरा नहीं समझे हैं।

गांधीजी वस्तुतः एक धार्मिक पुरुष थे और पीड़ित जगतको सदाचार और सद्भाव तथा मानव-प्रेमका पाठ पढ़ाना उन्होंने अपने जीवनका ध्येय बनाया था। किन्तु 'आचार' का यह पाठ उन्होंने उपदेशों द्वारा केवल मुखसे प्रवचनों की झड़ी लगाकर नहीं दिया वरन् अपने आचरणसे हो वे दूसरोंको सिखाने और समझानेका निरन्तर प्रयत्न करते रहे। और उनके अपने 'आचरण' का आधार था—गीता। यदि कृष्ण गीताके स्रष्टा थे तो गीता गांधीकी स्रष्टा थी। गांधीजी लिखते हैं "मेरे लिए तो गीता आचारकी एक प्रौढ़ मार्ग-दर्शिका बन गयी है। वह मेरा धार्मिक कोष हो गयी है। जिस तरह मैं अंग्रेजी कोषको खोलता, उसी तरह आचार-सम्बन्धी कठिनाइयों और उसकी अटपटी गुत्थियोंको गीताजीके द्वारा सुलझाता। उसके अपरिग्रह, समभाव इत्यादि शब्दोंने मुझे गिरफ्तार कर लिया। यही धुन रहने लगी कि समभाव कैसे प्राप्त करूँ, कैसे उसका पालन करूँ!"

अतः गांधीजीको समझनेके लिए गीताको समझना पहले आवश्यक है क्योंकि गीतासे ही उनकी उत्पत्ति हुई है और वही उनके सम्पूर्ण जीवनकी कुञ्जी भी है। उनका तपस्वी जीवन और उनके सभी सिद्धान्त गीतासे ही निःसृत हुए हैं। गीताने ही उन्हें सत्यका पाठ पढ़ाया, उन्हें अपरिग्रही होना सिखाया तथा अहिंसा एवं हृदय परिवर्तनके द्वारा कार्य करनेकी शिक्षा दी। अतः यह गीता ही थी जिन्होंने गांधीजीको व्यक्ति और कुटुम्बकी सेवासे ऊपर देश, राष्ट्र और विश्व भरके मानव-मात्रकी सेवाके लिए अग्रसर किया। इस पाठको सीखनेके बाद ही गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकासे अपने बड़े भाईको लिखा था—"आज तक जो कुछ मैं बचाता रहा आपके अर्पण करता रहा, अब जो कुछ बच रहेगा, वह यहींके सार्वजनिक कामोंमें लगेगा।"

फलतः गीताके इस महापुरुषने लोकसेवा और राजनीतिमें जो कदम बढ़ाये उसका कारण केवल ईश्वरकी शोध और आत्म दर्शन ही था। वे कहते हैं "यह समझकर कि सेवाके द्वारा ही ईश्वरकी पहिचान हो सकती है—मैंने सेवा-धर्म स्वीकार किया था।" लेकिन यदि यहाँ पर कोई यह प्रश्न करे कि उन्होंने अपने जन्मके देशके अलावा दूसरे किसी देशको क्यों नहीं सेवाका क्षेत्र बनाया, तो उसका उत्तर भी गांधीजी स्वयं दे गये हैं—'भारतकी सेवा मुझे सहज प्राप्त थी, उसमें मेरी रुचि थी।' किन्तु यह लोक-सेवा कोई सरल चीज न थी। गांधीजी को अनुभव हुआ कि "यदि मुझे लोक-सेवामें ही लीन हो जाना है तो फिर पुत्रैषणा एवं धनैषणाको भी नमस्कार कर लेना चाहिए और वानप्रस्थ-धर्मका पालन करना चाहिए।' गांधीजीके निःस्वार्थ और त्यागमय जीवनका रहस्य उनके इस अनुभवमें निहित है।

उनकी सम्पूर्ण राजनीतिका आधार भी सेवा ही थी। लोक-सेवा और राजनीतिको उन्होंने कभी दो भिन्न वस्तु नहीं माना। दक्षिण-अफ्रीकाके सत्याग्रह आन्दोलन और भारतके उनके तमाम अहिंसात्मक-आन्दोलन लोक-सेवाके रूप में ही किये गये थे। दक्षिण-अफ्रीकाकी गोरी सरकार और भारतकी ब्रिटिश-

सरकार भारतीयों और एशियाइयों पर अन्याय कर रहे थे और इस अन्यायको दूर करना ही उनकी लोक-सेवाका ध्येय था। यही कारण है कि उन्हें सेनापति और महात्मा दोनों कहा जाता है जिसका लड़नेका ढंग विचित्र और अस्त्र भी विचित्र था।

निःसन्देह उनकी समस्त लड़ाइयाँ आध्यात्मिक स्तरपर ही लड़ी गईं। वे मनुष्यसे कभी नहीं लड़े—केवल मनुष्यके अन्दरकी बुराईयोंसे ही उनका द्वन्द हुआ। इसीलिए वे सीमित मस्तिष्कके बजाय अपने प्रत्येक कार्योंके लिए अन्तर-आत्मासे ही प्रेरणा लेते थे। उन्होंने कहा है—"मैं जो अपने छोटे-छोटे और बड़े-बड़े कहे जानेवाले कार्य-करता आया हूँ उनकी जब छान-बीन करता हूँ तो मुझे यह कहना अनुचित नहीं मालूम होता कि वे अन्तर-आत्माके प्रेरणाके ही फल हैं।" प्रत्यक्ष है कि अन्तर-आत्माकी प्रेरणापर कार्य करनेवाला व्यक्ति—'परम-सत्य' का और इसीलिए 'अहिंसा' का भी माननेवाला होता है।' क्योंकि "सत्यकी खोजके मूलमें अहिंसा व्याप्त है।...जबतक यह अहिंसा हाथ न लगेगी, तबतक सत्य हाथ नहीं आ सकता।" अतः सत्य और अहिंसावालेके लिए 'मनुष्य' के प्रति वैर या उसके साथ द्वन्दके लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता—वह तो केवल मनुष्यके विचारोंमें पैदा हुई बुराईसे लड़ता है और यह लड़ाई शरीरपर आघात करनेवाले हथियारोंसे नहीं बल्कि हृदयको परिवर्तित करनेवाले अहिंसाके शस्त्रसे ही लड़ी जा सकती है। इसीलिए गांधीजीने कहा है—"किसी तंत्र या प्रणालीका विरोध तो अच्छा है ; लेकिन उसके संचालकका विरोध करना मानों खुद अपना ही विरोध करना है। कारण...हम सबकी सृष्टि एक ही कूँची के द्वारा हुई है। हम सब एक ही ब्रह्मदेवकी प्रजा है। सञ्चालकके अन्दर तो अनंत शक्ति भरी हुई है, इसलिए यदि हम उसका अनादार करेंगे तो उसकी शक्तियोंका, गुणोंका भी अनादर होगा। ऐसा करनेसे तो उस सञ्चालकको एवं प्रकारन्तरसे सारे जगतको हानि पहुँचेगी।" क्योंकि उनका विश्वास है कि "मनुष्य और उसका काम तो जुदा चीजें हैं।

अच्छे कामके लिए मनमें आदर और बुरेके लिए तिरस्कार अवश्य ही होना चाहिए, पर अच्छे-बुरे काम करनेवालेके प्रति हमेशा मनमें आदर अथवा दयाका भाव होना चाहिये।" लेकिन, "यह बात समझनेमें तो बड़ी सरल है; पर उसके अनुसार जगतमें आचरण बहुत कम होता है। यही कारण है जो इस जगतमें हम इतना जहर फैला हुआ देखते हैं।" दुनियाके स्वार्थोंमें डूबे हुओंके लिए ऐसा आचरण करना, भलेही कठिन पड़े किन्तु गांधीजीने जिस प्रकार निरन्तर ३० वर्ष तक ब्रिटिश-सरकारके साथ आध्यात्मिक या अहिंसक युद्ध लड़ा और अन्तमें ब्रिटेनसे जिस प्रकार सत्ता पानेके साथ-साथ मित्रता भी प्राप्तकी वह इस बातका प्रमाण है कि दुनियाके महान् नेता भी यदि चाहें तो उनके रास्ते पर चलकर ऐटम-बमके विनाशके भयसे संसारको मुक्तकर शांतिकी स्थापनामें सहायक हो सकते हैं।

गांधीजीके जीवनका संक्षेपमें यही सार और दुनियाके लिए संदेश है। अत; राष्ट्रनिर्माता, सुधारक, और राजनीतिज्ञ होनेके अलावा वे जगतके त्राता और मानव-मात्रके सेवक और कल्याणकर्त्ता ही अधिक थे, और इसी रूपमें विश्वके इतिहासमें उनका मूल्यांकन भी किया जायगा। वे यदि भारतके बापू थे—तो जगतके वे मसीहा थे। इस सत्यको आज सभी स्वीकारकर चुके हैं। वाशिंगटनमें बनाये जानेवाला 'गांधी स्मारक' जिसके 'बिल' पर २८ सितम्बर १९४९ को अमेरिकाके सभापति ट्रूमनने हस्ताक्षर किये हैं क्या इसका प्रमाण नहीं है? और क्या न्यूयार्कमें गांधी-जयन्तीके अवसरपर ३ अक्तूबर १९४९ को लुई फिशरके कहे ये शब्द निरर्थक हैं—

"Gandhiji's place in history was So great that the role of Liberator of India was really his least"!

निःसन्देह, गांन्धीजीका इतिहासमें इतना बड़ा स्थान है कि उसके सामने उनका भारतका त्राता और राष्ट्र-निर्माता होना एक छोटी सी बात रह जाती है।

———

सहायक पुस्तकें

१—आत्मकथा— महात्मा गाँधी—अनु०—हरिभाऊ उपाध्याय

२—Out of Dust—D. F. Karaka.

३—Mahatma Gandhi—pub. by. G. A. Natesam & Co. Madras.

४—मेरी कहानी—जवाहरलाल नेहरू

५—आत्मकथा—डा० राजेन्द्र प्रसाद

६—कांग्रेस का इतिहास—अनु०—हरिभाऊ उपाध्याय

७—India—by. Chirol

८—स्वतंत्रता संग्राम के ९० वर्ष—श्रीकृष्णदास

९—India To-day—Palme Dutta

१०—Young India—

११—Gandhi, His Life and Works, pub. Bombay oct. 2. 1944.

१२—करौंची की कांग्रेस—जीतमणि लूणिया

१३—India Struggles for Freedom by H. N. Mukerji.

१४—Mahtma Gandhi—Polak, Brailisford & Pathick Lawrence.

१५—हमारा संघर्ष—श्री क्षेमेन्द्र 'सुमन'

१६—The British achievement in India—by. H. G. Rawlinson.

———